समाजशास्त्र-परिचय

(भाग १)

लेखक

मदन मोहन सक्सेना

रीडर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
डी. ए-वी. कॉलेज, कानपुर

हिन्दुस्थान बुक हाउस

पोस्ट बाक्स ४६०
हॉस्पिटल रोड, परेड
कानपुर-१

प्रकाशक
आनन्द नारायण शिवपुरी
मैनेजर
हिन्दुस्थान बुक हाउस
पो० बा० ४६०
हॉस्पिटल रोड, परेड
कानपुर—१

मूल्य ८·००
१९७२ संस्करण

मुद्रक
अमलतास प्रेस
४०/६९, परेड
कानपुर

प्रस्तावना

इस वर्ष के बी०ए० प्रथम वर्ष के समाजशास्त्र के पाठ्यक्रम में कानपुर विश्वविद्यालय ने फिर से अनेक परिवर्तन किये हैं। प्रस्तुत पुस्तक नये पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। इस बार कुछ नयी अवधारणाओं को पढ़ना और पढ़ाना होगा। पाठकों की कठिनाइयों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक को अत्यन्त सरल भाषा में सरल और रोचक ढंग से लिखा गया है, आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त उदाहरणों से अवधारणा को स्पष्ट कर दिया गया है, अनावश्यक सामग्री जोड़कर पुस्तक को मोटी बनाने से बचा गया है, छोटे-छोटे पैराग्राफों में सामग्री को विभाजित कर दिया गया है, नयी से नयी पाठ्य-सामग्री को शामिल करने का प्रयत्न किया गया है।

इस संस्करण में समाज और मनुष्य की प्रकृति, समाज, समुदाय, समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र, समाजशास्त्र की प्रकृति, समाजीकरण आदि अध्यायों में काफी मात्रा में नयी सामग्री जोड़ दी गई है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक को अवश्य पसन्द करेंगे।

१-८-७२ —लेखक

विषय-सूची
(CONTENTS)

१ मनुष्य और समाज की प्रकृति
(Nature of Man and Society)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह सदा से अन्य मनुष्यों के बीच रहता आया है। जन्म के बाद बहुत दिन तक उसे समाज के अन्य सदस्यों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। मनुष्य और समाज का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट है। न तो व्यक्ति समाज के बाहर रह सकता है और न व्यक्तियों के बगैर समाज रह सकता है। इन दोनों के परस्पर सम्बन्ध को जानने से पहले यह अच्छा होगा कि हम मनुष्य और समाज को अलग-अलग जान लें।

मनुष्य के शारीरिक और मानसिक गुण उस मौलिक संरचना का निर्माण करते हैं जिसमें से उसके सामाजिक सम्बन्धों की प्रणाली विकसित होती है। यह सभी मानते हैं कि मनुष्य पशु जगत का एक सदस्य है। धार्मिक पुस्तकें और विज्ञान दोनों ही इस बात से सहमत हैं कि यद्यपि मनुष्य भी एक पशु है वह अनेक महत्वपूर्ण अर्थों में अन्य पशुओं से भिन्न है।

मानव जाति के विशिष्ट गुण (Distinctive traits of the human species) :—यह सत्य कि मनुष्य भी एक पशु है यह प्रदर्शित करता है कि सामान्यतयः मानव व्यवहार भी उन्हीं आन्तरिक और बाहरी आवश्यकताओं से संचालित होता है जो सभी पशुओं के ढाँचे और संगठन से उत्पन्न होती हैं। फिर भी, मानव व्यवहार और मनुष्य के निकटतम सम्बन्धी बनमानुषों के व्यवहार में अनेक महत्वपूर्ण अन्तर हैं। व्यवहार की यह विशेषतायें महत्वपूर्ण संरचनात्मक अन्तर के आधार पर समझी जा सकती हैं।

(१) पहली और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता मनुष्य की अत्यधिक संगठित और केन्द्रीय नाड़ी-प्रणाली है। मस्तिष्क नाड़ी-प्रणाली का सबसे विकसित भाग है और पशु जगत में यह सबसे अधिक विकसित रूप में मनुष्य में ही पाया जाता है। आकार की दृष्टि से मानव मस्तिष्क नर-बानरगणों (Primates) के मस्तिष्क से बड़ा होता

है जिनका मस्तिष्क शरीर के वजन को देखते हुये पशु जगत में सबसे बड़ा होता है। इस प्रकार, पुरुष मानव खोपड़ी (skull) की औसत धारिता (capacity) १४५० क्यूबिक सेन्टीमीटर होती है, जबकि सबसे विशालकाय नर वानर, गोरिल्ला, की खोपड़ी की औसत धारिता कुल ५०० क्यूबिक सेन्टीमीटर होती है, लगभग एक तिहाई।

न केवल मनुष्य का मस्तिष्क बड़ा होता है बल्कि अधिक जटिल भी होता है। सेरिब्रम जिसके द्वारा उच्च मानसिक प्रक्रियायें सम्भव हैं अत्यधिक विकसित होता है। यह अनुमान लगाया जाता है कि सेरिब्रल कोर्टेक्स में कम से कम दस अर्बुद (billion) नाड़ी छोर होते हैं जिनके आपस के सम्बन्धों से अनगिनती व्यवहार-प्रक्रियायें सम्भव हैं। यह बात अन्य पशुओं में नहीं पाई जाती है।

(२) मानव जाति की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता उसका एकदम सीधे खड़े होकर चलना है। इसके कारण उसके दोनों हाथ शरीर के बोझ को सहारा देने के कार्य से मुक्त हो जाते हैं। इससे केवल चलने फिरने में मेहनत ही कम नहीं होती बल्कि पर्यावरण की जाँच करने और उसको अपने अनुकूल बनाने के लिए दोनों हाथ मुक्त रहते हैं।

(३) अन्य नर-वानरों की भाँति मनुष्य को भी परिग्राही (prehensile)हाथ प्राप्त हैं परन्तु मनुष्य के इन अंगों का लचीलापन अधिक होता है। मनुष्य अपने अंगूठे से अन्य चारों अंगुलियों के सब भागों को छू सकता है परन्तु नर-वानर नहीं। इसके अतिरिक्त मनुष्य के अंगूठे और उंगलियों का समन्वय (co-ordination) बहुत बारीक है जो नर-वानरों आदि में नहीं पाया जाता।

(४) मनुष्यों की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता उनकी सन्धिबद्ध करके (articulately) बोलने की योग्यता है। शरीर अवयवशास्त्र की दृष्टि से इस योग्यता का सम्बन्ध मस्तिष्क के आकार और सीधे होकर चलने से सम्बन्धित परिवर्तनों से है। नर-वानरों आदि के जबड़े कहीं अधिक बड़े हैं और जबड़े की हड्डियों का ढांचा ऐसा होता है कि जीभ मुक्त रूप से चलाई नहीं जा सकती। मनुष्य में इस प्रकार की कोई बाधा नहीं है और मनुष्य अपने मुंह के अन्दर जीभ को अपनी इच्छानुसार जैसा चाहे चला सकता है। इसके अतिरिक्त, वनमानुषों आदि के मस्तिष्क की अपेक्षा मनुष्य का मस्तिष्क कहीं बड़ी खोपड़ी के भीतर स्थित है। मनुष्य की यह सब अवयव सम्बन्धी विशेषतायें उसको ध्वनि करने योग्य बनाती हैं। बोली तो विचारों के प्रतीकों का केवल एक कुलक है। परन्तु अपनी अत्यधिक विकसित नाड़ी प्रणाली और मस्तिष्क के बिना मनुष्य के बोलने की क्षमता का कोई नतीजा नहीं निकलता। यह बात मूढ़ों (idiots) की परीक्षा द्वारा समझी जा सकती है जो समझने योग्य बोली बोलने में असमर्थ हैं। आम तौर से उनका मुंह और गला स्वाभाविक होता है परन्तु मस्तिष्क और नाड़ी प्रणाली गड़बड़ होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से

मनुष्य का बोलना-चालना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विभिन्न व्यक्तियों के बीच अन्तः संचार (intercommunication) के द्वारा ही, जो बोली के द्वारा संभव है, सामाजिक जीवन से संबंधित सभी व्यवहार विकसित हो पाते हैं।

मनुष्य की कुछ अन्य शरीरशास्त्रीय विशेषतायें भी हैं जिनका सामाजिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। अन्य नर-वानरों आदि की अपेक्षा मानव शिशु कहीं अधिक असहाय अवस्था में पैदा होता है और उसका शैशवकाल अधिक लम्बा होता है। उसमें बहुत ही कम मूल प्रवृत्यात्मक (instinctive) प्रक्रियायें होती हैं और वह स्वयं अपनी देखभाल करने में असमर्थ होता है। इस बात का मनुष्य के पारिवारिक जीवन पर और सामाजिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की भोजन पाचन नली अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों को सहन करने और उनसे पोषाहार (nourishment) निकालने की क्षमता रखती है। स्पष्टतः मनुष्य में किसी भी प्रकार के भोजन के विरुद्ध कोई जन्मजात घृणा नहीं होती और इसीलिये सांस्कृतिक रूप से उसे ऐसी प्रत्येक वस्तु खाने के लिये शिक्षा दी जा सकती है जो वह निगल सकता हो।

कुछ समाजशास्त्रीय पहलू (Some Sociological Aspects)

वैषयिक (objective) दृष्टि से मनुष्य को भी एक पशु समझा जाता है और अन्य पशुओं की तुलना में वह अनेक लाभों से वंचित है। फिर भी, वह इतना चतुर है कि उसने अन्य पशुओं को इस हद तक अपने वश में कर लिया है कि उसे पशुओं का राजा कहा जाता है। मनुष्य का शरीर अपेक्षाकृत कमजोर होता है। अपने दो पैरों पर चलने से वह अनेक चौपाये पशुओं से धीमा भागता है। बालों या सींग के अभाव में उसकी चमड़ी धूप, ठंड आदि और अन्य खतरे से अरक्षित है। खड़े होकर सीधा चलने से उसके पेट आदि में बाहरी चोट लगने की संभावना अधिक रहती है। वह एक असहाय अवस्था में पैदा होता है और कई वर्ष बाद तक उसका लाड़-प्यार, पालन-पोषण, और रक्षा करने की आवश्यकता रहती है। जन्म के समय वह कुछ नहीं जानता और काफी लम्बे अर्से तक लगातार प्रशिक्षण दिये जाने पर ही वह बाहरी वातावरण से सामंजस्य कर पाता है। यदि पशु के रूप में मनुष्य को देखा जाये तो हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति की गोद में वह कितना महत्वहीन है और अनेक पशुओं से घिरा रहता है जो शारीरिक शक्ति, फुर्ती और मूलप्रवृत्ति की दृष्टि से बहुत श्रेष्ठ हैं।

परन्तु मनुष्य के पास एक मस्तिष्क होता है और सीखने की योग्यता होती है, दो चतुर हाथ होते हैं जो उसे प्राकृतिक वस्तुओं में परिवर्तन करने और उन्हें अपने लाभ के लिए अनुकूल बनाने की क्षमता देते हैं, सीधे खड़े होकर वह चलता

है और बोलने की योग्यता रखता है जिसके माध्यम से वह अपनी खोजों और ज्ञान को युवा पीढ़ियों तक पहुँचाता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सामाजिक जीवन उसके लिये क्यों महत्वपूर्ण है। शरीर से कमजोर होने पर, वह सहयोगात्मक कार्य करने में मजबूत है। यद्यपि जन्म के समय उसके पास इस बात का ज्ञान नहीं होता कि वह बाहर से कैसे सामंजस्य करे परन्तु ज्ञान प्राप्त करने की उसकी क्षमता असीमित होती है जिससे वह हजारों व्यक्तियों के जीवन से प्राप्त अनुभवों को अपने साथियों से ग्रहण कर लेता है। अन्त में, वह सबसे अधिक सामान्यीकरण किया हुआ पशु है और मूलप्रवृत्तियों (instincts) के द्वारा किसी एक विशेष प्रकार के पर्यावरण से ही बंधा हुआ नहीं है। यहाँ तक कि बनमानुष भी पेड़ों पर ही जीवन बिताने के लिये विशेष सामंजस्य करते हैं और यहाँ तक कि कुछ खास पर्यावरण में कुछ विशेष किस्म के ही पेड़ों पर रह सकते हैं। परन्तु सीखने की अपनी क्षमता के कारण मनुष्य सम्पूर्ण भू-तल पर दूर-दूर घूमता है और प्रत्येक प्रकार के पर्यावरण के साथ सामंजस्य करता है।

मनुष्य सीखी हुई प्रतिक्रियाओं के द्वारा जीवित रहता है, न कि मूलप्रवृत्तियों के द्वारा जो जीवाणुओं (germ plasm) के द्वारा जैविक वंशानुक्रम से प्राप्त की जाती हैं। सीखा हुआ व्यवहार जन्म के बाद प्राप्त किया जाता है और इस लिये जैविक वंशानुक्रम से हस्तांतरित नहीं होता। जो सीखा हुआ व्यवहार मनुष्यों के किसी एक सामाजिक समूहों में सामान्य होता है उसे हम संस्कृति (culture) कहते हैं। संस्कृति में सभी बाह्य और आन्तरिक व्यवहार शामिल रहते हैं जो एक सामाजिक समूह के सदस्यों में सामान्य होते हैं जो उस समूह का निर्माण करने वाले सदस्य प्रत्यक्ष अनुभव या जन्म के बाद अन्य व्यक्तियों से अन्त:क्रिया करके प्राप्त करते हैं। पशुओं में मनुष्य अपूर्व है क्योंकि उसका अधिकतर व्यवहार सांस्कृतिक होता है। मनुष्य और अन्य पशुओं में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि जहाँ मनुष्य के पास संस्कृति है, अन्य पशुओं के पास नहीं है।

सामाजिक जीवन के कुछ सामान्य पहलू (Some general aspects of social life) : पशुओं की ऐसी अनेक जातियाँ है जो समूह में तो रहती हैं परन्तु उनमें सामाजिक जीवन का अभाव होता है। ह्वीलर (Wheeler) ने कहा है कि इस भूतल पर मनुष्य के जन्म होने से लाखों वर्ष पूर्व से चींटियां सामाजिक जीवन व्यतीत करती हुई रहती थीं। इसलिए, यह आवश्यक हो जाता है कि हम सामाजिक जीवन के कुछ सामान्य पहलुओं को जाने जिससे यह स्पष्ट हो सके कि सामाजिक जीवन से क्या अर्थ है और किस प्रकार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

सामाजिक जीवन की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसे व्यवहार और व्यवहार के फल के रूप में देखा जाता है। हम समाज को शरीरों की क्रियाओं

के फलों के स्वरूप में ही देख सकते हैं। व्यवहार में तो शरीर की कोई भी क्रिया शामिल की जा सकती है। गन्ध छोड़ना, पूँछ हिलाना, सन्धिबद्ध (articulate) बोली बोलना, और सोचना यह सब बातें व्यवहार में शामिल हैं। परन्तु यहाँ हमारा सम्बन्ध सामाजिक जीवन में दिखाई पड़ने वाले **सामाजिक व्यवहार** से है जो अन्य प्रकार के व्यवहार से भिन्न होता है। इसकी अनेक विशेषतायें होती हैं।

१. जहाँ हमें सामाजिक जीवन मिलता है, वहाँ हमें व्यक्ति **नियमित रूप से** (regularly) **समूहों में रहते हुये** भी मिलते हैं। इन समूहों की रचना (composition) अपेक्षाकृत स्थायी या अपेक्षाकृत अस्थायी हो सकती है; लोग थोड़े या लम्बे अर्से के बाद उस समूह से विलग हो सकते हैं। परन्तु सामाजिक जीवन में समूह में रहना एक निश्चित बात है। जीवन का स्वाभाविक स्वरूप है। सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले प्राणियों में यदि व्यक्ति-समूह से अधिक दिन अलग रहता है तो वह परेशानी में पड़ जाता है, उसके व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है। इसलिये सभी सामाजिक जीवों में चाहे सीखी हुई या जन्मजात कुछ प्रवृत्ति समूह में रहने की अवश्य होती है।

२. इसकी दूसरी सामान्य विशेषता **समूहों के सदस्यों और ग़ैर-सदस्यों में भेद करना है।** अपने समूह के बाहर के व्यक्तियों के प्रति कम से कम प्रथम बार परिचय होने तक, चाहे बाद में परिचय मित्रता में बदल जाये, और अपने समूह के सदस्यों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार में विशेष अन्तर होता है।

३. समूह के सदस्यों और ग़ैर सदस्यों में विभेद और पहचान किसी प्रकार के **ऐन्द्रिय संचार** (sensory communication) पर निर्भर करता है। कीड़े अपने साथियों को गन्ध के माध्यम से और सम्भवतः हावभाव से पहचानते हैं। चिड़ियाँ और स्तनधारी पशु (mammals) जुबानी संचार करते हैं। यद्यपि यह संदेहजनक है कि मनुष्य के अतिरिक्त कोई अन्य स्तनधारी पशु सन्धिबद्ध बोली बोल पाता हो, परन्तु निकाली हुई ध्वनियाँ इन पशुओं में प्रतिक्रियायें अवश्य उत्पन्न करती हैं।

४. सामाजिक जीवन की चौथी विशेषता **कार्यों का विशेषीकरण** (specialization of functions) या श्रम-विभाजन (division of labour) है। इसकी हम सामाजिक पद और भूमिका (role) के रूप में भी व्याख्या कर सकते हैं। सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति का एक पद होता है और उसके अनुरूप उसको कार्य करने होते हैं। उदाहरण के लिए, सभी मानव समाजों में स्त्रियों, पुरुषों, बच्चों, वयस्कों और बूढ़े लोगों के कार्य अलग-अलग बँटे होते हैं।

५. सामाजिक जीवन में भाग लेने वाले व्यक्तियों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि आँशिक या अस्थायी रूप से वे अपनी क्रियाओं को अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं के आधीन रखें। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सामाजिक

जीवन की एक विशेषता व्यक्तियों के बीच **सहयोग** है। किसी भी हालत में व्यक्ति सामाजिक जीवन में पूरी तौर पर केवल स्वार्थी ही नहीं रह सकता। उसे अन्य व्यक्तियों के साथ किसी न किसी प्रकार का सामंजस्य (adjustment) करना ही पड़ता है। इसलिए सामाजिक जीवन में सामाजिक सामंजस्य आवश्यक होता है।

मानव समाज (Human Society) : ऊपर हमने सामाजिक जीवन के कुछ सामान्य पहलुओं पर विचार किया। अब हम मानव समाज की कुछ अन्य विशेषताओं का वर्णन करेंगे।

१. मानव सामाजिक जीवन की एक प्रमुख विशेषता उसकी **विविधता** (variety) है। मनुष्य जाति में कुछ प्रजातीय अन्तर है परन्तु सभी वैज्ञानिकों का कहना है कि सभी मनुष्य चाहे वे गोरे, काले या पीले हैं एक ही जाति (species) के हैं—Homo Sapiens। चींटियों और अन्य सामाजिक पशुओं में एक जाति (species) के सभी सदस्य, वे चाहे जहाँ रहते हों, एक से ढंग का सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु मनुष्यों में कोई समूह जंगलों में रहता है, कोई बड़े-बड़े शहरों में, यहाँ गाँव ग्रामक (hamlet), प्रान्त, राष्ट्र और साम्राज्य सभी हैं। मनुष्य पेड़ों के ऊपर रहते हैं; वे नावों में, गुफ़ाओं में, बर्फ के मकानों में, वृक्ष की छाल के मकानों में, शीशे के मकानों में, गगनचुम्बी मकानों में रहते हैं। इन अन्तरों का प्रजाति से कोई सम्बन्ध नहीं है। मनुष्यों के व्यवसाय और अन्य कार्य एक समूह से दूसरे समूह में भिन्न होते हैं। मानव समूहों में सामाजिक संरचना (structure) में भी विशेष अन्तर दिखाई पड़ता है— धनी और निर्धन लोगों के समूह जो हमारे समाज में मिलते हैं अनेक मानव समाजों में अज्ञात हैं। कुछ समाजों का विभाजन आनुवंशिक जातियों (hereditary castes) में, जैसे भारत में, होता है, जब कि अन्य समाजों का विभाजन कौशल और रुचियों के आधार पर होता है। कुछ समाज भोजन के लिये मुख्यत: शिकार और मछली मारने पर निर्भर करते हैं, दूसरे खेती से उत्पन्न अनाज पर। कुछ मानव समाजों में एक पुरुष एक समय में एक ही स्त्री रख सकता है, कुछ समाजों में वह अनगिनती स्त्रियाँ रख सकता है, और कुछ समाज में एक स्त्री अनेक पति रख सकती है।

२. मानव सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें **तेज और आमूल परिवर्तन हो सकते हैं।** वास्तव में, मानव समाज हमेशा बदलता रहता है। व्यावहारिक रूप से किसी भी समाज के लिए यह असम्भव है कि पीढ़ी दर पीढ़ी सामाजिक जीवन के ढंग में वह हू-बहू एक सा रहे। हमारे अपने समाज में अब भी निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं और हमारे दादा दादी, माता पिता और हमारे स्वयं के रहन सहन, विचार आदि में भीषण अन्तर दिखाई पड़ता है।

मनुष्य और मानव समाज के बारे में उपरोक्त बातों पर गौर करने से हमें दो बातों का विशेष रूप से पता लगता है। पहला, मनुष्य एक पशु है। दूसरा, यद्यपि वह पशु है परन्तु अनेक मूलभूत बातों में वह अन्य सभी पशुओं से भिन्न है। अन्य पशुओं का व्यवहार मूलप्रवृत्तियों (instincts)—जन्मजात, बगैर सीखे हुए व्यवहार जिनका सम्बन्ध किन्हीं विशेष प्रेरक (stimulus) स्थितियों से हो और जो किसी लक्ष्य की प्राप्ति की ओर निर्देशित हों—से संचालित होता है, जबकि मनुष्य के अधिकतर व्यवहार सीखे हुए होते हैं। मनुष्य का सामाजीकरण (socialization) किया जाता है, उसे समाज की संस्कृति (लोकरीतियाँ, रूढ़ियाँ, कानून आदि) के अनुरूप अपनी व्यवहार-आदत बनानी पड़ती हैं। क्योंकि एक समाज की संस्कृति दूसरे समाज की संस्कृति से भिन्न होती है इसलिए विभिन्न समाजों के सदस्यों के व्यवहार में भी हमें अन्तर मिलता है। मानवसमाज की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संस्कृति है। अन्य किसी भी पशु समाज में संस्कृति नहीं पायी जाती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने जीवन के उद्देश्यों को समाज में रह कर ही पूरा करता है। समाज के बाहर अच्छी तरह रहना और अपनी इच्छाओं की पूर्ति करना मनुष्य के लिए कष्टप्रद ही नहीं बल्कि असम्भव है। समाज रूपी बुने हुए वस्त्र का मनुष्य एक अनिवार्य धागा है और उस समाज के स्वार्थों के साथ अपने स्वार्थों को जुड़ा हुआ पाता है जिसका वह एक सदस्य है। डा० लीकॉक (Leacock) ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए कहा कि "जैसा सम्बन्ध हाथ का शरीर से अथवा पत्ती का वृक्ष से है, वैसा ही सम्बन्ध व्यक्ति और समाज का है'। व्यक्ति समाज में बसता है और समाज व्यक्ति में। जिस प्रकार यह असम्भव है कि शरीर से अलग होकर हाथ का अस्तित्व हो, उसी प्रकार समाज के बाहर व्यक्ति का भी कोई अस्तित्व नहीं है। समाज उन व्यक्तियों का समूह है जो उसके अंग हैं।

प्लेटो ने कहा है कि व्यक्ति आत्म-निर्भर (self-dependent) नहीं हैं; अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये उसे दूसरों की सेवाओं की आवश्यकता होती है। वास्तव में व्यक्ति और समाज एक ही वस्तु-सामाजिक जीवन के दो भिन्न पहलू हैं। जब कोई व्यक्ति सामाजिक जीवन को उन इकाइयों (units) के दृष्टिकोण से देखता है जिससे वह बना है तो वह व्यक्ति को देखता है। दूसरी ओर, जब सामूहिकता (collectivity) के दृष्टिकोण से देखता है तो उसे समाज दिखाई देता है। इसीलिए कूले (Cooley) ने कहा है कि जब हम व्यक्ति और समाज की ओर संकेत करते हैं तो हम अलग वस्तुओं पर विचार नहीं करते हैं बल्कि एक ही वस्तु पर दो भिन्न कोणों से विचार करते हैं।*

---

* "When we refer to the individual and the group we are not considering two distinctive phenomena but same phenomenon from different angles."

—Charles Cooley, *Human Nature and Social Order* P. 1.

चार्ल्स कूले ने कहा है कि समाज से अलग व्यक्ति कल्पनामात्र है जो हमारे अनुभव से परे है और इसी प्रकार समाज भी एक कल्पनामात्र है जब व्यक्तियों से अलग उस पर विचार किया जाता है। † वास्तव में इनका सम्बन्ध अन्य वस्तुओं के सम्बन्धों की भाँति है जैसा कि सेना और सैनिक, कक्षा (class) और विद्यार्थी (students)। वास्तव में इसका अन्तर हमारे दृष्टिकोण पर ही निर्भर करता है।

मनुष्य हमेशा किसी न किसी प्रकार के समाज का सदस्य रहा है और उसके बाहर उसका अस्तित्व सम्भव नहीं है। जब हम व्यक्ति के ऊपर प्रभाव डालने वाली शक्ति के रूप में समाज की चर्चा करते हैं तब हमारे मस्तिष्क में किसी विशेष प्रकार का समाज नहीं होता। यह समाज राज्य, परिवार, जनजाति या कोई अन्य समूह हो सकता है जिसमें मनुष्य रहता है। सामान्यतः समाजशास्त्रियों की दृष्टि में राज्य रहता है।

मनुष्य में सामाजिक जीवन व्यतीत करने की न केवल योग्यता होती है बल्कि उसकी आभ्यन्तर या आन्तरिक आवश्यकता भी होती है। समाज के बिना व्यक्ति का संवेगात्मक विकास, बौद्धिक प्रौढ़ता, कुछ मात्रा में भौतिक पदार्थ और ऐशो-आराम अविचारणीय होंगे। संसार के अन्य लोगों से विलग रहने वाले अण्डमान द्वीप निवासी भी समाज में रहते हैं। वे भी रूढ़ियों और प्रथाओं का पालन करते हैं। जैसा कि अरस्तू ने कहा था मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है।

पारस्परिक निर्भरता (Interdependence and Mutualism)

हमारा जीवन श्रम-विभाजन से सरल हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धों का व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है और सम्पूर्ण मानव संस्कृति अनेक युगों का संग्रह है। जन्म लेने के बाद ही सदैव मनुष्य ने यह अनुभव किया है कि मित्रता और समाज और समूहों में रहना उसके लिये अनिवार्य है। जन्म के साथ ही निर्भरता और सहयोग शुरू हो जाता है। माँ या नर्स के बिना शिशु असहाय ही रहता है। समाज में रहना व्यक्ति के लिये अनिवार्य है यदि वह वास्तव में मनुष्य बना रहना चाहता है।

---

† "A separate person is an abstraction unknown to experience and so likewise is a society when regarded as something apart from persons; the relation between them being like that between other expressions one of which denotes a group as a whole and the other the member of the group, such as the army and the soldiers, the class and the students and so on."

—Charles Horton Cooley : *Introductory Sociology*. P. 71

समाज पर अभी तक अनेक ऐसी पुस्तकें लिखी गई हैं जो कि व्यक्ति और समाज के बीच गलत अन्तर बतलाकर समाज के वास्तविक रूप को छिपा देती हैं। उनसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि समाज और व्यक्ति में किसी प्रकार का विरोध हो। यह विचार हमको हरबर्ट स्पेन्सर, वेन्जामिन किड और बोजान्के जैसे लेखकों से मिलता है। उनका विश्वास है कि समाज के सदस्यों के कल्याण के बाहर भी समाज का कल्याण सम्भव है। वास्तव में समाज से तात्पर्य उसके सदस्यों से ही है। यह वास्तव में उन सामाजिक सम्बन्धों का ढाँचा है जो कि उसके सदस्य बनाते हैं। समाज का अस्तित्व उसके सदस्यों में ही है। समाज की भलाई से तात्पर्य व्यक्ति की भलाई है और दोनों में कोई विरोध नहीं हो सकता। सभी व्यक्ति वास्तव में सामाजिक व्यक्ति होते हैं। सामाजिक सम्बन्ध समाज के बाहर नहीं बल्कि भीतर ही बनते हैं। इसी से व्यक्ति आपस में सम्बन्धित होते हैं।

१—सामाजिक समझौता सिद्धान्त (Social Contract Theory)

अनेक दर्शनशास्त्रियों ने अभी तक यह विचार प्रकट किया है कि अपनी कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्यों ने जान-बूझ कर समाज को एक साधन के रूप में निर्मित किया था। हॉब्स जैसे शास्त्रियों के विचार में मनुष्यों के अरक्षित स्वभाव के परिणामों से रक्षा करने के लिए समाज एक साधन है। दूसरे शास्त्रियों के विचार में समाज पारस्परिक मितव्ययता (mutual economy) की एक विधि है। अन्य लेखकों के विचार में मनुष्य ने प्रकृति की गोद में स्वतन्त्रता और समानता के रूप में जन्म लिया और उन्होंने सामाजिक शान्ति और रक्षा के लिये सामाजिक समझौता किया। यह सब सिद्धान्त इस विश्वास पर आधारित हैं कि समाज व्यक्तियों के आपस के समझौते पर अथवा मनुष्यों और उनकी सरकार के बीच के समझौते पर स्थित है। इस सिद्धान्त का दोष यह है कि इसके अनुसार समाज के बाहर भी व्यक्ति मानव रह सकता है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य समाज में प्रवेश करने से पूर्व ही व्यक्ति है और अपनी सम्पत्ति, अपने अधिकार, जीवन आदि की रक्षा के लिए वे सामाजिक समझौता करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को समाज से अलग किया जा सकता है।

सावयव सिद्धान्त (The organismic theory of Society)

इस सिद्धान्त के अनुसार समाज अथवा समाज का कोई क्षेत्र जैसे कि राष्ट्र एक प्रकार की प्राणधारी रचना (organism) है। इसके अनुसार समाज एक जैवकीय प्रणाली (biological system) है, एक बड़ा शरीर (organism) है जिसके विभिन्न अंगों में उसी प्रकार की एकता है जैसे कि व्यक्ति के शरीर के अवयवों में और इसके विकास, परिपूर्णता (maturation) और नाश के भी समान नियम हैं। समाज के कोष्ठ (cells) व्यक्ति हैं, उसके अवयव और नियम समितियां और संस्थायें हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति कुछ नहीं है, वह केवल समाज का

एक अंगमात्र है। इससे व्यक्ति की महत्ता समाप्त हो जाती है। यह दोनों सिद्धान्त एक दूसरे के विरोधी हैं।

व्यक्ति के लिये समाज का अर्थ

जहाँ व्यक्ति समाज के नियमों का पालन करता है, उसके नियंत्रण को मानता है वहाँ व्यक्ति समाज से कुछ लाभ भी प्राप्त करता हैं। वह समाज से अनेक आशायें भी करता है।

(i) **व्यक्ति की भोजन सम्बन्धी तथा अन्य आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति**—व्यक्ति की दैनिक जीवन सम्बन्धी लगभग सभी आवश्यकतायें समाज द्वारा पूरी होती हैं। वे सब अनेक वस्तुयें जो वह नित्य उपयोग में लाता है अन्य व्यक्तियों द्वारा बनाई गई हैं। श्रम-विभाजन के द्वारा ही यह सम्भव होता है। यहाँ तक कि एकान्तता भी वह अन्य लोगों के साथ मिल जुल कर दूर करता है।

(ii) **सुरक्षा**—स्वयं अपने ऊपर ही निर्भर रह कर कोई व्यक्ति समाज में जीवित नहीं रह सकता। बीमारी, लालन पोषण, रक्षा के लिये उसे समाज पर निर्भर रहना पड़ता है।

(iii) **स्वार्थों और हितों का पूरा होना**—व्यक्ति अनेक बातों में रुचि रखता है और उसके विविध स्वार्थ होते हैं चाहे वह मनोरंजन, कला, प्रतिष्ठा से सम्बन्धित हों। इन सबकी पूर्ति समाज के माध्यम से ही होती है।

(iv) **पारस्परिक सहायता**—व्यक्ति के ऐसे अनेक कार्य हैं जो वह स्वयं अकेले नहीं कर सकता जैसे मकान बनाना, खेती, पढ़ाई लिखाई। इन सब कार्यों के लिये सब व्यक्ति एक दूसरे की परस्पर सहायता करते हैं।

व्यक्ति और समाज : सम्बन्धों का अन्वेषण—ऊपर लिखे हुए सिद्धान्तों के सन्तोषजनक न होने से कुछ वास्तविक घटनाओं का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक होगा। यहाँ पर हम कुछ वास्तविक घटनाओं का उदाहरण देंगे :—

(अ) जंगली घटनाओं की एक मनोरंजक घटना यह है कि दो हिन्दू बच्चे जिनकी आयु क्रमशः ८ और २ वर्ष थी १९२० में एक भेड़िये की माँद में पाये गये थे। छोटा बच्चा खोज के थोड़े महीनों के बाद ही मर गया परन्तु बड़ी बच्ची जिसका नाम बाद में कमला पड़ा १९२९ तक जीवित रही और मानव समाज में उसके इतिहास को अंकित कर लिया गया। कमला में मानव व्यवहार के कोई भी चिह्न नहीं पाये गये। वह अपने चारों हाथ-पैरों पर चलती थी और भेड़ियों की गुर्राहट के अतिरिक्त उसकी कोई भाषा न थी। वह मानव व्यक्तियों से दूर रहने की कोशिश करती थी। बहुत ही सावधानी के साथ सहानुभूतिपूर्ण ट्रेनिंग के फलस्वरूप अपनी मृत्यु से पहले उसने धीरे-धीरे मामूली बोल-चाल और मनुष्यों के खाने और वस्त्र पहनने आदि के ढंग सीखे। उस लड़की में "मानव आत्म भाव" (human

selfhood) का अभाव था परन्तु समाज के सदस्य होने पर ही उसके व्यक्तित्व का उदय हुआ ।

(ब) इसी प्रकार अमेरिका में १९३८ में अन्ना नाम की एक अवैध लड़की का पता लगा । वह ६ महीने की आयु से ५ वर्ष तक बिल्कुल एकान्त में रही । अपने एकान्त जीवन में अन्ना को खाने के लिये केवल दूध प्राप्त था, उसे किसी प्रकार की ट्रेनिंग न मिली और दूसरे लोगों से उसके कोई भी सम्बन्ध न थे । जब अन्ना का पता लगा था उस समय न तो वह चल सकती थी, न बोल सकती थी । इसके बाद धीरे-धीरे उसे मानव गुणों से अवगत कराया गया ।

(स) इसी प्रकार का उदाहरण हमें कॉस्पर हॉजर की घटना में मिलता है । बाल्यकाल से ही इस व्यक्ति को राजनीतिक कारणों से ऐसे एकान्त स्थान में बन्द रखा गया जहाँ उसको किसी मानव से सम्पर्क करने का अवसर न मिला । उसके चारों ओर केवल खेत, ईंट और पत्थर थे । मनुष्य की वाणी से भी वह पूरी तरह अपरिचित था । सन् १९२८ में जब नूरम्बर्ग की सड़कों पर हॉजर पहली बार देखा गया तो वह ठीक से चल भी नहीं पाता था । उसका मस्तिष्क एकदम नवजात शिशु के मस्तिष्क के समान था और वह अर्थहीन शब्दों को बुदबुदाता था । वह सजीव और निर्जीव वस्तुओं में भी भेद नहीं कर पाता था । पाँच वर्ष बाद जब उसकी हत्या कर दी गई तो उसके शरीर का पोस्टमार्टम किया गया जिससे पता चला कि उसके मस्तिष्क का विकास ही नहीं हुआ था । मानव सम्पर्क से वंचित रहने के कारण ही उसका प्राकृतिक, शारीरिक और मानसिक विकास रुक गया । सामाजिक जीवन के महत्व पर प्रकाश डालते हुये हॉजर के सम्बन्ध में मैकाइवर ने कहा : "हॉजर को समाज से दूर रखने का अर्थ उसे मनुष्य स्वभाव से भी वंचित कर देना था ।" *

स्व का विकास (The growth of self)

'स्व' की परिभाषा देते हुये, मर्फी ने कहा है कि "यह व्यक्ति का वह रूप है जिसमें वह स्वयं को जानता है । क्यूबर ने इस सम्बन्ध में कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी कल्पना में एक ऐसी स्थिति ले लेता है जैसे वह स्वयं अपने व्यक्तित्व के बाहर हो और इस ग्रहण की हुई स्थिति से वह अपने व्यक्तित्व को इस प्रकार देखता है जैसे वह कोई दूसरा व्यक्ति हो । वास्तव में सामाजिक अन्तःक्रिया के बिना 'स्व' का विकास सम्भव नहीं और जहाँ सामाजिक अन्तःक्रिया है वहाँ समाज है ।

शिशु में सामाजिक जीवन के योग्य योग्यता का आविर्भाव स्व और व्यक्तित्व के विकास का एक पहलू है । बच्चा केवल वयस्कों की सामाजिक रीतियों की नकल

* "The denial of society to Kasper Hausar was a denial to him also of human nature itself." —Mac Iver.

ही नहीं करता है,बल्कि नकल करने की प्रक्रिया में उसका सामाजिक स्वाभाव धीरे-धीरे प्रकट होता है । उसके शुरू के खेल केवल दूसरों की नकल होते हैं लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे वह दूसरों के साथ खेलना सीखता है वैसे वैसे खेल के नियम बाहरी बन्धन के रूप में समाप्त हो जाते हैं और ऐसे नियम बन जाते हैं जिनके स्थायित्व के लिए वह स्वयं को जिम्मेदार अनुभव करता है । अधिकतर समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों के विचार में स्व का भाव उस समय विकसित होता है जिस समय कि बच्चा स्वप्न में,और गुड़ियों और दूसरे बच्चों के साथ खेलते समय, अपने माता-पिता अथवा महापुरुषों की भूमिका को करता है । इनके साथ दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों में सामंजस्य रखने का प्रयास स्व के विकास में सहायक होता है । इसमें कोई संशय नहीं है कि स्व केवल समाज में ही आ सकता है और सामाजिक जीवन के आदान-प्रदान में ही उसका जन्म हो सकता है ।

व्यक्तित्व-निर्माण में भाषा का महत्व

बच्चे का भाषा सीखना केवल एक बौद्धिक विषय ही नहीं है । यह उसके व्यक्तित्व के विकास में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । भाषा बच्चे को नये और महत्वपूर्ण ढंग से उसके माता-पिता और खेल के साथियों के सम्पर्क में लाती है और उसे अधिक व्यापक और सामाजिक दृष्टिकोण को बनाने में सहायता देती है । यह उसे नये आनन्दों और सन्तोषों से परिचित कराती है और उसके लिये नयी आवश्यकताओं और समस्याओं को उत्पन्न कराती है । भाषा को सीख कर वह सामाजिक सम्बन्धों को निर्मित करने वाले नियमों और मानदण्डों को सीखता है और नैतिकता और धार्मिक विषयों से सम्बन्धित विचारों को विकसित करता है । भाषा ही वह साधन है जिसके द्वारा धीरे-धीरे उसे उन कार्यों के लिए तैयार किया जाता है जो उसे करने हैं । भाषा के द्वारा वह दूसरे व्यक्तियों के दृष्टिकोणों, भाषाओं और उद्‌गारों का समझना सीखता है । भाषा समाज में रह कर ही सीखी जा सकती है ।

सामाजिक परम्परा पर मनुष्य की निर्भरता

प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक सम्बन्ध का एक अंग होता है, जो कि पूर्व स्थापित रूढ़ियों से (mores) निश्चित होता है । प्रत्येक पुरुष या स्त्री को हम उसके सम्बन्ध से ही जानते हैं । समाज केवल एक पर्यावरण (environment) ही नहीं है बल्कि वह स्थिति है जिसमें हम पलते हैं । बीज और भूमि के सम्बन्ध की अपेक्षा हमारा और सामाजिक विरासत (social heritage) का सम्बन्ध अधिक घनिष्ट है । हम किसी समाज में जन्म लेते हैं, जिसकी प्रक्रियायें (processes) हमारे वंशानुक्रम (heredity) को निश्चित करती हैं । इनका हमारी मानसिक शक्ति पर पूरा प्रभाव रहता है । मानसिक विरासत हमारे मानसिक अनुभवों के साथ बदलती रहती है

और हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करती है । हमारे विचार, विश्वास, नीति, (morals) और व्यवहारों पर समाज का प्रभाव पड़ता है ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है

अरस्तू ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाजशास्त्र में इसका अर्थ हुआ : एक समाजीकरण किया हुआ प्राणी है । मनुष्य और पशु समाज में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि मानव समाज के पास संस्कृति है जब कि पशु समाज के पास नहीं है । मनुष्य को अपना व्यक्तित्व समाज की संस्कृति—उसके कानून, रूढ़ियाँ, लोकरीतियाँ, संस्कार आदि के अनुसार ही विकसित करना पड़ता है और इन्हीं सामाजिक नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है ।

मनुष्य में जो कुछ भी सामाजिक और नैतिक गुण हम देखते हैं वह अन्य व्यक्तियों के साथ, अन्तःक्रिया करके सीखे या ग्रहण किये गये हैं । अक्सर 'सामाजिक' के अर्थ मिलनसार, परोपकारी और सामाजिक विरासत (heritage) से युक्त से लगाया जाता है । ईमानदारी, सच्चाई, त्याग आदि सामाजिक गुण व्यक्ति समाज में रहकर ही विकसित करता है । अपने से बड़ों द्वारा दी गई शिक्षा, उनके द्वारा किये गये सराहनीय कार्य व्यक्ति को स्वयं भी ऐसे ही गुण विकसित करने के लिए प्रेरित करते हैं ।

मनुष्य की अनेक इच्छायें और आकांक्षायें समाज की देन होती हैं । जहाँ एक ओर व्यक्ति की कुछ प्राकृतिक या जैविक इच्छायें होती हैं जैसे भोजन, प्यास, नींद, यौन, उसी प्रकार दूसरी ओर उसकी अनेक सामाजिक इच्छायें होती हैं जो कि उस समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करती हैं । उदाहरण के लिये, उच्च राजनीतिक पद प्राप्त करने, धनवान बनने, सामाजिक क्षेत्रों में उन्नति करने की इच्छा भी समाज द्वारा प्रदान की जाती है और इसलिये सामाजिक है । ऐस्किमो समाज में भौतिक सम्पत्ति नाम की कोई वस्तु नहीं होती जिसके कारण कोई भौतिक सम्पत्ति की इच्छा नहीं करता । दूसरी ओर, हमारे समाज में हर व्यक्ति इसकी कामना करता है क्योंकि समाज में यह है और महत्वपूर्ण भी है । इसी प्रकार, हमारे समाज में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक पदों के अर्जित (achieved) होने के कारण लोग इनकी कामना करते हैं, प्रयत्न करने पर इन्हें वे प्राप्त कर सकते है। दूसरी ओर, जहाँ राजतंत्र है और केवल राजवंश के लोग ही राजा हो सकते हैं वहाँ सर्वसाधारण इस राजनीतिक पद के लिये आकांक्षा नहीं करते । किसी समाज में युद्ध में निपुणता प्रतिष्ठा प्रदान करती है तो कहीं विज्ञान में विशिष्टता । यह बातें यह निश्चित करती हैं कि व्यक्ति किस वस्तु की इच्छा करेगा ।

मनुष्य की अनेक ऐसी आवश्यकतायें हैं जो समाज में रह कर ही वह पूरी कर सकता है। हम नीचे मनुष्य की कुछ प्राथमिक आवश्यकताओं का वर्णन करेंगे जिसके कारण उसके लिये समाज में अधिक दिन रहना आवश्यक है।

(i) मानव शिशु अपेक्षाकृत अधिक दिनों तक माँ का दूध पीता है। पशु शावकों को इसकी इतनी अधिक आवश्यकता नहीं रहती।

(ii) उसे अन्य सदस्यों पर अधिक दिन तक निर्भर रहना पड़ता है। जब कि जानवरों के बच्चे पैदा होते ही खड़े होने लगते हैं—जैसे, मुर्गी, गाय, घोड़े के बच्चे—मानव शिशु बहुत दिनों तक स्वयं उठ बैठ भी नहीं सकता। उसे उठने, बैठने, चलने, और बोलने की क्षमता विकसित करने में कहीं अधिक समय लगता है।

(iii) उसे आश्रय (shelter) की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता रहती है। अनेक पशुओं के शरीर पर बाल इतने अधिक होते हैं और चमड़ी इतनी अधिक मोटी होती है कि उन्हें सर्दी और गर्मी से रक्षा प्राप्त होती है। मानव शिशु भागने में भी उतना तेज़ नहीं होता जितना कि कुछ जानवर होते हैं और पेड़ पर भी चढ़ कर अपनी रक्षा करने में असमर्थ होता है। उसे अन्य पशुओं का सदैव भय रहता है।

(iv) मनुष्य की यौन सम्बन्धी आवश्यकता भी पशुओं से भिन्न होती है। पशुओं में यह इच्छा किसी विशेष ऋतु में होती है परन्तु मनुष्य में यह इच्छा निरन्तर बनी रहती है। इसीलिये मिलर ने कहा है कि मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो भूख न लगने पर भी खाता है और सभी ऋतुओं में सम्भोग करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की कुछ ऐसी आवश्यकतायें हैं जिन्हें पूरा करने के लिये अन्य व्यक्तियों के साथ रहना उसके लिये आवश्यक हो जाता है। इसी संदर्भ में मैकाइवर ने लिखा है : "आदमी समाज में ही पैदा हुआ है और समाज की आवश्यकता उसमें जन्म से होती है।" (Man is born in society and need of society is born in him) समाज के ऊपर मनुष्य की निर्भरता के सम्बन्ध में अरस्तू ने कहा था : "अगर कोई मनुष्य, मनुष्य के साथ और मनुष्यों के बीच में नहीं रहता तो या तो वह अवश्य ही भगवान् है या जानवर।" (If a man does not live with man and among men then surely he is either a God or a beast).

समाजशास्त्र में व्यक्तित्व का अर्थ

किसी सामाजिक प्राणी का व्यक्तित्व उस समय विकसित होता है जब कि उसके कार्य केवल दूसरों की नक़ल नहीं होते अथवा सुझावों का फल नहीं होते, जब वह रीति-रिवाजों और आदतों का गुलाम नहीं होता है, बल्कि जब व्यक्तिगत उद्देश्य उसके कार्यों के आधार होते हैं। समाजशास्त्र के अनुसार व्यक्तित्व वह गुण है जो कि समूह के सदस्य के अस्तित्व को केवल एक सदस्य से अधिक प्रकट करता है।

वह स्वयं स्व (Self) है, कार्यों का केन्द्र है, और अपने कार्यों द्वारा अपने स्वभाव को प्रकट करता है। सामान्य रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि आदिवासियों के समाज में उनके सख्त रीति-रिवाजों के कारण व्यक्तित्व का विकास कम होता है और अधिक सभ्य समाजों में यह अधिक विकसित रहता है। शास्त्रियों का विश्वास है कि अधिक गूढ़ और अधिक संगठित समाजों में व्यक्तित्व को प्रकट करने की अधिक माँग और उसका अधिक अवसर होता है।

व्यक्ति का समाजीकरण (Socialization of the individual)

बच्चा शुरू में जिन लोगों से घिरा होता है, उन्हीं के कारण वह अपने अस्तित्व को जान पाता है और एक सामाजिक व्यक्ति बनता है। दूसरे व्यक्तियों के साथ से ही उसे इस बात का ज्ञान होता है कि वह दूसरों से भिन्न है। वह दूसरों का अनुकरण (imitation) करता है और अपने और दूसरे व्यक्तियों के कार्यों की तुलना करके वह अन्तर देखता है।

धीरे-धीरे वह अनुभव से यह सीखता है कि अन्य लोग भी उसी के समान है, और वह अपनी भावनाओं, कष्टों, और आनन्दों को दूसरों पर प्रतिबिम्ब करता है। दूसरे शब्दों में वह दूसरों को तभी समझ सकता है जब वह यह अनुभव करता है कि दूसरों की भी वैसी ही भावनायें हैं जैसी स्वयं उसकी। वे भी उसी की भाँति व्यक्ति हैं। इसलिये वह न केवल अपने व्यक्तित्व से ही, बल्कि अपने और दूसरों के बीच समानता से भी चेतन होता है।

बच्चे के प्रथम मानव सम्बन्ध अपने परिवार के मूलभूत (immediate) सदस्यों के साथ होते हैं। वह अपनी माँ, पिता या नर्स से कुछ सीखता है। यहाँ वह प्रेम, अधिकार-शक्ति, निर्देशन (direction), रक्षा और आदर्शों को अनुभव करता है। जिस प्रकार का व्यवहार उसके साथ किया जाता है, वैसी ही वह आदतें विकसित करता है। यही नहीं, परिवार में यदि अन्य बच्चे, भाई बहन आदि होते हैं तो उनके अनुकरण से भी वह अनेक बातें सीखता है। घर के अन्य बच्चे, उसके सामने इस बात के उदाहरण रखते हैं कि किस प्रकार शासक (पारिवारिक) की आज्ञा का पालन किया जाता है, परम्पराओं और माता-पिता के आदर्शों को स्वीकार किया जाता है। बच्चा इन उदाहरणों का अनुकरण करता है। इस प्रकार दूसरे बच्चों के सम्पर्क में समाजीकरण (socialization) होता रहता है। जब वह बड़ा होता है तो अपने घर के बाहर के बच्चों के साथ वह खेलता है। यह बच्चे भिन्न परिस्थितियों में पले हुए होते हैं और उनकी भिन्न आदतें और आदर्श होते हैं जिनको वह धीरे-धीरे सीखता है और अत्यन्त जटिल परिस्थितियों में सामंजस्य (adjustment) करने की क्षमता प्राप्त करता है। यह भी समाजीकरण है और जब बच्चा स्कूल जाना शुरू करता है, पहले से भी अधिक गम्भीर

समस्या उसके सामने आती है। यहाँ और भी अधिक बच्चे होते हैं जिनमें से अधिकतर उसके लिये अपरिचित ही होते हैं। उनके साथ में अपने कार्यों, शब्दों और विचारों का सामंजस्य करना भी उसे सीखना पड़ता है। इस प्रकार वह बड़े और जटिल (complex) सामाजिक संसार के योग्य बनता है।

इसके बाद विकसित होता हुआ वह व्यक्ति इससे भी अधिक संख्या में वयस्कों (adults) के सम्पर्क में आता है। पड़ोसी, स्टोर-कीपर, सड़क के कारीगर और अनेक व्यक्ति जिनसे वह खेल के मैदान पर या सड़क पर मिलता है उसके जीवन में आते हैं। जब वह स्वयं पढ़ता है या दूसरे लोग उसे पढ़ कर सुनाते हैं तब उसका लोगों के जीवन से सम्पर्क बढ़ता है। इसके सामने नये विचार रखे जाते हैं। कहानियों में व्यवहार के नये ढंग उसका ध्यान आकर्षित करते हैं, और साहित्य के द्वारा अन्य व्यक्तियों के साथ उसका अनुभव बढ़ता है। उसके सामने नये आदर्श (ideals) रखे जाते हैं जिनके प्रति वह चेतन या अचेतन रूप से प्रतिक्रिया (react) करता है। उसकी आदतें बनती हैं, सम्प्रदाय के वर्तमान आदर्शों को वह धीरे-धीरे स्वीकार करता है। उसका और अधिक समाजीकरण होता है।

किशोरावस्था (adolescence) के साथ ही उसके सामने नयी परिस्थितियाँ आती हैं जिनके साथ सामंजस्य करना आवश्यक होता है। शारीरिक अवयवों के विकसित होने के साथ ही उसमें नयी भावनायें आती हैं, व्यवहार के नये ढंग सीखना उसके लिये आवश्यक हो जाता है। यही नहीं कि अपने से भिन्न दूसरे लिंग (sex) के लोगों के प्रति पुनस्सामंजस्य (readjustment) की उसे आवश्यकता होती है बल्कि अन्य आयु वर्गों (age classes)—बच्चों, माता-पिताओं, वृद्ध-जनों—के प्रति मनोवृत्तियों (attitudes) को भी बनाना पड़ता है। इसके साथ ही यौन, परिवार, व्यापार की रूढ़ियाँ (mores) उसके सामने रखी जाती हैं और जिन्हें अपने व्यक्तिगत स्वभाव के अनुसार वह थोड़े भाग में व पूरी तरह से स्वीकार करता है। विकास की यही अवस्था (stage) ऐसी होती है जब समाजीकरण की अनेक असफलतायें हमारे सामने आती हैं।

इसके बाद वह विवाह करता है। यहाँ उसे फिर अपने व्यक्तिगत व्यवहार में परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है। उसे अपने या अपने जीवन संगी या जीवन-संगिनी की भावनाओं का ध्यान रखना पड़ता है; स्वार्थी प्रवृत्तियाँ प्रेम के भार से दब जाती हैं। अक्सर पति-पत्नी भिन्न परिस्थितियों में पले होते हैं। दोनों के परिवारों की आदतें, आदर्श, प्रथायें और विचार भिन्न हो सकते हैं। यदि पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के अनुकूल अपने को बना लेते हैं तो उनका और अधिक समाजीकरण होता है। समाजीकरण की विफलता वैवाहिक दुख और तलाक में अन्त हो सकती है।

इसके बाद, बच्चे उत्पन्न हो सकते हैं और व्यक्ति के सामने की नयी स्थिति

उत्पन्न हो जाती है, उसे माता या पिता का कार्य करने के लिये तैयार होना पड़ता है। उसे अपने बच्चे के सुख के लिये अपने सुख और आराम की बलि देने की भी आवश्यकता हो सकती है। यहाँ अक्सर समाजीकरण समाप्त हो जाता है।

सहयोग और संघर्ष (Co-operation and Conflict)

(१) **सामाजिक सहयोग**—मनुष्य बगैर सहयोग के नहीं रह सकता और सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिये औरों के साथ मिल कर काम करना आवश्यक है। सामाजिक सहयोग दो प्रकार का होता है —प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष।

(अ) **प्रत्यक्ष सहयोग** वह सहयोग है जिसमें हम सब कार्यों को सम्मिलित करते हैं जो मनुष्य एक साथ करते हैं जैसे कि साथ खेलना, साथ पूजा करना, साथ खेत को जोतना, साथ अनेक प्रकार के परिश्रम करना। ऐसे कार्यों में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है परन्तु इसका वास्तविक अर्थ यह है कि एक दूसरे के साथ में मनुष्य वे कार्य करते हैं जो कि वे अलग-अलग अथवा एकान्त में कर सकते हैं। वे मिलकर इसलिये कार्य करते हैं क्योंकि आमने-सामने कार्य करने से उनको प्रेरणा मिलती है, अथवा इससे दूसरे सामाजिक सन्तोष प्राप्त होते हैं। प्रत्यक्ष सहयोग का उदाहरण हमें ऐसे समय में मिलता है जब मनुष्य ऐसे कार्यों को मिल कर करते हैं जो कि उनमें से प्रत्येक के लिए अकेले करना कठिन होगा जैसे कि किसी स्थान की रक्षा।

(ब) **अप्रत्यक्ष सहयोग** के अन्दर हम उन सभी कार्यों को लेते हैं जिनमें मनुष्य असमान कार्य करते हैं परन्तु जिनका उद्देश्य एक ही होता है। यहाँ पर श्रम विभाजन के प्रसिद्ध सिद्धान्त का हमें परिचय मिलता है। श्रम विभाजन परिवार के पालन-पोषण में प्रकट होता है। इसका परिचय हमें ऐसे स्थान में मिलता है जहाँ पारस्परिक सन्तोष अथवा सामान्य उद्देश्य के लिये मनुष्य अपने भेद-भावों को मिटा कर एक कर देते हैं। उद्योग, सरकार, मनोरंजन के कार्यों में हमें विशेषीकरण (specialization) मिलता है।

(२) **सामाजिक संघर्ष**—मानव सम्बन्धों के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी रूप में संघर्ष हमें दिखाई देता है। सामाजिक संघर्ष के अन्दर वे सभी कार्य आते हैं जिनके द्वारा मनुष्य किसी उद्देश्य के लिए एक दूसरे का विरोध करते हैं। इनको भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संघर्षों में विभाजित किया जाता है—

(अ) **प्रत्यक्ष संघर्ष** हमें उस समय दिखाई देता है जब किसी उद्देश्य के लिये व्यक्ति या समूह एक दूसरे को हानि पहुँचाते हैं अथवा नष्ट कर देते हैं। साधारण संघर्ष हमको चुनाव, आर्थिक वर्गों के संघर्ष आदि में मिलता है। अधिक हिंसात्मक संघर्षों के उदाहरण द्वन्द, क्रान्ति और युद्ध हैं।

(ब) **अप्रत्यक्ष संघर्ष** उस समय होता है जिस समय कि व्यक्ति अथवा समूह वास्तव में छुपे तौर पर एक दूसरे के कार्यों में बाधा नहीं पहुँचाते हैं परन्तु

फिर भी अपने उद्देश्यों की पूर्ति ऐसे कार्यों द्वारा करना चाहते हैं जिसके द्वारा दूसरे व्यक्तियों को उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में बाधा पहुँचती है। स्पर्धा (competition) ऐसी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों में होने वाला अव्यक्तिगत संघर्ष है जो कि संख्या में कम होती हैं जैसे कि आय, अथवा सामाजिक आदर। स्पर्धा प्रत्यक्ष रूप में किसी के कार्यों में बाधक नहीं होती परन्तु अप्रत्यक्ष रूप में दूसरे की सफलता में बाधक होती है।

सामाजिक जीवन में सहयोग और संवर्ष का प्रयोग--

सहयोग और संघर्ष सामाजिक जीवन के सार्वभौमिक तत्व हैं। वे मानव कार्यों के एक बड़े क्षेत्र में साथ ही साथ उपस्थित रहते हैं। सामाजिक संसार में मनुष्यों के और समूहों के सम्बन्धों में सहयोग और संघर्ष का संयोग पाया जाता है। कूले (Cooley) ने लिखा है "जितना अधिक कोई इस विषय में सोचता है, उतना ही अधिक वह देखेगा कि संघर्ष और सहयोग अलग करने योग्य वस्तुयें नहीं हैं, बल्कि एक प्रक्रिया के दो पहलू हैं जो सदैव किसी न किसी अंश में पाये जाते हैं।" जब मनुष्य एक दूसरे के साथ सहयोग से रहते हैं तो उनके उद्देश्यों की एकता केवल एक निश्चित सीमा तक रहती है। यहाँ तक कि बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्धों में भी कभी न कभी ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है, जबकि उद्देश्यों में अन्तर हो जाता है, अथवा जब उनके व्यवहारों में सहयोग नहीं रहता। परिवार के अन्दर जहाँ बहुत ही घनिष्ट सहयोग होता है वहाँ भी लड़ाई-झगड़े पाये जाते हैं।

समाज का व्यक्ति पर प्रभाव

पशुओं के सामाजिक जीवन में मूल-प्रवृत्तियों (instincts) का एक विशेष महत्व है जबकि संस्कृति मनुष्यों की मूल-प्रवृत्तियों को दबाये रहती है। इस कारण मनुष्य का सामाजिक व्यवहार उन आदतों का प्रतीक है जो कि सामूहिक अनुभव के उपरान्त जन्मी हैं, और मनुष्य की मूल-प्रवृत्तियाँ (instincts) वर्तमान संस्कृति के द्वारा रोकी, दबायी, सुधारी जा चुकी हैं। *

बर्नार्ड का कथन है कि जन्म के समय बच्चा ऐसे समाज में प्रवेश करता है जो कि सामाजिक आदतों के नियन्त्रण में होता है। यह उस विशेष संस्कृति का परिचय देती है जो उस समाज की विशेषता है। जो भी प्रेरणायें और प्रवृत्तियाँ लिये शिशु जन्म लेता हो. वह तत्काल सामाजिक पर्यावरण के नियन्त्रण में आता है जो कि उसको संस्कृति के अनुकूल बनाने की प्रक्रिया आरम्भ कर देता है।‡ बच्चे के झूले के पास उसकी माँ खड़ी होती है जिसमें वे सब सामाजिक गुण होते हैं जो उसने सामूहिक सम्बन्धों से एकत्रित किये हैं। माँ तत्काल ही अपनी संस्कृति के अनुकूल

---

* Grove and Moore, p. 14-15.

‡ L. L. Bernard, Introduction to Social Psychology p. 11,

बच्चे को बनाने का कार्य शुरू कर देती हैं। जैसे उसका व्यक्तित्व विकसित होता है, सामाजिक पर्यावरण हर तरफ से उस पर दबाव डाल कर उसके चरित्र का समाज से स्वीकृत व्यवहारों के अनुसार निर्माण करता है। इसके फलस्वरूप समूह और व्यक्ति दोनों का ही जीवन मुख्यत: समाज की देन है, जो कि विचारने और कार्य करने के सामाजिक ढंगों से बनता हैं, मिलने-जुलने से दूसरों तक पहुँचाया जाता है, और पारस्परिक सम्बन्धों से स्थापित होता है।

कोई भी मानव समाज सब अर्थों में एक से नहीं होते। आयु, लिंग, रक्तसम्बन्ध, निवासस्थान, व्यक्तिगत स्वास्थ्य और स्वभाव के सम्बन्ध में समूह के सदस्य एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इन्हीं अन्तरों से अभिरुचियों के अन्तर उत्पन्न होते हैं और स्वार्थों के संघर्ष की संभावना उत्पन्न होती है। इन अन्तरों का प्राय: फल संघर्ष होता है जो कि व्यक्ति, समूह और प्रजापति को नष्ट करने में समर्थ है। व्यक्तियों के व्यवहारों में एक दूसरे के प्रति अनुकूलन होता है। यहाँ संस्कृति एक महत्वपूर्ण कार्य करती है। क्योंकि सामाजिक जीवन मानव जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है, इसलिए प्रत्येक सामाजिक समूह ने समूह के अन्दर शान्ति बनाये रखने के लिए नियमों का एक संग्रह, रीतिरिवाज या व्यवहार की रीतियाँ बना ली हैं। व्यक्ति का एक दूसरे के प्रति व्यवहार करने की ट्रेनिंग दी जाती है। इस प्रकार, हमारे समाज में वृद्धजनों का आदर किया जाता है; सम्बन्धियों में एक प्रकार का सुपरिचय (familiarity) दिखाया जाता है जो गैर-सम्बन्धियों के प्रति नहीं दिखाया जाता; मित्रों को अनेक स्वतन्त्रता दी जाती है जो कि गैर-मित्रों को नहीं दी जाती। इसके अतिरिक्त, रीति-रिवाज और लौकिक रीतियाँ (conventionalities) बनायी जाती हैं जो कि समाज के अन्दर ही सामाजिक सम्बन्धों के लिये नहीं होतीं बल्कि विदेशी समाजों के भी सम्बन्धों के लिये होती हैं।* सामाजिक पर्यावरण में इस प्रकार संस्कृति द्वारा हेर-फेर किया जाता है।

मुन्श और स्पाल्डिंग ने कहा है कि स्वतन्त्रता की भावना और प्रजातंत्रवाद जो हमारे समाज की विशेषता है, विभिन्न व्यवसायों और राजनैतिक ऑफिसों में ख्याति प्राप्ति करने का सबको समान रूप से अवसर मिलना, राष्ट्रीय विपदाओं के समय सब वर्गों का मुक्त रूप से सहयोग—यह बहुत हद तक साँस्कृतिक पर्यावरण का ही फल है। प्रोफेसर लेटन ने कहा है कि स्कॉटलैण्ड की दार्शनिक, वेदान्ती और विद्वान उत्पन्न करने की असाधारण क्षमता का कारण सम्भवत: वहाँ का शिक्षात्मक और बौद्धिक पर्यावरण है, विशेषकर उस सम्मान के कारण जो स्कॉटलण्ड में इन विषयों को दिया जाता है। यह सब वहाँ के सामाजिक और साँस्कृतिक वातावरण के कारण ही है।

---

* Gillin and Gillin, Cultural Sociology., P. 93.

समाज के वयस्क सदस्य का एक चेतन जीवन होता है जिसके अन्दर आशाएँ, रुचियाँ, अस्वीकृति, विश्वास, योजनायें, तरीके होते है जिनको वह अनेक प्रकार के व्यवहारों में प्रकट करता है। इसमें संशय है कि किसी एकान्त में बड़े होने पर उसको इन्हीं इच्छाओं की चाह होती है। इच्छाओं का रूप उसके सामाजिक सम्बन्धों पर निर्भर होता है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति, विभिन्न प्रकार के सैकड़ों सामाजिक सम्बन्धों में प्रविष्ट हुआ है और जिनका हमारे जीवन पर कुछ न कुछ वांछित अथवा अवांछित प्रभाव अवश्य पड़ा है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति दूसरे प्रकार के व्यक्ति होते यदि उनके सामाजिक सम्बन्ध बिलकुल भिन्न होते। हम में से कोई भी ऐसा नहीं जो कि बाल्यावस्था में तुर्की (Turkish) समाज में प्रविष्ट करा दिये जाने पर केवल तुर्की भाषा न बोलता, इस्लाम धर्म में विश्वास न करता और उनकी कला और दस्तकारी, व्यक्तिगत और सामाजिक रीतिरिवाजों, भावनाओं और रुचियों को न अपनाता। यह एक साधारण सी बात है कि व्यक्ति के विचार, उदाहरण के लिये, धर्म अथवा राजनीति में, माता-पिता, शिक्षकों और पड़ोसियों के प्रभाव के कारण उसकी युवा अवस्था में पक्के कर दिये जाते हैं। यदि आगे चल कर उनमें किसी प्रकार का कोई हेरफेर भी होता है तो वह भी दूसरे शिक्षकों, लेखकों और साथियों के सुझावों के कारण होता है।

संस्कृति और व्यक्तित्व
(Culture and Personality)

जिस समाज की जैसी संस्कृति होती है वैसा ही वहाँ के मनुष्यों का व्यक्तित्व होता है। सभ्य और असभ्य समाज के सदस्यों के व्यक्तित्व का अन्तर इस बात का उदाहरण है। प्रत्येक समाज की प्रथायें, पहनने-ओढ़ने के वस्त्र, खाने पीने के ढंग, मिलने और स्वागत करने के ढंग आदि दूसरे समाजों से भिन्न होते हैं। संस्कृति का प्रभाव बाल्यावस्था से ही शुरू हो जाता है और मृत्युपर्यन्त किसी भी व्यक्ति के कार्य उसकी संस्कृति के ही परिचायक रहते हैं। संस्कृति और व्यक्तित्व के सम्बन्धों को समझने के लिये हमें संस्कृति शब्द के अर्थ को भी समझ लेना चाहिये। यहाँ संस्कृति से हमारा तात्पर्य मनुष्यों की सम्पूर्ण सामाजिक विरासत (social heritage) से है। इसमें हम भौतिक और अभौतिक दोनों प्रकार की संस्कृतियों को लेते हैं।

संस्कृति मनुष्य का सीखा हुआ व्यवहार (learned behaviour) है। हम सब जानते हैं कि मनुष्य कुछ ऐन्द्रिय आवश्यकतायें (organic needs) लिए हुए पैदा होता है, जैसे कि भोजन, वस्त्र, यौन, रक्षण (shelter) की आवश्यकतायें। इन ऐन्द्रिय या मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य ने एक उत्कृष्ट ऐन्द्रिय (super organic) ढाँचा बनाया है जिसे हम संस्कृति कहते हैं।

संस्कृति को साधारण तौर पर भौतिक (material) और अभौतिक (non-material) में विभाजित किया जाता है। भौतिक संस्कृति में हम मकान, गाड़ी, उपकरण (tools), औजार (implements), मशीन और अन्य भौतिक पदार्थों को लेते हैं जिनका प्रयोग हमारे समाज में होता है। अभौतिक संस्कृति में विचार आदर्श, मनोवृत्तियाँ (attitudes), विश्वास, ज्ञान और निपुणतायें (skills) सम्मिलित हैं।

अभौतिक संस्कृति की अनेक वस्तुओं ने मनुष्य के व्यक्तित्व पर प्रभाव डाला है। घड़ी के आविष्कार और प्रयोग ने समय पर काम करने की आदत को डाला है। इसी प्रकार अभौतिक संस्कृति—धर्म, कला, विचार, प्रथायें, आदि—का भी व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। एक देश के लोग यदि मूर्तिपूजक हैं तो दूसरे देश के लोग मूर्ति पूजा को मूर्खता कहते हैं। सभ्य समाज में वस्त्र धारण करना एक अनिवार्य बात समझी जाती है जब कि कुछ आदिवासी समाजों में वस्त्र पहनना अनावश्यक समझा जाता है। कहीं लोग मेज कुर्सी पर बैठकर भोजन करते हैं और कहीं भूमि पर बैठकर। यहाँ यह समझ लेना काफी होगा कि हमारी प्रतिदिन की जीवन चर्या से हमारी संस्कृति का ही परिचय मिलता है। नित्य हम अनेक व्यक्तियों के घर जन्म, नामकरण, विवाह, मृत्यु की घटनाओं को देखते हैं और उनसे उन व्यक्तियों की संस्कृति का परिचय पाते हैं।

भौतिक संस्कृति और व्यक्तित्व
(Material culture and personality)

घड़ियाँ और समय-पालन (Clock and Punctuality)—संस्कृति की वस्तुएँ ऐसा आचरण करवाती हैं जो व्यक्तित्व को प्रभावित करें। घड़ी के आविष्कार ने समय की पाबन्दी (punctuality) की आदत डलवायी है। आदिवासी, जिनके पास घड़ियाँ नहीं हैं, समय की पाबन्दी का कोई खयाल नहीं करते हैं, जब कि हमारे समाज में मनुष्यों को, जो किसी बड़े शहर में काम करने जाते हैं, समय का सूक्ष्म ध्यान रहता है। आधुनिक संस्कृति में रेडियो, रेलवे आदि जैसी अनेक वस्तुयें हैं जिनके प्रयोग के लिए समय की पाबन्दी आवश्यक है। जहाँ तक समय की पाबन्दी (punctuality) का सम्बन्ध है एक आदिवासी और एक शहर के निवासी के व्यक्तित्व (personality) में अन्तर है और यह अन्तर दोनों की संस्कृतियों के अन्तर के कारण है।

नल और सफाई (plumbing and cleanliness)—दूसरा उदाहरण हमें नल और सफाई के सम्बन्ध में मिलता है। सफाई व्यक्तित्व की एक विशेषता है जिसे हमारी संस्कृति में विशेष महत्व दिया जाता है, जैसी कि कहावत है "Cleanliness is next to godliness"। यह ऐसी विशेषता है जो कि नल की यन्त्र कला और हमारी संस्कृति के अन्य आविष्कारों के द्वारा प्रोत्साहित हुई है। ऐस्किमों गन्दे होते हैं; परन्तु जब कोई इस बात पर विचार करता है कि उन्हें अपनी पीठ पर बर्फ का

एक झोला लटकाये रहना पड़ता है जिससे उसके पिघलने पर उन्हें पानी मिल सके, तो तत्काल यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उनके लिये साफ रहना सरल नहीं है, जब कि हमारे लिये केवल नल खोलने और साबुन लगाने से ही सफाई हो सकती है। मनुष्यों की तुलना करने पर, इस प्रकार, हम देखते हैं कि सफाई भी संस्कृति के रूप पर निर्भर करती है। एक ही संस्कृति के अन्दर सफाई व्यक्ति के व्यवसाय, धन आदि पर निर्भर करती है।

अभौतिक संस्कृति और व्यक्तित्व
(Non-material Culture and Personality)

भाषा और व्यक्तित्व (Language and personaliy)—व्यक्तित्व के ऊपर प्रभाव डालने वाली वस्तुओं में भाषा सबसे अधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। इसके अनेक कारण हैं। मनुष्य और पशु का मुख्य अन्तर यह है कि केवल मनुष्य के ही पास भाषा है। इसके अतिरिक्त, भाषा केवल उन लोगों की संगति से ही सीखी जा सकती है जिनके पास भाषा है। जंगली आदमी जो अपने साथियों से अलग पाले जाते हैं, उनके पास कोई भाषा नहीं होती। इसी अभाव के कारण ऐसे व्यक्ति मानव नहीं दिखलाई पड़ते हैं। व्यक्तित्व के विकास के लिये भाषा मुख्य साधन है, क्योंकि इसी के द्वारा व्यक्ति अपनी सूचना और मनोवृत्तियों (attitudes) को प्राप्त करता है। कुछ समाजों में—आदिवासी समाजों में—ऊँचाई नापने के लिए केवल 'विशाल', 'मध्यम' और 'छोटा' शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है जिससे किसी व्यक्ति की एकदम असली (exact) ऊँचाई का पता नहीं लग सकता है जब कि हम सरलता से कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति की लम्बाई ५ फीट ७ इञ्च है। अनेक समाजों में आवाज के उच्च स्वर या मन्द स्वर से ही केवल ऊँचाई का आभास दिया जाता है।

सांस्कृतिक आदर्श और व्यक्तित्व आदर्श (Culture patterns and personality patterns)—सांस्कृतिक विशेषताओं और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हमें कुछ व्यासेधों (reservations) का भी पालन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, जहाँ तक घड़ियों और समय की पाबन्दी (punctuality) का सम्बन्ध है, यह देखा जाता है कि केवल घड़ी पास होने से यह निश्चित नहीं हो जाता है कि व्यक्ति ठीक समय पर किसी व्यक्ति के घर पहुँच जायेगा। लैटिन अमेरिकन लोगों के पास भी घड़ियाँ हैं, परन्तु वे उत्तरी अमेरिकन लोगों की तरह हमेशा समय के पाबन्द नहीं होते हैं। लैटिन अमेरिकन लोगों के लिए आतिथ्य सत्कार, शिष्टता और मित्रता का अधिक महत्व है बनिस्बत नियुक्त समय पर किसी से मिलने के। इससे यह स्पष्ट है कि यद्यपि भौतिक (material) आविष्कारों का व्यक्तित्व के लिए महत्व है, परन्तु महत्व की मात्रा सम्पूर्ण साँस्कृतिक दशा के ऊपर निर्भर करती है।

ग्रामीण संस्कृति और आतिथ्य सत्कार (Rural cultures and hospitality)—उदारता (generosity) तथा कृपणता (stinginess) भी व्यक्तित्व-विशेषता है जो सफाई अथवा समय की पाबन्दी की अपेक्षा अधिक नैसर्गिक (inherent) मालूम पड़ती है परन्तु वास्तव में संस्कृति के साथ इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए, हमारे देश में गाँव के रहने वाले शहर निवासियों की अपेक्षा अधिक उदार और आतिथ्य-सत्कार प्रिय होते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी सौ वर्ष पूर्व किसानों की संस्कृति में आतिथ्य सत्कार अपनी चरम सीमा पर था। विशेषकर दक्षिणी संयुक्त राज्य में इसकी कोई सीमा न थी। क्षेत्र वाटिकाओं (plantations) के बीच दूरी बहुत अधिक थी, सरायें अथवा मद्यगृह (taverns) बहुत कम थे। यात्रियों को रात में प्राइवेट घरों में रुकना पड़ता था। उनका हार्दिक स्वागत होता था, क्योंकि अनाज की बहुतायत थी, और माध्यम (medium) के रूप में मुद्रा (money) का विशेष प्रचलन न था। इसके अतिरिक्त, संदेश-वाहन (communications) की अच्छी सुविधा न होने के कारण यात्रियों से ही समाचार प्राप्त किये जाते थे। ऐसी संस्कृति में आतिथ्य सत्कार का अधिक विकसित होना स्वाभाविक ही था। यही विशेषता आदिवासियों में हमें मिलती है।

आधुनिक नगरों में स्थिति ही दूसरी है। यहाँ अनगिनती होटल और जल-पानगृह होते हैं। यहाँ प्रत्येक वस्तु खरीदकर ही प्राप्त की जाती है। यहाँ समाचार-प्रसार की भी अनेक संस्थायें हैं। इसीलिए यहाँ आतिथ्य सत्कार में भी भारी कमी दिखलाई पड़ती है।

स्त्रियों के व्यवसाय और आज्ञापालन (Women's occupation and obedience)—व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभाव का दूसरा उदाहरण हमें पुरुषों और स्त्रियों के सम्बन्धों में मिलता है। औद्योगीकरण (industrialization) से पहले खेती ही मुख्य धन्धा था। घर के बाहर स्त्रियों के लिये कोई धन्धा न था। इसलिए वे अपने पिताओं और पतियों के ऊपर निर्भर रहती थीं। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप आज्ञापालन स्वाभाविक ही था। आजकल स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता होने के कारण, घर के बाहर नौकरी धन्धा करने, धन कमा कर लाने के कारण आज्ञापालन की अपेक्षा लड़कियाँ आत्म-प्रकटन (self-expression) और सब प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक क्षेत्र में भाग लेने को अधिक महत्व देती हैं; स्त्रियों और पुरुषों का समान पद है। गाँवों में आज्ञापालन अब भी स्त्रियों की विशेषता है।

वैयक्तिक विघटन
(Individual Disorganization)

प्रत्येक समाज अपने सदस्यों से यह मांग करता है कि वह समाज की लोकरीतियों और रूढ़ियों, उसके मूल्यों और व्यवहार-आदर्शों का पालन करें।

परन्तु अक्सर व्यक्ति अपने समाज की इस मांग को पूरा नहीं कर पाता। इसके फलस्वरूप, उसमें व्यक्तित्व सम्बन्धी कुछ समस्यायें विकसित हो जाती हैं और वह स्वयं विघटित हो सकता है। वैयक्तिक विघटन का अर्थ है कि व्यक्ति सम्पूर्ण समाज के साथ सामंजस्य नहीं कर पाता है, यद्यपि कुछ घटनाओं में वह किसी छोटे समूह जैसे अपराधी—गिरोह में सामंजस्य किये हो।

वैयक्तिक विघटन इस बात का भी फल हो सकता है कि स्वयं समाज विघटन की स्थिति में है। अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में समाज की मूल्य-प्रणाली छिन्न-भिन्न हो रही हो या नये विकसित होने वाले व्यवहार-प्रतिमानों को अपनाने की तैयारी हो रही हो। दूसरे शब्दों में, सामाजिक विघटन कुछ व्यक्तियों को इस सम्बन्ध में भ्रान्ति में डाल देता है कि सही व्यवहार—आदर्श क्या हैं जिसमें वे सामंजस्य नहीं कर पाते।

इस प्रकार, व्यक्ति का विघटन उन कारणों से हो सकता है जो स्वयं व्यक्ति में जन्मजात हैं या उस समाज में मौजूद हैं जिसमें वह रहता है। वह ऐसी अयोग्यता लिये हुये जन्म ले सकता है या बाद में विकसित या ग्रहण कर सकता है जिसके कारण समाज में उसका एकीकरण नहीं हो सकता। परन्तु वास्तव में वैयक्तिक विघटन के लिये समाज ही अधिक उत्तरदायी मालूम पड़ता है और क्योंकि इस अध्याय में हमें व्यक्ति के ऊपर समाज के प्रभाव को दिखाना है, इसलिये हम संक्षेप में केवल वैयक्तिक विघटन के उन्हीं कारकों की चर्चा करेंगे जो समाज की देन हैं।

समाज और वैयक्तिक विघटन

सामाजिक कारणों से उत्पन्न होने वाला वैयक्तिक विघटन मानसिक संघर्षों के कारण होता है जो कुछ सांस्कृतिक स्थितियों का फल है। अधिकतर व्यक्ति संतोषजनक ढंग से सामंजस्य कर लेते हैं परन्तु काफ़ी लोग नहीं कर पाते।

सभ्य समाज बहुत जटिल, प्रतियोगितापूर्ण और विरोधाभासी (contradictory) होता है और व्यक्ति से अनगिनती मांगे करता है। वास्तव में, जो कुछ भी घर और स्कूल में सिखाया जाता है उसमें और जो वास्तव में समाज में हमसे आशा की जाती है उसमें भीषण अन्तर होता है। उदाहरण के लिये, हमें सिखाया जाता है कि रिश्वत देना और लेना पाप है परन्तु बड़े होकर हम देखते हैं कि रिश्वत दिये बगैर हमारा कोई काम ही नहीं हो सकता।

इसी प्रकार, भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और नैतिक स्तर वाले समूह उचित और अनुचित की भिन्न परिभाषायें देते हैं। व्यक्ति पशोपेश में पड़ जाता है कि वह घर में बताये हुये नैतिक स्तर के अनुसार चले या साथियों द्वारा बताये गये नैतिक नियमों के अनुसार जो आपस में भिन्न हैं। फिर, विज्ञान आदि साधनों के द्वारा

व्यक्ति में अनेक इच्छायें जागृत की जाती हैं जो अक्सर पूरी नहीं की जा सकतीं। साथ ही, संस्कृति में तेजी से होने वाले परिवर्तन, नये विचार उत्पन्न करते हैं और नये व्यवहार-स्तर बनाते हैं, जब कि पुराने व्यवहार-स्तर भी टिके रहते हैं। यह सब स्थितियाँ व्यक्ति को परेशान कर देती हैं, उसको अपनी इच्छायें पूरा करने में बाधक होती हैं और अपनी स्थिति का सामना करने में मजबूर कर देती हैं। इस किस्म के व्यक्ति अनेक प्रकार के मानसिक विकारों से ग्रसित हो जाते हैं, आत्महत्या कर सकते हैं या अपराधी बन सकते हैं।

आदिम और लोक समाजों (folk societies) में वैयक्तिक विघटन की घटनायें बहुत कम होती हैं क्योंकि वहाँ उपरोक्त दशायें अनुपस्थित हैं। उदाहरण के लिये, कुछ वन्यजातियों में किये गये अध्ययनों से पता लगता है कि वहाँ मानसिक विकार और आत्महत्या जैसी बातें अज्ञात हैं। दूसरी ओर, कुछ वन्यजातियों में जहाँ प्रतियोगिता को विशेष महत्व दिया जाता है आत्महत्या की घटनायें काफी संख्या में होती हैं। इन अध्ययनों से पता लगता है कि वैयक्तिक विघटन कराने या रोकने के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि किस हद तक समाज का एकीकरण (integration) हुआ है, न कि नियंत्रण करने वाली संस्थाओं और साधनों की संख्या।

जिन व्यक्तियों में व्यक्ति व्यक्तित्व–सम्बन्धी कठिनाइयाँ अनुभव करते हैं, यह कठिनाइयाँ वहाँ की संस्कृति से सम्बन्धित होती हैं जैसे प्रतियोगिता या समाज द्वारा व्यक्ति से अत्यधिक मांग करना। उदाहरण के लिये, बाँटू वन्यजाति में ऐसे अनेक व्यक्ति चिन्ता और निराशा से ग्रसित रहते हैं जो प्रवीण वक्ता (orators) नहीं बन पाते क्योंकि उनकी संस्कृति भाषण-निपुणता को अत्यधिक महत्व देती है। अनेक मानवशास्त्रियों का कहना है कि वन्यजातियों में व्यक्ति उस समय अधिक गम्भीरतापूर्वक विघटित हो जाते हैं जब उनके समाज और संस्कृति पश्चिमी सभ्यता के निकट सम्पर्क में आते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी लोकरीतियों और रूढ़ियों की प्रणाली टूट जाती है। थॉमस ने कहा है कि पोलैण्ड के छोटे कृषक समुदायों में व्यक्तित्व-विघटन की बहुत कम समस्यायें हैं बनिस्बत संयुक्त राज्य अमेरिका के पोलिश समुदाय के जिनमें विघटन अधिक है। इसका मुख्य कारण इन पोलैण्ड वासियों का एक सरल जीवन से जटिल नागरिक सभ्यता में जाकर बस जाना है।

———

२ व्यक्ति और समाज : व्यक्तिवाद और समष्टिवाद (Individual and Society : Atomistic and Holistic Approach)

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध पर विद्वानों ने अनेक विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने इस बात पर विचार किया कि सामाजिक शक्तियों (संस्थाओं) के कार्य को और व्यक्तियों के कार्यों के साथ सम्बन्ध को कैसे समझा जाये। व्यक्तियों की अपेक्षा समूह अधिक शक्तिशाली और कम वास्तविक मालूम पड़ते हैं। समूह के पास वे गुण और सम्पत्तियाँ हैं जो व्यक्तियों के गुण और सम्पत्तियों से श्रेष्ठ हैं, फिर भी यह सत्य है कि केवल व्यक्ति ही समूहों का निर्माण करते हैं।

(1) व्यक्तिवाद के समर्थकों का कहना है कि समूह या समाज से मतलब व्यक्तियों और उनके संग्रह से है। व्यक्तियों के अतिरिक्त समूह का कोई अस्तित्व नहीं है। इन लेखकों का कहना है कि व्यक्ति एक जरूरतमन्द प्राणी है जो अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए बेहद मेहनत करते हैं और अनेक प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। समाज में जितनी भी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक संस्थायें मौजूद हैं वे व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए व्यक्तियों के प्रयोजनों (motives) का फल हैं। समूह के अन्दर कोई ऐसी चीज नहीं है जो पहले व्यक्ति में नहीं थी।

(2) दूसरी ओर, समष्टिवादियों का कहना है कि व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध समझने के लिए हमें सामाजिक प्रमेय (phenomena) या घटनाओं या बातों के सहअस्तित्व (co-existence) पर विचार करना होगा। इन लेखकों ने इस बात पर बल दिया कि समाज की सभी संस्थायें, विश्वास और नीतियाँ एक पूर्णता (whole) में अन्तःसम्बन्धित हैं, इसलिए इस पूर्णता में किसी एक भाग (संस्था आदि) के अस्तित्व की व्याख्या करने की पद्धति वास्तव में इस बात की खोज करती है कि समाज का यह भाग अन्य सभी भागों के साथ कैसे रहता है।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध पर दिये गये उपरोक्त विचारों की विस्तारपूर्वक व्याख्या करने से पहले सामाजिक निर्णयवाद (social determinism) की चर्चा करना भी आवश्यक है जो व्यक्तिवाद का एकदम विपरीत है। यह वैयक्तिक शक्तियों के ऊपर सामाजिक शक्तियों और संस्थाओं के प्रबल प्रभाव पर जोर देता है। इस सिद्धान्त का सार यह है कि सामाजिक प्रणालियों (systems) की अपनी दिशायें और नियम हैं जिनका व्यक्तियों के गुणों से कोई सम्बन्ध नहीं है। भाषा, यन्त्रकला, रक्त सम्बन्ध (kinship relationship) व्यक्तियों के मस्तिष्क और प्रयोजनों से नहीं उत्पन्न हुये हैं, बल्कि समूह द्वारा उत्पन्न हुए हैं जो अपने नियमों का पालन करते हैं। यह सामाजिक प्रणालियाँ व्यक्तियों से कहीं अधिक प्रबल होती हैं और उन्हें प्रभावित करती हैं। यह अक्सर व्यक्तियों की इच्छाओं के विरुद्ध होता है। यह सिद्धान्त एक तो इस बात पर जोर देता है कि किसी समाज की समस्यायें व्यक्तियों की इच्छाओं और चाह का फल हैं। दूसरे, इस सिद्धान्त के अनुसार समाज में ऐसी शक्तियाँ होती हैं जो व्यक्तियों की शक्तियों से अधिक प्रबल हैं और उन्हें अपने वश में रखती हैं। उदाहरण के लिये, युद्ध वास्तव में अनेक प्रणालियों के बीच संघर्ष है जिसके समक्ष व्यक्तियों के प्रयोजन (motives) गौण और भ्रम उत्पन्न करने वाले हैं। व्यक्ति भिन्न-भिन्न कारणों से युद्ध में भाग लेते हैं। एक व्यक्ति अपने परिवार को छोड़ना चाहता है; दूसरा विदेशों को देखना चाहता है; तीसरे की आय का कोई अन्य साधन नहीं है; चौथा, देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर सैनिक बनता है। परन्तु अपने प्रयोजनों के भिन्न-भिन्न होने के बावजूद भी वे एक शक्ति की आज्ञा का पालन करते हैं—युद्ध लड़ने वाला समाज। इस शक्ति के सामने उनके वैयक्तिक प्रयोजन तुच्छ प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिये, यदि समाज दूसरे समाज से युद्ध न लड़े, सैनिकों की भर्ती न करे तो व्यक्तियों की इच्छाओं के बावजूद वे युद्ध में शरीक नहीं हो सकते। या फिर व्यक्ति की इच्छा न होने पर भी समाज उन्हें सेना में भर्ती होने के लिये बाध्य कर सकता है।

व्यक्तिवाद

(Individualism or the 'Atomistic' Approach)

'Atom' एक ग्रीक शब्द है जो individual या व्यक्ति के लिये प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार atomism का अर्थ व्यक्तिवाद हुआ। फ़ेयर चाइल्ड ने अपनी Dictionary of Sociology में atomism की परिभाषा देते हुये लिखा है कि यह वह सिद्धान्त या विश्वास है जिसके अनुसार समूह की उसके व्यक्तिगत सदस्यों या इकाइयों के माने में ही व्याख्या की जा सकती है या उसको समझा जा सकता है, न कि एक सामूहिक पूर्णता के रूप में। यह सिद्धान्त इस बात को

मानने से इन्कार करता है कि अपने व्यक्तिगत सदस्यों से अलग समाज या किसी समूह का कोई अस्तित्व है।* इसका अर्थ यह हुआ कि समूह से तात्पर्य केवल अनेक व्यक्तियों के संग्रह से है। यदि हम समूह के बारे में कुछ जानना चाहते हैं तो हमें व्यक्तियों और उनकी इच्छाओं या प्रयोजनों (motives) को समझना होगा।

इस सिद्धान्त का आरम्भ इस बात से होता है कि व्यक्ति ही एकमात्र सत्यता है। यह सिद्धान्त समूहों की सत्यता या यथार्थता को अस्वीकार करता है। इसमें निम्नलिखित बातों पर बल दिया गया है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें (psychological processes) केवल व्यक्तियों में ही होती हैं और व्यक्ति ही वे इकाइयाँ हैं जिनको देखा जा सकता है। केवल व्यक्ति ही प्रेम और घृणा कर सकता है; देख और विचार कर सकता है। केवल व्यक्ति ही निर्णय ले सकता है और कार्य कर सकता है। वर्तमान व्यवहारवादी (behavioristic) सिद्धान्तों ने व्यक्ति के कार्यों का अधिक स्पष्ट रूप से वर्णन करने का प्रयास किया है। उनके विचार में, मनुष्य ज़रूरतमन्द प्राणी हैं जो इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये बेहद मेहनत करते हैं और नाना प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। इस सम्बन्ध में वे अनेक वस्तुओं के सम्पर्क में आते हैं जिन्हें वे अपने वश में करने या उनसे बचने या उनके निकट आने का प्रयत्न करते हैं। व्यक्तियों के प्रति किये जाने वाले कार्य का मनोवैज्ञानिक महत्व वही है जो कि किसी शारीरिक प्रेरणा के प्रति किये जाने वाले कार्य का है। यह सभी कार्य आवश्यकता की पूर्ति के लिये होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य करता है और अन्य व्यक्तियों को अपनी आवश्यकताओं और उद्देश्यों की पूर्ति के साधनों के रूप में प्रयोग करता है।

उपरोक्त बातों से अनेक लेखकों ने समूहों और सामूहिक कार्यों के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाले हैं। उनके विचार में यदि सामाजिक जीवन के मंच पर व्यक्ति ही वास्तविक अभिनेता है तो 'समूह' शब्द केवल एक कल्पना (hypothetical abstraction) है यदि उससे तात्पर्य व्यक्तियों की एक दूसरे के प्रति की प्रतिक्रियाओं के संग्रह से ऊँची किसी वस्तु से लगाया जाता है। सत्यता तो यह है कि समूह जैसी कोई वस्तु नहीं होती : 'समूह तो एक समुदायवाची (collective) शब्द है जो कि वैयक्तिक प्रक्रियाओं (individual processes) के संग्रह के लिये

* The theory or belief that a group is to be explained or understood in terms of its individual members or units rather than in terms of a collective whole; the denial that society or only group has only existence or meaning apart from that of its individual members." —Fairchild.

प्रयोग किया जाता है। जैसे ही हम व्यक्तियों के कार्यों और उनके अनुत्रम (sequence) का वर्णन कर लेते हैं, समूह का 'विचार' एकदम व्यर्थ प्रमाणित हो जाता है। जो लेखक उपरोक्त बातों में विश्वास करते हैं वे 'उद्योगवाद', 'पूँजीवाद', या 'प्रजातन्त्रवाद' के वैषयिक पद (objective status) और 'भारत की सरकार' जैसे शब्दों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। उनके विचार में व्यक्तियों के ही अनिगिनती विशिष्ट कार्यों को छोटे रूप में प्रकट करने के लिए इन शब्दों का प्रयोग होता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक तत्वों को समझने के लिये व्यक्ति के गुणों और कार्यों को समझना आवश्यक है। उन्हीं में उसका रहस्य छिपा है। समाज के मंच पर व्यक्ति ही एकमात्र अभिनेता हैं, इसलिये सामूहिक जीवन के सभी प्रमेय (phenomena) सभी संस्थायें, विश्वास और रीतियाँ वैयक्तिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित हैं। यह पूर्ण रूप से व्यक्तियों के व्यवहार और प्रयोजनों के ही फल हैं। उदाहरण के लिये, आर्थिक संस्थायें वस्तुओं को अधिकार में रखने की व्यक्तियों की इच्छा और आवश्यकता का प्रकटन और फल हैं; विवाह की संस्थायें व्यक्तियों की यौन इच्छाओं का फल हैं और शक्ति के लिये व्यक्तियों द्वारा प्रयत्न होने के कारण राजनीतिक संस्थाओं का जन्म होता है। यदि हम युद्ध के आधार को समझना चाहते हैं तो उसके लिये भी व्यक्तियों के प्रयोजनों को देखना होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज या समूह में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो पहले व्यक्ति में नहीं थी।

व्यक्तिवादी सिद्धान्त में दो बातों पर विशेष रूप से बल दिया गया है। पहले, मानसिक प्रक्रियायें केवल व्यक्तियों में ही होती हैं। दूसरे, अलग-अलग व्यक्तियों के ही कार्यों के संग्रह को समूह का कार्य कहते हैं। इस आधार पर ही समूहों की यथार्थता को स्वीकार करने से इन्कार किया जाता है।

इस सिद्धान्त के मानने वाले कहते हैं कि एक ओर मूर्त, स्पर्शनीय वस्तुयें हैं—पत्थर, वृक्ष, पशुओं के शरीर। केवल इन्हीं वस्तुओं में पूर्ण यथार्थता पायी जाती है। इनको हम देख, छू और हटा सकते हैं। दूसरी ओर, वस्तुओं के बीच के सम्बन्धों के बारे में हमारे कुछ विचार हैं। सम्बन्ध अमूर्त हैं, हमारे अनुभव के पहलू हैं जिनके साथ हम विचार करके या उनके बारे में बात करके केवल पेश आ सकते हैं। उन्हें हमारे शरीरों के किसी भी अंग के द्वारा सुना, छुआ, देखा या संकेत नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार केवल व्यक्ति ही यथार्थ हैं, समूह नहीं।

व्यक्तिवाद का इतिहास

(History of Atomistic or Individualistic Approach)

व्यक्तिवाद का प्राथमिक अर्थ मस्तिष्क की एक ऐसी स्थिति या मनोवृत्ति

है जो किसी विशेष प्रकार के समाज में उत्पन्न होती है। यह समाज ऐसा होता है जिसमें परम्परा और अधिकार-शक्ति का कोई आदर नहीं होता। यह आदिम किस्म के सामाजिक संगठन से बिल्कुल भिन्न है जहाँ वन्यजातीय (tribal) प्रथायें और परम्परायें इतनी प्रबल होती हैं कि व्यक्ति स्वेच्छा से कुछ नहीं कर सकता और वन्य जाति के सदस्य समूह में इतने अधिक मग्न या विलीन हो जाते हैं कि उनमें एक 'वन्यजातीय स्व' (tribal self) का निर्माण हो जाता है, व्यक्तिगत इच्छाओं आदि का कोई स्थान नहीं रहता। इसके विपरीत, अधिक स्पष्ट रूप से, एक व्यक्तिवादी समाज वह है जहाँ व्यक्ति केवल अपने ही लिये या बारे में सोचते हैं और अपने "स्वार्थों और हितों के सबसे अच्छे न्यायाधीश" समझे जाते हैं। वहाँ यह समझा जाता है कि उनके ऐसे स्वार्थ और कार्य हैं जो सिर्फ उनके हैं।

पाँचवीं सदी में ग्रीस में वैज्ञानिक खोजों के कारण परम्परा का वियोजन (disintegration) हुआ। उस काल में आधुनिक अर्थ में व्यक्तिवाद का श्रीगणेश हुआ जिसमें राज्य के साथ व्यक्ति के उचित सम्बन्ध पर पुनर्विचार किया गया। ग्रीक सिद्धान्तों ने इस बात पर विचार किया कि सामूहिक संगठन के साथ व्यक्ति का क्या सम्बन्ध है और राज्य के हस्तक्षेप से व्यक्ति की मुक्ति पर विचार किया। ग्रीक सिद्धान्त प्रकृति और कानून या परम्परा के व्यतिरेक (contrast) से सम्बन्धित थे। (१) यह व्यक्ति के प्राकृतिक अहम्वाद (egoism) में विश्वास पर आधारित थे। प्रकृति से व्यक्ति दूसरों के साथ अन्याय करना चाहते हैं परन्तु स्वयं अन्याय सहना नहीं चाहते। इस स्थिति के परिणाम को असन्तोषजनक पाकर वे एक नियम (convention) बनाते हैं जिसके अनुसार न वे स्वयं अन्याय करेंगे और न अन्याय सहेंगे। इस प्रकार कानून स्वार्थी व्यक्तियों के लाभ के लिए एक साधन है। जब वह स्वार्थी लोगों को लाभ नहीं पहुँचाता उसको हटा दिया जाता है (२) इस व्यतिरेक (contrast) के दूसरे रूप में व्यक्तिवाद कानून को मनुष्य की प्राकृतिक अच्छाइयों को, न कि प्राकृतिक बुराइयों को दबाने वाले के रूप में देखता है। इसके अनुसार कानून का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों की प्राकृतिक अच्छाइयों को प्रकट न होने देना है।

एक अन्य अर्थ में भी व्यक्तिवाद की शुरुआत ग्रीक विचारधारा में हमको मिलती है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति स्वयं अपने द्वारा निश्चित होने वाली (self-determined) पूर्णता है और कोई बड़ी पूर्णता (whole) केवल व्यक्तियों का संग्रह है जो यदि एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तो केवल बाहर से। ‡

‡ "..The individual is a self-determined whole and that any large whole is merely an aggregate of individuals, who if they act upon each other at all do so only externally."
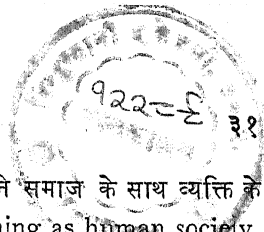
एपीक्यूरस (Epicurus) एक व्यक्तिवादी था जिसने समाज के साथ व्यक्ति के सम्बन्ध को बताते हुये कहा : "There is no such thing as human society. Every man is concerned for himself." (मानव समाज जैसी कोई वस्तु नहीं है। हर आदमी केवल अपना ख्याल रखता है।) "Justice never is any thing in itself but in the dealings of men with one another in any place whatever and at any time, it is a kind of compact not to harm or be harmed." (स्वयं में न्याय कुछ नहीं है, यह किसी भी स्थान और किसी भी समय मनुष्यों के एक दूसरे के साथ सम्बन्धों में प्रकट होती है, यह तो न हानि पहुँचाने या न हानि पहुँचाये जाने की एक संविदा है।) यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक व्यक्तिवाद (psychological atomism) से भी सम्बन्धित था जिसके अनुसार मनुष्य की सम्पूर्ण विचारधारा केवल दो बातों पर आधारित थी—सुख की इच्छा और कष्ट से बचने की इच्छा।

बाद के व्यक्तिवाद की तरह एपीक्यूरियनवाद (Epicurianism) भी व्यक्ति और समाज के अनिवार्य (compulsory) और पम्परागत राजनीतिक और कानूनी सम्बन्ध की अपेक्षा ऐच्छिक और स्वतंत्र सम्बन्ध वाली दोस्ती की प्रशंसा करता है। इस प्रकार वह व्यक्ति को इस बात की स्वतन्त्रता देता है कि वह समाज के साथ समझौता (contract) करे या न करे। इस बात से हमें पता चलता है कि एपीक्यूरियनवाद में आधुनिक व्यक्तिवाद के तत्व मिलते हैं, जैसे व्यक्तियों के संग्रह के अलावा समाज कुछ नहीं हैं, राज्य, कानून और न्याय ज्यादा से ज्यादा आवश्यक बुराइयाँ (necessary evils) ही हैं ; सुख की प्राप्ति और दुःख से बचने की इच्छा ही मानव व्यवहार के प्रेरक हैं और संवेदनायें (sensations) मनोवैज्ञानिक व्यक्तिवाद (atomism) की इकाइयाँ हैं; और समाज के साथ व्यक्ति का ऐच्छिक साथ और समझौता करने या न करने की स्वतन्त्रता।

आधुनिक व्यक्तिवाद के निर्माण में दो बातों का विशेष योगदान रहा : (१) इस विचार को बढ़ावा कि व्यक्ति सबसे बेशकीमती वस्तु है। यह विचार ईसाई धर्म से प्राप्त हुआ (२) वस्तु विनिमय (exchange) द्वारा शासित आर्थिक प्रणाली का उदय।

धार्मिक व्यक्तिवाद का जन्म ईसाई धर्म से नहीं हुआ परन्तु यह शुरू के जूडावाद (Judaism) में भी नहीं मिलता है। यह तो एजकील (Ezekiel) में मिलता है जिसमें कहा गया है कि जीसस क्राइस्ट ईश्वर के साथ व्यक्ति के प्रयत्क्ष सम्बन्ध को मानते हैं। व्यक्ति जो सबसे बेशकीमती वस्तु है दूसरे व्यक्तियों से विलग नहीं हैं बल्कि अपने भाइयों-साथियों की सेवा में ही अपने को खोज पाता है। यद्यपि यह कहना गलत होगा कि new testament धार्मिक व्यक्तिवाद की शिक्षा देता है

परन्तु व्यक्ति को सबसे बेशकीमती बताकर इसने व्यक्तिवाद के विकास में बड़ा योगदान दिया। इसके अनुसार संस्थाओं और सामाजिक संगठन का लक्ष्य व्यक्तियों के भविष्य पर अच्छा प्रभाव डालना होना चाहिये।

बोलशेविज्म (Bolshevism) और फ़ासिज्म (Fascism) के अतिरिक्त सभी आधुनिक **राजनीतिक सिद्धान्त** व्यक्तिवादी हैं क्योंकि वे व्यक्ति के नैतिक निर्णय को प्रोत्साहन देते हैं। यह सब सिद्धान्त व्यक्तियों के अधिकारों की प्रणाली को सहन करने और बनाये रखने पर आधारित हैं।

आधुनिक व्यक्तिवाद पर दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव सामाजिक विज्ञानों पर आधुनिक भौतिक (Physical) विज्ञानों के पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्धित है। नये भौतिक विज्ञान व्यक्तियों को स्वतन्त्र इकाइयों के रूप में मानते हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक अणु (atom) है जिसकी स्वयं अपनी प्रकृति है जो अपने में पूरी है। यदि इन व्यक्तियों को वैज्ञानिक इकाइयाँ बनाना है उन्हें गुणात्मक (qualitative) बातों में हूबहू एक से अणु होना चाहिए।

इस नये अर्थ में राजनीतिक सिद्धान्त को वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय हॉब्स (Hobbes) को है। उसके अनुसार सभी मनुष्य एकसम (identical), बराबर की इकाइयाँ (units) हैं। क्योंकि वे एकसम हैं, उनके आपसी सम्बन्ध केवल बाहरी होते हैं। यह **वैज्ञानिक व्यक्तिवाद** (scientific individualism or atomism) का सार है। यह सिद्धान्त लॉक (Locke) द्वारा जारी रखा गया, रूसो (Rousseau) द्वारा त्यागा गया और बेन्थम (Bentham) द्वारा उसकी पुनरावृत्ति (revival) हुई। इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्ध तो केवल वे साधन हैं जिनके द्वारा व्यक्ति अधिक सुचारु रूप से वे चीजें प्राप्त करता है जिनकी इन सम्बन्धों में प्रवेश करने से पहले वह कामना करता था। परन्तु राजनीतिक और सामाजिक सम्बन्ध उसकी प्रकृति को नहीं बदलते। व्यक्ति बिना बदले हुये वैसे ही, आध्यात्मिक रूप से विलग अणु बने रहते हैं।*

इंगलिश और फ्रेंच सिद्धान्त भी हॉब्स से सहमत हैं यद्यपि उन्होंने हॉब्स की सभी बातों को स्वीकार नहीं किया। इंगलिश अनुभववादियों (empiricists) का उद्देश्य भौतिक विज्ञानों की भाँति मानव स्वभाव के एक विज्ञान का निर्माण करना था जिसमें अणुवाद या व्यक्तिवाद के सिद्धान्त को न केवल समाज में बल्कि मनोविज्ञान और नीतिशास्त्र में भी लागू किया जा सके। इस प्रकार, समाज के लिये

---

* "But political and social relations do not bite into the nature of individuals. The individuals remain the unchanged, spiritually isolated atoms."

व्यक्ति केवल इकाई है, जब कि मनोविज्ञान के लिए वह मनोवैज्ञानिक इकाइयों—संवेदनाओं (sensations) या सुख की इच्छा और कष्ट से बचाव की इच्छा—का संग्रह है। इस प्रकार, एपीक्यूरियनवाद की तरह वैज्ञानिक व्यक्तिवाद भी मनोवैज्ञानिक व्यक्तिवाद या अनुवाद पर आधारित था।

बैन्थम के अनुसार मनोवैज्ञानिक अणुवाद और दुःख सुख के सिद्धान्त (hedonism) के द्वारा ही मानव स्वभाव को समझा जा सकता है। बैन्थम ने कहा कि मनुष्य अलग अलग व्यक्ति होते हैं जो सुख प्राप्ति की खोज करते हैं और कष्ट से बचना चाहते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति गुणात्मक दृष्टि से (qualitatively) एकसम होते हैं उसी प्रकार यह दुःख और सुख भी एकसम होते हैं। यद्यपि दुःख और सुख गुणात्मक रूप से एकसम (identical) होते हैं फिर भी परिमाणात्मक रूप से (quantitatively) उनका विश्लेषण, तुलना और जोड़ किया जा सकता है। सुख की प्राप्ति में लगे हुये व्यक्तियों के इस संग्रह में विधायक (legislator) विभिन्न स्वार्थ देखता है और विधान बनाने और दण्ड और पुरस्कार बाँटने में उसका उद्देश्य इन स्वार्थों के अन्तर को दूर करना और स्वार्थों के कृत्रिम समीकरण (artificial-identification) को विकसित करके अधिक से अधिक लोगों के लिए अधिक से अधिक खुशी उत्पन्न करना है। स्वयं विधायक उन लोगों से भिन्न है जिनके लिये वह विधान बनाता है। वे सब व्यक्ति अपने सुख की खोज करते हैं और विधायक उन सबके सुख की।

१९ वीं सदी के **शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों (classical economists)** ने मानव स्वभाव के उपयोगितावादी विश्लेषण को स्वीकार किया और यह माना कि यदि व्यक्तियों को वस्तु-विनिमय (exchange) की पूरी छूट दे दी जाये तो अधिक से अधिक लोगों को अधिक से अधिक सुख अपने आप प्राप्त हो जायेगा। अर्थ-शास्त्रियों ने वस्तु-विनिमय की स्वतंत्रता पर बल दिया। अर्थशास्त्र वस्तु-विनिमय में विशेष रुचि रखता है और वस्तु-विनिमय में यह कल्पना छिपी है कि विनिमय करने वाले व्यक्तियों के स्वार्थ एकसम हैं। यह **आर्थिक व्यक्तिवाद** (econometc-individualism) की धारणा थी।

आलोचना (Criticism)

सुख दुःख की इच्छा के सिद्धान्त को सही नहीं माना जा सकता। यदि ऐसा होता तो उपयोगितावादी सिद्धान्त गलत होता। वास्तव में, यदि सभी व्यक्ति केवल अपने सुख की प्राप्ति और दुःख से बचने की इच्छा से ही सारे कार्य करते तो अधिक से अधिक लोगों के अधिक से अधिक सुख का प्रश्न नहीं उठता। हम जानते हैं कि आधुनिक सिद्धान्त अधिक लोगों के सुख का समर्थन करते हैं।

आर्थिक व्यक्तिवादिता के सिद्धान्त को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। जब इसको सामाजिक प्रगति के दर्शनशास्त्र के रूप में स्वीकार किया गया तो इसके बड़े घातक परिणाम हुये और इस सिद्धान्त को त्याग दिया गया। आर्थिक व्यक्तिवाद यह मानता है कि सभी व्यक्ति समान रूप से लेन देन (bargain) करने के लिये स्वतंत्र हैं। परन्तु अक्सर ऐसा नहीं होता। सरकार और आर्थिक संगठन आधुनिक उद्योग में शामिल हैं और वे हर प्रकार से हस्तक्षेप कर सकते हैं।

वास्तव में व्यक्ति और समाज एक ही सिक्के के अगले और पिछले भाग हैं। जब हम समाज की इकाइयों पर विचार करते हैं तो हमें व्यक्ति दिखाई देता है और जब हम सामूहिकता पर विचार करते हैं तो हमें समाज या समूह दिखाई देता है। व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध उसी प्रकार का है जैसे विद्यार्थियों और कक्षा का, सैनिकों और सेना का। जिस प्रकार विद्यार्थियों के बगैर कक्षा, और सैनिकों के बगैर सेना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि कक्षा के बगैर विद्यार्थी, और सेना के बगैर सैनिक भी नहीं हो सकते।

निष्कर्ष : व्यक्तिवादिता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता। कोई भी व्यक्ति उसी तरह पूर्णरूप से व्यक्तिवादी नहीं हो सकता जिस प्रकार कोई व्यक्ति पूरी तरह से समाजवादी नहीं हो सकता। व्यक्ति और समाज दोनों एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करते हैं और एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। यहाँ तक कि धार्मिक व्यक्तिवादियों को भी, जो सब संस्थाओं से कहीं अधिक बहुमूल्य मानव व्यक्तित्व को समझते हैं, व्यक्तित्व के विकास में समाज और संस्थाओं की भूमिका को मानना पड़ेगा।

यह सब जानते हैं कि व्यक्तियों के बीच अन्तःक्रिया होती है। इसलिये, यह भी अनुचित होगा कि समाज को ही एक यथार्थता (reality) समझें जो व्यक्तियों के विरोध में हो या सामूहिक सम्बन्धों की यथार्थता को मानने से इन्कार करें। हमें यह समझना है कि व्यक्ति और समूह एक दूसरे से भिन्न हैं परन्तु साथ ही उन दोनों को एक दूसरे से अलग भी नहीं किया जा सकता। समूह की दशायें व्यक्तियों को प्रभावित करती हैं क्योंकि व्यक्तियों की निश्चित और स्पष्ट सम्पत्तियाँ या गुण होती हैं। विशेषकर हमें यह समझना है कि जब समूह कार्य करता होता है तो उसकी इकाई व्यक्ति नहीं बल्कि एक सामाजिक व्यक्ति होता हैं जिसका सामाजिक संगठन में एक शिशु, एक पति, या एक कार्यकर्त्ता के रूप में एक स्थान होता है। इसलिये जिस प्रकार हम व्यक्ति को उसके पर्यावरण से अलग नहीं कर सकते उसी प्रकार समूह से भी अलग नहीं कर सकते। **व्यक्ति को समझने के लिए** समूह-पर्यावरण में उसका अध्ययन आवश्यक है; **समूह को समझने के**

लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तियों का अध्ययन किया जाये जिनके अन्त:सम्बन्धी कार्य समूह का निर्माण करते हैं।

व्यक्ति समूह में रहता है परन्तु वह उसे अपने विचार और भावनाओं का विषय बना सकता है। इसलिये वह किसी राष्ट्र, वर्ग या प्रजाति का केवल सदस्य मात्र ही नहीं है। वह सदस्य तो है ही परन्तु साथ ही विचारने और अन्तरदृष्टि (insight) की योग्यता भी रखता है। यह स्थिति उसे स्वतंत्रता प्रदान करती है क्योंकि वह समूह को समझ सकता है और उसकी आलोचना कर सकता है। मनुष्य में यह योग्यता हैं कि वह पुरानी रीतियों या पूर्व-धारणाओं (prejudices) के औचित्य पर सन्देह कर सकता है। यह सत्य समूह पर उसकी निर्भरता से उसे मुक्त नहीं करता बल्कि उसकी निर्भरता का रूप बदल देता है। व्यक्ति की ऐसी प्रवृत्तियाँ और मूल्य भी हो सकते हैं जो समूह की प्रवृत्तियों और मूल्यों के सदृश हों जो केवल उस व्यक्ति की अपनी विशेषता हों या वह समूह का विरोध करें। इसलिये, आवश्यक रूप से व्यक्ति केवल सामूहिक शक्तियों का साधन मात्र ही नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं भी समूह में एक शक्ति है।

समष्टिवाद या प्रकार्यवाद
(Functionalism or the 'Holistic' Approach)

समाज का समष्टिवादी अध्ययन अत्यन्त पुराने जमाने से चला आ रहा है और इसकी उत्पत्ति ग्रीक समाज में हुई। पिछली तीन दशाब्दियों में समष्टिवाद (holistic approach) को प्रकार्यवाद (functionalism) के नाम से पुकारा जाने लगा है और अनेक समाजशास्त्री इसके आधुनिक सिद्धान्त का जन्मदाता **मांन्टेस्की** (Montesquieu) को मानते हैं। कुछ लेखकों का कहना है कि हाल में इसको लोकप्रियता **कॉम्त** (Comte) के लेखों के अध्ययन के कारण मिली है। **कॉम्त** ने कहा कि सामाजिक घटनाओं (phenomena) के सहअस्तित्व (coexistence) का अध्ययन किया जाना चाहिये। इस बात के पीछे यह विचार छुपा था कि समाज की सभी संस्थायें, विश्वास, और नीतियाँ (morals) एक पूर्णता (whole) में अन्त: सम्बन्धित हैं जिसके कारण इस पूर्णता (whole) में किसी एक चीज (item) के अस्तित्व की व्याख्या करने की पद्धति उस नियम की खोज है जिसके अनुसार यह चीज अन्य सभी सामाजिक घटनाओं के साथ सह अस्तित्व रखती है।* कॉम्त के विचार में समाज के पुनर्निर्माण की योजना का यह एक अंग था जिससे इस बात का पता चल सकता था कि कौन सी सामाजिक वस्तुओं (items) का संयोग (combination) चल सकता है।

* "Underlying this was the notion that all of the institutions,

हरबर्ट स्पेन्सर ने भी समाज की समष्टिवादी धारणा में योगदान दिया है। स्पेन्सर ने यह कहा कि समाजशास्त्र का उद्देश्य समाजों की संरचना का विश्लेषण (analysis) होना चाहिये जिससे कि यह दिखाया जा सके कि पूर्णता के कार्य करने में प्रत्येक भाग का किस प्रकार योगदान है।‡ स्पेन्सर ने समाजों का एक उदविकासीय प्रारूप (evolutionary typology) तैयार किया जिसके अनुसार भिन्न समाजों की संरचना में भिन्न किस्म के तत्व होते हैं। जहाँ संरचना के अन्दर एक समान या तत्सम (identical) तत्व होते हैं प्रत्येक तत्व काफी हद तक आत्म-पर्याप्त (self-sufficient) होता है, जहाँ संरचना में असमान तत्व होते हैं अर्थात् संरचना में अन्दरूनी विभेदीकरण होता है, वहाँ विभिन्न भाग एक दूसरे पर बहुत हद तक निर्भर करते हैं। **स्पेन्सर** ने कहा कि सामाजिक संरचना का अधिक विभेदी-करण–उसमें भिन्न भिन्न व असमान तत्वों का होना–पूरे समाज का अधिक एकी-करण करता है जिससे अन्दरूनी अशान्ति को दूर कर वह अधिक दिन जीवित रह सकता है।

दुरखाइम (Durkheim) ने भी प्रत्यक्ष रूप से प्रकार्यवाद में योगदान दिया है यद्यपि उसने इस बात को कभी स्वीकार नहीं किया। उसने व्यक्तियों की एक दूसरे पर निर्भरता पर बल देकर इस सिद्धान्त को बढ़ावा दिया। श्रमविभाजन (Division of labour) पर लिखी अपनी पुस्तक में दुरखाइम ने श्रमविभाजन के प्रकार्य (function) और उसके कारण में स्पष्ट भेद किया। दुरखाइम के अनुसार श्रम-विभाजन का प्रकार्य समाज का एकीकरण या पुनः एकीकरण है, इसका कारण जनसंख्या में वृद्धि होने से नैतिकता में गिरावट है। दुरखाइम ने निम्न प्रकार से तर्क दिया है : जहाँ जनसंख्या में वृद्धि होती है और विभिन्न व्यक्तियों की सामाजिक अन्तःक्रिया में वृद्धि होती है वहाँ उन सब बन्धनों का नाश हो जाता है जो पहले के सरल और छोटे समाज में बने थे, और स्पर्धा में वृद्धि होती है जिससे सामाजिक व्यवस्था को खतरा उत्पन्न होता है। यह बढ़ती हुई स्पर्धा और होड़ विशेषीकरण के द्वारा कम या नियंत्रित की जाती है। क्योंकि विशेषीकरण व्यक्तियों को एक दूसरे पर निर्भर करता है इसलिये वे एक दूसरे के प्रति अपने उत्तरदायित्व को मानने के लिये बाध्य होते हैं।

---

beliefs and morals of a society are interrelated as a whole, so that the method of explaining the existence of any one item in the whole is to discover the law which prescribed how this item coexists with all of the others."

‡ "Sociology should aim to analyze the structure of societies in order to show how each part contibuted to functioning of the whole."—Spencer,

धर्म की उत्पत्ति और प्रकृति पर लिखी गई अपनी पुस्तक में दुरखाइम ने इस बात पर बल दिया कि मनुष्यों को समाज पर अपनी नैतिक निर्भरता प्रकट करने की एक सामूहिक आवश्यकता होती है। इस प्रकार उसने फिर समष्टिवाद का समर्थन किया। दुरखाइम ने उन सब सिद्धान्तों का खंडन किया जो धर्म की व्याख्या में व्यक्तियों की बौद्धिक या संवेगात्मक विशेषताओं को कारण बताते हैं। उसने यह बताने का प्रयत्न किया कि धर्म किस प्रकार एक सामाजिक बात है। उसके कहा समाज नियंत्रणात्मक तथा रचनात्मक (creative) शक्ति है जो बाहर से व्यक्ति को प्रभावित करती है। वह नैतिक नियम और अन्य व्यवहार-आदर्श (norms) बना कर व्यक्तियों को उनका पालन करने को बाध्य करती है और इस प्रकार व्यक्तियों पर नियंत्रण करती है। परन्तु समाज एक रचनात्मक शक्ति भी है जो प्रत्येक व्यक्ति को साँस्कृतिक साधन भी देती है जिससे वे जीवन यापन करें। आदिवासी लोग इस बाहरीं शक्ति पर अपनी निर्भरता को अनुभव करते हैं परन्तु इस अभौतिक विचार को प्रकट करने में असमर्थ हैं। फिर भी उनको यह प्रकट करने की 'आवश्यकता' है, इसलिये वे समाज और उसके प्रति अपनी सामूहिक मनोवृत्ति (attitude) का प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई भौतिक वस्तु चुनते हैं। यह प्रतीक (भौतिक वस्तु) पवित्र बन जाता है क्योंकि यह नैतिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है और अन्य अश्लील वस्तुओं से अलग मनुष्यों के मस्तिष्कों में रखा जाना चाहिये जिससे इसके प्रति आदर की विशेष भावना उत्तेजित की जा सके। यह भौतिक पदार्थ अनुष्ठानात्मक क्रियाओं का आधार हैं जो स्वयं सामूहिक क्रियायें हैं जिनके द्वारा समूह की एकता की कुछ भावनायें जागृत की जाती हैं और कायम रखी जाती हैं। धार्मिक पूजा की वस्तुयें मनुष्य के बाहर की समझी जाती जाती हैं क्योंकि समाज व्यक्तियों के बाहर है जो सामूहिकता का निर्माण करते हैं। यह सिद्धान्त धर्म की उत्पत्ति के कारण के सम्बन्ध में बताता है कि व्यक्तियों में सामूहिक एकता की भावना प्रकट करने की सामूहिक आवश्यकता होती है और वे इस बात से चेतन होते हैं कि नैतिक व्यवस्था समाज की देन है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ तक धर्म की उत्पत्ति का सम्बन्ध है समाज पर अपनी नैतिक निर्भरता को व्यक्त करने की व्यक्तियों को एक सामूहिक आवश्यकता होती है और सामाजिक एकता बनाये रखने के लिये एक प्रतीक का होना जरूरी है। इस प्रकार, समाज पर व्यक्तियों की निर्भरता पर बल देकर दुरखाइम ने भी समष्टिवाद के सिद्धान्त में योगदान दिया।

उपरोक्त किसी भी समाजशास्त्री ने अपने को समष्टिवादी के नाम से पुकारा जाना पसन्द नहीं किया। **मैलिनोस्की ने ही खुले तौर पर समष्टिवाद को जन्म दिया।** परन्तु इस सम्बन्ध में मैलिनोस्की के मुकाबले में रैडक्लिफ ब्राउन का प्रभाव

अधिक पड़ा जिसने अपने को समष्टिवादी न मानते हुए भी ऐसे विचारों का प्रतिपादन किया जिनसे समष्टिवाद को प्रोत्साहन मिला। **अनेक लेखक मैलिनोस्की** (Malinowski) और **रैडक्लिफ-ब्राउन** (Radcliffe-Brown) **को इस सिद्धान्त का जन्मदाता** (founders) **मानते हैं।**

मैलीनोस्की ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष साँस्कृतिक वस्तु (item) को समझने की इच्छा रखता है तो वह दो प्रकार से ऐसा कर सकता है :

(१) मानव व्यवहार के कुछ सामान्य सिद्धान्तों के माध्यम से और (२) उसी समाज की कुछ अन्य बातों के माध्यम से जिनके संदर्भ (context) में ही विशेष साँस्कृतिक वस्तु रहती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई यह बताना चाहता है कि ट्रोब्रियन्ड द्वीप के निवासी अपने बहनोइयों को वस्तुओं (kind) में क्यों मूल्य चुकाते हैं तो पहले तो वह पारस्परिक आदान-प्रदान के उन सामान्य सिद्धान्तों की चर्चा करेगा जो सभी समाजों में सदस्यों के व्यवहार को नियमित करते हैं; और दूसरे, इस बात की कि वह एक मातृवंशीय (matrilineal) समाज है। वहाँ पुरुष का उत्तराधिकारी (heir) उसका भांजा होता है यानी बहन भाई को उत्तराधिकारी प्रदान करती है। बहनोई को वस्तुओं में मूल्य चुकाना प्रकट करता है कि स्त्रियों और उनके बच्चों का ननसाल की सम्पत्ति में अधिकार है।

मैलीनोस्की ने कहा कि आदिवासी अतार्किक नहीं होता और न उसका सम्पूर्ण जीवन प्रथाओं द्वारा ही संचालित होता है। उसने कहा कि आदिम समाज की अनेक संस्थायें—जैसे झगड़े निपटाने से सम्बन्धित या भोजन आदि के बंटवारे से सम्बन्धित—उसी प्रकार मनुष्यों की आवश्यकताओं को पूरी करती है जैसे हमारे समाज की अधिक विशिष्ट न्यायिक (judicial) और आर्थिक संस्थायें।

संस्थाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मैलिनोस्की ने कहा—सभी मनुष्यों को भोजन, निवास, यौन इच्छा, सुरक्षा आदि की प्राथमिक आवश्यकतायें होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति वे भोजन उत्पन्न करने या खोजने और वितरण करने, मकान बनाने, स्त्रियों के साथ यौन सम्बन्ध करने और समूह में एक साथ रहने की प्रविधियाँ (techniques) बना कर करते हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने की प्रक्रिया द्वैतियक (secondary) आवश्यकताओं को जन्म देती है, संवाद की आवश्यकता भाषा उत्पन्न करती हैं; संघर्ष को रोकने और सहयोग को बढ़ाने की आवश्यकता पारस्परिक आदान-प्रदान के व्यवहार-आदर्शों और सामाजिक अभिमति (sanctions) को जन्म देती हैं, जीवन के खतरे और भाग्य की अनिश्चितता के प्रति चेतनता का विकास जादू और दूसरे प्रकार के अनुष्ठान (ritual) और विश्वास, जैसे कि धर्म, को जन्म देता है जो अनिश्चतता के कारण उत्पन्न चिन्ता और शान्त करते हैं। इन द्वैतीयक आवश्यकताओं की पूर्ति ऐसी संस्थाओं की आवश्यकताओं

को जन्म देती है जिनमें कहीं स्पष्ट और अच्छा समन्वय (coordination) हो । इन संस्थाओं की मौजूदगी उत्तराधिकार के नियमों की आवश्यकता और अधिकार शक्ति के औचित्य की कोई विधि, जैसे पुराण की आवश्यकता को जन्म देती है जो प्रमुख-प्रमुख संस्थाओं को अधिकारशक्ति प्रदान करें । इस प्रकार, मैलिनोस्की के विचार में, यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज की सभी संस्थायें अन्तः सम्बन्धित और अन्तःनिर्भर हैं ।

रैडक्लिफ़ ब्राउन (Radcliffe-Brown) ने अपने को समष्टिवादी कहलाये जाने से इन्कार किया परन्तु ऐसे सिद्धान्त को प्रतिपादित किया जो मैलिनोस्की के सिद्धान्त से मिलता जुलता है । फिर भी उसने सामाजिक वस्तुओं का सम्बन्ध व्यक्ति की जैवकीय या मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से जोड़ना स्वीकार नहीं किया और न यह माना कि सामाजिक आवश्यकतायें इन जैवकीय या मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का फल हैं । उसने तीन बातों को आधार माना—(१) यदि समाज को जीवित रहना है, उसके सदस्यों में कम से कम कुछ एकता जरूर होनी चाहिये । सामाजिक घटनाओं का कार्य या तो सामाजिक समूहों की इस एकता को निर्माण करना या कायम रखना है, और या उन संस्थाओं को सहारा देना है जो ऐसा करती हैं । (२) इस प्रकार, एक सामाजिक प्रणाली के विभिन्न भागों के बीच सम्बन्धों में कम से कम कुछ स्थिरता जरूर होना चाहिए । (३) प्रत्येक समाज या प्रत्येक किस्म का समाज कुछ मौलिक संरचनात्मक विशेषतायें प्रदर्शित करता है और वहाँ कुछ ऐसे रीति रिवाज़ होते हैं जो इन विशेषताओं से इस प्रकार सम्बन्धित होते हैं कि उनको कायम रखने में मदद देते हैं । रैडक्लिफ़ ब्राउन ने सामाजिक संरचना को सबसे महत्वपूर्ण बताया और अन्य बातों—जैसे कि विचारों और अनुष्ठानों—की सामाजिक संरचना के मारफत व्याख्या की । इसलिये रैडक्लिफ़-ब्राउन और उसके शिष्य अपने को संरचनावादी (structuralists) न कि समष्टिवादी कहलाना पसन्द करते थे ।

इन विचारों का प्रयोग करते हुये रैडक्लिफ़-ब्राउन ने अनगिनती सामाजिक घटनाओं का विश्लेषण और व्याख्या करने का प्रयत्न किया । इसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें दक्षिण अफ्रीका के पितृवंशीय समाजों में मामा और भाँजे के सम्बन्ध की व्याख्या में मिलता है । इन समाजों में आदमी अपने भाँजे पर ऐसे अनुग्रह (favour) करने को तैयार हो जाता है जो वह अपने स्वयं के पुत्रों या भतीजों पर कभी नहीं करेगा । इसके अतिरिक्त, वह अपने भाँजे को इस बात की भी अनुमति देता है कि वह उसके साथ अपमानजनक ढंग से व्यवहार करे और गाली गलौज करे या उसकी सम्पत्ति से कुछ चीज़ें ले ले । पहले के मानवशास्त्रियों ने इन्हें मातृवंशीयता या मातृसत्ता के बचे हुये चिह्न बताया । परन्तु डक्लिफ़-ब्राउन ने इन्हें

पितृवंशीयता के पहलू बताया । ऐसी प्रणाली में लड़का अपने पिता और अपने पिता के सम्बन्धी अन्य पुरुषों के आधीन रहता है। वह अपनी ननसाल के पुरुषों की अधिकार-शक्ति को नहीं मानता। माँ की तरह मामा भी स्नेही और सहनशील समझा जाता है, न कि आज्ञापालन करवाने वाला। इस सहनशीलता को संस्थागत किया जाता है। परन्तु ज्येष्ठता (seniority) और वंश के सिद्धान्त में विरोध है : मामा भी उसी पीढ़ी का है जिस पीढ़ी का पिता। इस तनाव को मामा-भाँजे के बीच हँसी मजाक के सम्बन्ध का अनुष्ठानकरण (ritualize) करके दूर किया जाता है ।

इस व्याख्या के अनेक भाग हैं। पहला भाग सामाजिक संरचना के वर्तमान सिद्धान्तों से शुरू होता है जैसे ज्येष्ठता, पितृवंशीयता, और गोत्र बहिर्विवाह के कारण भिन्न वंशों में घनिष्ट पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। इस व्याख्या का दूसरा भाग यह प्रमाणित करने से सम्बन्ध रखता है कि किस प्रकार यह संरचनात्मक विशेषतायें तनाव की स्थिति उत्पन्न करती हैं जो व्यवहार के ऐसे स्वरूप उत्पन्न करती हैं जो उन तनाव को प्रकट और नियन्त्रित दोनों करती हैं। इन तनाव के प्रकटन का एक शैक्षिक मूल्य भी हैं, यह सामाजिक संरचना के मौलिक सिद्धान्तों की पुष्टि करते हैं; परन्तु यह सम्बन्धियों में तनाव को भी दूर करते हैं। **इस व्याख्या का प्रकार्यात्मक तत्व यह दिखाता है कि किस प्रकार यह रीतियां न केवल किन्हीं विशेष संरचनात्मक दशाओं से उत्पन्न होती हैं परन्तु संरचना को कायम रखने में और विशेषकर सम्पूर्ण समूह की एकता बनाये रखने में योगदान करती हैं।**

हाल में समष्टिवाद के समर्थन में महत्वपूर्ण योगदान करने वालों में अमेरिकन समाजशास्त्री **टालकट पारसन्स** (Talcott Parsons) का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। पारसन्स के अनुसार समाजशास्त्र का एक महत्वपूर्ण कार्य प्रकार्यात्मक रूप से अन्तःसम्बन्धित तत्वों की प्रणाली के रूप से समाज का विश्लेषण करना है।* पारसन्स ने मैलिनोस्की के कुछ विचारों का पैरेटो और दुरखाइम के विचारों के साथ संयोग (combination) करने का प्रयत्न किया है, अर्थात् व्यक्तित्व की आवश्यकताओं को सामाजिक प्रणाली के तत्व माना है। यह बात पेशे सम्बन्धी नियमों, विशेषकर शिष्टाचार (etiquette) के नियमों के कार्यों के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाती है। पारसन्स ने कहा कि संगठन के रूप में पेशे के लिए पेशेवर नियमों के कुछ कार्य हैं : वे पेशे में दाखिल होने की शर्तों को बताते हैं, पेशे की सीमारेखा निश्चित करते हैं और समाज के साथ पेशा करने वाले के अधिकारों और

* "For Parsons one of the central tasks of sociology is to analyze society as a system of functionally interrelated variables."

कर्त्तव्यों को बताते हैं। परन्तु, इसके अतिरिक्त, वे पेशेवर (वकील) और उसके मुवक्किल के बीच अन्त: वैयक्तिक सम्बन्धों को सरल बनाते हैं। वकील को मुवक्किल के बारे में अक्सर ऐसी सूचना प्राप्त होनी चाहिये जो कि अत्यन्त घनिष्ठ व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता है, साथ ही, वह इस सूचना को मुवक्किल के साथ अधिक घनिष्ठ हुये बग़ैर ही प्राप्त करे; शिष्टाचार के नियम दोनों के सम्बन्धों का ढाँचा इस प्रकार बनाते हैं कि वह मुवक्किल के मुकदमें में घसीटे जाने से वकील की रक्षा करता है।

पारसन्स और उनके समर्थकों ने प्रत्येक सामाजिक प्रणाली के प्रकार्यात्मक विश्लेषण का ही सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया हैं—उनके लिये हमेशा चलते रहने वाली और अन्त:सम्बन्धित सामाजिक क्रियाओं का प्रचलित कुलक (set) ही एक प्रणाली है—बल्कि सभी सामाजिक प्रणालियों (systems) के लिए अनिवार्य प्रकार्यात्मक पूर्व-शर्तें भी बतायी हैं। किसी भी ऐसीं प्रणाली के कार्य करने के लिये यह शर्तें जरूरी हैं। इनका सम्बन्ध केवल सामाजिक प्रणाली से ही नहीं है बल्कि उसके सदस्यों के व्यक्तित्व से भी है। (१) प्रत्येक सामाजिक प्रणाली को अपने सदस्यों की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति अवश्य करनी चाहिये जिससे वे जीवित रह सकें। उसके पास सदस्यों के बीच साधनों को बाँटने का कोई साधन या विधि अवश्य होना चाहिये। (२) हर प्रणाली के पास बच्चों के समाजीकरण की कोई प्रक्रिया अवश्य चाहिये जिससे कि वे किन्हीं विशेष व्यवहार-आदर्शों के अनुरूप कार्य क़रने के विशेष प्रेरक (motivations) विकसित कर सकें, या वे व्यवहार-आदर्शों के अनुरूप कार्य करने की आवश्यकता को विकसित कर सकें। (३) इसका यह अर्थ हुआ कि प्रत्येक समाज के पास विशेष व्यवहार-आदर्शों के अतिरिक्त कुछ मौलिक सामाजिक मूल्य (values) भी होना चाहिये जो उस परिधि को सीमित कर सकें जिसके भीतर व्यवहार-आदर्श विकसित हो सकते हैं। (४) प्रत्येक सामाजिक प्रणाली में क्रियाओं का एक संगठन और कुछ संस्थागत साधन अवश्य होने चाहिये जिससे पुरस्कार या दण्ड के द्वारा सदस्यों को प्रेरित किया जा सके कि वह व्यवहार-आदर्शों के अनुरूप रहें। (५) अन्त में, संस्थाओं का ढांचा ऐसा होना चाहिये कि उनमें परस्पर कोई विरोध और संघर्ष न हो।

आलोचना—यद्यपि मैलिनोस्की के तर्क काफ़ी संतोषजनक हैं फिर भी कुछ आपत्तियाँ उठायी जा सकती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ मौलिक मानव चालक (drives) या आवश्यकतायें होती हैं जिन्हें सन्तुष्ट करना आवश्यक है परन्तु वे कौन सी आवश्यकतायें हैं यह विवादास्पद है।

१. यह कहना कि कुछ विशेष सांस्कृतिक वस्तुयें इसलिए बनायी गई है

जिससे मानव आवश्यकतायें पूरी हों पुनरुक्ति है। संस्कृति की बाकी सभी वस्तुयें भी यही कार्य करती हैं।

२. यदि मनुष्यों की कुछ विशेष आवश्यकतायें हैं तो उसका यह अर्थ नहीं है कि वे सन्तुष्ट की ही जायेंगी। उदाहरण के लिये, यह कहा जा सकता है कि मनुष्यों को ऐसे तरीके की आवश्यकता है जिससे बगैर हिंसा के वे अपने सभी झगड़े निपटा सकें परन्तु उनके पास ऐसा कोइ तरीका नहीं है। प्रश्न यह है कि कैसे और क्यों मनुष्य कुछ आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के तरीके निकाल लेते हैं जब कि दूसरी आवश्यकताओं के लिये नहीं।

३. एक सी सामान्य आवश्यकताओं के होने पर एक समाज और दूसरे समाज की विशेषताओं में अन्तर क्यों होता है, इस बात का पता मैलिनोस्की के सिद्धान्त से नहीं लगता है।

४. यदि मैलिनोस्की यह बताने की कोशिश करता है कि किस प्रकार समाज और संस्कृतियाँ कार्य करते हैं तो वे सब आवश्यकतायें जिनकी वह चर्चा करता है—असली जैवकीय आवश्यकताओं को छोड़कर—स्वयं समाज के सदस्यों द्वारा सीखी जाती हैं। इसलिए किसी साँस्कृतिक वस्तु की आवश्यकता उन इच्छाओं का जहाँ फल है वहाँ कारण भी है।

५. यह कहना गलत है कि प्रत्येक साँस्कृतिक वस्तु का कोई कार्य होता है।

इस सिद्धान्त के विरुद्ध एक आपेक्ष यह है कि प्रकार्यवादी उपकल्पनाओं (hypothesis) की जाँच नहीं की जा सकती।

समष्टिवादी सिद्धान्त तुलना और सामान्यीकरण (generalization) में बाधक है। इसके अनुसार प्रत्येक साँस्कृतिक और सामाजिक वस्तु को उस पूरे समाज के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। उदाहरण के लिये, इंगलिश परिवार इंगलिश समाज और संस्कृति के संदर्भ में, और भारतीय परिवार को भारतीय समाज और संस्कृति के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। इस प्रकार प्रत्येक साँस्कृतिक वस्तु अपूर्व (unique) है।

यह सामाजिक जीवन में व्यवहार-आदर्शों को जरूरत से ज्यादा महत्व प्रदान करता है।

यह सामाजिक एकता को इतना अधिक महत्व देता है कि सामाजिक जीवन में सामाजिक संघर्ष का महत्व बिल्कुल कम हो जाता है। यह आलोचना पिछली बात से सम्बन्धित है। यदि मनुष्य अपने समाज के व्यवहार-आदर्शों और मूल्यों को स्वीकार कर लें तो कभी संघर्ष न हो। उदाहरण के लिये, मुखिया के उतराधिकारी के चुनाव से सम्बन्धित नियमों को यदि सभी लोग मान लें तो इस बात को लेकर

कभी लड़ाई न हो। ऐसा गलत है। लड़ाई हो सकती है इसलिए नहीं कि कोई इन नियमों को चुनौती देता है परन्तु मुखिया का पद प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले ऐसे अनेक व्यक्ति निकल सकते हैं जिनको वे नियम समान रूप से लागू होते हैं। वास्तव में अक्सर व्यवहार-आदर्श अस्पष्ट होते हैं।

यह सामाजिक प्रणालियों की सहयोगात्मक प्रकृति पर अत्यधिक बल देता है। इसके अनुसार सामाजिक प्रणाली के विभिन्न भागों के अन्तः सम्बन्ध मधुर होते हैं। परन्तु जैसा कि मर्टन ने कहा है सामाजिक प्रणाली की कुछ वस्तुयें कुछ समूहों के लिये या सामाजिक जीवन की कुछ बातों के लिये यदि प्रकार्यात्मक हैं तो दूसरों के लिए अकार्यात्मक (dysfunctional)। उदाहरण के लिये, यदि विभिन्न प्रजातियों की अन्दरूनी एकता उनके अल्पमत-दल के अधिकारों की रक्षा करने का कार्य करती है; परन्तु अल्पमत-दल का उनका पद विलीन होने में बाधक भी है।

यह सामाजिक परिवर्तन का कारण बताने में असमर्थ है और, यहाँ तक कि, उसको अस्वाभाविक (abnormal) बताता है।

---

३ समाज
(Society)

समाजशास्त्र को सामान्यत: 'समाज का विज्ञान' कहा जाता है। इसलिये समाजशास्त्र की परिभाषा जानने से पहले हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम 'समाज' शब्द के अर्थ जाने।

समाज से तात्पर्य साधारणतया मनुष्यों के किसी समूह से होता है जो कि अनेक सामान्य स्वार्थों के लिये—मुख्यत: आत्मरक्षा (self-maintenance) तथा आत्मविकास (self-perpetuation) के लिये—एक दूसरे को सहयोग देते हैं। 'समाज' शब्द के अर्थ लगाते समय हम निम्न बातों पर विचार करते हैं—निरन्तरता (continuity), गूढ़ सामूहिक सम्बन्ध (complex associational relationship), और मानव किस्मों–पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के सम्मिश्रण--का सम्मिश्रण। साधारणतया इसका किसी भू-भाग से भी सम्बन्ध होता है। वह मनुष्यों का उच्च-स्तर का मूल समूह होता है।

समाज सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल होता है। समाज केवल ऐसे समय पर पाया जाता है जब कि मानव प्राणी एक दूसरे के अस्तित्व को समझते हुए एक दूसरे के प्रति व्यवहार करते हैं। यहाँ पर 'सामाजिक सम्बन्ध' शब्द का अर्थ समझा देना आवश्यक है। मेज और लैम्प, और आग और धुआँ में भी सम्बन्ध होता है। इनमें से प्रत्येक वस्तु एक दूसरे की उपस्थिति से प्रभावित होतीं है, परन्तु इनका सम्बन्ध सामाजिक नहीं है। मानसिक दशा का यहाँ अभाव है। उनमें पारस्परिक चेतनता (mutual awareness) का अभाव है। इनके बिना सामाजिक सम्बन्ध सम्भव नहीं है। समाज तो उसी स्थान में पाया जाता है जहां व्यक्ति एक दूसरे की उपस्थिति को ध्यान में रखते हुये एक दूसरे के प्रति व्यवहार करते हैं।

सामाजिक सम्बन्धों में दो या अधिक व्यक्तियों की पारस्परिक जागरूकता और कुछ न कुछ सामान्य बातों का होना शामिल रहता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनमें किसी प्रकार की भिन्नता नहीं होती। वास्तव में सभी

समाजों में, यहाँ तक कि जनजातियों में भी, सदस्यों में भिन्नता पायी जाती है। स्त्री और पुरुषों के कार्यों का विभाजन, बच्चों और वयस्कों के कार्यों का विभाजन सभी समाजों में पाया जाता है जो सदस्यों के बीच भिन्नता को प्रमाणित करता हैं। अपने विकसित रूप में सामाजिक जीवन में सदस्यों के बीच आदान-प्रदान की एक प्रणाली चलती रहती है। इस प्रकार समाज में समानता, और असमानता, सहयोग और संघर्ष, एकमत्य और असहमति सभी बातें पायी जाती हैं। परन्तु समानता, सहयोग ही समाज की आधारशिला हैं।

सामाजिक सम्बन्ध ही समाज का सार है इसलिये यह सम्भव है कि पाठक यह सोचें कि मनुष्य के साथ सब प्रकार के व्यवहार चाहे वह स्थिर या अस्थिर हों, संगठित या असंगठित हों, समाज का निर्माण करते हैं। परन्तु सत्य तो यह है कि समाज के अन्दर ऐसे व्यक्तियों का ही संग्रह होता है जो सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कुछ स्थायी सम्बन्ध बनाते हैं। इस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों का दीर्घजीवी होना समाज के लिये आवश्यक है। उपरोक्त बांतों को दृष्टि में रखकर गिडिंग्स ने समाज को "एक से विचार रखने वाले ऐसे व्यक्तियों का संग्रह बतलाया जो विचारों की समानता से परिचित हैं और प्रसन्नता अनुभव करते हैं और इसीलिये सामान्य उद्देश्यों के लिये साथ कार्य करने के योग्य हैं"।

समाज कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसको मानव प्रकृति के ऊपर लाद दिया गया हो बल्कि यह सामाजिक सम्बन्धों का एक अनिवार्य जाल है। इसका अस्तित्व पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर है और मानव प्रकृति को बनाने में इसका बड़ा श्रेय है और जिसको व्यक्तियों के व्यवहार से जाना जा सकता है।

जहाँ कहीं भी जीवित वस्तुयें हैं वहाँ समाज अवश्य है। समाज, जैसा कि मेकाइवर ने कहा है, हमारे पर्यावरण से भी अधिक है; यह हमारी प्रकृति है। यह हमारे अन्दर और बाहर दोनों जगह हैं। इस सत्य को बहुत समय पूर्व अरस्तू ने प्रकट किया था जब उन्होंने कहा कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

समाज की विशेषतायें

(१) **पारस्परिक जागरूकता**—समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है परन्तु सामाजिक सम्बन्धों के लिये पारस्परिक जागरूकता आवश्यक है। समाज तो केवल ऐसी जगह में पाया जाता है जहाँ लोग एक-दूसरे की उपस्थिति से जागरूक हों और उनको दृष्टि में रखते हुये परस्पर अन्तःक्रिया करें। यदि दो व्यक्ति एक ही दिशा में किसी बाग में घूम रहे हैं परन्तु एक-दूसरे के प्रति उदासीन हैं तो एक ही स्थान में होते हुये भी वे सामाजिक सम्बन्धों को जन्म नहीं देते। परन्तु जैसे वे एक दूसरे के प्रति जागरूक हो जाते हैं और पारस्परिक अभिवादन और बातचीत करते

हैं सामाजिक सम्बन्ध का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार, समाज वास्तव में एक मानसिक घटना (phenomenon) है।

(२) **समाज का अर्थ समानता (Likeness) है**—यह समान व्यक्तियों में समान शरीर और समान मस्तिष्क वालों में पाया जाता है। इस समानता के बिना वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति में एक साथ काम नहीं कर सकते थे और किसी तरह एक साथ नहीं रह सकते थे। मित्रता और किसी भी प्रकार का साथ आपस के ज्ञान के बगैर असम्भव हो जाता है, और यह ज्ञान आपस की समानता पर निर्भर करता है।

(३) **दूसरी ओर, समाज का अर्थ है—एक दूसरे पर निर्भरता (Inter-dependence)**—हमारा सर्वप्रथम समाज, जो कि परिवार है, विभिन्न लोगों की एक दूसरे पर की जैवकीय निर्भरता (biological interdependence) पर स्थित है। पुरुष और स्त्री, दोनों एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं और एक दूसरे से पूर्णता और सहायता प्राप्त करते हैं। समाज के विस्तार के साथ ही यह सिद्धान्त भी विस्तृत होता है। पारस्परिक-निर्भरता का क्षेत्र भी बड़ा होता जाता है। आदि-वासियों के समाज में वन्यजाति (tribe) और गाँव आत्म-सीमित (self-contained) हैं। उनका बाहरी दुनियां से कोई सम्बन्ध नहीं है। आजकल केवल देश ही नहीं बल्कि महाद्वीप (continents) भी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं और जब युद्ध के कारण आवागमन को बाधा पहुँचती है तो सभी समानरूप से हानि उठाते हैं।

(४) **समाज को एक ओर सहयोग (Co-operation)** भी बतलाया गया है, जिसका अर्थ मितव्ययिता (economy) भी है। समाज युद्ध का विपरीत शब्द है। युद्ध का अर्थ है समूहों का पारस्परिक विनाश जिसका कारण विरोधी स्वार्थों का होना होता है। समाज का अर्थ विभिन्न समूहों का एक दूसरे के प्रति रचनात्मक कार्य करना (mutual constructiveness) होता है जिसका कारण सामान्य स्वार्थों का होना होता है।

(५) उपरोक्त बातों से यह ज्ञात होता है कि समाज में समानता ही मुख्य विशेषता है, परन्तु **समाज के अन्दर असमानता भी अपना महत्व रखती है**। यदि सब मनुष्य एक से होते तो उनके सामाजिक सम्बन्ध उतने ही सीमित होते जितने कि चीटियों या शहद की मक्खियों के। ऐसी दशा में पारस्परिक आदान-प्रदान भी बहुत कम होता। समाज में प्रत्येक व्यक्ति कुछ प्राप्त करता है, कुछ देता है। असमानतायें भी कई प्रकार की होती है। परिवार स्त्री और पुरुष के जैवकीय अन्तर (biological dfference) पर स्थित है। मनुष्य की रुचि, योग्यता आदि में भी प्राकृतिक अन्तर उत्पन्न होता है। विशिष्टता प्राप्त करने की प्रक्रिया में और

अधिक अन्तर उत्पन्न होता है। इन्हीं अन्तरों का परिचय हमको सामाजिक श्रम-विभाजन में मिलता है।

(६) **असमानता समानता के आधीन है**—यद्यपि प्रत्येक समाज में समानता और असमानता दोनों ही पायी जाती हैं परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि समानता का महत्व असमानता की अपेक्षा कहीं अधिक है। समाज के सदस्य भिन्न स्वभाव, रुचियों आदि को लेकर जन्म लेते हैं परन्तु चाहे वह परिवार हो या व्यवसाय या कोई अन्य समूह उन्हें सामान्य उद्देश्यों को प्राथमिकता देनी होती है। यदि हम श्रम-विभाजन का उदाहरण लें तो हमें मालूम होगा कि सब असमानताओं के बावजूद व्यक्तियों में बेहद समानता मिलती है, उनका उद्देश्य सामान्य होता है और सबसे अधिक महत्व रखता है। पति पत्नी अपनी साँस्कृतिक पृष्ठभूमि, स्वभाव और रुचियों की असमानता के बावजूद बच्चों के सुख, शिक्षा को दृष्टि में रखकर ही व्यवहार करते हैं।

(७) **संघर्ष**—सहयोग के साथ संघर्ष (conflict) भी समाज का एक आवश्यक तत्व है। किन्ही उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मनुष्य एक दूसरे का विरोध करते हैं। आज के गूढ़ समाज में प्रतियोगिता संघर्ष का सबसे विस्तृत रूप है। धन, पद और आदर की प्राप्ति के लिए समाज के सदस्यों में परस्पर प्रतियोगिता होती है।

(८) **समाज अमूर्त है**—समाज से हमारा अभिप्राय सामाजिक सम्बन्धों के जाल से, न कि मनुष्यों से है, इसलिये वह अमूर्त होता है। प्रत्येक व्यक्ति के समाज में अनेक पद और कार्य होते हैं। इसके अनुसार उसके अधिकतर सम्बन्ध बनते हैं। गूढ़ समाजों में व्यक्ति अनगिनती व्यक्तियों के साथ अनगिनती प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध बनाता है। इन सब सम्बन्धों के जाल को, न कि सम्बन्धों में प्रविष्ट होने वाले व्यक्तियों को, समाज कहा जाता है। सम्बन्धों को छुआ नहीं जा सकता, केवल अनुभव किया जाता है, इसलिये समाज अमूर्त है। इसी बात को दृष्टि में रखते हुये राइट ने कहा है: "समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है। यह समूह के सदस्यों के बीच स्थापित सम्बन्धों की एक व्यवस्था है।"*

(९) **समाज केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है**—जिस प्रकार मनुष्यों में समाज पाया जाता है उसी प्रकार पशु आदि भी समाज में रहते हैं। चींटियों, मधुमक्खियों, दीमकों, बन्दरों, हाथियों आदि में भी समाज पाया जाता है। उनके परस्पर सम्बन्ध सुव्यवस्थित होते हैं। वास्तव में जहाँ कहीं भी जागरूक सामाजिक

* "Though society is a real thing, it means in essence a state or condition, a relationship, and is, therefore, necessarily an abstraction." Wright, Elements of Sociology.

सम्बन्ध होते हैं वहीं समाज बन जाता है चाहे वह पशुओं में हो या मनुष्यों में। उदाहरण के लिए, हाथियों के बीच यौन सम्बन्ध सुव्यवस्थित होता है। नेता हाथी जिस हाथिनी के साथ सम्भोग करता है अन्य हाथी उससे सम्भोग नहीं कर सकते। वह सदैव नेता हाथी के ही साथ चलती है। यह संगठित जीवन का द्योतक है जो समाज की विशेषता है।

(१०) **समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है**—जैसा कि हम शुरू में कह चुके हैं समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। समाज के निर्माण के लिये यह आवश्यक है कि समाज में व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों की एक निश्चित व्याख्या के आधार पर एक दूसरे से सम्बद्ध हों। समाज में प्रत्येक व्यक्ति के अनेक पद होते हैं—वह यदि किसी का पुत्र हैं तो किसी का पिता भी है, वह पति भी है, भाई भी है, भतीजा, भाँजा, मित्र, पड़ोसी, सहकर्त्ता, अफसर आदि भी है। इन्हीं के आधार पर अन्य व्यक्तियों के साथ उसके अनेक सम्बन्ध बनते हैं। इन्हीं सम्बन्धों के जाल को ही हम समाज कहते हैं। सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था ही समाज की सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता है।

समाज की परिभाषायें (Definitions of Society)

१—गिडिंग्स ने समाज की इस प्रकार की परिभाषा दी है; "समाज स्वयं संघ है, एक संगठन है, सम्बन्धों का एक जोड़ हैं, जिसमें सहयोगी व्यक्ति एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।"**

२—राइट ने समाज की दूसरे ही प्रकार से परिभाषा दी है। उनके विचार में "समाज मनुष्यों का एक समूह नहीं है। यह सम्बन्धों का एक नियम है जो कि समूहों के व्यक्तियों के बीच पाया जाता है।"‡

३—मेकाइवर के अनुसार, "समाज नीतियों और विधि व्यवहारों का, शक्ति और पारस्परिक सहायता का, बहुत से समूहों और विभागों का, मानव व्यवहार के नियंत्रण और स्वतन्त्रता का नियम है।"†

** "Society is the union itself, the organization, the sum of formal relations, in which associating individuals are bound together." Giddings, Principles of Sociology,

‡ "It is not a group of people, it is the system of relationship that exists between the individuals of the group." Wright, Elements of Sociology.

† "Society is a system of usages and procedures, of authority and mutual aid, of many groupings and divisions, of control of human behaviour and of liberties."
—Mac Iver, R. M., and Page, C. H. Society, P. 5.

मैकाइवर की उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समाज सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल है और इसमे रीति-रिवाज और कार्य विधियों, अधिकारशक्ति और पारस्परिक सहायता, अनेक समूहों और विभाजनों, मानव व्यवहार के नियंत्रण और स्वतंत्रता की प्रणाली का बोध होता है। हमारे लिये उचित होगा कि हम समाज के इन तत्वों पर संक्षेप में विचार कर लें।

(१) समाज रीति-रिवाज की एक प्रणाली है : प्रत्येक समाज में खान-पान, वेश-भूषा, विवाह, व्यवसाय, आदर, पद आदि से सम्बन्धित अनेक रीति-रिवाज होते हैं। हमारे समाज में अभिवादन करने की रीति अन्य समाजों से भिन्न है। इसी प्रकार, तीज, त्योहार आदि के मामले में हम अन्य समाजों से भिन्न हैं।

(२) यह कार्य-विधियों की एक प्रणाली है : कार्य-विधि से मैकाइवर का तात्पर्य संस्थाओं से है। मनुष्यों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ है। इस प्रकार, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक संस्थाओं का विकास हुआ है! उदाहरण के लिए, बैंक, स्कूल, विवाह, राज्य, चर्च आदि संस्थाओं का जन्म हुआ है। जो समाज जितना अधिक जटिल होता है उतनी ही अधिक संस्थायें उसमें होती हैं।

(३) यह अधिकार-शक्ति की एक प्रणाली है : प्रत्येक समाज में भिन्न स्थितियों में अधिकार-शक्ति भिन्न व्यक्तियों के हाथ में रहती है। मानव सम्बन्धों के संदर्भ में अधिकार-शक्ति का विशेष महत्व है। हम किसी परिवार के, स्कूल कॉलेज के, अनेक समितियों, दफ्तरों, आदि के सदस्य होते हैं। सदस्यों के सम्बन्धों और कार्यों का नियमन करने के लिए अधिकार-शक्ति किन्हीं विशेष व्यक्तियों के हाथ में रखी जाती है।

(४) यह पारस्परिक सहायता की एक प्रणाली है : सब प्राणियों में मानव शिशु सबसे अधिक असहाय होता है। बिना वयस्क लोगों की सहायता के उसका जीवित रहना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार, वयस्कों को भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर करना पड़ता है। चाहे वह शिक्षा हो, नौकरी हो, विवाह हो, व्यक्ति एक दूसरे की सहायता के बग़ैर कुछ नहीं कर सकता।

(५) यह अनेक समूहों और विभाजनों की एक प्रणाली है : प्रत्येक समाज के अन्दर अनेक समूह होते हैं अर्थात् प्रत्येक विशाल समाज अनेक समूहों में विभाजित होता है। इसमें परिवार, पड़ोस, क्रीड़ा समूह, प्रजातीय समूह, जाति, वर्ग, धार्मिक समूह आदि होते हैं। आयु और योनि के आधार पर समाज का विभाजन एक सार्वभौमिक तथ्य है।

(६) यह मानव व्यवहार के नियंत्रण की एक प्रणाली है : प्रत्येक समाज

में सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करने की एक प्रणाली होती है। समाज में प्रथायें, कानून, धर्म शिक्षा आदि व्यक्तियों के व्यवहारों पर नियंत्रण रखती है। प्रशंसा और दण्ड समाज के नियमों के अनुसार कार्य करने के लिये प्रेरित करते हैं।

(७) यह स्वतंत्रता की एक प्रणाली है: सामाजिक नियंत्रण के साथ ही व्यक्तियों को स्वतंत्रता भी रहती है। विचारने, बोलने, कार्य करने, व्यवसाय और जीवन-साथी चुनने, धर्म और राजनीति के मामलों में प्रत्येक समाज में कम या अधिक स्वतंत्रता व्यक्तियों को रहती है।

समाज के संरचना सम्बन्धी तत्व

अनेक लेखकों ने समाज की संरचना के तत्वों की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। इन सब लेखकों द्वारा बताये गये तत्वों में निम्न प्रमुख है :—

(i) **सामाजिक मूल्य (social values)** :—समाज में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जिन्हें समाज मूल्यवान या महत्वपूर्ण समझता है और जिनका पालन करना समाज के अस्तित्व के लिये भी आवश्यक समझा जाता है। उदाहरण के लिये, एक विवाह प्रथा, पतिव्रता होना, देश भक्ति, कन्याओं का कौमार्य आदि सामाजिक मूल्य हैं।

(ii) **समितियाँ (associations)**—अपने कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिये व्यक्ति कुछ समितियों का निर्माण करते हैं। यह स्थाई समूह होते हैं और इनकी सदस्यता भी अस्थाई होती है। इच्छा के अनुसार व्यक्ति कभी भी इन्हें छोड़ सकता है।

(iii) संस्थायें (**institutions**)—यह मनुष्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के समाज द्वारा स्वीकृत नियम या तरीक़े या साधन होते हैं। उदाहरण के लिये, विवाह यौन इच्छा की पूर्ति का समाज द्वारा स्वीकृत साधन हैं और बैंक आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है। यह सामाजिक नियंत्रण के भी साधन होती हैं।

(iv) **सामाजिक क्रियायें (social actions)**—समाज का निर्माण व्यक्तियों की परस्पर अन्त:क्रियाओं के द्वारा होता है। जब व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को ध्यान में रखकर कोई क्रिया करता है अथवा क्रिया करने से अपने को रोकता है तो वह सामाजिक क्रिया होती है।

(v) **पद (status)**—समाज की रचना में पद अपना विशिष्ट स्थान रखता हैं। समाज में प्रत्येक समूह का अपना एक पद होता है और प्रत्येक व्यक्ति का अपने समूह में एक पद होता है। वह पद व्यक्ति को प्रतिष्ठा, शक्ति प्रदान करते हैं। इन्हीं पदों के अनुसार व्यक्ति समाज में व्यवहार करता है।

(vi) **भूमिका या कार्य (role)**—प्रत्येक पद के साथ कुछ भूमिकायें जुड़ी होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने पद के अनुरूप समाज में कुछ भूमिकायें अदा करता है। पिता के पद के साथ, उदाहरण के लिये, परिवार के अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की भूमिका भी जुड़ी रहती है।

(vii) **आर्थिक व्यवस्था (economy)**—सामाजिक जीवन में आर्थिक व्यवस्था विशेष महत्व रखती है। बग़ैर किसी प्रकार की आर्थिक व्यवस्था के समाज का अस्तित्व ख़तरे में पड़ जायेगा। पहले परिवार ही आर्थिक व्यवस्था की एक मात्र कड़ी थी। अब सम्पूर्ण विशाल समाज इसे प्रभावित करता है।

(viii) **ऐकमत्य (consensus)**—समाज के अस्तित्व के लिये यह भी आवश्यक है कि सदस्यों के मत एक से हों, कम से कम महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में। आजकल ऐकमत्य से तात्पर्य सामान्यतः यह लगाया जाता है कि समाज के नेताओं के बीच ऐकत्य होना चाहिये।

(ix) **सम्बन्ध (relationship)**—सामाजिक सम्बन्धों के जाल को ही समाज कहते हैं। समाज के लिये आवश्यक है कि सदस्य आपस में सामाजिक सम्बन्ध बनायें और उनके अनुरूप व्यवहार करें। प्रत्येक व्यक्ति अनेक व्यक्तियों से सम्बन्धित होता है और यह सम्बन्ध विभिन्न रूप के होते हैं।

(x) **रूढ़ियाँ और लोक रीतियाँ (mores and folkways)**—समाज को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिये आवश्यक है कि सदस्यों के व्यवहार में एकरूपता (uniformity) हो। इस कार्य में रूढ़ियाँ और लोकरीतियाँ मदद करती हैं और इसीलिये यह सामाजिक नियंत्रण में विशेष महत्वपूर्ण हैं।

समाज के प्रमुख कार्य

समाज अनेक महत्वपूर्ण कार्य करता है। उनमें कुछ प्रमुख निम्न हैं :—

(i) **यह संस्थाओं का पोषक है** :—प्रत्येक समाज में अनेक संस्थायें पायी जाती हैं जिनका उद्देश्य व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। समाज सदस्यों के हितों को ध्यान में रखकर इन संस्थाओं की रक्षा करता है।

(ii) **एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक का वाहक** :—समाज अपने समूहों और संस्थाओं के द्वारा अपनी संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है जिससे वह सदा बनी रहती है। यही कारण है कि हम बहुत से काम वैसे ही करते हैं जो हमारे पूर्वज करते थे।

(iii) **सामान्य भावना का प्रतीक** :—यह व्यक्तियों की सार्वभौमिक और सामान्य भावनाओं का प्रतीक है। समाज के रहन-सहन का अध्ययन करके हम व्यक्तियों की भावनाओं और मनोवृत्तियों के बारे में धारणा बना सकते हैं।

(iv) **यह सामूहिक क्रिया का साधन है** :—समाज में व्यक्तियों की कुछ सामान्य इच्छायें, उद्देश्य या लक्ष्य हो सकती हैं जिन्हें सम्पूर्ण समाज ही पूरा कर सकता है, उदाहरण के लिये, बाहरी शत्रु से रक्षा व्यक्ति अकेले-अकेले रहकर नहीं कर सकते। ऐसी स्थितियों में समाज एक संगठन के रूप में सामूहिक क्रिया का साधन बन जाता है।

समाजों की विशेषतायें : (एक समाज)

हममें से प्रत्येक व्यक्ति को 'भारतीय समाज' शब्द के अर्थ का थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य होगा। "एक समाज" एक समूह है जिसकी कुछ विशेषतायें होती हैं। जॉनसन ने किसी समाज (एक समाज) की चार विशेषतायें बताई हैं : (१) निश्चित भौगोलिक क्षेत्र, (२) सन्तानोत्पत्ति, (३) व्यापक संस्कृति, और (४) स्वाधीनता।

(१) **निश्चित भौगोलिक क्षेत्र**—एक समाज एक क्षेत्रीय समूह होता है। कुछ खानाबदोश समाज एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र के अन्दर ही एक स्थान को आबाद करते रहते हैं परन्तु उस सम्पूर्ण क्षेत्र को अपना देश समझते हैं। वैसे यह सत्य है कि समाजों के अन्दर क्षेत्रीय समूह होते हैं जैसे गोत्र (clan), पड़ोस, और राजनीतिक इकाइयाँ जैसे नगर और प्रदेश।

(२) **सन्तानोत्पत्ति**—किसी समाज के सदस्य विशेषकर उसी समूह के अन्दर सन्तानोत्पत्ति के द्वारा भर्ती किये जाते हैं। अनेक समाज दत्तक प्रथा (adoption), गुलामी, विजय प्राप्ति, या देशान्तर के द्वारा भी सदस्य बनाते हैं परन्तु नये सदस्यों की भर्ती के लिए समूह के भीतर सन्तानोत्पत्ति ही इसका मौलिक साधन है।

(३) **व्यापक संस्कृति**—प्रत्येक समाज की एक सस्कृति होती है। यह इस अर्थ में व्यापक होती है कि साँस्कृतिक रूप से प्रत्येक समूह आत्म-पर्याप्त होता है। एक समाज अन्य समाजों से व्यापार कर सकता है परन्तु उस व्यापार से सम्बन्धित सांस्कृतिक प्रतिमान (patterns) उस समाज की संस्कृति के अङ्ग हैं। उदाहरण के लिये, उधार देने के प्रतिमान, मूल्य का भुगतान करने के साधन, संविदा (contracts) के ढंग प्रत्येक समूह की संस्कृति के अङ्ग हैं। वास्तव में सामाजिक जीवन की सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने के कारण संस्कृति को व्यापक या सर्वतोन्मुखी (comprehensive) कहा जाता है। कोई भी सदस्य अपने समूह की सम्पूर्ण संस्कृति को ग्रहण नहीं कर सकता। प्रत्येक सदस्य को अपने समूह की संस्कृति का इतना ज्ञान अवश्य होना चाहिये कि वह अन्य सदस्यों से अन्तःक्रिया कर सके।

(४) **स्वाधीनता**—किसी समाज की एक विशेषता यह है कि वह किसी अन्य समूह का उपसमूह नहीं होता। दूसरे देशों के अधीन देश भी समाज बने रहते हैं। ब्रिटिश शासन काल में भी भारत एक समाज था।

अब प्रश्न उठता है कि क्या संयुक्त राष्ट्र एक समाज है ? नहीं । वह तो विभिन्न राज्यों रूपी राजनीतिक इकाइयों का एक संगठन है । एक राज्य किसी समाज का केवल एक पहलू होता है, न कि स्वयं समाज होता है । इसी प्रकार, विभिन्न राज्यों का संगठन संयुक्त राष्ट्र भी स्वयं समाज नहीं है । भारतीय नागरिक जिस प्रकार अपने को भारतीय समाज का अङ्ग समझते हैं, उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र का अङ्ग नहीं समझते । संयुक्त राष्ट्र में वाद-विवाद में भाग लेने वाले लोग विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में ऐसा करते हैं ।

ऊपर हमने 'एक समाज' (a society) की चार विशेषताओं का वर्णन किया है । इससे पहले हम 'समाज' की सामाजिक सम्बन्धों के एक जाल के रूप में व्याख्या कर चुके हैं । अब हम 'समाज' और 'एक समाज' में भेद करेंगे ।

'समाज' और 'एक समाज' में अन्तर (Difference between 'society' nd 'a society')—समाज सार्वभौमिक (universal) और विस्तृत (pervasive) है और उसकी कोई निश्चित सीमा नहीं है । समाज सामाजिक सम्बन्धों का प्रतीक अथवा जाल है । एक समाज से तात्पर्य व्यक्तियों के एक समूह से है जो कि कुछ सम्बन्धों अथवा व्यवहार के ढंगों से संयुक्त होते हैं और जिसके कारण वे उन व्यक्तियों से पृथक हैं जो कि इन सम्बन्धों से संयुक्त नहीं हैं अथवा व्यवहार में भिन्न हैं । 'एक समाज' से मनुष्यों के एक विशेष समूह का बोध होता है जिनके रहने और व्यवहार करने के नियम होते हैं । इस प्रकार, समाज अमूर्त दिखलाई पड़ता है जब कि 'एक समाज' मूर्त है ।

४ समाजशास्त्र का विकास (Development of Sociology)

अपनी जीवन क्रियाओं को करते रहने में मनुष्य दो किस्म की बातों या घटनाओं (phenomena) का सामना करता है जिन्हें वह समझने और नियंत्रण में रखने की कोशिश करता है—भौतिक (Physical) और सामाजिक। एक ओर प्रकृति की सुदूर, अव्यक्तिगत शक्तियाँ होती हैं और दूसरी ओर अधिक व्यक्तिगत, निकट परन्तु आश्चर्य में डालने वाली सामाजिक शक्तियाँ होती हैं जो मानव व्यवहार को शासित और नियंत्रित करती हैं।

भौतिक और सामाजिक घटनाओं पर पूर्व-वैज्ञानिक विचार (Prescientific view of physical and social phenomena)

मानव इतिहास में हमेशा ही मनुष्य ने इन शक्तियों को समझने का प्रयत्न किया है क्योंकि वह यह अनुभव करता था कि उनको समझने पर ही अपने अस्तित्व का सफल संघर्ष और उसका कल्याण निर्भर करता था। जिस ढंग से उसने शुरू में इनके बारे में जानकारी पाने की कोशिश की उससे वास्तविक जानकारी प्राप्त करना सम्भव नहीं था क्योंकि उसने सत्य की खोज करने की अपेक्षा मनगढ़न्त, काल्पनिक बातों का सहारा लिया। कुछ समय बाद मनुष्य ने अपने जीवन को गढ़ने वाली शक्तियों को सावधानीपूर्वक और क्रमबद्ध ढंग से (systematically) अवलोकन करना सीखा जिसके बाद वह ऐसे बिन्दु पर पहुँच गया जब वह अपने चारों ओर घटित होने वाली घटनाओं के बारे में वैज्ञानिक विश्लेषण करने और सामान्यीकरण (generalize) करने योग्य और उनके बारे में अधिक अच्छी जानकारी प्राप्त करने योग्य हो गया।

इन दो प्रकार की घटनाओं को समझने के लिए किये गये मनुष्यों के प्रयत्नों की तुलना करके हमें पता लगता है कि अपने पर्यावरण के भौतिक पहलू के बारे में उसकी जानकारी में प्रगति पहले और अधिक पूर्ण हुई। जहाँ तक सामाजिक

शक्तियों का प्रश्न है, हाल के कुछ वर्षों से पहले कुछ विशेष प्रगति नहीं हुई थी। बाद में मानव सम्बन्धों का अध्ययन करने वाले सामाजिक विज्ञानों का विकास होने पर ही सामाजिक शक्तियों को समझना सम्भव हो सका।

भौतिक विज्ञानों की तरह सामाजिक विज्ञानों ने भी शुरू में अन्दाज और मनमाने अवलोकन का प्रयोग किया जिसके फलस्वरूप सामाजिक शक्तियों के बारे में लोगों के बड़े विचित्र विचार हुये। फिर भी, जहाँ भौतिक विज्ञानों ने अन्दाज लगाना बन्द कर दिया है, सामाजिक विज्ञानों में यह कार्य अब भी जारी है।

प्रश्न उठता है कि जिन दो पर्यावरण--भौतिक और सामाजिक—में मनुष्य रहता है उनके बारे में जानकारी प्राप्त करने में क्यों इतना अंतर हुआ? इसक उत्तर यह है कि भौतिक घटनाओं को अधिक अच्छी तरह से देखा और नियंत्रित किया जा सकता है और इसका अध्ययन अव्यक्तिगत ढंग से किया जाता है। सामाजिक घटनाओं की अपेक्षा भौतिक बातें सामान्यतः अधिक मूर्त होती हैं और इसलिए उनको अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भौतिक घटनाओं का अवलोकन करने के प्रयत्न में मनुष्य ने बहुत पहले ही अपने को लगाव से मुक्त कर लिया, परन्तु सामाजिक घटनाओं के मामले में वह ऐसा न कर सका। सामाजिक बातों के अध्ययन में वह अध्ययन वस्तु से अपने को घनिष्ट रूप से सम्बन्धित पाता था, स्वयं गहरे ढंग से उसमें शामिल था जिससे वह वैषयिकता (objectivity) प्राप्त न कर सका जो सभी विज्ञानों के लिये अनिवार्य है।

फिर भी, प्राचीन समय में ही मनुष्य ने अपने सामाजिक पर्यावरण पर विचार करना और उससे उत्पन्न समस्याओं को समझने का प्रयास शुरू कर दिया था। मध्ययुग, और आधुनिक युग के प्रथम चरण में सामाजिक घटनाओं का उसका अवलोकन (observation) और विश्लेषण (analysis) पूर्णतः अन्दाज (speculation) पर ही आधारित रहे। यदि मानव समाज की प्रकृति के बारे में प्राप्त वर्तमान ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो पहले के विचार गलत और मूर्खतापूर्ण मालूम होते हैं।

मानव सम्बन्धों के बारे में सभ्य मनुष्यों के द्वारा किये गये अवलोकनों के फल हमें जुबानी और लिखित अभिलेखों (records), कहावतों, धार्मिक पुस्तकों, और प्राचीन ऋषियों द्वारा लिखित पुस्तकों में मिलते हैं। इन सब पुस्तकों से यही पता लगता है कि अपने सामाजिक पर्यावरण और उसको प्रभावित करने वाली शक्तियों को समझने के मनुष्य के प्रयास अन्दाज पर आधारित थे। अधिक से अधिक वे गम्भीर चिन्तन (reflection) का फल थे। यद्यपि उनमें से कुछ में काफी सत्य की झलक मिलती है परन्तु उनसे जीवन को सही निदेशन नहीं प्राप्त होता। आज हम जानते हैं कि मानव सम्बन्धों के आधाररूप नियमों का वास्तविक

ज्ञान प्राप्त करने के लिये, जिसके द्वारा ही केवल हम उनसे उत्पन्न समस्याओं का हल कर सकते हैं, हमें उनके अध्ययन में उन्हीं पद्धतियों (methods) का प्रयोग करना आवश्यक है जिनका प्रयोग प्राकृतिक विज्ञानों में होता है।

सामाजिक विज्ञान का अभ्युदय
(The Emergence of Social Science)

वैज्ञानिक अवलोकन और विश्लेषण के प्रयोग करने के मनुष्य के प्रयत्नों के फलस्वरूप सामाजिक विज्ञानों का अभ्युदय हुआ। शुरू में और बहुत लम्बे अर्से तक एक अकेला सामाजिक विज्ञान मनुष्य की सभी क्रियाओं का अध्ययन करता था चाहे यह क्रियायें जीवन के आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक पहलू से सम्बन्धित हों। इस सामाजिक विज्ञान को दर्शनशास्त्र (Philosophy) कहते थे। काफी समय के बाद इस समाज के विज्ञान को अनेक सामाजिक विज्ञानों में विभाजित किया गया। इनमें से प्रत्येक भाग सामाजिक जीवन के एक विशेष पहलू में विशेषीकरण प्राप्त करता था। इनमें से अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, साँस्कृतिक मानवशास्त्र, और समाजशास्त्र विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। मोटे तौर पर यद्यपि यह सभी सामाजिक विज्ञान सामाजिक घटनाओं (phenomena) का अध्ययन करते हैं और इसलिये अन्त:सम्बन्धित और काफी हद तक अन्त:निर्भर हैं, वर्तमान काल में इनमें से प्रत्येक मानव व्यवहार के किसी एक विशेष पहलू पर ध्यान केन्द्रित करता है और उसके अध्ययन में विशेषीकरण प्राप्त करता है। इस प्रकार, अर्थशास्त्र मुख्यत: उन क्रियाओं के विश्लेषण में रुचि रखता है जिनका जीवित रहने के लिये, भौतिक पदार्थों को प्राप्त करने के लिये, मनुष्य के प्रयासों से सम्बन्ध है। राजनीतिशास्त्र उन क्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित करता है जिनके द्वारा व्यक्ति उन सुरक्षाओं और नियमों को प्राप्त करता है जो सरकार या राज्य प्रदान करते हैं। दूसरी ओर समाजशास्त्र उन सम्बन्धों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखता है जो निश्चय रूप से सामाजिक हैं। परन्तु व्यापक अर्थ में, समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञानों के सभी क्षेत्र में रुचि रखता है और सभी सामूहिक घटनाओं का अध्ययन अपनी पद्धतियों और सिद्धान्तों द्वारा करने का प्रयत्न करता है।

समाजशास्त्र का प्रारम्भ
(The Beginnings of Sociology)

उन्नीसवीं सदी के मध्य से पहले समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में, विशेषकर अध्ययन के एक अलग क्षेत्र के रूप में, स्वीकार नहीं किया जाता था। अन्य विज्ञानों की तरह, इसके आविर्भाव से पहले भी मानव सम्बन्धों और व्यवहार की व्याख्या करने के अनेक प्रयत्न किये गये जिनमें शायद ही किसी को सही माने में

वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता हो। 'सामाजिक विचार' प्राचीनकाल में भी पाया जाता था परन्तु कभी-कभार ही क्रमबद्ध (systematic) ढंग से विचारने और विश्लेषण पर आधारित होता था; वह मुख्यतः अन्दाज पर ही आधारित था। वास्तव में, सामाजिक जीवन की प्रकृति को समझने के इस प्रयत्न ने ही सम्भवतः समाज के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के रूप में विकसित होने के लिए समाज-शास्त्र के लिये पृष्ठभूमि तैयार की।

जहाँ तक पाश्चात्य सभ्यता का सम्बन्ध है, सामाजिक जीवन के बारे में क्रम-बद्ध विचार करने के सबसे पहले प्रयत्न प्राचीन ग्रीक दर्शनशास्त्रियों ने किये, विशेष-कर प्लेटो (427-347 B.c.) और अरस्तू (384-322 B.c.) ने। प्लेटो ने अपनी 'The Republic' नामक पुस्तक में समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध पर विचार प्रकट किये। प्लेटो ने कहा कि व्यक्ति ठीक उसी प्रकार से व्यवहार करता है जैसा समाज उसे सिखाता है। मानव-व्यवहार उस समाज की देन है जिसमें व्यक्ति का जन्म और पालन-पोषण होता है। जो प्रशिक्षण व्यक्ति समाज में प्राप्त करता है वह उसके व्यक्तित्व को ढालता है। प्लेटो ने यह भी कहा है कि जन्म से ही व्यक्तियों के सीखने की क्षमता भिन्न-भिन्न होती है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इसलिए सामाजिक एकता होने के बावजूद भी व्यक्तिगत भिन्नतायें हमेशा बनी रहेंगी। सामाजिक जीवन में कार्यों का विभाजन व्यक्तियों की इन भिन्नताओं के आधार पर होने चाहिये। यह स्वाभाविक है कि व्यक्तिगत भिन्नता के कारण हर काम को सब व्यक्ति अच्छी तरह से नहीं कर सकते। इसलिए प्लेटो ने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्य-सामर्थ्य के अनुसार ही कार्य करना चाहिये क्योंकि समाज सबका और सबके लिये है। यद्यपि प्लेटो एक दार्शनिक था परन्तु समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध पर व्यक्त किये गये उसके विचारों का आगे समाजशास्त्र पर विशेष प्रभाव पड़ा।

प्लेटो ने यह भी कहा कि समाज की तुलना एक शरीर से की जा सकती है। समाज के सदस्य उसके अंग हैं। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और उनमें अन्तःनिरर्भता होती है, उसी प्रकार समाज के सदस्य व्यक्तियों में भी परस्पर सम्बन्ध होते हैं और वे एक दूसरे की सहायता के द्वारा ही अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। इसी अर्थ में वह एक सामाजिक प्राणी है।

अरस्तू प्लेटो का शिष्य था परन्तु उसके विचार व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध में ठीक विपरीत थे। जहाँ प्लेटो ने मानव-व्यवहार को समाज की देन बताया है, अरस्तू ने समाज की प्रकृति को व्यक्ति के स्वभाव पर निर्भर बताया। अरस्तू के विचार में, क्योंकि व्यक्ति का स्वभाव नहीं बदला जा सकता इसलिये

समाज को भी बदला नहीं जा सकता। मनुष्य एक राजनैतिक प्राणी है जो स्वभाव से ही दूसरों के साथ रहना पसन्द करता है। इस कारण सुखी मनुष्य भी दूसरों के साथ रहता है। अरस्तू ने कहा है कि जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ मिल-जुल कर रहना आवश्यक नहीं समझता वह या तो पशु है या भगवान्।

अरस्तू ने परिवार के महत्व पर भी प्रकाश डाला और उसे राज्य से पहले स्थान दिया। मानव के अस्तित्व को बनाये रखने में पारिवारिक जीवन प्रकृति की प्रणाली है और उसका विकास व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये हुआ है। परिवारों के संग्रह को ही अरस्तू ने समुदाय कहा और परिवार के सामाजिक जीवन की एक इकाई माना।

प्लेटो और अरस्तू के प्रयत्न केवल गम्भीर चिन्तन मात्र थे। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि उनके गवेषणा (investigation) करने का ढंग वास्तव में तर्कपूर्ण अनुमान था यद्यपि सभी क्रमबद्ध चिन्तन के लिए तर्क आवश्यक है, परन्तु केवल इसके द्वारा ही वास्तविकता का पता नहीं लगाया जा सकता। इसका फल यह हुआ कि अधिकतर प्राचीन ऋषियों द्वारा मेहनत से की गई गवेषणायें एक आदर्श राज्य की रूपरेखा ही बना पायीं जहाँ सदा शान्ति और न्याय कायम रहत हैं। यह कोरी कल्पना ही रही। प्लेटो की अपेक्षा अरस्तू ने कहीं यथार्थवादी ढंग से सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने का प्रयत्न किया परन्तु वह भी केवल आदर्श सामाजिक व्यवस्था के लिये आवश्यक शर्तों की ही रूपरेखा खींच सका। इसके अतिरिक्त, जिस आदर्श सामाजिक व्यवस्था की इन दोनों लेखकों ने चर्चा की वह मुख्यतः उस समाज का आदर्श रूप प्रस्तुत करता था जिसमें वे दोनों रहते थे।

पूर्व-वैज्ञानिक किस्म के सामाजिक विचार में प्लेटो अरस्तू के समय से लेकर आधुनिक काल के प्रारम्भ तक बहुत साधारण प्रगति हुई। मध्ययुग में जो कुछ भी क्रमबद्ध विचार प्रकट हुए वह चर्च के उपदेश थे जो इस संसार में मनुष्य के स्थान के बारे में आध्यात्मिक अनुमान (metaphysical speculations) थे।

अरस्तू के बाद लुक्रेटियस, सिसरो, मारकस ऑरेलियस, सेन्ट ऑगस्टाइन आदि ने सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने का प्रयत्न किया। इन दार्शनिकों ने प्रथाओं, पारिवारिक जीवन, अपराध, दण्ड, भौगोलिक दशाओं का व्यक्ति तथा समाज पर प्रभाव आदि अनेक विषयों का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया और उनके सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये।

तेरहवीं शताब्दी तक पूर्व-वैज्ञानिक ढंग से सामाजिक घटनाओं का अध्ययन चलता रहा। धीरे-धीरे इस विश्वास में कमी आने लगी कि भगवान् ही समस्त घटनाओं के लिये उत्तरदायी है। अब सामाजिक घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्ध को

सामाजिक प्रक्रियाओं में भी तार्किक आधारों पर ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जाने लगा। थॉमस एक्विनस और दान्ते आदि दार्शनिकों ने इस बात को स्वीकार किया कि समाज या सामाजिक जीवन अस्थिर होता है। इन परिवर्तनों का कारण कुछ निश्चित नियम और कुछ निश्चित सामाजिक और प्राकृतिक शक्ति को माना जाने लगा।

पन्द्रहवीं शताब्दी में सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिक विधि के प्रयोग की शुरूआत हुई और प्राकृतिक विज्ञान को दर्शनशास्त्र से अलग कर दिया गया। अब यह अनुभव किया जाने लगा कि जटिल घटनाओं को समझने के लिये उनके विभिन्न पहलुओं का अलग अध्ययन किया जाना चाहिये। इसके फलस्वरूप अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों की उत्पत्ति हुई। वास्तव में इन सब दार्शनिकों द्वारा अध्ययन कल्पना और अनुमान पर अधिक आधारित था।

सोलहवीं शताब्दी में ही पहली बार कुछ ऐसे लेखक हुए जिन्होंने अधिक यथार्थवादी स्तर पर जीवन की समस्याओं पर विचार किया। इनमें से इटैलियन विद्वान मैकियावेली (Machiaveli) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने सन् १५१३ में प्रकाशित अपनी The Prince नामक पुस्तक में राज्य और राज्य-प्रबन्ध पर वैषयिक दृष्टि से विचार करने का प्रयत्न किया। इस पुस्तक में राज्य के सफल शासक के लिए आवश्यक सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया। इस काल में दूसरे विख्यात लेखक सर थॉमस मोर हुए। मोर ने ऐसे आदर्श राज्य का चित्र खींचा जहाँ किसी भी प्रकार की कोई समस्या न हो और पूर्ण न्याय हो। यह आदर्श समाज सामाजिक जीवन में प्राकृतिक नियमों का प्रयोग करके सम्भव बनाया जा सकता था।

सामाजिक शक्तियों का वैषयिक विश्लेषण (objective analysis) करने का प्रयत्न हमें इटैलियन लेखक विको (Vico) और फ्रांसीसी विद्वान माँटेस्की (Montesquieu) के लेखों में मिलता है। राजनीतिक दर्शनशास्त्री होते हुए भी इन दोनों लेखकों ने समाज के एक विज्ञान के रूप में अभ्युदय में योगदान दिया। विको ने कहा कि समाज कुछ निश्चित नियमों पर आधारित था जिन्हें वैषयिक अवलोकन और अध्ययन के द्वारा खोजा जा सकता था। सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक अनुसन्धान (investigation) की दिशा में विको की अपेक्षा मॉन्टेस्की का प्रभाव कहीं ज्यादा पड़ा। उसने यह दिखलाया कि किस प्रकार मानव समाजों के जीवन में कुछ बाहरी शक्तियाँ, विशेषकर जलवायु महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इन दो लेखकों के अतिरिक्त दो अन्य फ्रांसीसी लेखकों कन्डोर्से (Condorcet) और सेन्ट

सिमन (Saint Simon) ने समाज के एक विज्ञान के विकास में अधिक प्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया। कन्डोर्से को विश्वास था कि मानव की पूर्णता (perfectibility) अनन्त है और समाज के विकास की प्रक्रिया अनिश्चित काल तक चलती रहेगी। सेन्ट सिमन ने कहा कि सामाजिक सुधार तभी हो सकेगा जब सामाजिक घटनाओं के बारे में वैज्ञानिक या यथार्थ (Positive) आधार सामग्री (data) एकत्रित कर ली जाये। इन चारों लेखकों को समाजशास्त्र के पूर्वजों की श्रेणी में रखा जाता है।

एक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की स्थापना
(The Establishment of Sociology as a Science)

फ्रांसीसी विद्वान ऑगस्ट कोम्त को समाजशास्त्र का पिता कहा जाता है। इसका कारण यह नहीं है कि उसने कोई बहुत महत्वपूर्ण समाजशास्त्री सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया बल्कि यह कि उस विज्ञान के ऊपर उसका प्रेरणात्मक प्रभाव पड़ा। कोम्त ने ही 'समाजशास्त्र' शब्द को गढ़ा और इसे सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र बताया और उन पद्धतियों को बताया जिनका समाजशास्त्र में प्रयोग होना चाहिये। कोम्त ने मानव ज्ञान की प्रकृति को समझने का प्रयत्न किया और सम्पूर्ण ज्ञान का वर्गीकरण और ज्ञान को प्राप्त करने की विधियों का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया। उसने मानव समाज की प्रकृति और उसकी उत्पत्ति और विकास के नियमों को निश्चित करने, और सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने के लिए प्रयोग की जाने वाली विधियों को बताने का प्रयत्न किया। उसने समाज के एक अलग विज्ञान की रचना की आवश्यकता पर बल दिया जो सामाजिक घटनाओं का विश्लेषण और व्याख्या करने में रुचि रखे। उसने इस विज्ञान को पहले Social Physics और बाद में Sociology कहा।

कोम्त ने उन तीन अवस्थाओं (stages) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिनसे होकर मानव ज्ञान विकसित होता है। उनसे यह तीन अवस्थायें धर्मशास्त्रीय (theological), आध्यात्मिक (metaphysical) और यथार्थ (positive) या अनुभवसिद्ध (empirical) बतायीं। कोम्त ने कहा कि जब यह तीसरी अवस्था पहुँचती है तभी वास्तविक विज्ञान सम्भव होता है। इस अन्तिम अवस्था में ही अनुमान का स्थान वैषयिक अवलोकन ले लेता है और सामाजिक घटनाओं में विभिन्न कारणों के सम्बन्धों पर न कि प्रथम कारण पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

इंगलिश लेखक हरबर्ट स्पेन्सर के समाजशास्त्रीय लेखों के प्रकाशन के बाद ही समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। उसने सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में सामान्य अनुमान विधि (inductive method) का प्रयोग किया। उसने आदिवासियों के जीवन से एकत्र की गई आधार सामग्री

(data) की परीक्षा और विश्लेषण करने के बाद अपने निष्कर्ष निकाले। उसका एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह था कि सामाजिक घटनायें (phenomena), शरीर की तरह, सरल और एक से तत्वों (homogeneous) से शुरू होकर जटिल और भिन्न-भिन्न तत्वों (heterogenous) में विकास की उद्‌विकासीय प्रक्रिया से शुरू होकर गुजरती हैं। उसने आदिम व्यक्ति को सरल मानव किस्म का बताया जिससे सभ्य आदमी का उद्‌विकास हुआ है। स्पेन्सर का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त वह है जिससे उसने समाज की मानव शरीर से तुलना की।

स्पेन्सर के अधिकतर सिद्धान्तों को समाजशास्त्र के विकास के दरम्यान संशोधित या त्याग दिया गया परन्तु फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि समाजशास्त्र के विकास में स्पेन्सर का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण था। उसके सावयवी (organismic) सिद्धान्त से प्रभावित होने वाले समाजशास्त्रियों में योरोप के पॉल वॉन लिलियनफेल्ड (Paul von lilienfeld), ऐल्बर्ट स्काफ़ल (Albert Schaffle), और जैक्स नोविकाऊ (Jacques Novicow) और अमेरिकन समाजशास्त्री वार्ड (Ward), समनर (Sumner), और गिडिंग्स (Giddings) थे।

समाजशास्त्र की सबसे अधिक प्रगति अमेरिका में हुई जहाँ प्रत्येक विश्वविद्यालय और कालेज में यह विषय पढ़ाया जाता है। इस विज्ञान के विकास में संसार के अनेक देशों के विद्वानों का योगदान रहा है। फ्रांस में दुरखाइम, रूसो, मॉन्टेन और मॉस; इंग्लैण्ड में स्पेन्सर, मिल, बकल और जिन्सबर्ग; जर्मनी में टॉनीज़, रैज़ेल, मार्क्स और वीरकान्त, संयुक्त राज्य अमेरिका में वार्ड, थॉमस, नैनिकी, रॉस, मैकाइवर, सॉरोकिन, पारसन्स, बार्न्स, ऑगबर्न, पार्क और बर्जेस, स्मॉल, मरडॉक; और रूस में क्रोपोकिन ने समाजशास्त्र के विकास में विशेष योगदान दिया। भारत में पी. एन. प्रभु, इरावती कर्वे, श्रीनिवास, डी. एन. मजूमदार, कापड़िया, श्यामा चरण दुबे आदि के नाम इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

समाजशास्त्र के परम्परागत सम्प्रदाय
(The Traditional Schools of Sociology)

समाजशास्त्र के ऐतिहासिक विकास पर दृष्टि डालने पर हमें एक ओर सामाजिक घटनाओं की गैर-सामाजिक कारकों, अर्थात् जैवकीय, भौगोलिक और मनोवैज्ञानिक कारकों के फल के रूप में व्याख्या करने की प्रवृत्ति मिलती है, और दूसरी ओर, सामाजिक घटनाओं की व्याख्या सामाजिक या सांस्कृतिक कारकों के फल के रूप में मिलती है। इसके फलस्वरूप, हमें समाजशास्त्रीय विचार के चार प्रमुख सम्प्रदाय मिलते हैं। यद्यपि इनमें से किसी भी सम्प्रदाय को वर्तमान समय में अच्छी तरह परिभाषित नहीं किया जाता और समाजशास्त्रीय अध्ययनों में जैवकीय और

भौगोलिक सम्प्रदाय का महत्व समाप्त हो गया है, परन्तु फिर भी समाजशास्त्र को गढ़ने में इनमें से प्रत्येक ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

जैवकीय सम्प्रदाय (**The Biological School**) : इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति स्पेन्सर के लेखों से हुई जिसने समाज की जैविक शरीररचना (biological organism) से तुलना की। शुरू के कुछ समाजशास्त्रियों ने इस मत को स्वीकार किया और समाज की जैविक नियमों और उद्विकासीय प्रक्रियाओं के रूप में व्याख्या करने की कोशिश की। उनके लिए समाजशास्त्र मुख्यतः एक ऐसा विज्ञान है जो जीवशास्त्र (biology) पर आधारित है। डारविन (Darwin) के प्राकृतिक प्रवरण (natural selection) के सिद्धान्त के प्रभाव और प्रेरणा के फलस्वरूप कुछ समाजशास्त्रियों ने सामाजिक घटनाओं की सामूहिक संघर्ष ओर स्पर्धा के रूप में व्याख्या की। इन लेखकों ने कहा कि संघर्ष (struggle) के द्वारा ही समाज का उद्विकास और प्रगति होती है। आजकल शायद ही कोई समाजशास्त्रीय इन सिद्धान्तों को इनके वास्तविक स्वरूप में स्वीकार करे परन्तु परिवर्धित (modified) रूप में इनको स्वीकार किया गया है। जन संख्या के विभिन्न पहलुओं, विशेषकर जिनका सम्बन्ध जनसंख्या के गुण (quality) से है, के कुछ समाजशास्त्रीय अनुसंधान को समाज के अध्ययन की जैविक विधि माना जाता है।

भौगोलिक सम्प्रदाय (**The Geographical School**) : समाजशास्त्र का भौगोलिक सम्प्रदाय मानव समाज पर भौगोलिक कारकों के निश्चायक प्रभाव पर बल देता है। इन लेखकों का कहना है जो भी विशेष स्वरूप संस्थाओं जैसे धर्म, परिवार, और आर्थिक प्रणालियों ने धारण किये वह मुख्यतः भौगोलिक दशाओं के फल हैं। मानव प्रगति और निष्पत्ति (achievement) की मात्रा भी प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा निश्चित बतायी गई। इस सम्प्रदाय का काफी प्रभाव जनसंख्या के अध्ययन करने वाले कुछ विद्वानों पर पड़ा जो जनसंख्या के वितरण और गतिशीलता की प्रकृति में और मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच अन्तःक्रिया के अध्ययन में रूचि रखते हैं।

मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय (**The Psychological School**) : इस सम्प्रदाय के अनुयायियों ने सामाजिक घटनाओं के लिए व्यक्तियों या समूहों के मनोवैज्ञानिक प्रयोजनों या प्रेरकों (motivations) को उत्तरदायी ठहराया। दूसरे शब्दों में, सामाजिक अन्तःक्रिया उन प्रक्रियाओं पर आधारित है जो कि मुख्यतः मनोवैज्ञानिक होती हैं। इन लेखकों का बेहद प्रभाव पड़ा। अनेक अमेरिकन और योरोपियन समाज शास्त्रियों ने समाजशास्त्रीय घटनाओं की व्याख्या के लिये इस सम्प्रदाय का सहारा लिया।

समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय (The Sociologistic School) : सबसे अधिक समाजशास्त्री इस सम्प्रदाय में मिलते हैं। इन लोगों ने मानव व्यवहार को सामाजिक पर्यावरण या सामाजिक शक्तियों का फल बताया। इस सम्प्रदाय के अनुसार, जिस ढंग से कोई व्यक्ति क्रिया या प्रतिक्रिया करता है यह उस समूह या समाज द्वारा डाले गये प्रभावों पर निर्भर करेगा जिसमें वह रहता है। समनर और कैलर ने इन शक्तियों को "उन व्यक्तिगत, स्वतः चालित शक्तियों के कार्य करने का फल बताया जो व्यक्ति की शक्तियों और नियंत्रण की सीमा के बाहर होती हैं और ऐसे प्रभाव उत्पन्न करती हैं जो स्वयं उनकी ही विशेषतायें हैं।"* यह मत अन्य सम्प्रदाय के सभी सिद्धान्तों को एकदम गलत नहीं बताता। वास्तव में, बहुत कुछ जो अन्य सम्प्रदायों द्वारा कहा गया है उसको परिवर्धित या रूपान्तर करके (modify) इस सम्प्रदाय ने स्वीकार किया है।

भारत में समाजशास्त्र
(Sociology in India)

भारतीय इतिहास के पन्ने पलटने पर पता चलता है कि यहां का इतिहास सामाजिक संगठन और सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्थाओं से भरा पड़ा है। पाश्चात्य विचारक समाजशास्त्र का प्रारम्भ योरप से मानते हैं परन्तु ऐसा मानने में वे पक्ष-पात से काम लेते हैं। जिस प्राचीन युग में योरप के निवासी सभ्यता के निम्न स्तर पर थे उस समय हमारे देश की सभ्यता अपनी चरम सीमा पर थी और भारतीय समाज की संरचना पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। हमारे धार्मिक ग्रन्थ, उपनिषद्, महाभारत, स्मृतियाँ आदि इस तथ्य के स्पष्ट परिचायक हैं। इन ग्रन्थों में व्यवस्था, सामाजिक संरचना, सामाजिक सम्बन्ध के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है और मानवजीवन को नियमित, नियंत्रित एवं परिभाषित करने के लिए स्थान-स्थान पर उचित निर्देश व उदाहरण दिये गये हैं। यह सब सही अर्थों में समाज का ज्ञान ही है। तत्कालीन सामाजिक विचारकों ने वर्ण आश्रम व्यवस्था, कर्म का सिद्धान्त, संयुक्त परिवार व्यवस्था, विवाह, पुरुषार्थ का सिद्धान्त आदि महत्वपूर्ण संस्थाओं को विकसित किया था जो उनके उच्च सामाजिक ज्ञान का ही द्योतक है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वैदिक काल और उत्तर-वैदिक काल में सामाजिक ज्ञान धर्म से बहुत प्रभावित था।

भारत के प्राचीन समाजशास्त्रियों के रूप में मनु, भृगु, चाणक्य, शुक्राचार्य

* 'due to the operation of impersonal, automatically acting forces which transcend altogether the range of individual powers and control and produce effects characteristic of themselves alone.'

—**Sumner and Keller.**

आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन विद्वानों ने समाज के विभिन्न पक्षों के सम्बन्धों में अपने ठोस या व्यावहारिक विचारों को अनेक ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व चाणक्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' में जिन राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक नीतियों का उल्लेख किया गया है उनकी तुलना में यूनानी विचारकों का स्तर कहीं नीचा हैं। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता, स्मृतियाँ आदि विभिन्न ग्रन्थों में प्राचीन भारत के लोगों के सामाजिक जीवन का व्यवस्थित, व्यावहारिक और क्रमबद्ध वर्णन है।

अनेक आधुनिक समाजशास्त्रियों का मत है कि भारतीय समाज का क्रमबद्ध (systematic) अध्ययन ब्रिटिश शासनकाल के दौरान शुरू हुआ, यद्यपि योरप की तरह भारत में भी सामाजिक समस्याओं पर दर्शन-शास्त्रीय चिन्तन की एक लम्बी परम्परा रही है। यहाँ जिन सामाजिक विज्ञानों का विकास सबसे पहले हुआ वे अर्थशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र (anthropology) थे। अर्थशास्त्र का सम्बन्ध औद्योगिक और व्यापारिक आर्थिक व्यवस्था के विकास से था और सामाजिक मानवशास्त्र का सम्बन्ध जनजातीय (tribal) क्षेत्रों में प्रशासन के लिये कुशल परामर्शदाताओं की आवश्यकता से था। सामाजिक विज्ञानों में समाजशास्त्र को महत्वपूर्ण स्थान हाल के कुछ वर्षों से मिला है और वर्तमान काल में इसके तीव्र विकास के कारण स्पष्ट हैं। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से भारत आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति के बीच गुजरता रहा है और इस क्रांति की अनेक समस्यायें केवल समाजशास्त्रीय अध्ययनों के द्वारा ही हल की जा सकती हैं। इसके साथ ही, समाजशास्त्री को भारत में विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है क्योंकि सामाजिक संरचना के प्रमुख तत्व वे हैं जिनसे समाजशास्त्र का विशेष रूप से सम्बन्ध है। भारतीय सामाजिक विकास में धर्म और जाति व्यवस्था खास कारक हैं और आर्थिक प्रगति, राजनीतिक संगठन और कानून पर उनके प्रभाव की अवहेलना कोई भी सामाजिक वैज्ञानिक नहीं कर सकता है। यह स्थिति विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के बीच सहयोग के लिए विशेष रूप से अनुकूल हैं। अनेक लेखकों ने भारतीय राजनीति पर धर्म और जाति (किन्हीं विशेष क्षेत्रों से किन्हीं विशेष जातियों के सदस्यों को चुनाव के लिये खड़ा करना, जाति के नाम पर वोट माँगना, मंत्रियों और अफसरों की नियुक्ति के साथ जाति पर विचार) के प्रभाव को दिखाया है। कानून, और सामाजिक नियंत्रण की सम्पूर्ण प्रणाली पर धर्म का प्रभाव है।

भारत में समाज शास्त्र के विकास के भी लगभग वही कारक हैं जो प्रारम्भिक अवस्था में योरप में थे। तेजी से होते हुये आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न नयी सामाजिक समस्यायें, और इस परिवर्तन का नियंत्रण और निर्देशन करने की इच्छा समाजशास्त्र के विकास के महत्वपूर्ण कारक हैं। इसलिए

यह स्वाभाविक ही है कि यहाँ के समाजशास्त्री फिलहाल केवल भारतीय सामाजिक ढांचे के विश्लेषण पर अपना ध्यान केन्द्रित करें।

सन् १९१९ में एक पृथक विषय के रूप में भारत में समाजशास्त्र की शिक्षा सबसे पहले बम्बई विश्वविद्यालय में प्रो० पैट्रिक गीड्स (Patrick Geddes) की देख रेख में शुरू हुई। सन् १९१३ में मैसूर और आन्ध्र विश्वविद्यालय ने इस विषय को अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया। इसके बाद भारत के लगभग सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में इसकी लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती रही है। पिछले अनेक वर्षों से अपने देश में समाजशास्त्र एक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रगति कर रहा है। आज बम्बई, लखनऊ, बनारस, गुजरात, बिहार, काशी विद्यापीठ, कर्नाटक, मैसूर, नागपुर, पटना, उस्मानिया. जबलपुर, बिहार, रांची, राजस्थान, बड़ौदा, विक्रम, सागर, जीवाजी ग्वलियर, दिल्ली, पंजाब, पूना, मद्रास, गोरखपुर, कानपुर, आगरा एवं अन्य प्रमुख विश्वविद्यालयों व शिक्षण संस्थानों में इसका अध्ययन सुचारु रूप से चल रहा है जो इसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता का परिचायक है।

समाजशास्त्र के महत्व को देखते हुये अनेक शोध-संस्थानों (Research Institutes) की भी स्थापना हो गई है। भारतीय समाजशास्त्रियों ने इस विज्ञान को अपनी सेवाओं से अधिक से अधिक समृद्ध बनाने का प्रयास किया है। प्रमुख भारतीय समाजशास्त्रियों के रूप में पी. एन. प्रभु, डी. एन. मजूमदार, कापड़िया, इरावती कर्वे, घुरिये, ए. आर देसाई, आल्तेकर, श्यामा चरण दुबे, नर्मदेश्वर प्रसाद, डा० आर० एन० सक्सेना आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

भारत में सामाजिक समस्याओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन के क्षेत्र में जाति प्रथा को प्रथम स्थान मिला। इस क्षेत्र में डा० डी० एन मजूमदार, रिजले और हटन को विशेष स्थान प्राप्त है। रिजले ने अनुलोम विवाह और प्रजातीय मिश्रण को विभिन्न जातियों की उत्पत्ति का प्रमुख कारक माना, जब कि हटन ने सामाजिक निषेधों के प्रति लोगों के मनोभाव, पेशों के आधार पर समाज का विभाजन तथा समस्त अपरिचित और अद्भुत वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति कुसंस्कार को भारतीय सामाजिक ढांचे के निर्माण में प्रमुख स्थान प्रदान किया।

कापड़िया ने हिन्दू-नातेदारी, और भारतीय परिवार और विवाह का अध्ययन किया। घुरिये ने भारतीय जाति और वर्ग व्यवस्था, भारतीय तथा पाश्चात्य देशों की परिवार संस्था का तुलनात्मक अध्ययन, और भारतीय साधुओं का अध्ययन किया। पी० एन० प्रभु की पुस्तक Hindu Social Organization में जाति-प्रथा, आश्रम-व्यवस्था आदि विषयों का विश्लेषण प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों के आधार पर आलोचनात्मक ढंग से किया गया है। ग्रामीण समाजशास्त्र में डा० डी० एन० मजूम-

दार, डाड, एस०सी० दुबे, और ए० आर० देसाई ने अध्ययन कर महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कीं। आज भारत में ग्रामीणों की समस्याओं और उनके हल की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। फिर भी, अन्य देशों के मुकाबले में हमारे देश में समाजशास्त्रीय शोध (research) का कार्य पिछड़ा हुआ है जिसके दो प्रमुख कारण हैं—धन की कमी और शिक्षा पद्धति का गलत होना। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और सरकार शोध कार्य के लिए काफी प्रोत्साहन दे रहे हैं परन्तु अभी इस क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है।

---

५ समाजशास्त्र की प्रकृति (Nature of Sociology)

समाजशास्त्र की प्रकृति— यह एक विज्ञान है या नहीं, और यदि विज्ञान है तो किस प्रकार का विज्ञान है—के सम्बन्ध में सामाजिक वैज्ञानिकों में दो प्रकार के विचार पाये जाते हैं। एक ओर तो कुछ समाजशास्त्रीय इसको सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान मानते हैं, तो दूसरी ओर कुछ सामाजिक वैज्ञानिक इसे किसी भी प्रकार से एक विज्ञान मानने से इन्कार करते हैं। इन लेखकों का कहना है कि समाजशास्त्र के पास कोई प्रयोगशालायें नहीं हैं, यह विषय सामग्री को नापने में असमर्थ है, भविष्यवाणी नहीं कर सकता है, इसलिये इसे विज्ञान कहना अनुचित होगा। इस विवाद पर अपने विचार प्रकट करने से पहले हमें विज्ञान के अर्थ और तत्व जान लेना चाहिए। यदि समाजशास्त्र में सब तत्व मिलते हैं जो विज्ञान की विशेषता हैं, तब तो हम इसे विज्ञान मान सकते हैं अन्यथा नहीं।

विज्ञान की परिभाषा और अर्थ (Definition and meaning of Science)

ग्रीन ने कहा है, "विज्ञान अनुसंधान करने का एक तरीका है।"* 'तरीका' से तात्पर्य ज्ञान के क्रमबद्ध या नियमबद्ध संग्रह को प्राप्त करने के वैज्ञानिक तरीके से है। इस प्रकार, ग्रीन ने तथ्यों की खोज करने वाले तरीके ही को विज्ञान कहा है। वास्तव में, इस सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात पद्धति है, न कि विषय सामग्री। इसी बात को दृष्टि में रखते हुये लैण्डिस ने कहा है: "विज्ञान विज्ञान है, चाहे वह भौतिकशास्त्र में हो या समाजशास्त्र में।"† इसी बात पर बल देते हुये कार्ल पियर्सन ने कहा: "सभी विज्ञान की एकता उसकी पद्धति में पायी जाती

* "Science is a way of investigation."—Green, Sociology.

† "Science is science, whether in physics or in sociology." P. H. Landis.

है, न कि उसकी विषय सामग्री में।* बीसन्ज और बीसन्ज ने भी इन लेखकों का समर्थन करते हुये लिखा है : "विज्ञान की कसौटी दृष्टिकोण है, न कि विषय सामग्री।"† उपरोक्त लेखकों के विचारों से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा प्राप्त किया गया व्यवस्थित ज्ञान ही विज्ञान है। वैज्ञानिक पद्धति से केवल तथ्यों का अध्ययन करके ज्ञान ही नहीं प्राप्त किया जाता बल्कि उन्हें इस प्रकार क्रमबद्ध रूप से उपस्थित किया जाता है कि तथ्य स्वयं ही स्पष्ट हो सकें। प्वाइन केयर (Poin Care) ने इस बात को स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण दिया है : "विज्ञान तथ्यों से इस प्रकार बना है जिस प्रकार पत्थरों से एक मकान। जिस प्रकार पत्थरों के ढेर को मकान नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार केवल तथ्यों के संकलन को ही विज्ञान नहीं कहा जा सकता।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिक पद्धति द्वारा क्रमबद्ध रूप से ज्ञान का संग्रह ही 'विज्ञान' है।

वैज्ञानिक पद्धति क्या है ? (What is scientific method ?)

समाजशास्त्र को विज्ञान मानने का सबसे महत्वपूर्ण कारण यह बताया जाता है कि यह वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम पहले यह समझें कि वैज्ञानिक पद्धति से क्या अभिप्राय है। लुण्डबर्ग के शब्दों में : "व्यापक अर्थों में, आधार-सामग्री का क्रमबद्ध निरीक्षण, वर्गीकरण और व्याख्या ही वैज्ञानिक पद्धति है।"‡ इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तथ्यों या आधार सामग्री (data) का ठीक से अवलोकन (observation) करने के पश्चात् ही वैज्ञानिक पद्धति किसी निर्णय पर पहुँचती है; यह केवल अन्दाज पर ही आधारित नहीं है।

वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अनुसंधान करने में अनुसंधानकर्ता को अनेक चरणों (stages) से गुजरना पड़ता है जो निम्न हैं —

(१) **समस्या का चुनाव (selection of the problem)** : अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति का पहला चरण किसी समस्या का चुनाव होता है। अनुसंधान-कर्ता के लिये आवश्यक होता है कि वह समस्या से सम्बन्धित सभी साहित्य को अच्छी तरह से पढ़े।

(२) **उपकल्पना का निर्माण (formulation of the hypothesis)** : जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में उपकल्पनाओं की सहायता से अध्ययन किया

---

* "The unity of all science consists alone in its method, not in its material." Karl Pearsons, The Grammar of Science.

† "It is approach rather than content that is the test of science." Biesanz and Biesanz, Modern Society.

‡ "Broadly speaking, scientific method consists of systematic observation, classification and interpretation of data." Lundberg, Social Research,

जाता है उसी प्रकार समाजशास्त्र के अनुसंधानों में भी उनका प्रयोग किया जाता है। समाजशास्त्री अपने अनुभव से कुछ उपकल्पना बनाता है और उसके अनुसार तथ्य इकट्ठे करता है। इसके बाद इकट्ठा की गई सामग्री का वर्गीकरण, विश्लेषण करके वह यह जानने की कोशिश करता है कि तथ्य उसकी उपकल्पना को सही या गलत सिद्ध करते हैं।

(३) **अवलोकन (observation)** : उपकल्पना का निर्माण करने के बाद समाजशास्त्री विषय-सामग्री का सूक्ष्म एवं सावधानी से अवलोकन करता है। बिना सूक्ष्म एवं सावधानीपूर्वक अवलोकन के तथ्यों को सही ढंग से एकत्रित नहीं किया जा सकता। यह अवलोकन दो प्रकार का हो सकता है : स्वयं उसमें भाग लेकर या तटस्थ भाव से। अवलोकन में अक्सर यंत्रों की आवश्यकता होती है। इसलिए इन यंत्रों का सही होना भी आवश्यक होता है।

(४) **अवलोकन को लिखना (recording)** : वैज्ञानिक पद्धति का अगला चरण अवलोकन को खूब सावधानी के साथ लिखना होता है। लिखने में निष्पक्ष तटस्थता बरतना बेहद जरूरी है।

(५) **वर्गीकरण एवं निरूपण (classification and description)** : अनुसंधानकर्ता अनेक तथ्यों का अवलोकन करता है। वह इन तथ्यों का इस प्रकार वर्गीकरण करता है कि इन तथ्यों में एक स्पष्ट कार्य-कारण सम्बन्ध स्पष्ट हो सके। बिखरे हुये तथ्यों का वर्गीकरण कर लेने के बाद वर्गीकृत समूहों को नाम दे दिया जाता है और उनके लक्षणों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया जाता है।

ब्रिटिश वैज्ञानिक कार्ल पियर्सन ने वैज्ञानिक पद्धति की यह विख्यात परिभाषा दी है : "वह व्यक्ति जो किसी भी प्रकार के तथ्यों को वर्गीकृत करता है, उनमें परस्पर सम्बन्ध देखता है और उनमें व्याप्त अनुक्रम को वर्णित करता है, वह वैज्ञानिक पद्धति का पालन कर रहा है और एक वैज्ञानिक ही है।"† समाजशास्त्र में भी वर्गीकरण आदि होने के कारण इसको एक विज्ञान माना जाता है।

(६) **विश्लेषण और व्याख्या (analysis and interpretation)** : तथ्यों का वर्गीकरण और निरूपण कर लेने के बाद अनुसंधानकर्ता उनका विश्लेषण करता है। इस विश्लेषण के आधार पर ही वह विचित्र तथ्यों के बीच आपस में सम्पर्क देखता है। इस प्रकार, कार्य-कारण का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

(७) **सामान्यीकरण (generalization)** : मैकाइवर ने सामान्यीकरण

---

† "The man who classifies fact of any kind whatever, who sees their mutual relation and describes their sequences, is applying the scientific method and is a man of science." Karl Pearson, The Grammar of Science.

के आधार पर बनाये गये सिद्धान्तों के बारे में कहा है : "ऐसा नियम या सिद्धान्त केवल सावधानी से वर्णन किये गये और समान रूप से दुबारा होने वाली घटनाओं का दूसरा नाम है।" सामान्यीकरण से तात्पर्य वर्गीकृत तथ्यों के प्रतिमान के आधार पर सामान्य नियम निकालने से है। इन्हीं सामान्य नियमों को वैज्ञानिक सिद्धान्त कहा जाता है।

(८) **परीक्षण (verification)** : सामान्यीकरण के पश्चात् जो सामान्य नियम. निकलते हैं उनका परीक्षण और पुनर्परीक्षण बहुत ही आवश्यक है। समय बदलने के साथ-साथ परिस्थितियाँ भी बदलती हैं जिसके कारण उन नियमों के पुनर्परीक्षण की आवश्यकता होती है।

(९) **भविष्यवाणी (prediction)** : विज्ञान की एक विशेषता उसकी भविष्यवाणी करने की क्षमता है। इसका अर्थ यह है कि यदि एकत्रित किये गये तथ्यों का वर्गीकरण करने के बाद परीक्षण इतनी यथार्थता (exactness) के साथ किया जाये कि वर्तमान में प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर भविष्य की घटनाओं का भी पूर्व-अनुमान किया जा सके, तो उसे एक विज्ञान माना जायेगा।

(१०) **वैज्ञानिक प्रवृत्ति (scientific attitude)** : विज्ञान की प्रवृत्ति को अधिक स्पष्ट रूप से बताने के लिये गिलिन और गिलिन ने 'वैज्ञानिक प्रवृत्ति' की चर्चा की है। अक्सर ऐसा होता है कि अनुसंधानकर्ता के कुछ पक्षपात (prejudices) उसके व्यवस्थित अध्ययन को भी अवैज्ञानिक बना सकते हैं। गिलिन और गिलिन ने वैज्ञानिक प्रवृत्ति की व्याख्या करते हुये अध्ययन से सम्बन्धित पाँच विशेषताओं की चर्चा की है —

(i) **तटस्थता (objectivity)** : अनुसंधानकर्ता के लिये सबसे कठिन और आवश्यक होता है तटस्थ होना। उसे अपने उद्वेगों (emotions) से अधिक प्रभावित होकर कार्य नहीं करना चाहिये। यह भौतिक और जैविक विज्ञानों में उतना कठिन नहीं है जितना सामाजिक विज्ञानों में। उदाहरण के लिये, प्रजातंत्र, जातिवाद, प्रजातिवाद का अध्ययन करते समय वह सम्भावना रहती है कि अनुसंधानकर्ता अपने पक्षपातों से प्रभावित होकर कार्य करे।

(ii) **धैर्य (patience)** : अक्सर अनुसंधानकर्ता पर कार्य को शीघ्र खत्म करने और उसकी रिपोर्ट के लिये अनेक दबाव पड़ते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि अपनी खोजों की सत्यता की परीक्षा किये बग़ैर वह अपने द्वारा एकत्रित तथ्यों का निष्कर्ष प्रकट कर देता है। इसका उदाहरण हमें महायुद्ध के बाद अपकर्ष में मिलता है जब अनेक विद्वानों ने अनगिनती और एक दूसरे से विरोधी सुझावों को बेकारी, औद्योगिक निश्चलता या क्रय शक्ति में गिरावट की समस्याओं को दूर करने के लिये दिये। वैज्ञानिक प्रवृत्ति की मांग है कि अनुसंधानकर्ता को तब

तक कोई घोषणा नहीं करनी चाहिये जब तक वह समस्या से सम्बन्धित सभी तथ्यों को इकट्ठा न कर ले और सावधानीपूर्वक उसका विश्लेषण न कर ले। तथ्यों को इकट्ठा करने और विश्लेषण (analyse) करने के लिये धैर्य की जरूरत होती है ।

(iii) **सख्त मेहनत (hard work)** : वैज्ञानिक अध्ययनों में सख्त मेहनत के बग़ैर तटस्थता और धैर्य का कोई अर्थ नहीं है। हमारे चारों ओर के संसार के रहस्यों को खोज निकालने के लिये सख्त मेहनत करने की इच्छा भी आवश्यक है।

(iv) **संशय (skepticism)** : लोकप्रिय विश्वासों के प्रति शक भी वैज्ञानिक प्रवृत्ति का एक आवश्यक भाग है। जिन बातों की निर्णयात्मक प्रमाण (evidence) न हो उनको बराबर शक की निगाह से देखना ही संशय है। विज्ञान यह नहीं कहता कि हर बात का अविश्वास करो, परन्तु यह जरूर कहता है कि व्यक्ति को तब तक अपना मस्तिष्क खुला रखना चाहिये जब तक प्रमाण न आ जाये और उसकी परीक्षा न हो जाये।

(v) **रचनात्मक कल्पना (creative imagination)** : चाहे जितनी भी सावधानी से असम्बन्धित तथ्य क्यों न इकट्ठे किये जायें उनका अपने में कोई भी महत्व नहीं है। वे तो ईंटों के ढेर की तरह होते हैं। वे तब तक बेकार हैं जब तक राज और नक्शानवीस (architect) उन्हें किसी इमारत को बनाने में प्रयोग नहीं करते। तथ्यों का अर्थ प्रदान करने के लिये रचनात्मक कल्पना की आवश्यकता होती है। किसी भी वैज्ञानिक को केवल तथ्य इकट्ठा कर लेने से ही सन्तोष नहीं होना चाहिये। उसके मस्तिष्क में हमेशा यह प्रश्न घूमता रहना चाहिये कि इन तथ्यों का क्या अर्थ है ?

विज्ञान के प्रमुख तत्व (Main elements of science)

मोनैकसी ओर मार्टिन्डेल ने विज्ञान के आवश्यक तत्व बताते हुये लिखा है : "विज्ञान भी विचारने का एक ढंग हैं, और सभी विचारों की तरह यह समस्थाओं के प्रत्युत्तर में उदित होता है। अपनी पद्धति के आधार पर मुख्यतः यह विचारने के अन्य ढंगों से भिन्न है। विज्ञान की पद्धतियों में निम्न बातें पायी जाती हैं : (१) अवलोकन पर इसका बल देना; (२) अपने विचारों का व्यवहार में परीक्षण करने के इसके प्रयास; (३) आदर्श आवश्यकताओं की प्रयोगात्मक पद्धति का विकास जिससे इसके विचारों का परीक्षण हो सके; (४) ऐसे नये यन्त्रों का आविष्कार जिनसे अधिक निश्चित अवलोकन और अधिक यथार्थ नाप सम्भव हो सके; (५) अपने अध्ययन से वैज्ञानिकों के निजी मूल्यांकनों को सख्ती से दूर रखना और इस

समस्या पर एकाग्रचित होना कि किस प्रकार वस्तुयें वास्तव में घटित होती हैं, या क्या घटित होना चाहिये।"‡

मोनेकसी और मार्टिन्डेल के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान कहलाने के लिये किसी अध्ययन को निम्नलिखित प्रमुख तत्वों की आवश्यकता है—

(१) वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग
(२) अवलोकन द्वारा तथ्यों का संकलन
(३) तथ्यों का क्रमबद्ध विश्लेषण और वर्गीकरण
(४) सार्वभौमिकता
(५) प्रामाणिकता
(६) कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज
(७) भविष्यवाणी कर सकने में समर्थ होना

समाजशास्त्र एक विज्ञान है (Sociology is a Science)

समाजशास्त्र एक विज्ञान है क्योंकि इसमें विज्ञान के सभी प्रमुख तत्व पाये जाते हैं।

(१) समाजशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है : समाजशास्त्र के अध्ययन में केवल वैज्ञानिक पद्धतियों का ही प्रयोग होता है। समाजमिति (sociometry), सामाजिक निरीक्षण पद्धति (social observational method), सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति (social survey method), व्यक्तिगत जीवन अध्ययन पद्धति (case study method) आदि समाजशास्त्र की प्रमुख वैज्ञानिक पद्धतियाँ है और इनके द्वारा ही सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है।

(२) समाजशास्त्र में अवलोकन द्वारा तथ्यों का संकलन किया जाता है : अन्य विज्ञानों की तरह समाजशास्त्र में भी तथ्यों के संकलन में प्रत्यक्ष निरीक्षण और

‡ "Science, too, is a mode of thought, and like all thinking it arises in response to problems. It differs from other modes of thought primarily in its method. Among the methods characteristic of science are (1) the emphasis it places upon observation, (2) the attempts to test its ideas in practice. (3) the development of experiments of model situations that may serve to test its ideas, (4) the invention of new instruments that permit more precise observation and more exact measurement, (5) the rigorous exclusion of the scientist's evaluation from the study, and the concentration on the problem of how things actually happen rather than on *why* they happen or what *ought* to happen,"
—Martindale and Monachesi, Elements of Sociology.

अवलोकन किया जा चुका है; यह केवल कल्पना पर आधारित नहीं होता। समाजशास्त्र के अध्ययन में काल्पनिक, दार्शनिक और मनगढ़न्त विचारों को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। उदाहरण के लिये, समाजशास्त्र में वेश्यावृत्ति की समस्या का अध्ययन करते हुए इससे सम्बन्धित तथ्यों का संकलन प्रत्यक्ष निरीक्षण और अवलोकन के द्वारा ही किया जाता है।

(३) **समाजशास्त्र के सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं**—यदि परिस्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं होता तो समाजशास्त्र के सिद्धान्त सभी समाज और काल में सही उतरते हैं। उदाहरण के लिए, पारिवारिक विघटन सामाजिक विघटन पर आधारित है। यह सिद्धान्त सार्वभौमिक रूप से सही पाया जाता है।

(४) **समाजशास्त्र के सिद्धान्त प्रामाणिक हैं**—समाजशास्त्र के सिद्धान्त परीक्षण और पुनर्परीक्षण के बाद ही बनाये जाते हैं, इसलिये वे सदैव सही उतरते हैं। साथ ही साथ समय-समय पर पुनर्परीक्षण फिर होते रहते हैं। इस प्रकार, समाजशास्त्री अपने से पहले के विचारकों के नियमों या सिद्धान्तों को आँख मूंद कर ही स्वीकार नहीं कर लेता है वरन् वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार उनकी परीक्षा व पुनर्परीक्षा करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समान परिस्थितियों में समाजशास्त्रीय नियमों की परख की जा सकती है और इन नियमों की प्रामाणिकता को सही ठहराया जा सकता है।

(५) **समाजशास्त्र कार्य-कारण के सम्बन्धों की व्याख्या करता है**—अन्य विज्ञान की भाँति समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं के पीछे छुपे कारणों को जानने पर बल देता है। उदाहरण के लिए, समाजशास्त्र यह बतलाता है कि बाल अपराध में पारिवारिक विघटन एक महत्वपूर्ण कारण है। इस प्रकार, समाजशास्त्र कार्य-कारण के सम्बन्धों की व्याख्या करते हुये 'क्या' के साथ 'कैसे' का भी उत्तर देता है।

(६) **समाजशास्त्र भविष्यवाणी कर सकता है**—कार्य-कारण के सम्बन्ध की भली-भाँति व्याख्या कर लेने पर समाजशास्त्र 'क्या है' के आधार पर 'क्या होगा' का भी निश्चय कर सकता है। बाल-अपराध के कारणों का पता लगा [illegible] भविष्यवाणी कर सकता है कि कौन सी परिस्थितियों के समाज [illegible] होने पर बाल-अपराध की दर में वृद्धि होगी। अतः हम कह सकते हैं [illegible]माजशास्त्र भविष्यवाणी कर सकता है।

उपरोक्त बातों पर गौर करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र में विज्ञान के सभी आवश्यक तत्व मौजूद हैं और समाजशास्त्र अपने अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है। इन्हीं कारणों से समाजशास्त्र को एक विज्ञान माना जाता है।

जानसन के विचार (Johnson's Views)

जॉनसन ने कहा है कि "समाजशास्त्र एक विज्ञान है या नहीं" इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले यह समझ लेना चाहिए कि विज्ञान मात्रा या अंश (degree) का मामला है। समाजशास्त्र की अपेक्षा अन्य विज्ञानों ने भविष्यवाणी करने की शक्ति और क्रमबद्ध करना (systematization) अधिक मात्रा में प्राप्त कर लिया है। फिर भी समाजशास्त्र में विज्ञान की निम्नलिखित बातें पायी जाती हैं :

(१) यह अनुभवसिद्ध (empirical) है अर्थात् यह अवलोकन (observation) और तर्क (reasoning) पर आधारित है, और इसके परिणाम अन्दाज पर आधारित नहीं होते। यह सत्य है कि अपने निर्माणकारी कार्यों की प्रारम्भिक अवस्था में सभी वैज्ञानिक अन्दाज लगाते हैं, एक उपकल्पना बनाते हैं, परन्तु अपने अन्दाजों को वैज्ञानिक खोजों के रूप में घोषित करने से पहले उनके सत्य का परीक्षण और पुनर्परीक्षण कर लेते हैं।

(२) यह सैद्धान्तिक (theoretical) है, अर्थात् गूढ़ अवलोकनों को अमूर्त (abstract) और तर्कपूर्ण ढंग से सम्बन्धित प्रस्थापना (propositions) में संक्षेप में बताने का प्रयत्न करता है। इस ढंग से वह विभिन्न सामाजिक घटनाओं के कार्य कारण सम्बन्धों की व्याख्या करता है।

(३) यह संचयी (cumulative) है, अर्थात् समाजशास्त्री सिद्धान्त एक दूसरे के ऊपर बनते हैं, या नये सिद्धान्त पुराने सिद्धान्तों को सुधारते, अधिक व्यापक बनाते, और परिष्कार (refine) करते हैं।

(४) यह गैर नैतिक (non-ethical) है, अर्थात् समाजशास्त्री यह नहीं पूछते हैं कि कोई विशेष सामाजिक क्रियायें अच्छी हैं या बुरी। वे केवल उनकी व्याख्या करते हैं।

यह सत्य है कि इन सब दृष्टियों से समाजशास्त्र पूर्णता (perfection) प्राप्त करने से अभी दूर है परन्तु इसमें निरन्तर प्रगति हो रही है।

समाजशास्त्र को विज्ञान मानने में आपत्तियाँ
(Objections in recognizing Sociology as a Science)

समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति के सम्बन्ध में कुछ विचारकों ने अनेक आपत्तियाँ की हैं। इन विचारकों का कहना है कि विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र में अनेक कमियाँ हैं और इन कमियों के आधार पर ही समाजशास्त्र को एक विज्ञान नहीं माना जा सकता है। अब हम एक-एक करके इन आपत्तियों पर विचार करेंगे और देखेंगे कि वे कहाँ तक सही हैं।

(१) समाजशास्त्र के पास प्रयोगशालायें नहीं हैं (Lack of laboratories)-इस आपत्ति पर विचार करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि प्रयोगशाला

या प्रयोगशाला की पद्धति क्या है ? प्रयोगशाला पद्धति की निम्नलिखित विशेषतायें बताई गई हैं :—

(i) परिस्थितियों पर नियंत्रण, (ii) प्रयोग को दोहराने की सुविधा, (ii) तटस्थ निरीक्षण, (iv) सहायक उपयोगी यन्त्र अथवा उपकरण। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो पता लगता हैं कि समाजशास्त्र की भी अपनी प्रयोगशाला हैं, समाजशास्त्र का अध्ययन बन्द कमरों तक ही सीमित नहीं है वरन् उसका अध्ययन दैनिक जीवन का संसार है। यही उसकी प्रयोगशाला है। यह ठीक है कि समाजशास्त्री भौतिक विज्ञानों की भाँति बाहरी संसार की परिस्थितियों पर पूरी तरह से नियंत्रण नहीं रख सकता, किन्तु इन परिस्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन तो कर ही सकता है। इस प्रकार, समाजशास्त्र के विज्ञान होने में कोई संदेह नहीं किया जा सकता।

समाजशास्त्री कृत्रिम प्रयोगशालाओं पर विशेष निर्भर न रह कर वास्तविक सामाजिक तथ्यों को वास्तविक सामाजिक अवस्थाओं में रखकर उसके स्वाभाविक रूप और विभिन्न पहलुओं का अनेक समाजशास्त्रीय प्रयोग रोज ही कर रहे हैं। वैसे समाजशास्त्र में अनेक विषयों के क्रमबद्ध अध्ययन के लिये प्रयोगशालायें भी बनायी जा सकती हैं। बोगार्डस ने इसी प्रकार के सुझाव दिये हैं। प्रयोगशालाओं पर बल देने वाले वैज्ञानिकों को यह न भूलना चाहिये कि आर्किमिडीज, न्यूटन, मारकोनी, गैलीलियो आदि वैज्ञानिकों ने बग़ैर आधुनिक ढंग की प्रयोगशाला के बड़े-बड़े सफल प्रयोग किये।

(२) तटस्थता का अभाव (Lack of objectivity)—समाजशास्त्री जिस समाज का अध्ययन करता है, उसी का वह स्वयं एक अंग होता है। उसकी पूर्व-धारणायें (prejudices) उसे सामाजिक स्थितियों का उनके वास्तविक रूप में अध्ययन नहीं करने देतीं। इसीलिये यह कहा जाता है कि समाजशास्त्री के अवलोकन में तटस्थता का अभाव होता है।

वास्तव में तटस्थता की मात्रा भिन्न-भिन्न अध्ययनों में घटती बढ़ती रहती है। यह विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त आज समाज के अमूर्त तत्वों का प्रमापीकरण भी किया जा रहा है। इसलिए इस बात में कोई संदेह नहीं है कि समाजशास्त्र में वैषयिक (objective) अथवा तटस्थ अध्ययन सम्भव हैं।

(३) विषय सामग्री के मापने में कठिनाई (Difficulty in measuring subject matter)—भौतिक शास्त्र में उपकरणों की सहायता से विषय सामग्री को भली भाँति मापा जा सकता है परन्तु समाजशास्त्री को यह सुविधा प्राप्त नहीं

है। फिर भी इससे यह धारणा नहीं बनानी चाहिये कि समाजशास्त्र विज्ञान नहीं है। इस सम्बन्ध में ग्रीन ने कहा है, वास्तव में विज्ञान और माप के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है।* वैद्य और हकीम बगैर थर्मामीटर के हमेशा से ही रोगी का तापमान नापते आये हैं, परन्तु उनको वैज्ञानिक मानने में किसी को आपत्ति नहीं है। इसके अतिरिक्त, समाजशास्त्र में भी विभिन्न सामाजिक तत्वों को मापने के लिये उचित उपकरणों का विकास होता जा रहा।

(४) **समाजशास्त्र यथार्थ विज्ञान नहीं है (Not an exact science)**— किसी भी विज्ञान की यथार्थता का प्रमुख आधार विषय सामग्री की प्रकृति है। यथार्थता एक सम्बन्धित गुण है। सभी विज्ञानों में अलग-अलग मात्रा में यथार्थता है। समाजशास्त्र में उतनी ही यथार्थता है जितनी कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में सम्भव है। यह ठीक है कि भौतिक शास्त्रों की तुलना में समाजशास्त्र में यथार्थता कम है।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कोई भी विज्ञान पूरी तौर पर यथार्थ नहीं है। जिन बातों को भौतिक शास्त्री कुछ वर्ष पहले उचित और निश्चित समझते थे उन्हीं को आधुनिक भौतिक-शास्त्री आज चुनौती दे रहे हैं। यदि ऐसा न हो तो इन विज्ञानों में भी नित नयी प्रगति न हो। वास्तव में यथार्थता विषय सामग्री के अनुसार घटती बढ़ती है। इसलिये इस आधार पर समाजशास्त्र को विज्ञान न मानना गलत होगा।

(५) **सामाजिक घटनाओं की जटिलता (Complexity of social phenomena)**—यह कहा जाता है कि समाजशास्त्र की विषय सामग्री–सामाजिक घटनायें–अत्यन्त जटिल हैं जिसके कारण इन घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जा सकता। सत्य तो यह है कि जटिलता के आधार पर किसी ज्ञान को विज्ञान न मानना ठीक नहीं है। यदि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन क्रमबद्ध रूप में कार्य-कारण के सम्बन्धों के आधार पर किया जाये तो जटिलता को काफी हद तक कम किया जा सकता है। सामाजिक घटनाओं का अलग-अलग रूप से अध्ययन किया जाना चाहिये। घटनाओं की भिन्नता के आधार पर भिन्न पद्धति का प्रयोग किया जाना चाहिये। यही कारण है कि समाजशास्त्र के पास अध्ययन की अनेक पद्धतियाँ हैं। यह सच है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करते हुये अनुसंधानकर्ता को काफी धैर्य की आवश्यकता होती है और उसके मार्ग में अनेक बाधायें आती हैं। लेकिन इन बाधाओं अथवा जटिलताओं के आधार पर समाजशास्त्र को विज्ञान न मानना अनुचित होगा।

* 'There is actually no direct relationship between science and measurement.'' Green, Sociology.

(६) **समाजशास्त्र भविष्यवाणी करने में असमर्थ है (Inability to predict)**—समाजशास्त्र को विज्ञान मानने में एक बड़ी आपत्ति यह है कि अयथार्थ होने के कारण भविष्यवाणी कर सकने में असमर्थ है। इन लेखकों के विचार में प्राकृतिक या भौतिक विज्ञान के नियम यथार्थ और सार्वभौम होते हैं इसलिए उनको विज्ञान माना जा सकता है परन्तु इन बातों के अभाव के कारण समाजशास्त्र को एक विज्ञान नहीं माना जा सकता। समाजशास्त्र की भविष्यवाणी या नियम अधिक से अधिक एक विशेष समाज के सम्बन्ध में ही ठीक हो सकते हैं। इसके अनेक कारण हैं : पहले, अध्ययन वस्तु की जटिलता और उसकी निरन्तर परिवर्तनशीलता; दूसरे, अध्ययन वस्तुओं में एकरूपता (homogeneity) का अभाव; तीसरे, सामाजिक घटनायें निश्चित अन्तर (regular interval) पर सामान्य नियमानुसार घटित नहीं होतीं बल्कि विशिष्ट समूहों के कार्यों द्वारा प्रभावित होती हैं; चौथे, पूर्वधारणा, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक आदर्शों में भिन्नता।

वास्तव में, यदि समाजशास्त्र भविष्यवाणी करने में असमर्थ है तो अन्य प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों में भी यही कमी पायी जाती हैं। अलैक्जैण्डर ने इस आपत्ति के आधार पर समाजशास्त्र को विज्ञान न मानने के विचार का खण्डन करते हुये कहा कि इसी कमी के बावजूद अन्य शास्त्रों को फिर विज्ञान क्यों माना जाता है ? उन्होंने कहा "(१) ऋतु विज्ञान विशेषज्ञ पाँच दिन पहले से यह अन्दाज नहीं लगा सकते कि भविष्य में क्या होगा; (२) होशियार से होशियार डाक्टर भी रोगी को देखकर तत्काल निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि वह कौन से रोग से ग्रसित है; (३) प्राणिशास्त्री यह तुरन्त नहीं बता सकते कि कौन सा खरगोश मटर के नये उगे पौधों के अंकुरों को खायेगा, (४) कौन सा बीज जमेगा; (५) भू-गर्भ शास्त्री यह नहीं बता सकता कि आने वाली सर्दी में रेल की कौन सी पटरी टूटेगी। फिर भी उपरोक्त शास्त्रों को जब विज्ञान माना जा सकता है तो समाजशास्त्र को भी विज्ञान माना जाना चाहिए।"*

यह सिद्ध कर देने के बाद कि समाजशास्त्र एक विज्ञान है, हमें यह देखना है कि यह **किस प्रकार का विज्ञान** है।

बियरस्टैड के विचार (Views of Bierstedt)

बियरस्टैड ने समाजशास्त्र की प्रकृति के सम्बन्ध में सात बातें बतायी हैं :

(१) समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, न कि प्राकृतिक विज्ञान—हम यह पहले ही लिख चुके हैं कि समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है जो सामाजिक समूहों और सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है। इस प्रकार, यह प्राकृतिक संसार में रुचि न रखकर सामाजिक संसार में रुचि रखता है। इस प्रकार, प्राकृतिक

* Chester Alexander, Is Sociology an exact science? American Sociological Review, xi, p. 5.

विज्ञानों से यह अध्ययन वस्तु में भिन्न है, परन्तु पद्धति दोनों की एक है। इस प्रकार समाज-शास्त्र विशेषरूप से ज्योतिषशास्त्र, भौतिकी, रसायन विज्ञान, भूगर्भ-शास्त्र, जीव-विज्ञान आदि से भिन्न है।

(२) **समाजशास्त्र एक निरपेक्ष विज्ञान है, न कि आदर्शात्मक विज्ञान**—यह केवल 'क्या है' से सम्बन्ध रखता है, न कि 'क्या होना चाहिए' से। एक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र मूल्यों के प्रश्न पर चुप है। यह उन दिशाओं को निश्चित नहीं करता जिसमें समाज को बढ़ना चाहिए और सामाजिक नीति के मामले में यह कोई सिफारिश नहीं करता। इसका यह अर्थ नहीं है कि सामाजिक और राजनीतिक विषय में समाजशास्त्रीय ज्ञान व्यर्थ है, बल्कि यह है कि अच्छी और बुरी, सही और गलत की समस्याओं के प्रति यह उदासीन है। समाजशास्त्र निरपेक्ष रूप से यह बता सकता है कि किसी निश्चित समय में किसी विशेष समाज में कौन से सामाजिक मूल्य थे, परन्तु आदर्शात्मक ढंग से यह नहीं कह सकता कि उन्होंने यह अच्छा किया या गलत।

(३) **समाजशास्त्र एक विशुद्ध विज्ञान है, न कि व्यावहारिक विज्ञान**—समाजशास्त्र का तात्कालिक लक्ष्य मानव समाज के बारे में ज्ञान एकत्र करना है, न कि उस ज्ञान का प्रयोग करना। भौतिक-शास्त्री पुल नहीं बनाते, शरीरशास्त्री न्यूमोनिया के मरीजों का इलाज नहीं करते, रसायनशास्त्री रोगियों के लिए दवा के नुस्खे नहीं बनाते। इसी प्रकार, समाजशास्त्री सामाजिक नीतियाँ नहीं बनाते, विधायकों से यह नहीं कहते कि वे कौन से कानून बनायें या किन कानूनों को रद्द कर दें, और न बीमार, लंगड़े, अंधे, बाल अपराधी या निर्धन की सहायता करते हैं। एक विशुद्ध विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र सामाजिक तथ्यों का ज्ञान बटोरता है जो कि अधिशासी, विधायक, कूटनीतिज्ञ, शिक्षक, फोरमैन, संरक्षक, सामाजिक कार्यकर्त्ता, या नागरिक के लिए उपयोगी हो।

(४) **समाजशास्त्र अपेक्षाकृत एक अमूर्त विज्ञान है, न कि मूर्त विज्ञान**—इसका यह अर्थ नहीं है कि यह अनावश्यक रूप से जटिल या कठिन है। इसका केवल यह अर्थ है कि समाजशास्त्र मानव घटनाओं के मूर्त पक्ष पर विचार न करके उन स्वरूपों और प्रतिमानों का अध्ययन है जो यह घटनायें धारण करती हैं। उदाहरण के लिये, समाजशास्त्र किन्हीं विशेष युद्धों और क्रान्तियों में रुचि नहीं रखता परन्तु सामाजिक घटना के रूप में आम युद्ध और क्रान्ति में रुचि रखता है जो बारम्बार होने वाली प्रक्रिया हैं और सामाजिक संघर्ष की किस्में हैं। इसी प्रकार, समाजशास्त्री जापानी, अमेरिकन, ब्रिटिश, जर्मन, भारतीय लोगों में रुचि नहीं रखते बल्कि इस बात में रुचि रखते हैं कि अपनी उत्पत्ति और संस्कृति के अन्तरों के बावजूद भी वे मानव समाजों में रहते हैं जिनकी हर स्थान में सामान्य संरचनात्मक विशेषतायें होती हैं।

(५) **समाजशास्त्र एक सामान्यीकरण करने वाला विज्ञान है, न कि विशेषीकरण करने वाला विज्ञान**—यह मानव अन्त:क्रिया और सम्बन्धों के बारे में सामान्य नियमों या सिद्धान्तों का पता लगाता है, मानव समूहों और समाजों की प्रकृति, स्वरूप, विषय वस्तु और संरचना का पता लगाता है। यह विशेष समाजों या घटनाओं का पूर्ण और व्यापक (comprehensive) वर्णन नहीं करता। यह इस बात में रुचि नहीं रखता कि पाकिस्तान और चीन ने भारत पर आक्रमण किया, बल्कि इस समाजशास्त्रीय सिद्धान्त में रुचि रखता है कि किसी समूह की अन्दरूनी दृढ़ता बढ़ाने में विदेशी आक्रमण एक महत्वपूर्ण कारक है।

(६) **यह युक्तियुक्त और अनुभवसिद्ध विज्ञान है**—समाजशास्त्र में अत्यधिक ध्यानपूर्वक अवलोकन करने के बाद तथ्यों को इकट्ठा किया जाता है। यह उन तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन, वर्गीकरण और उनके पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना के बाद तर्क और वितर्क के बाद उससे सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करता है और इन सिद्धान्तों की परीक्षा वास्तविक रूप से करता है। तर्क और वितर्क करके सिद्धान्त प्रस्तुत करने और तथ्यों की परीक्षा और पुनर्परीक्षा के कारण समाजशास्त्र युक्तियुक्त और अनुभवसिद्ध दोनों ही प्रकार का विज्ञान है। चाहे समाजशास्त्र का नाभीयन कोई विशेष हो जैसा कि हर अन्य विज्ञान के साथ होता है परन्तु गवेषणा का क्षेत्र सामान्य होता है।*

(७) **समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान है, न कि विशेष विज्ञान**—यद्यपि इस सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों में परस्पर मतभेद हैं, फिर भी यह सत्य है कि मनुष्यों के बीच सामाजिक सम्बन्ध और सामाजिक अन्त:क्रियायें मानव जीवन के सब मामलों में होती हैं चाहे यह मामले मुख्य रूप से आर्थिक या राजनीतिक या धार्मिक या मनोरंजनात्मक या कानूनी या बौद्धिक हों। वास्तव में सामाजिक सम्बन्धों को उपर्युक्त अन्य प्रकार के सम्बन्धों से अलग नहीं किया जा सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि समाजशास्त्र ही मूलभूत सामाजिक विज्ञान है, न कि यह कि यही केवल एकमात्र सामान्य सामाजिक विज्ञान है और सामाजिक कारकों में रुचि रखता है चाहे वे किसी भी संदर्भ में क्यों न प्रकट हुए हों।

विशुद्ध और प्रयोगात्मक विज्ञान (Pure and Applied S[illegible]ce)

कभी-कभी भौतिक, जैवकीय और सामाजिक [illegible] में उनकी अन्तर्वस्तु के आधार पर भेद किया जाता है। भौ[illegible]ज्ञान प्रकृति का अध्ययन करता है, जैवकीय विज्ञान जीवित [illegible] का अध्ययन करता है। इस सम्बन्ध में यही कहा

* "The focus of Sociology may be a special one, as is the focus of every other science, but its area of inquiry is general." Bierstedt.

जा सकता है कि विभिन्न विज्ञानों की अन्तर्वस्तु (content) की कोई निश्चित सीमा नहीं है और न उनके बीच में कोई खाई है ।*

इसी प्रकार, कभी-कभी 'विशुद्ध' और 'प्रयोगात्मक, विज्ञानों में अथवा दूसरे शब्दों में सैद्धान्तिक (theoretical) तथा 'व्यावहारिक' (practical) विज्ञानों में भेद किया जाता है। उदाहरण के लिये, भौतिक विज्ञान एक विशुद्ध विज्ञान है; सिविल इन्जीनियरिंग प्रयोगात्मक विज्ञान है। वैद्यकी (medicine) का सिद्धान्त एक विशुद्ध विज्ञान है, किसी साधारण डाक्टर का कार्य प्रयोगात्मक विज्ञान को जन्म देता है। समाजशास्त्र एक विशुद्ध विज्ञान है, सामाजिक कार्य (social work) एक प्रयोगात्मक विज्ञान है। इसी प्रकार, विशुद्ध और प्रयोगात्मक गणितशास्त्र के भी विभिन्न क्षेत्र हैं।

समाजशास्त्र एक 'विशुद्ध' अथवा 'सैद्धान्तिक' विज्ञान है। उसका उद्देश्य हमारी सामाजिक दुर्व्यवस्था को ठीक करना नहीं बल्कि उसके और सामाजिक व्यवस्थाओं के ज्ञान को बढ़ाना है। इसका उद्देश्य समाज सम्बन्धी हमारे ज्ञान को और विकसित करना है।

सामाजिक कार्य (social work) इसके विपरीत एक प्रयोगात्मक विज्ञान है। इसका उद्देश्य मनुष्यों को ट्रेनिंग देना है, जिस प्रकार कि मैडिकल कॉलेज डाक्टरों को प्रशिक्षण देता है जिससे कि वे समाज में निकल कर उसकी तात्कालिक समस्याओं के हल में सहायता दें।

यदि हम सांसारिक ज्ञान को बढ़ाना चाहते हैं और उस पर अपने नियन्त्रण को बढ़ाना चाहते हैं तो हमें 'विशुद्ध' और प्रयोगात्मक' दोनों ही प्रकार के विज्ञान की आवश्यकता होगी। काण्ट ने कहा है "सिद्धान्त के बग़ैर सत्य अन्धा है, सत्य के बग़ैर सिद्धान्त खोखला है।"† राइट ने कहा है "बिना प्रयोगात्मक स्वरूप के समाज शास्त्र का कोई अर्थ नहीं है। समाजशास्त्र प्रयोगात्मक समाजशास्त्र है।"‡

निष्कर्ष

यह हम ऊपर कह चुके हैं कि कुछ लेखकों को समाजशास्त्र को एक विज्ञान मानने में आपत्ति है क्योंकि यह प्रयोग नहीं कर सकता, और इसलिये भविष्यवाणी नहीं कर सकता है। यह सत्य है कि जिस पदार्थ से समाजशास्त्र का सम्बन्ध है—मानव व्यवहार और सम्बन्ध—प्रयोगशाला में इन पर प्रयोग करना न केवल कठिन है बल्कि अक्सर असम्भव है। परन्तु कुछ सीमा के अन्दर, समाजशास्त्र ऐसी प्रविधियों

* Monachesi and Martindale. Elements of Sociology, P. 21

† "Fact without theory is blind, theory without fact is empty." Kant

‡ "Sociology has no meaning apart from its application. Sociology is applied Sociology." Wright.

(techniques) का इस्तेमाल कर सकता है और करता है जो सामाजिक घटनाओं के लिये परिमाणात्मक (quantitative) मापदण्डों का प्रयोग करती हैं। इसलिये इन विधियों की 'प्रयोग' (experimentation) से तुलना की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिक अनुसंधान की दो मौलिक पद्धतियाँ (methods)—निरीक्षण (observation) और तुलना—समाजशास्त्री के पास उसी तरह से हैं जैसे कि किसी भौतिकशास्त्री के पास हैं, और समाजशास्त्री हर समय उनका प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त, सभी भौतिक विज्ञान प्रयोगशालाओं में प्रयोग नहीं करते हैं। ज्योतिषशास्त्र, जो कि सबसे अधिक पुराने विज्ञानों में से एक है, अपने 'पदार्थ' (materials) से प्रयोग (experiment) नहीं कर सकता। स्वर्ग में रहने वाले जीवों को इस बात के लिये प्रेरित नहीं किया जा सकता कि वे प्रयोगशाला में प्रकट हों। जहाँ तक भविष्यवाणी करने का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है (१) कि कोई भी विज्ञान एकदम सच्ची भविष्यवाणी नहीं कर सकता है और (२) समाजशास्त्र भविष्यवाणी करने का प्रयास करता है। सामाजिक जीवन के कुछ क्षेत्रों में कुछ हद तक भविष्यवाणी करना सम्भव है। जैसे-जैसे समाजशास्त्र अधिक प्रौढ़ (mature) होगा और मानव व्यवहार के गूढ़ सिद्धान्तों को अधिक अच्छी तरह से समझने में समर्थ होगा, वह अधिक सही भविष्यवाणी करने योग्य हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त, स्वयं विज्ञान की ऐसे ढंग से परिभाषा दी जा सकती है, और अक्सर दी भी गई है, जो समाजशास्त्र के सम्बन्ध में लगाई गई आपत्तियों को निरर्थक प्रमाणित करती है। उदाहरण के लिये, एक परिभाषा के अनुसार विज्ञान केवल 'संगठित व्यवहार बुद्धि' (organized common sense) है। विद्वानों ने हमेशा ही कहा है कि दृष्टिकोण या उपगमन (approach), न कि पद्धतियों या प्रविधियों का कोई विशेष कुलक (set), यह निश्चित करता है कि कोई शास्त्र विज्ञान है या नहीं। साथ ही, वैज्ञानिक प्रणाली की प्रमुख विशेषता वैषयिक अवलोकन ((objective observation) और देखे गये तथ्यों की सतर्क व्याख्या हैं। यदि समाजशास्त्र ऐसा करता है तो निश्चय ही वह एक विज्ञान है।

---

६ समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र (Scope of Sociology)

समाजशास्त्र का अर्थ :

समाजशास्त्र का भूतकाल बहुत लम्बा है परन्तु इतिहास बहुत छोटा है। सभ्यता के विकास होने के समय से ही समाज अन्दाज और गवेषणा का विषय रहा है। इसीलिये प्लेटो की, 'The Republic' नामक पुस्तक को सबसे महान् समाजशास्त्रीय अनुबन्ध कहा जाता है। परन्तु केवल एक सौ वर्ष से ही समाज का अध्ययन एक अलग विषय और अलग विज्ञान बन सका है। पहले सभी विज्ञान दर्शनशास्त्र के अंग थे। पाश्चात्य सभ्यता के विकास के साथ ही एक-एक करके सब विज्ञान दर्शनशास्त्र से अलग हो गये। उन्नीसवीं शताब्दी में दो नये विज्ञानों का प्रादुर्भाव हुआ। मनोविज्ञान या मानव व्यवहार का विज्ञान और समाजशास्त्र या मानव समाज का विज्ञान।

१९ वीं शताब्दी में फ्रांसीसी दार्शनिक कॉम्त ने समाज का अध्ययन करने वाले विज्ञान का नाम Sociology रखा। यह शब्द Socius जिसका अर्थ साथी या संगी होता है और logos जिसका अर्थ शब्द होता है, के योग से बना है। Socius लैटिन और logos ग्रीक शब्द हैं, और इसलिये जैसा कि बियरस्टैड ने कहा है, हमारे विज्ञान का नाम दो भाषाओं की अवैध सन्तान है।

ऑगस्ट कॉम्ट (August Comte) को समाजशास्त्र का पिता (Father of Sociology) कहा जाता है क्योंकि उन्होंने ही इस शास्त्र को 'समाजशास्त्र' का नाम दिया था। समाजशास्त्र का विज्ञान सौ वर्ष से भी कम आयु का है। समाज का उन्हीं उपकरणों (tools) तथा उसी उत्साह से अध्ययन करना, जिससे कि भौतिक वैज्ञानिक (physical sci ntist) प्राकृतिक संसार का अध्ययन करता है, अधिक आधुनिक है। जिस समय यह नया विज्ञान प्रकट हुआ उस समय संसार समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये तैयार न था। रूस में अपने को समाज-शास्त्री

कहने वाले सर्वप्रथम प्रोफेसर को जार ने देश निर्वासन का दण्ड देकर साइबेरिया भेज दिया क्योंकि जार के विचार में वह समाजवादी (Socialist) था। अमेरिका में 'समाजशास्त्र' शीर्षक की जो सर्वप्रथम पुस्तक प्रकाशित हुई थी वह गुलामी-प्रथा के समर्थन में एक ग्रन्थ था और उसमें एक सामाजिक समस्या के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव था।*

वास्तव में, इससे पहले कोई ऐसा सामाजिक विज्ञान न था जो सामाजिक घटनाओं का पूर्ण रूप से अध्ययन करता। इसलिये एक ऐसे स्वतंत्र शास्त्र की आवश्यकता थी जो सामाजिक प्रक्रियाओं और समस्याओं का सामाजिक पक्षों पर ध्यान केन्द्रित करके अध्ययन करे। कॉम्त से पहले अर्थशास्त्री, राजनीतिशास्त्री और मनोवैज्ञानिक समाज का अध्ययन क्रमशः आर्थिक, राजनीतिक दृष्टिकोणों से करते थे। समाजशास्त्र के जन्म के बाद ही सामाजिक विषयों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन शुरू हुआ और सभी सामाजिक क्रियाओं का भली भाँति अध्ययन किया जाने लगा। इसी पक्ष को ध्यान में रखते हुये हन्टिंगटन ने लिखा है: "समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं का अध्ययन है जिन पर अन्य सामाजिक विज्ञान भी आंशिक रूप से विचार करते हैं परन्तु समाजशास्त्र के अलावा कोई भी अन्य सामाजिक विज्ञान उन सभी घटनाओं या समस्याओं का अध्ययन नहीं करता और न कोई अन्य सामाजिक विज्ञान उनका समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करता है।"†

समाजशास्त्र सामाजिक समूहों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। यह संगठन के अन्दरूनी स्वरूपों या ढंगों, संगठन के इन स्वरूपों को कायम रखने या बदलने वाली प्रक्रियाओं, और विभिन्न समूहों के बीच के सम्बन्ध का अध्ययन करता है।

ब्रूम ने कहा है, समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञानों में एक है। इसका वास्तविक उद्देश्य मानव समाज के मौलिक ढाँचे का पता लगाना, उन शक्तियों को पहचानना है जो समूहों को दृढ़ या कमजोर बनाती हैं, और उन दशाओं का अध्ययन करना है जो सामाजिक जीवन को बदल देती हैं।

समाजशास्त्र समूहों में मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन करता है, या मनुष्यों के बीच होने वाली अन्तःक्रिया का अध्ययन करता है। यह मानव सम्पर्क की प्रकृति

---

* Sociology deals with social phenomena that are in part dealt with by other social sciences, but no social science except sociology studies all of them, and no other social science approaches any of them solely from the point of view of sociologist." Huntington, Sociology and Social Science.

† Martindale and Monachesi, Elements of Sociology. p.19

और उद्देश्य को जानने की कोशिश करता है। यह इस बात का अध्ययन है कि किस प्रकार मानव समूह और सम्बन्ध जन्मते, विकसित होते और बदलते हैं; और उनसे सम्बन्धित विश्वासों और रीतियों का अध्ययन करता है।

यद्यपि समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक सम्बन्धों और उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है जिनके द्वारा मानव समूह कार्य करते हैं, परन्तु मनुष्य के सामाजिक जीवन का विश्लेषण करने के लिये उसके लिये यह भी आवश्यक है कि वह व्यक्ति के शारीरिक और मनोवैज्ञानिक बनावट का, उसके प्राकृतिक स्वभाव और अर्जित स्वभाव दोनों का भी अध्ययन करें।

समाजशास्त्र का मुख्य कार्य मानव समूह और सम्बन्धों के बारे में तथ्य इकट्ठा करना और उनकी व्याख्या करना है न कि सामाजिक समस्याओं को सुलझाना है। इसका अन्तिम लक्ष्य सामाजिक घटनाओं का वैषयिक ज्ञान विकसित करके जीवन के साथ मनुष्य का सामंजस्य सुधारना है।

समाजशास्त्री सामान्य मानव अन्त:क्रिया का अध्ययन करते हैं। वे मानव समूहों में पायी जाने वाली समानता का अध्ययन करते हैं, चाहे वे समूह मनोरंजनात्मक, राजनीतिक, धार्मिक, या शैक्षिक समूह हों। इस प्रकार समाजशास्त्र, विभिन्न मानव समूहों में पायी जाने वाली समानताओं, विभिन्न मानव कार्यों में अन्त:क्रियाओं के सामान्य प्रतिमानों का ज्ञान प्राप्त करने वाला विज्ञान हैं।

समाजशास्त्र मानव जीवन के सामाजिक पहलुओं का वैज्ञानिक अध्ययन है। यह वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा मानव अन्त:क्रिया के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। अन्त:क्रिया से तात्पर्य दो या अधिक व्यक्तियों के बीच होने वाले परस्पर सम्पर्क अर्थात् अन्त:प्रेरणा और प्रतिक्रिया से है।

प्रत्येक मनुष्य किसी समूह में जन्म लेता है और अपना जीवनकाल प्रतिमानों में बंधे हुए सामाजिक सम्बन्धों में व्यतीत करता है। जो कुछ भी वह करता है वह इस बात से निश्चित होता है कि अन्य व्यक्ति इसके साथ और उसके लिये क्या करते हैं और उससे क्या आशा करते और स्वीकार करते हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने सम्बन्धियों, मित्रों और समाज के अन्य सदस्यों से किन्हीं प्रकार के व्यवहारों की आशा करता है और हम इस बात से भी सचेत रहते हैं कि कुछ स्थितियों में दूसरे व्यक्ति हमसे किन्हीं प्रकार के व्यवहारों की आशा करते हैं। यह सत्य यह प्रकट करते हैं कि समूह-जीवन प्रतिमानों से बंधा होता (patterned) है। सामाजिक जीवन का ढाँचा–जिस प्रकार विभिन्न समूह एक साथ रहते हैं और कार्य करते हैं–समाजशास्त्र की विषय-सामग्री है।

मनुष्य के व्यवहार को हम तब तक पूरी तौर पर नहीं समझ सकते हैं जब तक समूहों में उनकी सदस्यता पर विचार न किया जाय। सामाजिक विज्ञान सामान्य

रूप में—परन्तु समाजशास्त्र विशेष रूप से—इस विचार के आधार पर ही विकसित हुए हैं। मनुष्य के व्यवहार के महत्वपूर्ण पहलू उन समूहों की देन हैं जिसका वह कभी सदस्य रहता है। इन व्यवहारों पर अनेक समूहों का प्रभाव पड़ा है।

समाजशास्त्र विद्यार्थी को उस संसार का ज्ञान कराने का प्रयास करता है जिसमें वह रहता है। यह इस विषय का अध्ययन है कि किस प्रकार व्यक्ति एक साथ रहते हैं और समाज में एक साथ रहने के लिए मनुष्यों ने किस प्रकार के नियम बनाये हैं।

समाजशास्त्र एक विज्ञान है जो कि मनुष्यों के जीवन का उनके सम्बन्धों में अध्ययन करता है। यह मनुष्यों में पृथक जीवों (isolated beings) अथवा जैवकीय जीवधारी रचनाओं (biological organism) के रूप में रूचि नहीं रखता है परन्तु ऐसे मनुष्यों का अध्ययन करता है जो एक दूसरे के अनुभवों में भाग लेते हैं और सामूहिक आदतें डालते हैं। यह अनुभव और आदतें, जिनको हम सामाजिक जीवन कहते हैं, प्रत्येक व्यक्तित्व का एक ऐसा अंग बन जाती हैं कि बिना समूह और कार्यों के ढंग को समझते हुए किसी व्यक्ति को नहीं समझा जा सकता। समाजशास्त्र इन कार्यों और व्यक्ति पर उनके प्रभावों का ही अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों की दृष्टि से मानव कार्यों का अध्ययन करता है। जिस प्रकार देह-व्यापार-शास्त्र (Physiology) जैवकीय दृष्टि से मानव कार्यों का अध्ययन करता है, अथवा भूगोल प्राकृतिक भूमि और मनुष्यों की अन्त:क्रियाओं (interaction) का अध्ययन करता है, उसी प्रकार समाजशास्त्र मनुष्यों के अनुभव के उस भाग का वर्णन और अध्ययन करता है जो कि मनुष्य के साथ के संसर्ग से उत्पन्न होता है।

समाजशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि किस प्रकार समाजीकरण (socialization) होता है अथवा किस प्रकार व्यक्ति समाज का सदस्य बनाया जाता है। समाजशास्त्र मुख्यत: सामाजिक अन्त:क्रियाओं (social interaction) की प्रक्रिया (process) से सम्बन्ध रखता है अथवा किस प्रकार अपने व्यवहार में मनुष्य अपने साथियों की उपस्थिति तथा प्रभाव से प्रभावित होते हैं और विभिन्न समूहों और समाजों का एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है।

समाजशास्त्री यह बतलाता है कि किस प्रकार व्यक्तित्व का निर्माण होता है, सामाजिक संगठन बनता है और कार्य करता है, और सामूहिक कार्य होता है। वह मानव स्वभाव की विशेषताओं और पर्यावरण और शिल्पविज्ञान (technology) से प्रभावित मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में रुचि रखता है।

कॉम्त और ले प्ले, स्पेन्सर और वार्ड, गिडिंग्स और स्मॉल, दुरखाइम और सिमैल, रॉस और कूले के समय से ही समाजशास्त्रियों ने समाजशास्त्र के अध्ययन

क्षेत्र की सीमा को बाँधने के प्रयत्न किये हैं। फिर भी, समाजशास्त्र की विषय-सामग्री के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों में कोई एक सी राय क़ायम नहीं हो सकी है।

गिन्सबर्ग (Ginsberg) ने कहा है कि मोटे तौर पर समाजशास्त्र मानव अन्त:क्रियाओं और अन्त: सम्बन्धों, उनकी शर्तों और परिणामों का अध्ययन है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्र समाज में व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन, अपने को जीवित रखने और अपनी इच्छाओं और स्वार्थों को पूरा करने के लिये की गई मनुष्य की सभी क्रियाओं का अध्ययन है। वह उन सभी नियमों का अध्ययन करता है जो मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को परिभाषित और निश्चित करते हैं। इसके अतिरिक्त, समाज के सदस्यों के रूप में क्रियायें करते हुये मनुष्य ज्ञान और विश्वास, कला और नीतियों, और आदतों की विभिन्न प्रणालियों को विकसित करते हैं। यह सब, इस प्रकार, समाजशास्त्र की विषय सामग्री का अंग हुये। परन्तु, जैसा कि गिन्सबर्ग ने कहा है, समाजशास्त्र की यह परिभाषा बहुत वृहत् है और इससे समाज शास्त्र को एक विशिष्ट विज्ञान के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए हमें समाजशास्त्र की कोई दूसरी परिभाषा ढूंढ़नी पड़ेगी।

मैक आइवर और पेज के अनुसार समाजशास्त्र मनुष्यों के सामाजिक सम्बन्धों का, जिनके जाल को हम समाज कहते हैं, अध्ययन करता है। कोई अन्य सामाजिक विज्ञान इस प्रकार का अध्ययन नहीं करता। समाजशास्त्र ही अकेला वह विज्ञान है जो सामाजिक सम्बन्धों का सामाजिक सम्बन्धों के रूप में अध्ययन करता है। वह स्वयं समाज का अध्ययन करता है। अन्य सामाजिक विज्ञानों का ध्यान-केन्द्र पूर्ण समाज और सामाजिक सम्बन्ध नहीं होते। ध्यान-केन्द्र के ही आधार पर एक सामाजिक विज्ञान का किसी अन्य सामाजिक विज्ञान से भेद किया जाता है। अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, और सांस्कृतिक मानवशास्त्र यह सब एक सी बाहरी घटनाओं का, सामाजिक जीवन के तथ्यों का भिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन करते हैं। समाजशास्त्री संस्कृति, धर्म, कला, उद्योग, आविष्कार, राज्य और सरकार में वहीं तक रुचि रखते हैं जहां तक वह सामाजिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं।

इस प्रकार, समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य सामाजिक सम्बन्धों के प्रकारों और स्वरूपों का वर्गीकरण करना है। दूसरे, समाजशास्त्र सामाजिक जीवन के विभिन्न भागों या कारकों के बीच सम्बन्ध निश्चित करने का प्रयत्न करता है। तीसरे, यह सामाजिक परिवर्तन और स्थिरता की मौलिक शर्तों या दशाओं की खोज करने का प्रयत्न करता है।

अनेक समाजशास्त्रियों ने उन समस्याओं की चर्चा की है जिनका अध्ययन विशेषरूप से समाजशास्त्र करता है।

(i) **सामाजिक संरचना (social structure)** : सामाजिक संरचना के कौन से तत्व हैं ? किस हद तक भिन्न सामाजिक प्रणालियाँ एक दूसरे से मिलती जुलती हैं और भिन्न हैं ?

(ii) **सामाजिक प्रकार्य (social functions)** : किस प्रकार भिन्न सामाजिक प्रणालियों के ढाँचे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं ? क्या संगठन और प्रकार्य में कोई सम्बन्ध है ?

(iii) **सामाजिक अन्तःक्रिया (social interaction)** : मानव जीवन में सहयोग, संघर्ष और प्रतियोगिता कौन सी भूमिका अदा करते हैं ? सामूहिक व्यवहार के कौन से गतिशील पहलू हैं ?

(iv) **व्यक्ति और समाज (individual and society)** : किस अर्थ में मनुष्य एक समाजिक प्राणी है ? किस प्रकार समाज भिन्न प्रकार के व्यक्तियों को बनाता है ?

(v) **सामाजिक परिवर्तन (social change)** : किन कारणों से सामाजिक परिवर्तन आते हैं और सामाजिक परिवर्तन में कौन सी बाधायें आती हैं ? सामाजिक परिवर्तन के कौन से प्रतिमान हैं ?

अभी तक किसी भी शास्त्री ने समाजशास्त्र की ऐसी परिभाषा नहीं दी है जिसको पूरी तौर पर स्वीकार कर लिया जाय। मतों में विरोध होने का कारण यह है कि समाजशास्त्र विज्ञान के तौर पर अभी अपने निर्माण काल में है। यदि किसी प्रमाणित विज्ञान (recognized science) को लिया जाय तो उसकी परिभाषा पर एकमत होना कठिन न होगा। वैद्यशास्त्र, उदाहरण के लिए व्यावहारिक विज्ञान (practical science) बताया जाता है जो कि मानव शरीर के कार्यों की बीमारियों को रोकने या आरोग्य करने की दृष्टि से अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र की परिभाषायें :

समाजशास्त्र की जो परिभाषायें प्रमुख समाजशास्त्रियों ने दी हैं वे एकदम मिलती जुलती नहीं हैं। इन परिभाषाओं में से जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं और लोकप्रिय हैं उन्हें हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं : (i) वह परिभाषायें जो समाजशास्त्र को 'समाज का विज्ञान' बताती हैं; (ii) वह परिभाषायें जो समाजशास्त्र को 'समूहों का अध्ययन' बताती हैं; और (iii) वह परिभाषायें जो समाजशास्त्र को 'सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन' बताती हैं। अब हम इन तीनों प्रकार की परिभाषाओं की व्याख्या करेंगे जिससे यह स्पष्ट हो सके कि आखिर समाजशास्त्र है क्या और यह किस वस्तु का अध्ययन करता है।

(१) समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है (Sociology is the Science of Society)

वार्ड : समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है ।

L. F. Ward : Sociology is the science of society

गिडिंग्स : समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है ।......विकासक्रम में सामूहिक रूप से लगे हुये भौतिक, प्राणिक और मानसिक कारणों द्वारा हुये समाज के जन्म, विकास, ढाँचे तथा क्रियाओं की व्याख्या ही समाजशास्त्र है ।

F. H. Giddings : Sociology is the scientific study of society... An attempt to account for the origin, growth, structure aud activities of society by the operation of physical, vital and psychological causes working together in a process of evolution.

गिडिंग्स : समाजशास्त्र समग्र रूप से समाज का क्रमबद्ध वर्णन और व्याख्या है ।

Giddings : Sociology is a systematic description and explanation of society viewed as a whole.

हेज़ : समान्यतया समाजशास्त्र को समाज के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है ।

Hayes : Sociology is commonly defined as the science of society.

गिन्सबर्ग : समाजशास्त्र को समाज, जो मानव अन्त:क्रियाओं और अन्त:-सम्बन्धों का जाल है, का अध्ययन कहा जा सकता है ।

Ginsberg : Sociology may be defined as the study of society, that is the web or tissue of human interactions and interrelations.

उपरोक्त परिभाषाओं में दो ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनकी व्याख्या करना आवश्यक है : विज्ञान और समाज ।

विज्ञान क्या है ? विज्ञान को ज्ञान-काय (body of knowledge) कहा जाता है । इस प्रकार का ज्ञान क्रमबद्ध अवलोकन (systematic observation), अनुभव और उन तथ्यों के अध्ययन द्वारा अर्जित किया जाता है जिनका आपस में सम्बन्ध और वर्गीकरण किया जा चुका है । इस प्रकार, वैज्ञानिक विधि की तीन प्रक्रियायें हैं : पहला, तथ्यों को इकट्ठा करना और उनका वर्गीकरण; दूसरा, इन तथ्यों को कार्य-कारण त्रम में रखना; और तीसरे, फिर मूलभूत नियमों का सामान्यीकरण करना । समाजशास्त्र समाज के विज्ञान के रूप में समाज के बारे में उस ज्ञानकाय का संकेत करता है जिसका अच्छी तरह परीक्षण किया जा चुका है और जो सही पाया गया है । सामाजिक घटनाओं की गूढ़ता के बावजूद भी काफी हद

तक सही ढंग से कार्य-कारण सम्बन्धों और प्रकार्यात्मक सम्बन्धों को निश्चित किया जा चुका है। उदाहरण के लिये, दुरखाइम ने आत्महत्या की दरों और सामाजिक समूह के एकीकरण (integration) की मात्रा के बीच सम्बन्ध स्थापित किया। जनसंख्या, परिवार, समूह-व्यवहार, संस्थाओं का मूल्यांकन, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं और अन्य क्षेत्रों में तथ्यों के अवलोकन और विश्लेषण के लिये अपनाये गये वैज्ञानिक तरीकों ने मनुष्य और उसके समाज के बारे में हमारे ज्ञान को बढ़ाया है।

समाज क्या है ? समाज को हम सामाजिक सम्बन्धों के एक जटिल जाल और निरन्तर बदलते हुये प्रतिमान के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। जब कभी भी दो या दो से अधिक व्यक्ति एक साथ रहते हैं या बाजार आदि में मिलते हैं तो उनमें सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। यह सम्बन्ध अनेक प्रकार के होते हैं। वे आर्थिक या राजनीतिक या धार्मिक हो सकते हैं परन्तु साथ ही साथ वे सामाजिक भी होते हैं। जो कुछ भी व्यक्ति करता है, वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सम्बन्ध को दृष्टि में रख कर करता है।

व्यक्ति का व्यक्ति के साथ प्रत्येक सम्बन्ध सामाजिक नहीं होता। सामाजिक सम्बन्ध होने के लिए यह आवश्यक है कि सम्बन्ध 'पारस्परिक जागरूकता' (mutual awareness) पर आधारित हों। इस जागरूकता के बग़ैर, जैसा कि मैकआइवर और पेज ने कहा है, 'न कोई सामाजिक सम्बन्ध हो सकता है, न समाज।' (Mac Iver and Page : Without this recognition there is no social relationship, no society.)

पारस्परिक जागरूकता के अतिरिक्त सामाजिक सम्बन्धों में सामुदायिक भावना जैसी बात भी होती है। यदि दो व्यक्ति यह अनुभव नहीं करते कि उनमें कोई सामान्य विशेषता है तो उनके बीच सामाजिक सम्बन्ध नहीं हो सकता, समाज सम्भव नहीं है। इसलिये, समाज केवल ऐसे व्यक्तियों के बीच में पाया जाता है जो शरीर और मन से एक दूसरे से मिलते जुलते हैं और जो इतने नजदीक या बुद्धिमान हैं कि इस बात को समझते हैं।' परन्तु समाज के लिये केवल समानता ही आवश्यक नहीं है, असमानता भी आवश्यक है।

यदि लोग एकदम एक से होते तो उनके बीच बहुत कम सामाजिक सम्बन्ध होते, उनके बीच बहुत कम लेन-देन, पारस्परिक आदान प्रदान की क्रियायें होतीं। प्रत्येक समाज में प्रत्येक सदस्य कुछ प्राप्त करना चाहता है और कुछ देता है। इस प्रकार, समाज समानता और असमानता, सहयोग और संघर्ष, सहमति और असहमति पर निर्भर करता है।

(२) समाजशास्त्र समूहों का अध्ययन है
(Sociology is the study of groups)

जानसन : समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक समूहों का अध्ययन करता है : समूहों के आन्तरिक स्वरूपों या संगठन के ढंगों का, उन प्रक्रियाओं का जो संगठन के इन स्वरूपों को कायम रखते या बदलते हैं, और समूहों के बीच सम्बन्धों का।

Johnson : Sociology is the science that deals with social groups : their internal forms or modes of organization, the processes that tend to maintain or change these forms of organization, and the relations between groups.

सामाजिक समूह के विज्ञान का महत्व हम आसानी से समझ सकते हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति किसी परिवार-समूह में जन्म लेता है, और हमारी अधिकतर क्रियायें इस या उस समूह के सदस्य के रूप में की जाती हैं। सभी सामाजिक समस्याओं जैसे बाल-अपराध, प्रजातीय, भेदभाव, मकानों की समस्या, शिक्षा की समस्या और युद्ध का सम्बन्ध समूहों से या समूहों के बीच अन्तःक्रिया से होता है। विशेष समूहों का गहरा ज्ञान प्राप्त होने पर ही सामाजिक नीतियाँ बनायी जाती हैं।

अनेक समाजशास्त्रियों के अनुसार, समाजशास्त्र मनुष्य का समूह के सदस्य के रूप में और संस्कृति में भाग लेने वाले के रूप में अध्ययन करता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति समूहों में रहता है और निरन्तर अपने साथियों के साथ नये समूहों का निर्माण करता रहता है। व्यक्ति का समूहों में विकास होता है—परिवार समूह में, रक्त-सम्बन्धियों के समूह में, खेल-कूद के साथियों के समूह में, पड़ोस-समूह में, समुदाय-समूह में, स्कूल-समूह में, व्यावसायिक-समूह में, राजनीतिक दल, धार्मिक समूह, प्रजातीय या जाति समूह में। यह सभी समूह मिलकर सामाजिक ढाँचे का जटिल प्रतिमान बनाते हैं। यह समूह व्यक्तिगत सदस्यों को इस योग्य बनाते हैं कि वे अपने सामान्य लक्ष्यों या स्वार्थों की पूर्ति कर सकें। प्रत्येक समूह सामाजिक अन्तःक्रिया की एक प्रणाली भी होता है। यह हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

जब दो व्यक्ति अन्तःक्रिया करते हैं तो वे एक दूसरे को ध्यान में रखते हैं, न केवल एक भौतिक वस्तु के रूप में बल्कि एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसकी कुछ मनोवृत्तियाँ, आकाँक्षायें और दूसरे के कार्यों का मूल्याँकन करने की क्षमता होती है। इस प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति की क्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि वह दूसरे के प्रति कैसी मनोवृत्ति रखता है और दूसरे से किस प्रकार की प्रतिक्रिया की आशा

रखता है। प्रत्येक व्यक्ति की क्रिया उसके लिये अर्थपूर्ण होती है और कुछ हद तक उसका स्वयं के लिए अर्थ इस बात पर निर्भर करता है कि जिस व्यक्ति के साथ वह अन्त:क्रिया करता है उसके द्वारा लगाये जाने वाले अर्थ के बारे में उसकी क्या धारणा है, वह क्या समझता है कि उसका दूसरा व्यक्ति क्या अर्थ लगायेगा।

(२) समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन है (Sociology is the study of social relationships)

हिलर : समाजशास्त्र व्यक्तियों के आपसी सम्बन्ध, एक दूसरे के प्रति उनका व्यवहार, व्यवहारों को नियंत्रित करने वाले मापदण्डों का अध्ययन है।

Hiller : Sociology is a study of the relations between individuals, their conduct with reference to one another and the standards by which they regulate their association.

मैकाइवर और पेज : समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र सामाजिक सम्बन्ध है...... समाजशास्त्र में सामाजिक सम्बन्धों पर विचार होता है और इन सम्बन्धों की व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।

McIver and Page : The subject matter of sociology is social relationships as such...... Sociology is about social relationships, the network of relationships we call society.

गिलिन और गिलिन : समाजशास्त्र जीवित प्राणियों के एक दूसरे के सम्पर्क में आने के कारण उत्पन्न होने वाली अन्त:क्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान है।

Gillin and Gillin : Sociology in its broadest sense may be said to be the study of interactions arising from the association of living beings.

गिन्सबर्ग : समाजशास्त्र व्यक्तियों की अन्त:क्रियाओं और अन्त:सम्बन्धों, उनकी दशाओं और परिणामों का अध्ययन है।

Ginsberg : Sociology is the study of human interactions and interrelations, their conditions and consequences.

समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन है। जॉर्ज सिमैल, वॉन वीज, पार्क, बर्जेस, वैबर आदि समाजशास्त्रियों का कहना है कि सामाजिक सम्बन्ध ही समाजशास्त्र की वास्तविक विषय-सामग्री है। सिमैल ने कहा : समाजशास्त्र व्यक्तियों के अन्त:सम्बन्धों के स्वरूपों का विज्ञान हैं। (Sociology is the science of the forms of human interrelations) इन लेखकों के विचार में यदि समाजशास्त्र को एक अलग विज्ञान के रूप में विकसित होना है तो इसे 'सामाजिक सम्बन्धों' को ही अपने अध्ययन का विषय बनाना चाहिये क्योंकि कोई अन्य सामाजिक विज्ञान विशेष रूप से सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन नहीं करता।

प्रत्येक समाज में हजारों किस्म के सामाजिक सम्बन्ध पाये जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति समाजशास्त्र के अन्दर मौजूद समूहों का सदस्य होता है और प्रत्येक समूह के अन्दर सम्बन्ध होते हैं। उदाहरण के लिये, हम किसी परिवार को ले सकते हैं। इसमें अनेक प्रकार के सम्बन्ध पाये जाते हैं जैसे पति-पत्नी के बीच, पिता और सन्तान के बीच, भाई और बहन के बीच, बाबा और नाती के बीच, आदि। इसलिये, सामाजिक सम्बन्धों का वर्गीकरण किया जाना चाहिये और उनके विशेष स्वरूपों, किस्मों आदि का अध्ययन करना चाहिये।

जे० बी० मैककी (J. B. Mckee) ने अपनी Introduction of Sociology नामक पुस्तक में इस बात पर बल दिया है कि सामाजिक सम्बन्ध ही समाजशास्त्र की वास्तविक विषय-सामग्री है। उन्होंने कहा कि यद्यपि सामाजिक क्रिया, सामाजिक संरचना, सामाजिक प्रक्रियायें, सामाजिक संस्थायें और समाज ही समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के आधार मालूम होते हैं परन्तु वास्तविकता तो यह है कि उपरोक्त सभी तथ्यों और प्रक्रियाओं का निर्माण भी सामाजिक सम्बन्धों के ही द्वारा होता है। उन्होंने आगे कहा कि चाहे हम स्थिर सामाजिक बातों का अध्ययन कर रहे हों या बदलने वाली सामाजिक बातों का, हमारा वास्तविक उद्देश्य सामाजिक सम्बन्धों के एक विशेष स्वरूप का ही अध्ययन करना है। इन्हीं बातों को दृष्टि में रखकर क्यूबर (Cuber) ने सामाजिक सम्बन्धों को 'समाजशास्त्र की आधारशिला' कहा है। क्यूबर के शब्दों में : "समाजशास्त्र को मानव सम्बन्धों के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने वाले शास्त्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।" (Sociology may be defined as a body of scientific knowledge about human relationships.)

कुछ लेखकों ने **सामाजिक कार्यों और व्यवहारों** के आधार पर समाजशास्त्र की व्याख्या करने की कोशिश की है। उदाहरण के लिये, मैक्स वैबर (Max Weber) ने कहा है: समाजशास्त्र वह विज्ञान है तो सामाजिक क्रियाओं का विश्लेषणात्मक बोध कराने का प्रयत्न करता है। (Sociology is the science which attempts the interpretative understanding of social action) हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्र उन व्यवहारों का अध्ययन करता है जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को या उनके साथ अपने सम्बन्धों को दृष्टि में रखकर करता है। इन लेखकों के विचार में यदि हम उन सामाजिक क्रियाओं और व्यवहारों का अध्ययन करें जिनके कारण समाज चल रहा है तो हम समाज के बारे में अच्छी जानकारी हासिल कर सकते हैं। सत्य तो यह है कि जो कुछ भी सामाजिक क्रियायें व्यक्ति करते हैं उनके मूल में सामाजिक सम्बन्ध होते हैं।

वास्तव में, समाजशास्त्र का क्षेत्र असीमित तथा अनिश्चित सा है। मनुष्य

के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्यायें और बातें होती हैं। समाजशास्त्र इन सबका अध्ययन करता है। यही कारण है कि **हन्टिंगटन** (Huntington) ने लिखा : "जब तक कि समाजशास्त्री स्वयं अपने विषय की सीमा निश्चित नहीं करेंगे तब तक उसके विषय में यही कहना ठीक रहेगा कि जिस किसी भी विषय पर वह लोग लिखते रहेंगे वही समाजशास्त्र का विषय हो जायेगा।"

समाजशास्त्र की विषय-वस्तु
(Subject matter of Sociology)

समाजशास्त्र का अध्ययन-क्षेत्र क्या है इस सम्बन्ध में समाज-शास्त्रियों ने दो प्रकार के उत्तर दिये हैं, और उन्होंने समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के सम्बन्ध में दो विभिन्न प्रकार की विचारधारायें प्रस्तुत की हैं। एक ओर कुछ लेखकों का समूह, जिनके उदाहरण सिमैल और उनके समर्थक हैं, समाजशास्त्र को सामाजिक अध्ययन की अन्य शाखाओं से अलग कर देना चाहता है और मानव सम्बन्धों के कुछ स्पष्ट पहलुओं के अध्ययन तक ही सीमित रखना चाहता है। लेखकों के दूसरे समूह का यह विचार है कि किसी भी एक विषय के लिये सामाजिक अनुसंधान का क्षेत्र बहुत बड़ा है, और यदि इसमें कोई उन्नति करनी है तो विशेषीकरण (specialization) और श्रम-विभाजन (division of labour) की आवश्यकता है। इस दूसरे समूह ने इस बात पर भी बल दिया है कि अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र (anthropology), तुलनात्मक धर्म, तुलनात्मक कानून आदि के अतिरिक्त एक और सामान्य विज्ञान—समाजशास्त्र—की आवश्यकता है जिसका कार्य विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों के फलों को एक दूसरे से जोड़ना, सामाजिक जीवन की सामान्य दशाओं का अध्ययन करना होगा जो अपने सामान्यरूप के कारण विशेषज्ञों द्वारा छोड़ दी जाती हैं। समाज का समग्ररूप से अध्ययन करना आवश्यक है। समाजशास्त्र का एक विशिष्ट शास्त्र (specialism) के रूप में, और सब सामाजिक अध्ययन के संकलन (synthesis) के रूप में, अध्ययन का क्षेत्र बताने वाले, दोनों ही के अनेक समर्थक हैं। इस प्रकार, समाजशास्त्र के विषय-क्षेत्र के सम्बन्ध में प्रस्तुत विचारों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं–(अ) विशेषात्मक दृष्टिकोण, और (ब) समन्वयात्मक दृष्टिकोण।

(अ) विशेषात्मक दृष्टिकोण (Specialism)

(१) **जॉर्ज सिमैल**—सिमैल का समाजशास्त्र सम्बन्धों के स्वरूपों और उसकी विषय वस्तु (content and matter) पर आधारित हैं। इन सम्बन्धों के—उदाहरण के लिए जैसे स्पर्धा (competition), अधस्थ होना (subordination), श्रेणीबद्ध संगठन (hierarchical organization), श्रम विभाजन (division of labour)—उदाहरण हमें सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मिलते हैं जैसे कि आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक तथा कलात्मक। सामान्य समाजशास्त्र का

कार्य इन सामाजिक सम्बन्धों को अलग करना और उनका अमूर्त रूप (abstraction) में अध्ययन करना है। इस दृष्टिकोण के अनुसार समाजशास्त्र और अन्य विशेष सामाजिक विषयों का यह सम्बन्ध है कि यह सब ही समान विषयों का अध्ययन करते हैं परन्तु विभिन्न दृष्टिकोणों से।

सिमैल के विचार में समाज मनुष्यों का समूह नहीं है बल्कि यह सदस्यों के विचारों पर आश्रित है। मनुष्य अपने विचारों तथा धारणाओं के अनुसार सामाजिक सम्बन्धों को स्थापित करता है। इस प्रकार व्यक्तियों के जो पारस्परिक सम्बन्ध होते हैं उनका योग ही समाज है। यह सामाजिक सम्बन्ध सामाजिक जीवन के सब क्षेत्रों में पाये जाते हैं। पर यदि हम इन सामाजिक सम्बन्धों के विभिन्न प्रकार का अध्ययन करने लगें तो हमारे कार्यों का कभी भी अन्त न होगा। इसलिये सामाजिक सम्बन्धों को अमूर्त रूप से जानने का प्रयत्न होना चाहिये। अनेक सामाजिक विज्ञान समाज के तत्व या अंतर्वस्तु (contents and matter) का अध्ययन करते हैं, इसलिये समाजशास्त्र केवल सामाजिक स्वरूप का ही अध्ययन करेगा।

सिमैल ने सामाजिक व्यवहार के दो रूप बतलाये हैं (१) मूर्त और (२) अमूर्त। सिमैल के विचार में समाजशास्त्र में समाजशास्त्र को अमूर्त व्यवहारों का ही अध्ययन करना चाहिये और मूर्त व्यवहारों का अध्ययन अन्य सामाजिक विज्ञानों द्वारा होना चाहिये। सामाजिक सम्बन्ध प्रेम, घृणा, सहयोग, संघर्ष आदि पर आधारित हैं। यह अमूर्त हैं। इसलिये समाजशास्त्र को इनका अध्ययन करना चाहिये। दूसरी ओर, इन अमूर्त सम्बन्धों के कारण समाज में भी सम्बन्ध प्रकट होते हैं। उदाहरण के लिये, सहयोग, जो अमूर्त वस्तु है, के कारण ही उत्पादन क्षेत्र में श्रम-विभाजन के माध्यम से उत्पादन होता है, राजनैतिक दल शासन करते हैं या पूजा पाठ साथ साथ करते हैं। यदि हमें समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन-क्षेत्र अलग अलग करना है तो उपरोक्त घटना में केवल सहयोग का अध्ययन समाजशास्त्र द्वारा तथा मूर्त सम्बन्धों का अध्ययन अन्य सामाजिक विज्ञानों द्वारा होना चाहिये, जैसे उत्पादन-प्रणाली का अध्ययन अर्थशास्त्र द्वारा, राजनीतिक क्रियाओं का अध्ययन राजनीतिक शास्त्र द्वारा, और पूजा पाठ का अध्ययन धर्मशास्त्र द्वारा होना चाहिये।

सिमैल के विचार में समाजशास्त्र एक विशिष्ट सामाजिक विज्ञान है और उसे (i) सामाजिक सम्बन्ध, (ii) सामाजीकरण की प्रक्रिया, (iii) सामाजिक संगठन के स्वरूप, और समाज के वर्गीकरण का अध्ययन करना चाहिये।

(२) **स्मॉल के विचार (The views of Small)**—स्मॉल के विचार सिमैल के विचारों से मिलते जुलते हैं। इनके विचार में समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र सामाजिक घटनाओं का प्रजातिक रूप है। जिस प्रकार मानव की शरीर

रचना में वाहकाणु (genes) होते हैं जो शरीर के रंग, रूप, आकार को निश्चित करते हैं उसी प्रकार समाज में भी कुछ केन्द्रिय धारणायें होती हैं जो सबसे अधिक महत्व की होती हैं। उदाहरण के लिये, राज्य-शासन की प्रणालियों के अनेक रूप हो सकते हैं जैसे तानाशाही, प्रजातंत्र, राजतंत्र आदि। परन्तु इन सबका आधार एक केन्द्रिय शक्ति है। राज्य की शक्ति—समाजशास्त्र को ऐसी ही केन्द्रिय धारणाओं का अध्ययन करना चाहिये। स्मॉल ने कहा कि जिस प्रकार अन्य सामाजिक विज्ञानों का क्षेत्र सीमित है, इसी प्रकार समाजशास्त्र का अध्ययन -क्षेत्र भी सीमित होना चाहिये।

(३) **वीरकान्त के विचार (Vierkandt's view)**—इसी प्रकार वीरकान्त भी समाजशास्त्र को एक विशिष्ट विज्ञान (specialism) मानता है जो उन सामाजिक बन्धनों के अन्तिम स्वरूपों का वर्णन करता है जो कि समाज में मनुष्यों को एक दूसरे से बाँधते हैं। वास्तविक ऐतिहासिक समाज, उदाहरण के लिए अठारहवीं शताब्दी का फ्रांसीसी समाज अथवा चीनी परिवार, विशेष प्रकार के सम्बन्धों जैसे कि शक्ति अथवा सहयोग के उदाहरणों के कारण ही रोचक (interesting) थे, किन्तु समाजशास्त्र को यदि अस्पष्टता तथा अनिश्चितता के आरोपों से मुक्त होना है तो उसे किसी मूर्त समाज का ऐतिहासिक अध्ययन न करना चाहिए। वीरकान्त के विचार में समाजशास्त्र का उद्देश्य—आदर के भाव, लज्जा, प्रेम और घृणा, समर्पण, दूसरों की स्वीकृत की आवश्यकता का अनुभव, बन्धन जो व्यक्तियों को एक समूह में बाँध देते हैं—कभी न कम होने वाले इन सामाजिक सम्बन्धों की श्रेणियों का अध्ययन करना है। इसी प्रकार संस्कृति पर विचार करते समय, समाजशास्त्र को साँस्कृतिक उद्विकास (cultural evolution) की विषय वस्तु को लेकर किसी इतिहासकार से प्रतिद्वन्द्विता नहीं करनी चाहिए। वीरकान्त के अनुसार समाजशास्त्र को सामाजिक परिवर्तन और स्थिरता की मूल-धारणा की खोज तक ही अपने को सीमित रखना चाहिये।

(४) **वानवीज के विचार (The views of Von Wiese)**—वॉनवीज ने मानव सम्बन्धों के सभी क्षेत्रों करने (systematize) का प्रयत्न किया है। उसके सिद्धान्त में तीन विषय को क्रमबद्ध मुख्य हैं—सामाजिक प्रक्रिया (social-process), सामाजिक सम्बन्ध और सामाजिक ढाँचा। इसमें सामाजिक प्रक्रिया की मूल श्रेणी है। यह सामाजिक संगम व विलग होने (association and dissociation की विभिन्न मात्राओं तथा दिशाओं का अध्ययन करता है।

(५) **मैक्स वैबर के विचार (Max Weber)**— मैक्स वैबर ने एक ठोस और ऐतिहासिक दृष्टि से समाजशास्त्र का विवेचन किया है, यद्यपि कि उसने भी समाजशास्त्र के लिए एक विशिष्ट क्षेत्र ढूंढ़ने का प्रयास किया है। समाजशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक व्यवहार की व्याख्या करना अथवा उसे 'समझना' है। सामाजिक

व्यवहार के अन्तर्गत मानव सम्बन्धों का सम्पूर्ण क्षेत्र नहीं आता है। सामाजिक व्यवहार वह क्रिया है जिसमें कर्त्ता के कार्य में दूसरों के व्यवहारों का विवरण मिलता है और जो दूसरों के व्यवहारों से निश्चित होता है। सम्पूर्ण मानव अन्तः क्रियायें (interaction) सामाजिक नहीं हैं। उदाहरण के लिये, दो साइकिल सवारों की टक्कर केवल एक प्राकृतिक घटना है जबकि एक दूसरे के मन में पहले से ही एक दूसरे के व्यवहार के प्रति कोई पूर्व धारणा नहीं है, परन्तु उनके एक दूसरे को बचाने के प्रयत्न अथवा घटना के बाद प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा वास्तविक सामाजिक व्यवहार हैं। समाजशास्त्र इस प्रकार की घटनाओं के होने की सम्भावना में दिलचस्पी रखता है।

(६) **बोगल के विचार** (The views of Bogel)—बोगल ने भी सिमैल से सहमति प्रकट करते हुए कहा : Sociology is the study of social forms अर्थात् समाजशास्त्र सामाजिक स्वरूपों का अध्ययन है। उसने समाजशास्त्र को एक विज्ञान मानते हुए यह भी कहा कि समाजशास्त्र को केवल रिक्त पदार्थ का दर्शन-शास्त्र भी नहीं बना देना चाहिये।

(७) **रॉस के विचार** (The views of Ross)–रॉस भी सिमैल के विचारों का समर्थक था और उसने एक व्यवस्थित समाजशास्त्र को प्रस्तुत करने की कोशिश की। उसने कहा कि समाजशास्त्र को अध्ययन करते समय चार सामाजिक प्रक्रियाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिये—शोषण, विरोध, संगति (association) और प्रबलता।

विशेषात्मक सिद्धान्त की समालोचना
(Criticism of The Theory of Specialism)

इस विचारधारा के लोग अत्यन्त प्राचीन हैं। उपर्युक्त लेखकों ने इस विचार-धारा को व्यवस्थित और स्पष्ट बना दिया है, फिर भी इनमें अनेक दोष हैं।

(१) इस विचारधारा के प्रवर्तकों का यह विचार बिल्कूल निर्मूल है कि सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप का अध्ययन कोई भी अन्य शास्त्र नहीं करता। विधि के विज्ञान (Science of Law) के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि स्वरूपों का अध्ययन अवश्य हुआ है। अधिकार शक्ति, आदर, संघर्ष, स्वामित्व, दासत्व, आज्ञा पालन, सरकार आदि घटनाओं के स्वरूप, उत्पत्ति, और कार्य का विधि के विज्ञान द्वारा अध्यन सदा से ही होता आ रहा है। इस प्रकार अर्थशास्त्र भी सहकारिता और प्रतिस्पर्धा का अध्ययन करता है जो कि सामाजिक सम्बन्धों के दो प्रमुख स्वरूप हैं। वास्तव में यह बात सब सामाजिक विज्ञानों के लिए सत्य है। इसलिए समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र केवल स्वरूपों के अध्ययन तक सीमित नहीं रह सकता।

(२) राइट (Wright) का विचार है कि शुद्ध स्वरूपों के अध्ययन का

फल अमूर्त सिद्धान्त है जो या तो इतने सामान्य हैं कि हमारे मस्तिष्क में ऐसे विचार उत्पन्न हो जाते हैं कि इन सिद्धान्तों को हम बिना तर्क किये हुये भी पा सकते थे, या वह इतने अधिक अस्पष्ट हैं कि पाठक झुंझलाकार कहता है कि क्या इनका भी कोई अर्थ हो सकता है ? सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन व्यर्थ होगा, यदि इसे मूर्तमान सामाजिक जीवन से दूर रख कर केवल अमूर्त स्वरूपों के अध्ययन का विज्ञान बना लिया जायेगा। इसलिए आधुनिक समाजशास्त्री इसके विषय-क्षेत्र में स्वरूपों (forms) के अध्ययन को स्वीकार नहीं करते।

(३) **समग्ररूप में अध्ययन आवश्यक है**—यह सिद्ध हो चुका है कि सामाजिक जीवन के सभी भाग एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं और आपस में गुथे हुये हैं। यदि समाज एक जीवधारी रचना या शरीर (organism) नहीं है तब भी इसके स्वभाव में कुछ न कुछ शारीरिक तत्व इस अर्थ में विद्यमान है कि उसके सब भाग मिलकर कार्य करते हैं और किसी एक जगह के अन्तर का सम्पूर्ण समाज पर प्रभाव पड़ता है। इसलिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि समाजों का समग्र रूप (as wholes) में अध्ययन करना चाहिए, और इसके विभिन्न तत्वों की अन्तःक्रियाओं (interactions) की प्रकृति को समझना चाहिए। विशेषज्ञ सामाजिक जीवन के उन विषयों को प्रधानता देता है जिनसे उसका विशेष सम्बन्ध है। उदाहरण के लिये, राजनीतिज्ञ राज्य से ही सम्पूर्ण समाज का अर्थ लगाता है, अर्थशास्त्री के विचार में सम्पूर्ण सामाजिक परिवर्तन का कारण आर्थिक दशायें हैं, धर्म और नैतिकता का इतिहासकार मनुष्यों के धार्मिक और नैतिक विश्वासों को प्रधानता देता है, जब कि प्राकृतिक विज्ञान का विद्यार्थी बौद्धिक और यांत्रिक विकास को ही सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण बतलाता है

(४) सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों और अन्तर्वस्तु (content) के बीच किया गया भेद भी साफ नहीं है। इन्हें पूरी तौर पर एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों की रेखागणित के स्वरूपों या आकारों के समान लम्बाई, चौड़ाई नहीं होती। जब सामाजिक सम्बन्धों का आकार ही नहीं होता तो फिर किस प्रकार इनका अध्ययन रेखागणित के अनुसार हो सकता है ? उदाहरण के लिये, एक बोतल है जिसमें कोई वस्तु भर दीजिये। इससे बोतल का आकार या स्वरूप वैसा ही रहेगा, परन्तु सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप के लिये यह बात नहीं कही जा सकती। सदस्यता (अन्तर्वस्तु) के बदलते ही सामाजिक सम्बन्धों का स्वरूप भी बदल जायेगा। इसी बात को दृष्टि में रखकर सॉरोकिन ने कहा है : "हम एक गिलास को मदिरा, जल या शक्कर से बिना उसके आकारों को बदले हुये भर सकते

हैं परन्तु मैं एक सामाजिक संस्था के बारे में कल्पना भी नहीं कर सकता कि उसका स्वरूप न बदलेगा जब कि उसके सदस्य बदल जायेंगे ।*

परन्तु सामाजिक जीवन के इन तत्वों के अन्त:सम्बन्धों (interrelations) को केवल तुलनात्मक और अनुमान के (comparative and inductive) अध्ययन के द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है । इस प्रकार के अध्ययन को, जिसमें संस्कृति के प्रत्येक भाग पर विचार किया जाता है विशेषज्ञों (specialists) ने छोड़ दिया है । इसलिए एक सामान्य और क्रमबद्ध (systematic) समाजशास्त्र की आवश्यकता है जो विशेषज्ञों के कार्यों के परिणामों का लाभ उठाकर विशेषत: उनके अन्त:सम्बन्धों में रुचि रखता हो और सामाजिक जीवन का एक समग्र रूप में अध्ययन करे ।†

(ब) समन्वयात्मक दृष्टिकोण (Synthetic School)

इस सम्प्रदाय के विद्वानों का विचार है कि समाजशास्त्र को इनसाइक्लोपीडिक (encyclopedic) होना चाहिये अर्थात् समाज में जो सब बातें हैं उन सभी का ज्ञान इस शास्त्र के माध्यम से प्राप्त किया जाना चाहिये । इस प्रकार यह विज्ञानों का विज्ञान है । इन लेखकों के विचार में समाजशास्त्र की प्रकृति भी बहुत कुछ हमारी शारीरिक रचना के समान है । जिस प्रकार शरीर का अंग अन्य सभी अंगों को प्रभावित करता है, उसी प्रकार समाज में होने वाला कोई परिवर्तन नये क़िस्म के सामाजिक सम्बन्धों को जन्म देता है । समाजशास्त्र ही एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जो समाज के विभिन्न भागों के परस्पर सम्बन्धों को अध्ययन करता है । साथ ही इन लेखकों का कहना है कि अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञान सामाजिक जीवन के किसी एक विशेष पहलू का ही अध्ययन करते हैं । इस कमी को समाजशास्त्र ही पूरा कर सकता है जब वह सम्पूर्ण समाज का पूर्ण तौर पर अध्ययन करे ।

समाजशास्त्र की उपरोक्त धारणा फ्रांस के दुरखाइम (Durkheim) तथा इंगलैंड के हाबहाउस (Hobhouse) के विचारों के समानुरूप है ।

(१) **दुरखाइम के विचार**—दुरखाइम के अनुसार समाज मनुष्यों के सामान्य विचारों और भावनाओं का समिश्रण है ।यदि मनुष्यों के सामान्यविचारों और भावनाओं का हम अध्ययन कर सकें तो किसी भी समाज की दशा से परिचित हो सकते हैं । यह सामान्य विचार और भावनायें सम्पूर्ण समाज के विचारों और भावनाओं की

---

* "We may fill a glass with wine, water or sugar, without changing its 'form' but I can not conceive of a social institution whose form would not change when its members do (change)." Sorokin

† Morris Ginsberg, Sociology. P. 13.

द्योतक हैं। इसलिये दुरखाइम ने इनका नाम "सामूहिक प्रतिनिधान" (collective representation) रखा है।

दुरखाइम के शब्दों में : 'समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधानों का विज्ञान है' (Sociology is the science of collective representation)। उसने कहा कि व्यक्ति के विचार और व्यवहार 'सामूहिक प्रतिनिधानों' द्वारा निश्चित होते हैं। 'सामूहिक प्रतिनिधानों' से उसका तात्पर्य समूह के अनुभवों, विचारों और आदर्शों के एक कुलक (set) से था जिनके ऊपर व्यक्ति अचेतन रूप से अपने विचारों, मनोवृत्तियों और व्यवहार के लिए निर्भर करता है। समूह द्वारा पीढ़ियों से एकत्रित किया गया अनुभव एक जलाशय (reservoir) की तरह है जो व्यक्तियों को विचार और मनोवृत्तियाँ प्रदान करता है और जो उनको अपने विचारों के रूप में ग्रहण करते हैं। दुरखाइम के विचार में यह विचार और भावनायें एक शक्ति का रूप ले लेते हैं। इन 'सामूहिक प्रतिनिधानों' की दो विशेषतायें होती हैं : (i) यह सम्पूर्ण समाज में फैले होते हैं, और (ii) यह समाज के सभी सदस्यों को नियंत्रक रूप से प्रभावित करते हैं। इसलिये समाजशास्त्र को इन्हीं सामूहिक प्रतिनिधानों का अध्ययन करना चाहिये जिससे सभी सामाजिक समस्याओं और परिस्थितियों को हम भली प्रकार से समझ सकें।

दुरखाइम के विचार में समाजशास्त्र के तीन भाग हैं—सामाजिक स्वरूप शास्त्र (Social Morphology), सामाजिक दैहिकी (Social Physiology), और सामान्य समाजशास्त्र (General Sociology)।

(i) **सामाजिक स्वरूपशास्त्र (Social Morphology)**—इसके अन्दर मनुष्यों के जीवन के भौगोलिक आधार और विभिन्न प्रकार के सामाजिक संगठन से उनका सम्बन्ध, और जनसंख्या की समस्या जैसे कि जनसंख्या घनत्व, स्थानीय वितरण आदि आते हैं।

(ii) **सामाजिक दैहिकी (Social physiology)**—यह अत्यन्त जटिल है और इसको अनेक शास्त्रों में विभक्त करना होता है जैसे कि धर्म, नीति, कानून, आर्थिक जीवन और भाषा का समाजशास्त्र जिसका अब समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन किया जा रहा है।

(iii) **सामान्य समाजशास्त्र (General Sociology)**—इसमें उन सामान्य सामाजिक नियमों के अन्वेषणों का अध्ययन होना चाहिये जो कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैले हैं।

(२) **हॉबहाउस के विचार**—हॉबहाउस और दुरखाइम के विचारों में बहुत अन्तर नहीं है। हॉबहाउस के विचार में समाजशास्त्र अनेक सामाजिक अध्ययनों का समन्वय (synthesis) है। समाजशास्त्र के कार्य को उसने दो भागों में बाँटा है।

प्रथम, विशेषज्ञ के रूप में उसे सामाजिक क्षेत्र के एक विशेष भाग का अध्ययन करना चाहिए; दूसरे यह कि सामाजिक सम्बन्ध की सामान्य विशेषताओं के विश्लेषण (analysis) और सामाजिक स्थिरता और परिवर्तनों के कारणों तथा सामाजिक बिकास के कारणों व प्रकृति का अध्ययन करके अन्तिम समन्वय (ultimate synthesis) के लिए आधार बनाना। इन दोनों प्रकार के ज्ञानों से समाजशास्त्री एक समाज की केन्द्रीय धारणाओं (central conceptions) को जान सकता है। इसके बाद ही यह सम्भव है कि समाजशास्त्री समन्वयात्मक (synthetic) दृष्टिकोण से समाज का अध्ययन कर पाये।

हॉबहाउस का कहना है कि समाजशात्र विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का समन्वय करता है। यह दो प्रकार से सम्भव है : (i) विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का इस प्रकार से अध्ययन किया जाना चाहिए कि उनके सिद्धान्तों में समन्वय किया जा सके। उदाहरण के लिये, यदि समाजशास्त्री अर्थशास्त्र का अध्ययन कर रहा है तो उसे यह पता लगाना चाहिए कि समाज के विकास, प्रगति और नियंत्रण में आर्थिक संस्थाओं का क्या महत्व है; (ii) विभिन्न सामाजिक विज्ञानों की उन केन्द्रीय धारणाओं को खोज निकालना है जिस पर सभी विज्ञान आधारित हैं। उदाहरण के लिये हम सहयोग की प्रक्रिया को ले सकते हैं। इसका आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन में भी उतना महत्व हैं जितना सामाजिक जीवन में। इस प्रकार का अध्ययन करने से यह एक व्यवहारिक विज्ञान बन जायेगा।

(३) **लेस्टर वार्ड के विचार (Views of Lester Ward)** : लेस्टर वार्ड ने कहा कि समाजशास्त्र को उसी प्रकार का विज्ञान होना चाहिये जैसा रसायनशास्त्र है। रसायनशास्त्र की विशेषता यौगिक (compound) बनाना होता है। जब दो या दो से अधिक रसायन एक में मिला दिये जाते हैं तो एक नयी वस्तु का निर्माण होता है। इसी प्रकार भिन्न सामाजिक विज्ञानों को केन्द्रीय धारणाओं का एक समन्वित अध्ययन करना चाहिए।

(४) **सारोकिन के विचार (Views of Sorokin)** : सॉरोकिन ने कहा कि प्रत्येक विज्ञान में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जिनका अध्ययन समाजशास्त्र में समन्वय के आधार पर किया जाता है। उसके विचार में, समाज के अन्दर हम कोई भी क्रिया करें चाहे वह राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, वैधानिक, मनोरंजनात्मक हो उसमें कुछ समान तत्व होते हैं। अतः सभी का समन्वय करके ही अध्ययन करना चाहिए। सभी सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन का विषय मनुष्य ही है। केवल विभिन्न सामाजिक विज्ञान भिन्न कारकों की महत्ता पर जोर देते हैं। उदाहरण के लिये, जाति में होने वाले परिवर्तनों के लिये राजनीतिक, आर्थिक सभी कारक महत्वपूर्ण हैं। हम दूसरे ढंग से यह भी कह सकते हैं कि सभी सामाजिक विज्ञान

किसी न किसी रूप में एक दूसरे पर आश्रित हैं। यही कारण है कि हम किसी भी विज्ञान को पूरी तरह से स्वतन्त्र नहीं मान सकते। इस प्रकार के सम्बन्धों में कुछ तत्व समान होते हैं। इस बात को सॉरोकिन ने निम्न प्रकार से समझाया है।*

आर्थिक सम्बन्ध	a, b, c, d, e, f.
राजनीतिक ,,	a, b, c, g, h, i.
धार्मिक ,,	a, b, c, j, k, l.
वैधानिक ,,	a, b, c, m, n, o.
मनोरंजनात्मक ,,	a, b, c, p, q, r.

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रकार के सम्बन्धों में a, b, c तत्व सामान्य हैं। समाजशास्त्र में इन्हीं सामान्य अन्त:क्रियाओं और अन्त:सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू का अध्ययन करने के कारण एक सामान्य विज्ञान है।

सामाजिक सम्बन्धों के सभी पहलुओं के अन्त:सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुये मैकाइवर ने कहा है:"समाजशास्त्री होने के कारण हमारा ध्यान का केन्द्र सामाजिक सम्बन्ध हैं; इस कारण से नहीं कि वे सम्बन्ध आर्थिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक हैं, बल्कि इस कारण से कि वे साथ ही सामाजिक भी हैं।"

विशिष्ट और सामान्य अध्ययन दोनों ही आवश्यक हैं

इन विरोधी विचारों का सूक्ष्म रूप में अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि वास्तव में इन दोनों में कोई विशेष विरोध नहीं है। सामाजिक जीवन का अमूर्त रूप में अध्ययन करना विशेषज्ञों के प्रयास से सफल हो सकता है जो सामाजिक क्षेत्र के विभिन्न भागों का अलग-अलग अध्ययन करते हैं। जिसको हम सामान्य अथवा क्रमबद्ध (systematic) समाजशास्त्र कहते हैं उसको, इतिहास तथा मानव-शास्त्र (anthropology) से सम्बन्ध जोड़कर और सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करके अपनी शक्ति का प्रमाण देना चाहिये। समन्वय (synthetic) और विस्तार-पूर्वक अथवा विशिष्ट अध्ययन दोनों ही आवश्यक हैं और साथ-साथ चल सकते हैं। इस सम्बन्ध में समाजशास्त्र अन्य विज्ञानों से मिलता-जुलता है जो कि जीवित प्राणियों का अध्ययन करते हैं। उदाहरण के लिए प्राणीशास्त्र (Biology) एक अर्थ में अनेक विज्ञानों का संग्रह है जिसमें से प्रत्येक विशिष्ट विज्ञान है परन्तु यह भी कोई नहीं अस्वीकार कर सकता है कि एक सामान्य प्राणीशास्त्र भी होता है जो कि जीवन की दशाओं का अध्ययन है। इसी प्रकार समाज शास्त्र में सामाजिक जीवन के टुकड़ों से सम्बद्ध बहुत से विशिष्ट ज्ञान हैं। इस दृष्टिकोण से समाजशास्त्र को सामाजिक विज्ञानों के समग्र रूप में समझा जा सकता है। दूसरे अर्थ में, वह

---

* Sorokin, Society, Culture and Personality. P. 7

स्वयं एक विशिष्ट विज्ञान है जिसका उद्देश्य दूसरे विज्ञानों के बीच की कड़ियाँ खोजना और सामाजिक सम्बन्धों के सामान्य लक्षणों (general characteristics) का वर्णन करना है।

समाजशास्त्र की विषय-सामग्री (Subject-matter of Sociology)

उपरोक्त मत का समर्थन करते हुये मोटवानी ने कहा है : "समाजशास्त्र एक इमारत के समान है, यह सामाजिक जीवन के तथ्यों का समन्वय भी है, और एक स्वतंत्र विज्ञान भी है जो इस समन्वय का फल है।"‡

ऊपर लिखे हुए विचारों पर दृष्टि डालने के पश्चात् हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि वास्तव में समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र क्या है ? **गिन्सबर्ग** ने समाज शास्त्र की समस्याओं को चार भागों में विभाजित किया है।*

(१) **सामाजिक आकारिकी (Social Morphology)**—इसके अन्दर न केवल जनसंख्या के गुण व तादाद के अनुसंधान को ही गिन्सबर्ग शामिल करता है बल्कि सामाजिक ढाँचे के अध्ययन को भी करता है। दूसरे शब्दों में मुख्य प्रकार के सामाजिक समूहों और संस्थाओं के वर्णन तथा वर्गीकरण (classification) का भी इसमें अध्ययन होता है।

(२) **सामाजिक नियंत्रण (Social Control)**--इसमें कानून, नीति, धर्म परम्परा, फैशन आदि विषयों का अध्ययन होता है जो हमारे व्यवहारों पर नियंत्रण रखते हैं।

(३) **सामाजिक प्रक्रियायें (Social processes)**—इससे गिन्सबर्ग का तात्पर्य व्यक्तियों अथवा समूहों की अन्त:क्रियाओं के विभिन्न प्रकारों के अध्ययन से है जैसे कि सहयोग तथा संघर्ष, सामाजिक विभिन्नता तथा संगठन, विकास, निश्चितता तथा ह्रास।

(४) **सामाजिक व्याधिकी (Social Pathology)**—इसमें सामाजिक अनुकूलन की असफलतायें (social maladjustment) तथा शान्तिभंग (disturbnaces) का अध्यन होता है।

रूटर और हार्ट (Reuter and Hart)—इन्होंने समाजशास्त्र की विषय-सामग्री को तीन भागों में बाँटा है

‡ "Sociology is like an edifice, is both the principle of coordination of facts of social life into an organic whole and also an independent science, the end result of such integration."

K. Motwani, Socilogy

* Morris Ginsberg, Sociology, p 17.

(i) सामाजिक विरासत-प्रथायें, लोकरीतियाँ, रूढ़ियाँ आदि ।

(ii) व्यक्तित्व एवं उसका विकास

(iii) सामाजिक प्रक्रियायें : सहयोग, संघर्ष, प्रतियोगिता आदि ।

सारोकिन (Sorokin)--इन्होंने Contemporary Sociological Theories नामक अपनी पुस्तक में कहा है कि समाजशास्त्र का अध्ययन करने के लिये यह आवश्यक है कि इसे तीन भागों में बाँटा जाये ।

(i) पहले भाग में, समाज के विभिन्न वर्गों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों का अध्ययन समाजशास्त्र में किया जाना चाहिए । उदाहरण के लिये, धार्मिक, आर्थिक क्रियाओं का सम्बन्ध, राजनीतिक आर्थिक क्रियाओं के सम्बन्ध का अध्ययन समाजशास्त्र को इस भाग के अन्तर्गत करना चाहिये ।

(ii) दूसरे भाग में सामाजिक और असामाजिक घटनाओं में सम्बन्ध का अध्ययन किया जाना चाहिये । उदाहरण के लिये, किस प्रकार जैविक और भौगोलिक दशायें सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं ।

(iii) तीसरे भाग में समाज के भिन्न वर्गों में पाये जाने वाले मूल सिद्धान्तों या सामाजिक घटनाओं की सामान्य विशेषताओं का अध्ययन होना चाहिये । इस प्रकार, समाजशास्त्र सामान्यीकरण का काम भी कर सकता है ।

दुरखाइम का वर्गीकरण हम पहले ही लिख चुके हैं जिसने समाज-शास्त्र के निम्न तीन भाग बताये ।

(i) सामाजिक स्वरूप शास्त्र (Social morphology)

(ii) सामाजिक दैहिकी (Social physiology)

(iii) सामान्य समाजशास्त्र (General sociology)

समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो समाज की प्रकृति और कार्यों का अध्ययन करता है । समाजशास्त्र के विषय-क्षेत्र के सम्बन्ध में सूक्ष्म रूप से ऊपर लिखी गई बातों पर विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह सब प्रकार की सामाजिक घटनाओं की सामान्य विशेषताओं का अध्ययन करता है ।

सॉरोकिन ने कहा कि—"समाजशास्त्र या तो सामाजिक घटनाओं के सब वर्गों की समान विशेषताओं और उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन रहा है, और रहेगा, या समाजशास्त्र का अस्तित्व ही मिट जायेगा "*

वर्तमान समाजशास्त्रियों का विचार है कि समाजशास्त्र की विषय-वस्तु पर विचार करते समय हमें विशेषात्मक और समन्वयात्मक दृष्टिकोणों के विवाद के

---

* "Sociology has been, is and either will be a science of the general characteristics of all classes of social phenomena, with the relationships, correlations between them or there will be no Sociology." P. Sorokin.

पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए। समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र में मनुष्य के वे सब व्यवहार आते हैं जिन्हें सामाजिक कहा जा सकता है। सामाजिक जीवन के अनेक अलग-अलग पहलुओं का अध्ययन करने के कारण समाजशास्त्र के विज्ञान को गवेषणा के विशिष्ट क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाना चाहिये। यह अपनी अपनी प्रविधियों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार का उप-विभाजन अनिवार्य है क्योंकि कोई भी व्यक्ति सामाजिक जीवन के हर पहलू पर प्रवीणता नहीं प्राप्त कर सकता। गवेषणा के विशिष्ट क्षेत्रों में ऐसी समस्यायें, सामाजिक जीवन के पहलू और संस्थागत स्वरूप शामिल हैं जैसे कि मानव समूह-जीवन की उत्पत्ति और प्रकृति, विभिन्न क्षेत्रों के मनुष्यों के विभाजन के प्रतिमान और इनको निश्चित करने वाले कारक; संस्थाओं जैसे कि परिवार, स्कूल, और चर्च, समूह-व्यवहार की प्रकृति; समुदाय; और सामाजिक समस्या जैसे कि निर्धनता, अपराध, बाल अपराध, दुराचार, और शारीरिक और मानसिक रोग। साथ ही क्योंकि, कोई भी विज्ञान अपना अलग दर्शनशास्त्र और अध्ययन पद्धति विकसित किये बगैर जीवित और विकसित नहीं रह सकता, अनेक समाजशास्त्री विज्ञान के इन दोनों पहलुओं पर अपना मुख्य ध्यान केन्द्रित करते हैं।

समाजशास्त्र को अनेक प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है :

१. **समाजशास्त्रीय सिद्धान्त (Sociological Theory)** : यह इस विज्ञान के सिद्धान्तों, धारणाओं, और सामान्यीकरणों का विश्लेषण करता है।

२. **ऐतिहासिक समाजशास्त्र (Historical Sociology)**। यह हमारे जीवन के वर्तमान ढंगों की उत्पत्ति खोजने और उनकी व्याख्या करने के लिये समाजों के प्राचीन इतिहास और थोड़े दिन पहले के समाजों का अध्ययन करता है।

३. **परिवार (The family)** : यह इस संस्था की उत्पत्ति, उद्विकास और कार्यों का, उन रूपों का जो इसने इतिहास के विभिन्न कालों में और समाजों में धारण किया, और इस संस्था से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करता है।

४. **मानव परिस्थिति विज्ञान और जन-विवरण शास्त्र (Human Ecology and Demography)** : यह विभिन्न क्षेत्रों में बटे हुये मानव उप-समूहों, मुख्यतः समुदायों और पड़ोसों, उनके परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन करता है और जन संख्या में होने वाले परिवर्तनों और गति का विश्लेषण करता है।

५. **समुदाय (The Community)** : यह ग्रामीण और नागरिक दोनों प्रकार के समुदायों के संगठन और समस्याओं का विश्लेषण करता है। क्योंकि बहुत मानों में शहर और गाँवों की समस्यायें भिन्न होती हैं, इस अध्ययन-क्षेत्र को ग्रामीण और नागरिक समाजशास्त्र में उप-विभाजित किया गया है।

६. **धर्म का समाजशास्त्र (Sociology of Religion)** : यह धार्मिक संस्थाओं जैसे चर्च का अध्ययन करते हुए उसकी उत्पत्ति, विकास और स्वरूपों, और उनके ढाँचों और कार्यों में होने वाले परिवर्तनों का पता लगाने का प्रयास करता है।

७. **शैक्षिक समाजशास्त्र (Educational Sociology)** : यह एक सामाजिक संस्था के रूप में स्कूल के उद्देश्यों, उसकी शिक्षा सम्बन्धी और गैरशिक्षा सम्बन्धी क्रियाओं, और समुदाय और उसकी अन्य संस्थाओं के साथ उसके सम्बन्ध का अध्ययन करता है।

८. **राजनीतिक समाजशास्त्र (Political Sociology)** : यह विभिन्न प्रकार के राजनीतिक आन्दोलनों और भावनाशास्त्रों (ideologies) के सामाजिक अर्थ और प्रभावों और सरकार और राज्य की उत्पत्ति, विकास और कार्यों का अध्ययन करता है।

९. **विधि का समाजशास्त्र (Sociology of Law)** : यह उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जिनके द्वारा समूह के सदस्य समाज द्वारा लागू किये गये नियमों और अनुबन्धों के द्वारा अपने व्यवहारों में एकता लाते हैं।

१०. **सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology)** : यह समाज और उनके मूल्यों द्वारा प्रभावित मानव प्रेरकों और व्यवहार को समझने का प्रयत्न करता है। यह व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन करता है अर्थात् वह किस प्रकार समाज का सदस्य बनता है; यह जनता, भीड़, और अन्य सामाजिक उप-समूह और आन्दोलनों का भी अध्ययन करता है। प्रचार और जनता के विश्लेषण में यह विशेष रुचि रखता है।

११. **सामाजिक साइकियाट्री (Social Psychiatry)** : यह सामाजिक और वैयक्तिक विघटन के सम्बन्धों पर विचार करता है। इसकी उप-कल्पना यह रहती है कि वैयक्तिक असामंजस्य, जैसे कि विविध प्रकार के मानसिक असंतुलन और समाज-विरोधी व्यवहारों का कारण समाज है जो व्यक्ति से अनगिनती और आत्म-विरोधी प्रत्याशायें और माँगे करता है।

१२. **सामाजिक विघटन (Social Disorganization)** : यह संस्थाओं के असामंजस्य और सुचारु रूप से कार्य न करने की समस्याओं का अध्ययन करता है। इसमें अपराध और बाल-अपराध, निर्धनता और निर्भरता, जनसंख्या की गतिशीलता, शारीरिक और मानसिक रोग, और दुराचार और वेश्यावृत्ति जैसी समस्याओं का अध्ययन होता है। इन उप-विभागों में अपराध और बाल-अपराध पर विशेष ध्यान दिया जाता है और उनका अध्ययन करने के लिये एक नये विज्ञान अपराधशास्त्र (criminology) का विकास हुआ है।

१३. **समूह-सम्बन्ध (Group Relations)** : यह किसी समाज में विभिन्न प्रजातियों, धर्मों और अनुयाइयों आदि के साथ रहने से उपत्न्न समस्याओं का अध्ययन करता है।

यद्यपि उपर्युक्त ही सामाजशास्त्र के प्रमुख विभाजन हैं, परन्तु जैसे-जैसे नयी समस्यायें उत्पन्न होती हैं और उनके निराकरण की नयी प्रविधियों का विकास होता जाता है, समाजशास्त्र के अध्ययन के नये क्षेत्र और उप-क्षेत्र भी विकसित हो जाते हैं। ऊपर बताये गये उप-विभाजनों के अतिरिक्त समाजशास्त्र के अध्ययन के अन्य क्षेत्र भी हैं जैसे Cultural Sociology, Folk Sociology, The Sociology of Art, Industrial Sociology, Medical Sociology, Military Sociology, The Sociology of Small Groups, और ऐसे विषयों का अध्ययन करने वाले समाजशास्त्र जैसे कि सामाजिक स्तरण, संचार के विशाल साधन, जनमत और नौकरशाही। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र कोई स्थिर वस्तु नहीं है, इसमें विकास होता रहता है।

---

७ समाजशास्त्र की पद्धतियाँ या अध्ययन-विधियाँ
(The Methods of Sociology)

फ्रांसीसी गणितशास्त्री हेनरी पॉयनकेयर (Henry Poincare) ने समाजशास्त्र के बारे में एक बार कहा था कि यह एक ऐसा विज्ञान है जिसकी अध्ययन-विधियाँ सबसे अधिक हैं परन्तु उनके परिणाम सबसे कम, (the science with the most methods and the fewest results)। यह आवश्यकता से अधिक कठोर निर्णय है परन्तु इसमें कुछ सत्यता भी है। वास्तव में पिछली शताब्दी में अनेक समाजशास्त्रियों के प्रयत्नों के बावजूद भी उच्च कोटि के सामान्यीकरण (generalizations) सम्भव नहीं हो पाये हैं जो समाजशास्त्री सिद्धान्त के विज्ञान का आवश्यक अंग बन पाते। वास्तव में पॉयनकेयर के कथन की सत्यता इस बात पर आधारित है कि समाजशास्त्र की अध्ययन-विधियों के सम्बन्ध में विभिन्न समाजशास्त्रियों में भारी मतभेद रहा है और प्रत्येक समाजशास्त्रीय सिद्धान्तवादी (theorist) इस विषय के अध्ययन के लिये एक नयी विधि बताने में रुचि रखता रहा है। फिर भी, समाजशास्त्र की मौलिक अवधारणाओं, सामाजिक किस्मों का वर्गीकरण, और भिन्न सामाजिक घटनाओं के बीच परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने में समाजशास्त्र को सफलता मिल सकी है। सबसे अधिक योगदान सम्भवतः वर्णनात्मक (descriptive) समाजशास्त्र का रहा हैं। अनेक समाजों, संस्थागत स्वरूपों (institutional forms), और सामाजिक समूहों का विस्तारपूर्वक वर्णन इस ढंग से किया जा चुका है जिससे सामाजिक घटनाओं और सामाजिक वस्तुओं के बीच नये सम्बन्ध स्थापित किये जा सकें और विभिन्न किस्मों का वर्गीकरण और व्याख्या हो सके।

प्रत्येक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक को किसी न किसी विधि से अध्ययन-मनन आरम्भ करना पड़ता है। सामाजिक विज्ञानों ने भी अपने लिये कुछ विशिष्ट विधियों को चुना है। यहाँ विधि से तात्पर्य, गिंसबर्ट के अनुसार, किसी कार्य, जैसे अनुसन्धान करना या पढ़ाना, को संक्षिप्तता, सटीकता और परिणाम

प्राप्त करनेकी निश्चितता से करने के उचित ढंग से है।*अतः विधि उस पूर्ण प्रक्रिया या कार्य विधि को कहते हैं जिसका अनुसरण किया जाता है। मार्टिन्डेल और मोनैकसी के कथन का उल्लेख करके इसे और भी स्पष्ट किया जा सकता है। इनके अनुसार "विधि का अर्थ उस ढंग से है जिसमें विज्ञान अनुभवसिद्ध ज्ञान की उपलब्धि के लिए अपनी आधारभूत प्रक्रियाओं का उपयोग करता है तथा अपने उपकरणों और प्रविधियों को काम में लाता है।"†

प्रत्येक विज्ञान की विधियाँ कुछ मान्यताओं और स्वयंसिद्धियों (axioms) पर आधारित रहती हैं। जिस प्रकार भौतिक विज्ञानों की अध्ययन विधियाँ मौलिक रूप से चार स्वयंसिद्धियों— (१) प्रकृति की एकरूपता की मान्यता (law of uniformity of nature), (२) कारणवाद की मान्यता (law of causation), (३) समरूपता की मान्यता तथा (४) विपरीत की मान्यता (law of contradiction) पर आधारित है, उसी प्रकार समाजविज्ञान की विधियाँ पाँच स्वयंसिद्धियों पर आधारित हैं। इनमें उपरोक्त चार स्वयंसिद्धियों के अलावा पाँचवी स्वयंसिद्धि के रूप में 'अतिरिक्त शक्ति का सिद्धान्त' (law of surplus power) कार्य करता है। इस मान्यता के अनुसार समाज वैज्ञानिक यह मानते हैं कि एक समूह या संघ की शक्ति उन तमाम व्यक्तियों की अलग-अलग शक्ति के योग से अधिक होती है जिनसे उस संघ या समूह का निर्माण हुआ होता है।‡ इसलिए बहुत से सामाजिक वैज्ञानिक जो समाजशास्त्र को गणित, भौतिकी, और साँख्यकी के प्रयोग के आधार पर भौतिक विज्ञान की तरह का विज्ञान मानते हैं भूल करते हैं। एक बात और है कि समाज वैज्ञानिक, भौतिक वैज्ञानिकों की स्थिति के विपरीत, किसी न किसी समूह या समाज के सदस्य के रूप में रहकर ही उसका अध्ययन करता है। इस कारण से उसका अध्ययन और परिणाम दोनों ही उस समूह या समाज के सामूहिक प्रतिनिधित्व (collective representation)—समूह के अनुभवों, विचारों और आदर्शों का कुलक (set)—के द्वारा प्रभावित होता है। तब

---

* It means an apt way of doing something, as investigating or teaching, with brevity, thoroughness, and security as to the result to be attained." Gisbert, Fundamentals of Sociology.

† "By method we mean the manner in which science conducts its basic procedures and employs tools and techniques in the attainment of empirical knowledge." Martindale and Monachesi, Elements of Sociology. p. 56.

‡ "A group, and association has more power than the sumtotal of the powers of each associated member."

आवश्यकता इस बात की है कि समाजविज्ञान में प्रयुक्त होने वाली विधियां भौतिक विज्ञानों की विधियों की तुलना में अधिक सूक्ष्म हों। सूक्ष्मता प्राप्त करने के प्रयत्न बहुत पहले से हो रहे हैं और वैज्ञानिक स्तर तक पहुंचने के पहले वैज्ञानिकों ने दार्शनिक स्तर (philosophical stage) और पौराणिक स्तर पर (mythological stage) विचार किये हैं। बर्ट्रेन्ड रसेल के अनुसार सामान्य सूझ-बूझ (common sense) के प्रयोग और अज्ञात (mystic) सूझ की स्थिति के पश्चात् ही मनुष्य वैज्ञानिक चिन्तन करने की स्थिति तक पहुँचा है।

विज्ञान चाहे प्राकृतिक या सामाजिक हो सबका एक ही लक्ष्य है—सत्य का पता लगाना। इस कारण से उनकी विधियों में कुछ समान वैज्ञानिक स्तर मिलते हैं। कार्ल पियर्सन ने इसे स्पष्ट करते हुये कहा है कि किसी भी विज्ञान को कुछ निश्चित स्तरों से और मार्गों से ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है, क्योंकि सत्य की खोज के लिये कोई संक्षिप्त मार्ग नहीं है। विश्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिये वैज्ञानिक पद्धति के द्वार से गुजरना आवश्यक है। किसी विज्ञान की पद्धति का द्वार निम्न-लिखित चार स्तरों को समेट कर बनाया जाता है।

उपकल्पना का निर्माण (Formulation of Hypothesis)—लुण्डबर्ग के शब्दों में उपकल्पना एक ऐसा निश्चित निष्कर्ष है जिसकी सत्यता की परीक्षा अभी नहीं हुई है। इसके आधार पर वैज्ञानिक यह बतलाता है कि वह किस सत्य का पता लगाना चाहता है। उपकल्पना का चुनाव करते समय वैज्ञानिक को सूक्ष्म-दृष्टि से काम लेना चाहिये क्योंकि यह ऐसा साधन है जिसकी सहायता से अध्ययन-कर्ता की बहुत सी शक्ति और समय की बचत हो जाती है जो इसके अभाव में या अनुचित होने के कारण व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है। इसलिये उपकल्पना के निर्माण में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(अ) **व्यावहारिकता** : समाज वैज्ञानिकों को उपकल्पना का निर्माण करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि उपकल्पना व्यावहारिक हो अन्यथा उसका सत्यापन नहीं हो सकता।

(ब) **सैद्धान्तिक स्पष्टता** : जब उपकल्पना की परीक्षा करनी बाकी है तो कौन जाने वह हमेशा सही होगी। वह असत्य भी प्रमाणित हो सकती है। इसलिये इसमें सैद्धान्तिक स्पष्टता ही पहली आवश्यकता है।

(स) **सरलता** : उपकल्पना को सरल होना चाहिये। ऐसा न हो कि उप-कल्पना इतनी जटिल हो जाये कि उसकी सत्यता को प्रमाणित करने के लिये मौके पर उपकरण ही न मिलें। उपकल्पनाओं की शब्दावली के प्रयोग में भी सरलता और प्रामाणिकता का ध्यान रखना चाहिये ताकि विभिन्न अध्ययनकर्ता उन शब्दों का एक ही अर्थ समझ सकें।

(२) **आंकड़ों का संकलन (Collection of Data)** : अन्य विज्ञानों की तरह समाजशास्त्र भी उपकल्पनाओं के निर्माण के पश्चात् उसकी सत्यता की जाँच के लिये आवश्यक तथ्यों और आँकड़ों की खोज करता है और उन्हें इकट्ठा करता है। फिर निरीक्षण के आधार पर प्राप्त सामग्री का वर्गीकरण करता है। आँकड़ों की खोज के लिये अध्ययनकर्ता स्थानों, व्यक्तियों, समूहों, समाजों का निरीक्षण करता है, साक्षात्कार (interview), प्रश्नावली आदि तरीकों का प्रयोग करता है। ऐसा करते समय अध्ययनकर्ता को यह ध्यान रखना चाहिये कि उसे आवश्यक सूचनाओं का ही संकलन करना है तथा उसे स्वयं अपनी प्रातीतिकता (subjectivity) से बचना है।

(३) **सामग्री का वर्गीकरण (Classification of Data)** : प्राप्त सूचनाओं और आँकड़ों को इकट्ठा करके वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार उनको कुछ वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है। यह विभाजन सूचनाओं की क्रमिक विशेषताओं के आधार पर किया जाता है। एक-एक वर्ग में एक ही तरह की सूचनाओं को रखकर उनका व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है।

(४) **सामान्यीकरण (Generalization)** : गहन अध्ययन के बाद जो कुछ भी निष्कर्ष निकलता है, वैज्ञानिक उनकी सत्यता की जाँच करके 'कार्य और कारण के बीच के सम्बन्ध' का पता लगाता है। ऐसा करने के लिये वह विभिन्न वर्गों की सामग्रियों का तुलनात्मक अध्ययन करता है। प्रामाणिकता के आधार पर इन सिद्धान्तों का सामान्यीकरण किया जाता है तथा इसकी तुलना उपकल्पना से भी की जाती है। आवश्यकता पड़ने पर सामान्यीकृत सिद्धान्त का फिर से अध्ययन किया जा सकता है। इसीलिए सॉरोकिन ने समाजशास्त्रीय नियमों को प्रयोग-सिद्ध अथवा अनुभव-सिद्ध कहा है।

समाजशास्त्रीय पद्धतियाँ
(Sociological Methods)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि समाज विज्ञान भौतिक विज्ञान से कई अर्थों में भिन्न है इसलिये इसकी अध्ययन विधियाँ भी अपने ढंग की विशिष्ट हैं। यद्यपि यह सत्य है कि इस विज्ञान में अध्ययनकर्ता निरपेक्ष होकर कार्य नहीं कर पाता क्योंकि वह स्वयं और वह समाज, समूह या व्यक्ति जिसका अध्ययन किया जा रहा है सभी के सभी मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के अबूझ यौगिक हैं जो अत्यन्त गतिशील और परिवर्तनशील हैं। ऐसे प्रत्येक क्षण में नवीन बने रहने वाले सामाजिक तत्वों का (अ) अध्ययन करना ही कठिन है; (ब) यदि किसी प्रकार अध्ययन किया भी जा सका तो हर परिस्थितियों में सही और सटीक उतरने वाले

सिद्धान्त नहीं बनाये जा सकते । फिर भी, निष्पक्षता, धैर्य, कठोर परिश्रम और रचनात्मक विचारशक्ति से कार्य करने पर, भौतिक विज्ञानों की तरह ही प्रामाणिक निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, ऐसा वैज्ञानिकों की मत है ।

सामाजिक विज्ञान के मूर्त तथ्यों का पता लगाने के लिये परिमाणात्मक विधियाँ (Quantitative methods) अधिक उपयुक्त हैं जब कि अमूर्त तथ्यों के अध्ययन के लिये गुणात्मक पद्धतियों (Qualitative methods) का प्रयोग श्रेयस्कर है । व्यावहारिकता में ऐसा अनुभव होता है कि सामाजिक वैज्ञानिक अध्ययनों में इन दोनों पद्धतियों का उचित सहयोग इनके अलग-अलग प्रयोग से अधिक उचित और सहायक है ।

सामाजिक विज्ञान

- परिमाणात्मक विधियाँ (Quantitative Methods)
  - सर्वेक्षण विधि (Social Survey)
  - साँख्यकीय विधि (Statistical Method)
  - समाजमिति (Sociometry)
- गुणात्मक विधियाँ (Qualitative Methods)
  - आदर्श प्रारूप विश्लेषण (Ideal Type Analysis)
  - ऐतिहासिक विधि (Historical Method)
  - जीवन अध्ययन विधि (Case Study)
  - सामुदायिक अध्ययन विधि (Community Study)
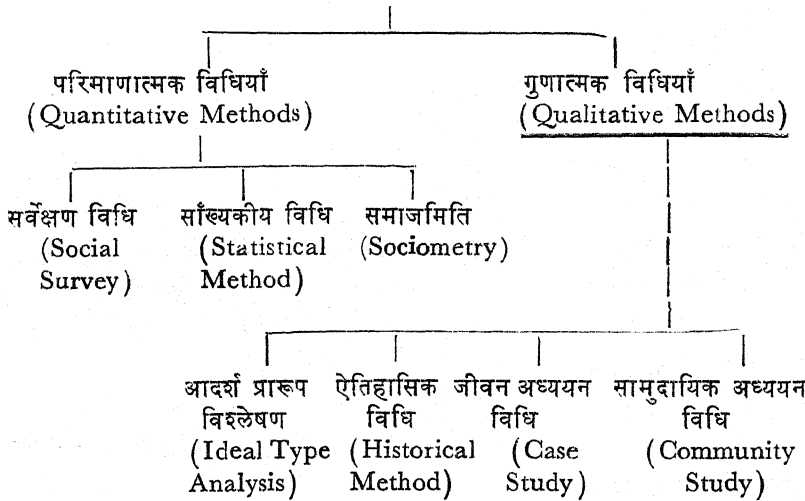
परिमाणात्मक विधियाँ (Quantitative Methods)

परिमाणात्मक पद्धतियों में निम्नलिखित पद्धतियाँ समाजशास्त्रीय अध्ययन में सहायक हैं —

सामाजिक सर्वेक्षण विधि (Social Survey Methods)

इस पद्धति का वैज्ञानिक प्रयोग सबसे पहले ले प्ले (Le Play) ने किया था । इस विधि की परिभाषा देते हुये मार्क एब्राम्स ने कहा है : "सामाजिक सर्वेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी समुदाय की बनावट और क्रियाओं के सामाजिक पहलू के बारे में परिमाणात्मक तथ्य एकत्रित किये जाते हैं ।"* इस प्रकार

* "Social Survey is a process by which quantitative facts are collected about the social aspect of a community's composition and activities," Mark Abrams, Social Survey and Social Activities,

स्पष्ट है कि सामाजिक सर्वेक्षण एक विधि है जो विशेष भौगोलिक क्षेत्र में सामाजिक पक्ष के सम्बन्ध में वास्तविक संख्यात्मक तथ्यों का संकलन करती है। हैरीसन ने सामाजिक सर्वेक्षण की विधि के बारे में लिखा है : "सामाजिक सर्वेक्षण एक सहकारी क्रिया हैं जिसमें वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं और परिस्थितियों के लिये किया जाता है तथा प्राप्त तथ्यों, निष्कर्षों और सुझावों को इस प्रकार रखा जाता है कि वे समाज की सामान्य और बुद्धिपूर्ण सहयोगी क्रियाओं का सामान्य ज्ञान प्रदान कर सकें।"*

इस विधि में अनेक स्तरों में कार्य करना होता है। सबसे पहले विषय का निर्धारण करना होता है। विषय के सही ज्ञान के स्रोतों एवं साधनों को जानने के लिये संगणना (census) और सैम्प्लिंग (sampling) विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके बाद क्षेत्र में तथ्य संकलित करने से पहले समस्त उपकरणों और साधनों को जानना होता है। सामग्री संकलन के साधन निश्चित हो जाने के बाद सामग्री-संकलन का कार्य प्रारम्भ किया जाता है। सामग्री का कार्य निरीक्षण (observation), साक्षात्कार (interview), प्रश्नावली (questionnaire), अनुसूची (schedule) आदि द्वारा संचालित किया जाता है। समस्त सूचनाओं को एकत्र कर लेने के बाद उनको आवश्यक वर्गों में बाँट कर रिपोर्ट तैयार की जाती है। सामग्री का विवेचन, वर्गीकरण, सारणीयन (tabulation), विश्लेषण आदि की प्रक्रियाओं के द्वारा होता है। इसके बाद सर्वेक्षण की रिपोर्ट तैयार करना होता है। रिपोर्ट में तथ्यों को रेखाचित्र, आर्ट आदि के द्वारा भी स्पष्ट किया जाता है। इस पद्धति का विशेष महत्व इस बात से है कि अध्ययनकर्ता को क्षेत्र का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसके फलस्वरूप थोड़ी तटस्थता (neutrality) बरतने से परिणाम को प्रामाणिक बनाया जा सकता है।

सामाजिक सर्वेक्षण दो प्रकार के होते हैं—सामान्य और विशिष्ट। **सामान्य सामाजिक सर्वेक्षण** में समग्र रूप से समुदाय की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, जब कि **विशिष्ट सामाजिक सर्वेक्षण** में एक विशेष सामाजिक समस्या का अध्ययन होता है।

उदाहरण—यदि कोई समाजशास्त्री यह जानता चाहता है कि बंगला देश को मान्यता देने के सम्बन्ध में जनता की क्या प्रतिक्रिया है तो वह अकेले या कुछ सहायकों के साथ किसी निश्चित भू-भाग की जनता से सम्पर्क स्थापित करेगा। ऐसा करने के लिए वह वहाँ की जनता में अपने और अपने सहयोगियों के प्रति विश्वास पैदा करेगा, फिर विभिन्न विधियों—साक्षात्कार, प्रश्नावली, सूची-प्रयोग

---

* S. M. Harrison : A Bibliography of Social Surveys.

आदि के द्वारा लोगों की प्रतिक्रिया जानने का प्रयत्न करेगा। सूचनाओं का संकलन कर लेने के बाद उनका वर्गीकरण करके, उनकी प्रतिक्रियाओं के बारे में पता लगा लेगा।

कुछ विशेषतायें

(१) यह पद्धति मुख्यतः व्यावहारिक सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के लिये होती है। निरक्षरता, भिक्षावृत्ति, निर्धनता और बेकारी की समस्याओं का अध्ययन इस पद्धति के द्वारा सर्वोत्तम ढंग से किया जाता है।

(२) यह पद्धति समुदाय की समस्याओं से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

(३) वर्त्तमान समस्याओं के अध्ययन के लिये सर्वोत्तम विधि है।

(४) यह पद्धति विशेषकर परिमाणात्मक (quantitative) तथ्यों को ही महत्व देती है और गुणात्मक तथ्यों से बचने का प्रयत्न करती है।

(५) इस प्रकार का अध्ययन एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र तक ही सीमित रहता हैं।

(६) इस विधि में अध्ययन चार स्तरों पर किया जाता है :

(i) सर्वेक्षण का आयोजन (Planning of Survey)

(ii) आंकड़ों का आयोजन (Collection of Data)

(iii) सामग्री का विश्लेषण (Analysis and interpretation of Data)

(iv) प्रस्तुतीकरण (Presentation of Data)

(७) सामाजिक सर्वेक्षण के दौरान निम्नलिखित कई प्रविधियों (techniques) का उपयोग किया जाता है।

(८) व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित होने के कारण सामाजिक सर्वेक्षण विधि का महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है।

आलोचना :

यद्यपि इस पद्धति से व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति होती है और निष्कर्षों से प्रामाणिकता आ जाती है तथा तात्कालिक परिवर्तनों के बारे में भी सूचना मिल जातीं है किन्तु यह पद्धति भावात्मक और अमूर्त तथ्यों के अध्ययन के लिये अनुपयोगी है! इसका उपयोग छोटे से भौगोलिक क्षेत्र में ही हो सकता है इसलिये समाज का व्यापक ज्ञान इसके द्वारा प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इस पद्धति के द्वारा सूचनायें तो एकत्रित की जा सकती हैं परन्तु कार्य-कारण का सम्बन्ध निर्धारित कर सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। इतना सब कुछ होने पर भी इस पद्धति का प्रयोग बढ़ता जा रहा है क्योंकि इस प्रकार के अध्ययन से अध्ययनकर्त्ता में आत्मविश्वास उत्पन्न होता है।

(२) सांख्यकीय विधि (Statistical Method)

प्राकृतिक विज्ञानों में तो साँख्यकीय विधि का महत्व अत्यधिक रहा है। समाजशास्त्र में भी इस पद्धति का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है जिसके कारण समाजशास्त्र को एक यथार्थ विज्ञान की कोटि में ले जाने में काफी सहायता मिली है। लोविट ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है : 'सांख्यकी वह विज्ञान है जो घटनाओं की व्याख्या और तुलना के लिये संख्यासूचक तथ्यों के एकत्रित, वर्गीकरण और सारणीयन करने का कार्य करता है।" * इस विधि के प्रयोग से सामाजिक वैज्ञानिक तथ्यों को संख्या में प्रस्तुत करके परिमाणात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत करने में सफल होता है।

यह पद्धति पहले जनगणना आदि के लिये उपयोग में लाई जाती थी पर अब समाजशास्त्र के सभी परिमाणात्मक अध्ययनों में इसका प्रयोग होने लगा है। यह विधि गणित पर आधारित है जिस कारण इसके द्वारा एकत्रित सामग्री में पूर्ण यथार्थता आ जाती है और विभिन्न तथ्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध भी स्पष्ट हो जाता है। देश की जनसंख्या में घटती-बढ़ती, हत्या और अपराध की दर में वृद्धि या अवनति, गाँवों में विभिन्न जाति के लोगों का अनुपात, तलाक की दर, सामाजिक विघटन, वर्ग संघर्ष की स्थिति, उच्च शिक्षा का प्रतिशत, शहर में संयुक्त परिवार टूटने की दर, गाँव से शहरों में आकर बसने की प्रवृत्ति में वृद्धि की दर, आदि का पता साँख्यकीय विधि से किया जा सकता है। समाजमितीय लक्ष्यों और गुणात्मक क्रियाओं की परिमाणात्मक व्याख्या करने के लिये इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

केन्डल (Kendall) के अनुसार : "साँख्यकी वैज्ञानिक पद्धति की वह शाखा है जो अनेक पदार्थों के समूह की विशेषताओं को माप कर अथवा गणना द्वारा प्राप्त की गई सामग्री से सम्बन्धित है।" ओडम (Odum) ने साँख्यकी को अनुसंधान का आवश्यक अंग माना है। गिडिंग्स पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने विद्वानों का ध्यान इस शास्त्र में गणना के महत्व की ओर आकर्षित किया।

साँख्यकीय पद्धति में सबसे पहले निदर्शन (sampling) का चुनाव करना होता है। दूसरे स्तर पर आँकड़ों का संकलन करना होता है। तीसरे स्तर पर वर्गीकरण और सारणीयन (tabulation) किया जाता है। अन्तिम स्तर पर विभिन्न औसतों के द्वारा आवृत्तियों (frequencies) को सरल बनाया जाता है और ग्राफ और चार्ट के रूप में प्रकट किया जाता है।

---

* "Statistics is the science which deals with the collection, classification and tabulation of numerical fact as the basis for explanation and comparison of phenomena." Lovitt

उदाहरण : मान लीजिये हमें 'गाँव में संयुक्त परिवार टूटने की दर' का पता लगाना है। इस पद्धति के द्वारा हम यह पता लगा सकते हैं कि इस वर्ष के अन्दर कितने संयुक्त परिवार भंग हुये। इन भंग होने वाले संयुक्त परिवारों के कितने लोग किस जाति या वर्ग के थे; इनमें से कितने लोग शिक्षित और कितने अशिक्षित थे जिससे पता लग सके कि वह प्रवृति शिक्षितों में अधिक है या अशिक्षितों में। हम यह भी पता लगा सकते हैं कि इन परिवारों का मुख्य व्यवसाय क्या था। ऐसे परिवारों के धर्म का भी पता लगा सकते हैं : इन समस्त तथ्यों को आंकड़े में प्रस्तुत किया जा सकता है जिसका कि व्यवस्थित और क्रमबद्ध रूप एक या अधिक सारणी (table)) होगी।

सांख्यकीय पद्धति का प्रयोग सामाजिक घटनाओं को गणित के ढंग से नापने के लिये किया जाता है जिससे सामाजिक घटनाओं के बीच सम्बन्ध बताया जा सके और उनकी प्रकृति, घटित होने की दर और अर्थ के बारे में सामान्य अनुमान (generalization) लगाया जा सके। समाजशास्त्र में अधिकतर आंकड़े गुणात्मक होते हैं, इसलिये सांख्यकीय विधि की परिधि के बाहर होते हैं। फिर भी, समाजशास्त्री इन आंकड़ों को परिमाणात्मक रूप में लाने में काफी सफल हो रहे हैं जिससे उनका सांख्यकीय विधि से अध्ययन किया जा सके। निदर्शन (sampling) और नियंत्रण-समूह प्रविधियां इस विधि के महत्वपूर्ण भाग हैं।

कार्य-विधि : इस विधि में तीन स्तरों पर अध्ययन किया जाता है : (१) सर्वप्रथम सर्वेक्षण करके आंकड़ों के संकलन की तैयारी की जाती है। इसके लिये दो विधियों से कार्य लिया जाता है—(अ) प्रश्नावली विधि का प्रयोग, (ब) अनुसूची विधि का प्रयोग। (२) प्रश्नावली या अनुसूची के प्रयोग से सूचनाओं या सामग्रियों का चयन कर लिया जाता है : इस विवेचन से मात्र घटनाओं में उतार या चढ़ाव जैसे गुणात्मक परिणाम ही नहीं निकलते बल्कि इससे यह भी पता चल जाता है कि उतार चढ़ाव की गति में तीव्रता की गति क्या रही है; दिशा क्या रही है? (३) विवेचन के आधार पर ही वर्गीकरण सम्भव होता है जो निष्कर्ष पर पहुँचने एवं सिद्धान्तों के प्रतिपादन में सहायक है।

कुछ विशेषतायें :

(१) इस विधि में कार्य-कारण सम्बन्ध संख्याओं द्वारा स्पष्ट किये जाते हैं।

(२) यह परिणाम की दिशा और तीव्रता भी बतलाने में समर्थ है।

(३) कुछ अंशों तक भविष्यवाणी भी कर सकने में समर्थ है।

(४) यह पद्धति एक ही साथ अनेक समस्याओं का अध्ययन करने में सफल रहती है। कभी-कभी तो एक ही परिणाम की खोज में बहुत से उप-परिणाम भी

सामने आ जाते हैं और ऐसा इस पद्धति की विशेषता के कारण ही सम्भव होता है।

आलोचना :

यह पद्धति सामाजिक विज्ञानों के व्यवहारिक परिणाम की खोज में समर्थ होने के कारण महत्वपूर्ण है। साथ ही, बहुउद्देशीय होने के कारण यह संक्षिप्त भी है। संख्यासूचक परिणामों को देने वाली होने के कारण यह सूक्ष्म और विश्वसनीय है तथापि इसमें कुछ कमियाँ हैं जिनका उल्लेख कर देना आवश्यक है।

(अ) इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके द्वारा केवल परिमाणात्मक तथ्यों का ही ज्ञान सम्भव है। गुणात्मक तथ्यों की खोज करने में यह विधि असफल है। इस पद्धति से यह तो जाना जा सकता है कि वर्तमान युग में छात्रों की कितनी हड़तालें हुई परन्तु यह नहीं जाना जा सकता है कि हड़तालें क्यों हुई। यह जानने के लिये हमें अन्य विधियों का सहारा लेना ही पड़ेगा।

(ब) यह पद्धति केवल संख्या की भाषा में बात करती है।

(स) इस पद्धति के प्रयोग के लिये गणित सम्बन्धी सूत्रों की विशिष्ट जानकारी आवश्यक है जिसके लिये निर्देशन की आवश्यकता है।

(३) ऐतिहासिक विधि (Historical Method)

कोनिग ने कहा है : "ऐतिहासिक विधि भूतकालीन सभ्यताओं की घटनाओं, प्रक्रियाओं और संस्थाओं का अध्ययन है जिससे समकालीन सामाजिक जीवन की उत्पत्ति या पूर्वगामी रूप को खोजा जा सके और इस प्रकार उसकी प्रकृति और कार्य को समझा जा सके।"* इसके पीछे यह विचार छुपा हुआ है कि सामाजिक जीवन के हमारे वर्तमान स्वरूप, हमारी प्रथायें या जीवन-यापन के ढंग की जड़ें भूतकाल में हैं और उनके स्रोतों के संदर्भ में ही सबसे अच्छे ढंग से उनकी व्याख्या की जा सकती है।

इतिहास अतीत की महत्वपूर्ण घटनाओं का अध्ययन है। इस विधि में ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर प्रामाणिक तथ्यों की प्रामाणिकता स्पष्ट की जाती है। यह तुलनात्मक पद्धति (comparative method) का ही दूसरा रूप है अर्थात् अतीत और वर्तमान की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके ही निष्कर्ष

* 'The historical method calls for a study of events, processes, and institutions of past civilizations, for the purpose of finding the origins or antecedents of contemporary social life and thus of understanding its nature and working.' –Koeing

प्राप्त किये जाते हैं। परिमाणात्मक (quantitative) सामग्री का अध्ययन करने में इस विधि का उतना महत्व नहीं है जितना साँख्यकीय और सर्वेक्षण पद्धति का। जॉर्ज हॉवर्ड (George Howard) ने इतिहास को 'भूत-समाजशास्त्र' और समाजशास्त्र को 'वर्तमान इतिहास' का नाम दिया है। उन्होंने ऐतिहासिक विधि पर बल दिया है।

यदि कोई सामाजिक वैज्ञानिक आसन्न युद्ध या सामाजिक विघटन की सम्भावनाओं पर विचार करना चाहता है तो वह अतीत के कारणों के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहेगा जिनसे कभी युद्ध या सामाजिक विघटन हुआ था। इसके आगमनात्मक (inductive) अध्ययन के आधार पर वह कार्य-कारण का सम्बन्ध ज्ञात करने का प्रयत्न करेगा जो सैद्धान्तिक निष्कर्षों की खोज में सहायक सिद्ध होता है।

इस विधि में, अध्ययन-कर्त्ता आत्मकथाओं, जीवन-चरित्र डायरी, विभिन्न ऐतिहासिक खुदाइयों से प्राप्त सामग्रियों का अवलोकन करता है। तत्सम्बन्धित घटना की जानकारी रखने वाले व्यक्तियों का साक्षात्कार तथा उनके विवेचन भी मूल्यवान हैं। इन्हीं सबकी सहायता से सांस्कृतिक इतिहास के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

इस विधि में निम्न प्रकार तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव है :

(१) लेखपालों (documents) द्वारा।

(२) साँस्कृतिक व विश्लेषणात्मक इतिहास द्वारा।

(३) उन इतिहासवेत्ताओं की साक्षियों और विवेचनाओं को आधार मान कर जिन्होंने ऐतिहासिक अध्ययन किये हैं।

अपराधी-व्यक्ति या गिरोहों की वास्तविक जानकारी प्राप्त करने के लिये पुलिस और जासूस इसी विधि के द्वारा उनके बारे में पूरी जानकारी हासिल करते हैं और परिणाम पर पहुँचते हैं कि वास्तव में अपराधी कौन है। समस्या-जनजातियों (Problem Tribes) के इतिहास के बारे में, या ऐसे ही बहुत से अन्य अध्ययन हैं जिनके लिये इस विधि का प्रयोग होता है। किसी व्यक्ति के मानसिक असंतुलन के कारणों का पता लगाने के लिए मनोवैज्ञानिक इस विधि का प्रयोग करते हैं। इस विधि का प्रयोग जब किसी एक व्यक्ति के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है तब वह 'वैज्ञानिक अध्ययन विधि' के नाम से जानी जाती है।

ऐतिहासिक विधि के दो स्वरूप हैं। पहला तो शुरू के समाजशास्त्रियों का है जो इतिहास के दर्शनशास्त्र और बाद के उद्विकास (evolution) के जैवकीय सिद्धान्त से प्रभावित थे। यह विधि अनुसंधान और सिद्धान्त के लिये समस्याओं में

विभिन्न बातों को क्रमपूर्वक महत्व देती है। यह सामाजिक संस्थाओं, समाजों, और, सभ्यताओं की उत्पत्ति, विकास और परिवर्तन की समस्याओं में रुचि रखती हैं। यह मानव इतिहास के सम्पूर्ण फैलाव और समाज की सभी प्रमुख संस्थाओं का अध्ययन करता है जैसा कि कोम्त, स्पैन्सर और हॉबहाउस के ग्रन्थों से स्पष्ट है, या किसी एक विशेष संस्था के सम्पूर्ण विकास का अध्ययन करता हैं जो हमें वैस्टरमार्क की History of Human Marriage या ओपनहाइमर की The State नामक पुस्तक में मिलता हैं। कुछ लेखकों ने तो यहाँ तक कहा कि उद्विकास का नियम' (law of evolution) जैसी कोई वस्तु नहीं होती और यह उद्विकास सम्बन्धी पुस्तकें वास्तव में ऐतिहासिक वर्णन और व्याख्यायें हैं। इस विधि का प्रयोग करने वालों ने सामाजिक परिवर्तनों के बारे में हमारे ज्ञान में बहुत वृद्धि की है। इन लेखों के आधार पर हम उन कारकों को समझ या पहचान सकते हैं जो सामाजिक ढाँचों में परिवर्तन लाते हैं, और सम्भवतः सामाजिक उद्विकास का एक सामान्य वर्णन करने की अपेक्षा अनेक नियमों, दशाओं या शर्तों का निर्माण कर सकते हैं जिनका किन्हीं विशेष प्रकार के परिवर्तनों से सम्बन्ध हो।

दूसरे प्रकार की ऐतिहासिक विधि हमें मैक्स बैबर और उससे प्रभावित अनेक समाजशास्त्रियों के ग्रन्थों में मिलती हैं। अपने समय के मार्क्सवादियों की आलोचना करते हुए वैबर ने कहा कि इतिहास की भौतिकवादी (materialist) धारणा को ऐतिहासिक सत्यता की कार्य-कारण व्याख्या के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। उसने इसके स्थान में व्याख्या निर्वचन (interpretation) को महत्व प्रदान किया। वैबर के अनुसार हम किसी भी पुरानी सामाजिक घटना की कार्य-कारण (causal) व्याख्या नहीं दे सकते; हम तो केवल उनको निर्वचन (interpret) कर सकते हैं। वैबर द्वारा किये गये पूंजीवाद की उत्पत्ति, आधुनिक नौकरशाही (bureaucracy) का विकास, और संसार के धर्मों का आर्थिक प्रभाव के अध्ययन में उसकी ऐतिहासिक विधि का उदाहरण हमें मिलता है। इन अध्ययनों में मुख्य अध्ययन-पद्धति सम्बन्धी विशेषतायें यह हैं कि सामाजिक ढ़ाँचों के विशेष ऐतिहासिक परिवर्तनों और समाज के प्रारूपों की गवेषणा (investigation) की जाती है (और कुछ मानों में अन्य प्रकार के परिवर्तन और समाज से तुलना की जाती है); और इसमें कार्य-कारण व्याख्या (causal explanation) और ऐतिहासिक निर्वचन दोनों ही मिलते हैं।

हाल के समाजशास्त्र में, ऐतिहासिक विधि ने सी. राइट मिल्स (C.Wright Mills) और रेमण्ड ऐरों (Raymond Aron) के लेखों को बहुत प्रभावित किया है। औद्योगिक समाजों में सामाजिक परिवर्तन में, और कम विकसित समाजों

में औद्योगीकरण में बढ़ती हुई रुचि के कारण मैक्स वैबर की अध्ययन-पद्धति को दिन प्रति दिन अधिक स्वीकार किया जा रहा है ।

आलोचना

(१) परिमाणात्मक तथ्यों का अध्ययन करने में इस विधि का पूर्णतया स्वतंत्र उपयोग नहीं किया जा सकता है ।

(२) इसके अतिरिक्त, इसके द्वारा समाजशास्त्र की बहुत सीमित समस्याओं पर ही प्रकाश पड़ सकता है ।

(३) ऐतिहासिक सामग्री की विश्वसनीयता के बारे में ठोस प्रमाण नहीं मिल पाते । ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक विधि पर पूर्ण रूप से कैसे निर्भर रहा जा सकता है ।

(४) इस पद्धति का प्रयोग स्वतंत्र रूप से सम्भव नहीं है । इसमें बहुत सी अन्य पद्धतियों का सहारा लेना आवश्यक है ।

(५) जिन प्राप्त लेखों, सामग्रियों के आधार पर परिणाम खोजे जाते हैं वे बहुधा पूर्वधारणाओं पर भी आधारित हो सकते हैं । इसमें परिणाम दोषपूर्ण हो सकता है ।

(६) कभी-कभी लेखक वास्तविकता को छिपा कर आदर्श ही प्रस्तुत करते हैं जिसको सही मानकर चलने से बुरे परिणाम हो सकते हैं ।

(७) ऐतिहासिक पद्धति संवेगों और भावों से प्रभावित होती रहती है, इसलिए यह पूर्ण वैज्ञानिक नहीं है ।

(८) परिवर्तनशील समाज में कोई भी अतीत का कारण सर्वदा ही समान परिणाम के लिये उत्तरदायी नहीं हो सकता; इसलिए यह पद्धति सापेक्ष ज्ञान ही सामने रखती है ।

गुणात्मक विधियाँ
(Qualitative Methods)

गुणात्मक पद्धतियों के क्षेत्र में निम्नलिखित पद्धतियों का विशेष रूप से महत्व है :

(१) वैयक्तिक जीवन अध्ययन विधि
(Case Study Method)

इस पद्धति को ले प्ले (Le Play), स्पेन्सर आदि समाजशास्त्रियों ने अपने अपने अध्ययन में प्रयोग किया परन्तु इस पद्धति का वास्तविक उपयोग थॉमस और

नैनिकी ने अपने प्रसिद्ध अध्ययन The Polish Peasant in Europe and America में किया।

इस विधि के अन्तर्गत किसी एक व्यक्ति, समूह या वर्ग को एक घटना से सम्बन्धित होने के नाते या समूचे समूह का प्रतिनिधि होने के नाते अध्ययन का विषय बनाया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह एक ऐसी विधि है जिसमें सामाजिक इकाई (व्यक्ति-संस्था, समुदाय आदि) को समग्र रूप में देखा जाता है। इस विधि द्वारा अनुसंधानकर्त्ता किसी सामाजिक इकाई का अध्ययन इतने समीप से करता है कि विषय का आन्तरिक ज्ञान संभव हो पाता है।

बीसेन्ज और बीसेन्ज के अनुसार : "वैयक्तिक अध्ययन विधि गुणात्मक विश्लेषण का वह रूप है जिसमें व्यक्ति, स्थिति अथवा संस्था का प्रत्यक्ष रूप से अत्यन्त सावधानी से सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है।"*

इस विधि के पीछे यह विश्वास छिपा है कि जिस इकाई का अध्ययन किया जा रहा है वह अनेक वैसी ही इकाइयों, यदि सब नहीं, का प्रतिनिधित्व करता है और जिसके कारण सामान्य अनुमान लगाना (generalization) सम्भव होगा। इस विधि में उस विषय या इकाई के सभी कारकों का अनुसंधान और विश्लेषण किया जाता है और अधिक से अधिक सम्भव दृष्टिकोणों से परीक्षा की जाती है। साक्षात्कार (interviews), प्रश्नावली (questionnaires), सूची (schedules), जीवन-इतिहास, सभी किस्म के अभिलेख (documents), और सहभोगी अवलोकन (participant observation) जिसमें अवलोकनकर्त्ता स्वयं उस समूह का सदस्य बन जाता है कुछ प्रविधियाँ हैं जिनका प्रयोग इस विधि में किया जाता हैं।

गुड और हैट ने कहा : "यह सामाजिक आँकड़ों को व्यवस्थित करने की ऐसी विधि है जिसके द्वारा अध्ययन के अन्तर्गत आने वाले सामाजिक तथ्यों की एकात्मक (unitary) प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह एक ऐसी विधि हैं जिसमें किसी सामाजिक इकाई को उसके समग्र रूप में देखा जाता है †

* "The Case Study method is a form of qualitative analysis involving the very careful and complete observation of person, a situation or an institution." —Biesanz and Biesanz, Modern Society.

† "It is a way of organizing social data so as to preserve the unitary character of the social object being studied. Expressed somewhat differently, it is an approach which views any social unit as a whole." Goode and Hatt, Methods in Social Research.

कभी-कभी डायरी, हस्तलेख, जानकारी रखने वालों के साक्ष्य और साक्षात्कार का भी सहारा लिया जाता है क्योंकि, जैसा पी. वी. यंग ने कहा है, इसका उद्देश्य सम्पूर्ण जीवन चक्र या एक व्यक्तिगत इकाई (व्यक्ति, परिवार) के इस चक्र की निश्चित प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है। बर्गेस (Burgess) ने इस पद्धति को सामाजिक सूक्ष्मदर्शी बताया है।

एक चतुर अन्वेषक के द्वारा अपने सहानुभूति पूर्ण प्रश्नों के उत्तर में एक व्यक्ति की स्वेच्छा से उसके जीवन की घटनाओं का विस्तृत विवरण प्राप्त कर लेना और उसके आधार पर मानव व्यवहारों को समझाने और विश्लेषित करने का प्रयत्न ही व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति है। इस सम्बन्ध में यह याद रखना है कि केवल तथ्यों का संग्रह ही नहीं, बल्कि उन तथ्यों के उस व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों और उनके प्रति उसके निजी विचारों को भी जानना इस पद्धति की प्रमुख विशेषता और उद्देश्य हैं। यह अन्वेषक की अपनी चतुरता, बुद्धिमत्ता और प्रविधियों पर निर्भर करता है कि वह उस व्यक्ति से कितनी सूचना प्राप्त कर सकेगा और साथ ही यह भी समझ सकेगा कि उसके द्वारा बताये हुये तथ्यों का उसके लिये क्या अर्थ है।

इस पद्धति का प्रयोग बहुधा ऐसे व्यक्तियों के कार्य कलापों को जानने के लिए किया जाता है जो संदिग्ध हैं। अपराधियों के उत्तरदायी कारणों को भी इसी विधि से जाना जा सकता है। बड़े-बड़े अपराधों से सम्बन्धित व्यक्तियों की जाँच में सरकार इसी विधि का सहारा लेती है। किसी महान चरित्र के व्यक्ति, नेता या विद्वान के जीवन-चक्र को जानने के लिये भी इस विधि का प्रयोग किया जाता है। एब्राहम लिंकन, तिलक, नेहरू, गाँधी आदि के बारे में हमें जो कुछ भी ज्ञात है वह इसी पद्धति के प्रयोग का फल है। यह इतिहास को बनाने वाली विधि है।

कार्य विधि :

इस पद्धति में सबसे पहले व्यक्ति से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। व्यक्ति से भली भाँति घुलने मिलने पर ही व्यक्ति के जीवन की सभी बातों को सुविधापूर्वक जाना जा सकता है। बातचीत के दौरान में अनुसंधानकर्त्ता संक्षिप्त नोट लेता जाता है। साक्षात्कार के अतिरिक्त जीवनियों, घनिष्ठ मित्रों के पत्र, व्यक्तिगत प्रलेखों आदि से भी सहायता मिल सकती है।

इस पद्धति को काम में लाते हुये निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये :

(१) व्यक्ति को उसकी ही सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की एक इकाई और प्रतिरूप (specimen) मान कर अध्ययन करना चाहिये।

(२) व्यक्ति के जीवन में परिवार और अन्य प्राथमिक समूहों के महत्व को नहीं भूलना चाहिये।

(३) उसके प्रत्येक व्यवहार को उसकी सामाजिक अवस्थाओं से सम्बन्धित करके समझने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(४) व्यक्ति के बारे में ऐसे तथ्यों को जानने का प्रयास करना चाहिए जिससे व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन के बारे में वर्णन किया जा सके।

(५) सम्बन्धित भौगोलिक क्षेत्र से ही व्यक्तियों को अध्ययन के लिए चुना जाना चाहिये।

(६) इस प्रकार एकत्रित सामग्रियों को उचित रूप से व्यवस्थित और विश्लेषित किया जाना चाहिये।

(७) प्रशिक्षित व्यक्ति को ही इस अध्ययन का इन्चार्ज बनाना चाहिए।

उदाहरण :

मान लीजिये हमें इस पद्धति के द्वारा वेश्यावृत्ति के कारणों का पता लगाना है। हम कुछ वेश्याओं को इस प्रकार चुन लेंगे कि वे वेश्याओं के समूह का यथा सम्भव प्रतिनिधित्व करें। इसके बाद एक-एक करके प्रत्येक वेश्या से भेंट करके उसके दिल में अपने अध्ययन के अच्छे उद्देश्य के प्रति विश्वास पैदा करेंगे। फिर चतुर और सहानुभूतिपूर्ण प्रश्नों और बातचीत के द्वारा उसके जीवन के सम्पूर्ण इतिहास और सम्बन्धित तथ्यों को जानने का प्रयत्न करेंगे। इस सम्बन्ध में उस वेश्या के व्यक्तिगत लेखों, पत्रों, डायरियों, आत्म-कथाओं आदि की भी सहायता ली जायेगी अगर वह प्राप्त हो सकें। इसी प्रकार, अन्य वेश्याओं के जीवन-इतिहास के बारे में भी जानकारी प्राप्त की जायेगी। फिर, इन तथ्यों को उचित ढंग से सुव्यवस्थित और विश्लेषित करके वेश्यावृत्ति के कारणों का पता लगा लेंगे।

महत्व :

(१) व्यक्तिगत समस्याओं को सूक्ष्म रूप से समझने के लिये एक मात्र यही पद्धति है।

(२) व्यक्ति की सामाजिक मनोवृत्ति, मूल्यों आदि के बारे में ज्ञान इस विधि द्वारा सम्भव है।

(३) आगमनात्मक विधि का उपयोग करके अपराधों, चोरियों, मनोविकृतियों के कारणों का पता लगाया जा सकता है तथा उनके आधार पर भविष्यवाणी की जा सकती है। उदाहरण के लिये, किसी छात्र प्रतिनिधि का अध्ययन करके उसकी मनोवृत्तियों को समझ करके हड़ताली छात्रों की मनोवृत्तियों का पता लगाया जा सकता है और उसके आधार पर कार्य-कारण का भावी स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है।

इस पद्धति के महत्व और गुणों पर प्रकाश डालते हुये चार्ल्स कूले ने लिखा है : "व्यक्तिगत जीवन अध्ययन हमारी बोधशक्ति को प्रगाढ़ करता है और जीवन के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट अन्तर्दृष्टि देता है। यह व्यवहार तक प्रत्यक्ष रूप से, न कि अप्रत्यक्ष और अमूर्त तरीके से, पहुँचा देता है।"*

थॉमस और नैनिकी (Znaniecki) ने इस पद्धति की प्रशंसा करते हुये कहा है कि इस पद्धति के द्वारा ही हमें आदर्श समाजशास्त्रीय सामग्री प्राप्त होती हैं क्योंकि इसकी सहायता से हमें व्यक्तिगत अनुभवों और उनसे सम्बन्धित अमूर्त तथ्यों का विस्तृत विवरण, स्पष्ट स्मृति-कथाओं के सम्बन्ध में जितनी वास्तविक और आधारभूत सामग्री मिल पाती है उतनी और किसी भी पद्धति के द्वारा सम्भव नहीं। रॉबर्ट पार्क ने तो इस पद्धति की प्रविधि को बिल्कुल ही प्राकृतिक और भौतिक विज्ञान के समान माना है।

इस पद्धति की उपयोगिता इतनी अधिक सिद्ध हुई कि रीड बेन (Read Bain) को भी, जो पहले इस विधि के बड़े कटु आलोचक थे, यह स्वीकार करना पड़ा : "बहुत विस्तृत अर्थ में, व्यक्तिगत जीवन के अध्ययन के द्वारा हमें कुछ फलप्रद उपकल्पनायें और साथ ही कुछ ऐसी सामग्री जो उप-कल्पनाओं की परीक्षा कर सके प्राप्त होती है, जिसके बिना सामान्य नियमों पर आधारित सामाजिक विज्ञान अत्यधिक प्रतिबन्धित हो जायेगा।"†

आलोचना :

(१) अनौपचारिक बनाने के प्रयत्न में कभी कभी अन्वेषक व्यक्ति या समूह के बारे में कुछ पक्षपात (prejudices) विकसित कर लेता है। इन गलत विश्वासों के कारण परिणाम त्रुटिपूर्ण हो जाता है।

(२) कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में शीघ्रता करके कुछ नहीं जाना जा सकता है। सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिये बहुत समय लगाना पड़ता है।

(३) इस पद्धति से अध्ययन करने में समय व धन की आवश्यकता पड़ती है।

---

* "Case study deepens our perception and gives us a clearer insight into life .It gets at behaviour directly and not by an indirect and abstract approach." *C.H. —Cooley.*

† "By case study' in the broadest sense of the term, we get some fruitful hypothesis, as well as some data which may be useful in testing them without which generalized social science would be seriously handicapped." —Read Bain.

(४) तथ्यों की पुनर्परीक्षा भी सम्भव नहीं हो पाती।

(५) अध्ययन निदर्शन (sampling) प्रणाली पर आधारित न होने के कारण अनेक कठिनाइयाँ आती हैं।

(६) कभी-कभी वास्तविक जिम्मेदार व्यक्ति का पता नहीं लगता और अध्ययन कर्त्ता लम्बे समय तक असम्बद्ध व्यक्ति के अध्ययन में समय तथा धन नष्ट करता रहता है।

(७) इस पद्धति में वह व्यक्ति जिसके जीवन का अध्ययन हो रहा है, वही कहता है जो अन्वेषक चाहता है।

(८) वह व्यक्ति अपने कार्य को उचित प्रमाणित करने का सदैव प्रयत्न करता है।

(९) वह घटनाओं को बढ़ा चढ़ा कर बताता है।

(१०) इस पद्धति में प्रायः ऐसे व्यक्तियों को ही चुना जाता है जिनका जीवन विघटित है। इस कारण इस पद्धति के निष्कर्ष केवल ऐसे ही लोगों के सम्बन्ध में ठीक हो सकते हैं।

(११) व्यक्तिगत जीवन की तुलना सम्भव नहीं।

इन सब दोषों के बावजूद भी व्यक्तिगत जीवन अध्ययन पद्धति का महत्व अत्यधिक है और यह दिन प्रति दिन अधिक लोकप्रिय होती जा रही है।

(२) समाजमिति (Sociometry)

साधारण अर्थ में समाजमिति का अर्थ सामाजिक पैमाने (scales) से है। जिस प्रकार वर्षा नापने के लिये एक निश्चित पैमाने को काम में लाया जाता है उसी प्रकार कुछ विशेष सामाजिक घटनाओं को नापने के लिये समाजमिति के पैमाने का प्रयोग किया जाता है।

मोरेनो (Moreno) पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने विद्वानों का ध्यान समाजशास्त्र में इन पद्धति की ओर आर्कषित किया। जैनिंग्स (Jennings) का कहना है: "सामान्यरूप से यह पद्धति किसी विशेष अवसर पर किसी समूह के सदस्य के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने की विधि है।'

समाजमिति का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार का अध्ययन एक साथ सम्भव है और इस अर्थ में इस पद्धति ने साँख्य-कीय पद्धति की कमी को दूर कर दिया है। इस पद्धति द्वारा ईर्ष्या, वर्ग-संघर्ष, प्रजाति-पक्षपात, सामाजिक पद और स्थिति, व्यक्तियों के पारस्परिक, मानसिक और सामाजिक सम्बन्ध को नापना सरल हो गया है।

गणनात्मक विधि से गणना का पता लग जाता है, बाहर की बातों का स्पष्टीकरण हो जाता है। उदाहरण के लिए, गणना करने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि देश में कितने लोग बेकार हैं। परन्तु यह पता नहीं लग सकता कि वे क्यों बेकार हैं। इस अन्दरूनी बात का पता लगाने के लिए समाजमिति का सहारा लेना पड़ता है। इस दृष्टि से मोरेनो ने ऐसे कुछ मापदण्ड बनाये जिनसे समाज की अन्दरूनी प्रक्रियाओं का, राग द्वेष का केवल वर्णन ही न किया जा सके बल्कि उसे नापा भी जा सके।

समाजमिति का प्रयोग 'हवा का दबाव' या 'वायुमण्डल की आद्रता' नापने वाले बैरोमीटर की तरह किसी व्यक्ति या समूह के प्रति किसी अन्य व्यक्ति या समूह का, भावनात्मक उतार-चढ़ाव मापने के लिये किया जाता है। यह पद्धति सामाजिक विज्ञानों के लिए नयी है। इसका प्रयोग व्यक्तियों और समूहों के मध्य की सामाजिक दूरी—प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठा, चाह, दुराव तथा अन्य पारस्परिक सम्बन्धों को मापने के लिये किया जाता है। यह पद्धति अधिमान व्यवस्था (preferential system) पर आधारित है अर्थात् विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किये गये अधिमानों के द्वारा हम एक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

उदाहरण—यदि कोई फिल्म प्रोड्यूसर यह जानना चाहता है कि फिल्म अभिनेत्रियाँ किन फिल्म डायरेक्टरों को कितना पसन्द करती हैं तो वह इस विधि का प्रयोग करेगा। मान लीजिये ६ अभिनेत्रियों को ६ निर्देशकों में चुनाव करना है। फिल्म प्रोड्यूसर इन ६ अभिनेत्रियों से कहेगा कि वे सादे कागज के टुकड़े पर उन तीन निर्देशकों का नाम क्रम से लिखें जिन्हें वे प्रथम, द्वितीय और तृतीय अधिमान देती हैं। सबके कागजों को प्राप्त कर निम्नाँकित ढंग से सारणी बनाकर निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। संख्या कम या अधिक होने पर उसमें आवश्यक हेर-फेर किये जा सकते हैं।

समाज-सारिणी (Socio-Matrix)

→चुने हुये फ़िल्म निर्देशक←

प्रथम अधिमान=3अंक; द्वितीय=2; तृतीय=1 अंक							
चुनने वाली अभिनेत्रियाँ	A	B	C	D	E	F	कुल प्राप्तांक
A		2		3		3	4
B	2		3		3		4
C		3		1	2		6
D	1	1	1			1	12
E			2	2	3		5
F	3		2		1		6

A निर्देशक को एक द्वितीय अधिमान मिला जिसके अंक २ हैं; दो तृतीय अधिमान मिले जिनके १-१ अंक हैं। इस प्रकार तीनों का योग ४ हुआ। इसी प्रकार, हम अन्य निर्देशकों को प्राप्त अधिमान को भी अंकों में परिणित करके उनकी लोकप्रियता को माप सकते हैं। उपर्युक्त सारिणी से कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं जो गुणात्मक होने के साथ ही साथ परिमाणात्मक महत्व भी रखते हैं।

१. 'D' फ़िल्म निर्देशक सबसे अधिक लोकप्रिय है क्योंकि उसे सबसे अधिक अंक १२ मिले हैं।

२. 'C' और 'F' निर्देशक ऐसे हैं जिन्हें 'D' से कम लोकप्रियता प्राप्त है परन्तु आपस में वे लोकप्रियता के मामले में बराबर हैं।

३. सबसे कम लोकप्रियता 'A' और 'B' निर्देशकों को मिलती है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजमितीय पद्धति से अमूर्त और भावात्मक तथ्यों का अध्ययन किया जा सकता है। समाज-मितीय पद्धति से जब

हम सामाजिक दूरी को ज्ञात करना चाहते हैं तो बोगार्डस के सामाजिक दूरी के पैमाने का प्रयोग करते हैं। यह पैमाना कुछ निम्न प्रकार का होता है।

(१) आप किसको अपना मित्र बना सकते हैं? चीनी, अमेरिकन, रूसी

(२) आप किनके साथ विवाह कर सकते हैं? " " "

इस पद्धति के अन्तर्गत घटनाओं को कुछ भागों में बाँट लिया जाता है और रुचि को नोट कर लिया जाता है, फिर निष्कर्ष तक पहुँचना सरल हो जाता है। जिस चुनाव क्षेत्र में एक से अधिक लोगों को चुना जाता है, जैसे विश्वविद्यालय के सीनेट (Senate) के लिये, वहाँ इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

महत्व :

(१) समाजमिति द्वारा अनेक गुणात्मक तथ्यों का अध्ययन सम्भव है और इनको संख्यात्मक रूप दिया जाता है।

(२) जहाँ संख्यात्मक पद्धति असफल रहती है, वहाँ समाजमिति सहायता करती है।

(३) इस पद्धति के आधार पर तत्सम्बन्धित परिणामों को अंशों (degrees) में भी पाया जा सकता है।

आलोचना :

इस विधि से निकलने वाले निष्कर्ष बहुधा उत्तरदाताओं की पूर्वधारणाओं (prejudices) से पूर्ण होते हैं जिससे पूरा का पूरा अध्ययन पूर्व धारणाओं द्वारा प्रभावित हो जाता है।

(२) यह विधि कष्टसाध्य है।

(३) सामुदायिक अध्ययन विधि (Community Study Method)

यह विधि व्यक्तिगत जीवन अध्ययन विधि का एक वृहद रूप है इसमें अध्ययन वस्तु व्यक्ति न होकर पूरा समुदाय होता है। इस अध्ययन से किसी समुदाय की समस्याओं, रीतियों और परम्पराओं, और उनकी संरचना और प्रकार्यों का अध्ययन किया जाता है। जब वैज्ञानिक पूरे समूह या समुदाय की किसी समस्या का अध्ययन करना चाहता है तो वह इस विधि का प्रयोग करता है। ऐसा करने के लिये वैज्ञानिक सर्वप्रथम अपनी अध्ययन वस्तु का निर्धारण करता है, फिर या तो (अ) वह उस समुदाय का अनौपचारिक सदस्य बन कर अथवा (ब) मात्र अध्ययन कर्त्ता की हैसियत से उसका अध्ययन करता है। इस पद्धति में वह प्रायः सभी विकसित समाजशास्त्रीय विधियों का प्रयोग करने के लिये स्वतन्त्र है क्योंकि किसी एक या दो विधियों के प्रयोग से अध्ययन पूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकता। जन-जातीय कल्याण, हरिजन-कल्याण, श्रम-कल्याण जैसी समस्याओं के अध्ययन में इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

विन्ध्याचल की पर्वतीय जनजातियों के विकास के लिये जन-जातीय विकास केन्द्रों ने बहुत से ऐसे स्वयंसेवकों की सेवायें ली हैं। इस प्रकार के स्वयंसेवक सम्बन्धित समुदाय के लोगों में अपने प्रति विश्वास पैदा करके वहाँ की सारी समस्याओं के बारे में निकट से जानकारी प्राप्त करते हैं। फिर उनका वर्गीकरण करके वे रिपोर्ट तैयार करते हैं जिसके आधार पर सरकार उनके विकास के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करती है। इसी विधि के द्वारा विभिन्न समाजों एवं समुदायों के रीति-रिवाज़ के बारे में अध्ययन किया जाता है।

आज विश्वविद्यालय आयोग ने छात्र-समुदाय की कठिनाइयों को समझने एवं उसे दूर करने के लिये ऐसे ही अध्ययनकर्त्ताओं का सहारा लिया है जो व्यक्तिगत रूप से छात्रों और अध्यापकों से मिल कर उनकी समस्याओं को समझने का प्रयत्न करते हैं। इन्हीं की रिपोर्टों के आधार पर इन समस्याओं के समाधान खोजे जाते हैं।

महत्व :

(१) यह पद्धति विशेषकर व्यावहारिक समाजशास्त्र में प्रयुक्त होती हैं।

(२) एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों एवं समस्याओं के अध्ययन में सक्षम है।

(३) अपेक्षाकृत इसमें कम धन व समय लगता है।

(४) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि जानने के लिये यही विधि सर्वोत्तम है।

आलोचना :

अधिक फैले हुए क्षेत्र का अध्ययन करने के नाते यह पद्धति सूक्ष्म एवं केन्द्रित अध्ययन प्रस्तुत करने में विफल या असमर्थ रहती है।

अन्य अध्ययन विधियाँ (Other Sociological Methods)

(अ) तुलनात्मक विधि (Comparative Method)

इस विधि में विभिन्न प्रकार के समूहों या लोगों की तुलना की जाती है जिससे उनके जीवन-यापन के ढंगों के अन्तर और समानतायें मालूम हो सकें। यह विश्वास किया जाता है कि यह समानतायें और असमानतायें मनुष्य के सामाजिक व्यवहार को समझने में महत्वपूर्ण सूत्र प्रस्तुत करती हैं। इस विधि का प्रयोग वर्तमान समूहों या भूतकाल के समूहों, और सभ्यता के समान या भिन्न स्तरों के समूहों के अध्ययन में किया जा सकता है।

बहुत वर्षों तक तुलनात्मक अध्ययनविधि को समाजशास्त्र की सबसे अच्छी पद्धति समझा जाता रहा। इसका सबसे पहले प्रयोग उद्‌विकासीय (evolutionist) समाजशास्त्रियों ने किया। इस पद्धति का महत्व सबसे पहले दुरखाइम (Durkheim) ने बताया। सबसे पहले इस बात पर बल देते हुये कि समाजशास्त्रीय व्याख्या का अर्थ केवल कार्य-कारण सम्बन्धों (causal relationships) को स्थापित करना है, उसने कहा

कि एक सामाजिक घटना दूसरी सामाजिक घटना का कारण है इस बात को सिद्ध करने या प्रदर्शित करने का एकमात्र तरीका यह है कि ऐसी घटनाओं का अध्ययन किया जाये जिसमें दोनों कारक एक साथ मौजूद हैं या अनुपस्थित हैं। इसी से यह प्रकट हो सकता है कि दोनों एक दूसरे पर निर्भर करते हैं या नहीं। अधिकतर प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोग (experiment) के द्वारा कार्य-कारण सम्बन्धों को निश्चित किया जा सकता है परन्तु क्योंकि समाजशास्त्र में प्रयोग (experiment) असम्भव है इसलिये, दुरखाइम कहना है, हमें अप्रत्यक्ष प्रयोग की पद्धति अर्थात् तुलनात्मक पद्धति को अपनाना पड़ता है। हो सकता है कि हमेशा ही सामाजिक क्षेत्र में कार्य-कारण सम्बन्धों को दर्शाया न जा पाये, फिर भी क्रमबद्ध तुलना महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे कम से कम यह दिखाया जा सकता है कि कुछ सामाजिक घटनायें बहुत अक्सर एक दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं या एक निश्चित क्रम में एक के बाद दूसरी घटित होती हैं।

आलोचना :

(१) रैडक्लिफ़ ब्राउन ने कहा है कि "अकेले तुलनात्मक विधि से कुछ नहीं प्राप्त होता। भूमि से तब तक कुछ नहीं उग सकता जब तक उसमें बीज न डालो। तुलनात्मक विधि उपकल्पना की परीक्षा करने की एक विधि है।"* तुलनात्मक विधि को प्रयोग करने में सबसे बड़ी कठिनाई उपकल्पना की अनुपस्थिति या स्पष्ट रूप से निर्मित उपकल्पना की अनुपस्थिति है। दूसरे, तुलना की इकाइयों की परिभाषा देने की भी समस्या है। उदाहरण के लिये, अपने 'तीन अवस्थाओं के नियम' (law of three stages) को प्रमाणित करने के लिये कोम्त (Comte) द्वारा प्रयोग की गई तुलनात्मक विधि किसी वैज्ञानिक उपकल्पना (hypothesis) पर नहीं आधारित है बल्कि सम्पूर्ण मानवता के विकास के दर्शनशास्त्रीय विचार पर आधारित है।

(२) तुलना की इकाई की परिभाषा देने में दूसरी कठिनाइयाँ उठती हैं। सम्पूर्ण समाजों की एक दूसरे से तुलना करने में विशाल समस्यायें आती हैं और ऐसा करने की सामान्य विधि यह है कि भिन्न समाजों की किसी एक विशेष संस्था की, या दो संस्थाओं के बीच सम्बन्ध की तुलना की जाये। इस विधि के आलोचकों का कहना है कि जो संस्थायें देखने में एक सी लगती हैं वे उन भिन्न समाजों में बहुत भिन्न कार्य करने के कारण फ़र्क हों। दूसरे उस सम्पूर्ण समाज के संदर्भ से जिसमें वह कार्य करती है, किसी संस्था को हटा कर अध्ययन करने से उसके बारे में

* "The comparative method alone gives you nothing. Nothing will grow out of the ground unless you put seeds into it. The comparative method is one way of testing hypothesis."

Radcliffe—Brown.

गलतफहमी हो सकती है। अर्थात् संस्था को पूरे समाज के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। अलग तौर पर दो समाजों की किसी सामान्य संस्था की तुलना सम्भव नहीं है।

(ब) सामाजिक निरीक्षण पद्धति
(Social Observation Method)

पी. वी. यंग ने सामाजिक निरीक्षण पद्धति की परिभाषा देते हुये कहा है : "निरीक्षण आँखों द्वारा किया गया वह अध्ययन है जो जानबूझ कर किया जाता है। इसके द्वारा सामूहिक व्यवहारों, जटिल सामाजिक संस्थाओं तथा पूर्णता रखने वाली अन्य पृथक इकाइयों का सूक्ष्म अनुवीक्षण किया जाता है।" * किसी न किसी रूप और मात्रा में इसका प्रयोग सभी समाजशास्त्रीय विधियों में किया जाता है। यह सभी विधियों के लिये प्राण है। परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार की अध्ययन पद्धतियाँ इसके बिना अधूरी रहती हैं।

निरीक्षण पद्धति के प्रकार (Types of observation)

निरीक्षण दो प्रकार से किया जाता है :—

(१) असहभागी निरीक्षण (Non-participant observation)

(२) सहभागी निरीक्षण (Participant observation)

असहभागी निरीक्षण में वैज्ञानिक उस समूह या समुदाय में कभी-कभी जाता है जिसका वह अध्ययन कर रहा होता है और जो कुछ वह देखता है उसके आधार पर निष्कर्ष की खोज करता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई शिक्षाशास्त्री या समाजशास्त्री किसी पाठशाला में अनुशासन के रूप का अध्ययन करना चाहता है तो वह कभी-कभी पाठशाला में उपस्थित होकर शिक्षक-शिक्षार्थी और शिक्षक-शिक्षक तथा शिक्षार्थी-शिक्षार्थी के बीच होने वाले व्यवहारों एवं बर्तावों का निरीक्षण करता है तथा पता लगाता है कि उस पाठशाला में अनुशासन का क्या स्तर है। प्रायः इस प्रकार के निरीक्षण शिक्षा संस्थाओं में हमेशा ही हुआ करते हैं।

इस प्रकार के निरीक्षण का दोष यह है कि समुदाय के लोग अध्ययनकर्ता से अपरिचित होने के कारण अधिकतर औपचारिक रूप से ही व्यवहार करते हैं और वास्तविक बातों की पोल नहीं खोलते। इस कारण निष्कर्ष की सत्यता संदेहप्रद होती है। इस कमी को दूर करने का तरीका यह है कि अध्ययनकर्ता उस समुदाय

* "Observation—a detailed and deliberate study through eyes may be used as one of the methods for scrutinizing collective behaviour and complex social institutions as well as the separate units composing a totality."

—P V. Young, Social Survey and Research.

के स्तर का व्यवहार जान कर मात्र एक दर्शक की भाँति ही वहाँ जाये और सूचनाओं को गुप्त रूप से अंकित करता रहे। जाँच विभाग के कर्मचारी कभी-कभी इसी प्रकार से निरीक्षण करते हैं। ऐसा करने के लिये, रूप बदल कर वे समुदाय या समाज में बिना किसी संदेह के प्रवेश पा लेते हैं। असहभागी निरीक्षण पद्धति के दोष को दूर करने के लिये ही सहभागी निरीक्षण पद्धति का विकास हुआ।

सहभागी निरीक्षण में अध्ययन कर्ता कुछ समय के लिये समूह या समुदाय विशेष से अनौपचारिक सम्बन्ध बना लेता है और घुल-मिल कर सारे आवश्यक तथ्यों का पता लगा कर निष्कर्ष निकालता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई समाजशास्त्री साधु-समाज में व्याप्त भ्रष्टाचारों का पता लगाना चाहता है तो वह साधुओं का बाना धारण कर उस समाज का सदस्य बन जायेगा और इस प्रकार उनके मठों की अन्दरूनी बातों को जान कर वास्तविक निष्कर्ष खोज निकालेगा।

आलोचना :

इस प्रकार के अध्ययन में अन्वेषण की प्रातीतिकता (subjectivity) कभी-कभी त्रुटि उत्पन्न कर देती है। स्वयं वह उस समुदाय का सक्रिय सदस्य भी बन सकता है तथा उसका अध्ययन निरर्थक दिखावा मात्र रह सकता है। अध्ययनकर्ता की पूर्वधारणाओं (prejudices) के कारण भी परिणाम असन्तोषजनक हो सकता है।

इतना सब कुछ होने पर भी इस पद्धति का प्रयोग दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है।

(स) आदर्श प्रारूप विश्लेषण पद्धति
(Ideal Type Analytical Method)

मैक्स वैबर का कहना है कि कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज केवल आदर्श प्रारूप विश्लेषण पद्धति द्वारा ही सम्भव है। इस विधि में वास्तविकता के आधार पर अध्ययन-कर्ता समस्या का अपने दृष्टिकोण से आदर्श प्रारूप (Ideal Type) निर्माण करता है। फिर वास्तविक विषयों का मूल्याँकन इस आदर्श धारणा या कल्पना से निकटता या दूरी के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई वैज्ञानिक 'सहयोग' या 'जनतंत्र' पर कार्य कर रहा है तो वह अध्ययन के पहले ही 'सहयोग' या जनतंत्र का आदर्श रूप कल्पित करता है। फिर अध्ययन द्वारा यह देखता है कि 'सहयोग' या 'जनतंत्र', जिसका भी अध्ययन किया जा रहा है, आदर्श धारणा से कितनी दूर या निकट है।

उदाहरण :

पिछले वर्ष बनारस विश्वविद्यालय के महिला-विद्यालय की छात्राओं का, इसी विधि पर आधारित, अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में तुलसीकृत रामचरित

मानस की सीता को आदर्श नारी एवं राम को आदर्श पुरुष माना गया था। इसी संदर्भ में छात्राओं से यह पूछा गया था कि उनमें से कितनी लड़कियाँ 'सीता' की तरह नारी बनना चाहती थीं और कितनी लड़कियाँ राम की तरह आदर्श पति की इच्छा रखती हैं। पाया गया कि बहुत सी लड़कियों ने सीता को आदर्श नारी माना है और कुछ ने उनकी तरह नारी बनने की इच्छा भी व्यक्त की जब कि कुछ थोड़ी सी लड़कियों ने राम को पूर्णतया आदर्श पति मानने से इन्कार कर दिया।

महत्व :

(१) यह पद्धति वर्णनात्मक (descriptive) अथवा विश्लेषणात्मक अध्ययनों के लिये उपयोगी है।

(२) इस विधि के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

आलोचना :

इस पद्धति की सबसे बड़ी कमी यह है कि एक ही वस्तु की आदर्श प्रारूपता विभिन्न अध्ययन कर्ताओं के लिये विभिन्न हो सकती है अर्थात् अध्ययन प्रतीतिकता (subjectivity) से प्रभावित होता रहता है जिससे सत्यता का पता लगाना कठिन हो जाता है।

(द) प्रकार्यवाद
(Functionalism)

सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने की एक विधि प्रकार्यवाद है जिसको समाजशास्त्र में दिन प्रति दिन अधिक महत्व दिया जा रहा है। संक्षेप में, प्रकार्यवाद से तात्पर्य सामाजिक घटनाओं का अध्ययन उन प्रकार्यों (functions) के दृष्टिकोण से करना है जो विशिष्ट संस्थायें या सामाजिक संरचनायें (structures) जैसे कि वर्ग, समाज में करती हैं। प्रकार्यवाद में यह विचार छिपा है कि सम्पूर्ण सामाजिक प्रणाली अनेक टुकड़ों से मिलकर बनी है जो एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। इनमें से प्रत्येक भाग कोई एक प्रकार्य करता है जो समूह के जीवन के लिये आवश्यक है। इन भागों को उन आवश्यकताओं के संदर्भ में ही समझा जा सकता है जिनकी वे पूर्ति करते हैं। दूसरे, क्योंकि वे अन्त:निर्भर (inter-dependent) हैं इसीलिये उनको समझने के लिये आवश्यक है कि अन्य भागों के साथ और सम्पूर्ण सामाजिक प्रणाली के साथ उनके सम्बन्ध की जाँच की जाये।

यह विधि कोई एक नया आविष्कार नहीं है क्योंकि इसके बीज कोम्त, स्पेन्सर और अन्य समाजशास्त्रियों के लेखों में मिलते हैं। फिर भी, मैलिनोस्की और रैडक्लिफ़-ब्राउन जैसे मानवशास्त्रियों के प्रयत्नों के बाद ही यह समाजशास्त्र में एक अध्ययन-विधि के रूप में स्थापित हो सका। समाजशास्त्र में प्रकार्यात्मक विधि

को प्रचलित कराने का श्रेय टॉल्कट पारसन्स और रॉबर्ट मर्टन को है जिन्होंने सामाजिक संरचनाओं या संस्थाओं पर अत्यधिक बल देते हुए इस विधि को संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विधि (structural-functional method) की संज्ञा दी।

सारांश : समाजशास्त्र द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली यह विभिन्न विधियाँ एक दूसरे से बिल्कुल अलग नहीं हैं। इनमें से कुछ एक दूसरे की पूरक हैं, और अक्सर समाजशास्त्री अपनी गवेषणाओं में एक से अधिक विधियों का प्रयोग करते हैं।

---

८ समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञान
(Sociology and Other Social Sciences)

मनुष्य के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिये समाजशास्त्र को अक्सर जीव-विज्ञान, मनोविज्ञान, मानव-शास्त्र, भूगोल और इतिहास में हुई खोजों का सहारा लेना पड़ता है। साथ ही, क्योंकि मनुष्य के सामाजिक जीवन को उसकी आर्थिक और राजनीतिक क्रियाओं से अलग नहीं किया जा सकता, समाजशास्त्री अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र द्वारा एकत्रित की गई आधार सामग्री (data) का भी उपयोग करता है।

अन्य शास्त्रों पर समाजशास्त्र की निर्भरता से सम्भव है कुछ पाठक यह समझें कि यह बिल्कुल परजीवी (parasite) है, अन्य विज्ञानों की खोजों पर जीवित रहने वाला है। परन्तु सत्य तो यह है कि उपरोक्त विज्ञान भी, विशेषकर मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र भी, समाजशास्त्र की आधार-सामग्री और निष्कर्षों पर उतना ही निर्भर करते हैं क्योंकि जीवन के सामान्य सामाजिक पहलुओं—जिनका समाजशास्त्र अध्ययन करता है—को समझे बगैर उसकी विशेष समस्याओं को भी अच्छी तरह से समझा नहीं जा सकता।

समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों विशेषकर मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान के साथ मिलकर सामाजिक व्यवहार और उसके फलों का वैज्ञानिक अनुसंधान करता है। एक सामाजिक विज्ञान को दूसरे सामाजिक विज्ञान से अलग करने की न कोई स्पष्ट रेखा है, न होनी ही चाहिये। इस बात की आशा सामाजिक विज्ञान में की जाती है कि एक दूसरे की सहायता से यह सब विज्ञान अच्छे अनुसन्धान कर सकेंगे। फिर भी, जीवन के विभिन्न पहलुओं पर इनके बल देने के कारण इनमें अन्तर भी हैं।

समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों के सम्बन्ध के विषय में विद्वानों का मत

कोम्त के विचार (Views of Comte)

ऑगस्ट कोम्त ने समाजशास्त्र को समाज का अध्ययन करने वाला एक मात्र विज्ञान माना है और अन्य सामाजिक विज्ञानों के महत्व को स्वीकार नहीं किया है। कोम्त के विचार में समाजशास्त्र ही एक ऐसा शास्त्र है जो समाज का समग्र रूप से अध्ययन करके अन्तिम सत्य तक पहुँचने में समर्थ है। इन्होंने समस्त सामाजिक घटनाओं को पूर्ण रूप से सम्बन्धित माना है और समय दृष्टिकोण से सम्पूर्ण समाज का अध्ययन करने वाले विज्ञान को 'सामाजिक भौतिकी' (social physics) के नाम से सम्बोधित किया और बाद में उसका नाम समाजशास्त्र रक्खा।

कोम्त का कहना है कि समाज एक पूर्णता (totality) है। इसका अध्ययन अनेक भागों में विभाजित करके नहीं किया जा सकता। समाजशास्त्र के अतिरिक्त दूसरे सभी सामाजिक विज्ञान अलग-अलग रूप से समाज के एक छोटे से भाग का अध्ययन करते हैं। इसलिये उनको समाज का वास्तविक विज्ञान कहना ठीक नहीं। अपने इसी विचार के पक्ष में कोम्त ने अर्थशास्त्र अथवा राजनीतिशास्त्र को स्वतंत्र विज्ञान की भाँति स्वीकार करने से इन्कार किया और राजनीतिशास्त्र के विरुद्ध तो उनका कठोर मत रहा। कोम्त ने कहा कि अन्य सामाजिक विज्ञानों के द्वारा समाज या सामाजिक घटनाओं के बारे में किसी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नहीं है क्योंकि इनका (सामाजिक विज्ञानों का) अध्ययन क्षेत्र सीमित है और दृष्टिकोण भी संकुचित है। अकेला समाजशास्त्र ही इस योग्य है कि सम्पूर्ण समाज का अध्ययन करके किसी वास्तविकता तक पहुँच सके। इसलिये, समाजशास्त्र को ही समाज का एक मात्र प्रमाणिक विज्ञान मानना उचित है। इस प्रकार, कोम्त ने सभी सामाजिक विज्ञानों के अस्तित्व और आवश्यकता को स्वीकार नहीं किया है।

लगभग सभी सामाजिक वैज्ञानिकों ने कोम्त के विचार की कटु आलोचना की है और समाजशास्त्र को अन्य सामाजिक विज्ञानों से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित माना है। वास्तव में कोम्त का कहना कि बिना किसी अन्य सामाजिक विज्ञान की सहायता से किसी समाज का अध्ययन समाजशास्त्र कर सकता है आदिम या सरल समाज के मामले में सही हो सकता है परन्तु आधुनिक जटिल समाज में यह सम्भव नहीं है जहाँ सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक पहलू एक दूसरे से गुथे हुये हैं और एक दूसरे के पूरक हैं।

स्पेन्सर के विचार (Views of Herbert Spencer)

हरबर्ट स्पेन्सर ने कहा कि अन्य विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों का समन्वय

समाजशास्त्र है। स्पेन्सर के विचार कोम्त के विचार से बिल्कुल उल्टे और आधुनिक हैं। उन्होंने कहा कि समाजशास्त्र विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों का समन्वय हैं, फिर भी अन्य विशिष्ट विज्ञान स्पष्ट रूप से अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये हुये हैं।

स्पेन्सर ने विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के बीच समाजशास्त्र की स्थिति को उद्विकास के सिद्धान्त (theory of evolution) के आधार पर समझाने का प्रयास किया है। उद्विकास के सिद्धान्त के अनुसार शरीर के विभिन्न अङ्ग एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं और किसी अंग को प्रभावित करने वाले तत्व या कारक दूसरे अंगों को भी प्रभावित करते हैं। इस प्रकार, शरीर का कोई भी अंग प्रभावक तत्वों से मुक्त नहीं रहता है। शरीर के इन समस्त अंगों की पारस्परिक क्रियाशीलता से ही शरीर का विकास होता है। ठीक इसी प्रकार विभिन्न सामाजिक विज्ञान जो सम्पूर्ण सामाजिक जीवन के विभिन्न अंग हैं उनकी क्रियाशीलता, परस्पर सम्बन्ध और निर्भरता आदि के द्वारा ही समाजशास्त्र का विकास सम्भव हो सका है। संक्षेप में, स्पेन्सर के मतानुसार समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों का समन्वय है और इस प्रकार अन्य सब सामाजिक विज्ञान वैध उपविज्ञान हैं जिनके परिणाम समाजशास्त्र के द्वारा समाज के एक सामान्य सिद्धान्त में समन्वित होते हैं।* और भी अधिक स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अन्य सामाजिक विज्ञान अपने अपने क्षेत्र में पूर्णतया स्वतंत्र हैं और इनके समन्वय से ही समाजशास्त्र का विकास हो सका है।

स्पेन्सर के उपरोक्त मत में हमें अतिशयोक्ति की झलक मिलती है। स्पेन्सर के मत के अनुसार समाजशास्त्र में होने वाले सभी परिवर्तन अन्य सभी सामाजिक विज्ञानों के परिवर्तनों के अनुसार होने चाहिये परन्तु सच तो यह है कि समाजशास्त्र के सिद्धान्तों एवं निष्कर्षों का प्रभाव अन्य सामाजिक विज्ञानों पर भी पड़ता है। इसके अतिरिक्त स्वयं स्पेन्सर ने एक स्थान पर समाजशास्त्र को जनक (parent) विज्ञान का नाम दिया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र सब सामाजिक विज्ञानों का समन्वय न होकर अपने पृथक अस्तित्व को कायम रखे हुये हैं।

(३) **वार्ड के विचार (Views of Ward)**

लेस्टर वार्ड के विचार स्पेन्सर के विचार से मिलते जुलते हैं। कुछ लेखकों का कहना है कि इनके विचार कोम्त और स्पेन्सर के विचारों का समन्वय है। यह स्पेन्सर के विचार की अपेक्षा कुछ अधिक प्रगतिशील कहे जा सकते हैं। वार्ड ने समाजशास्त्र को विशेष सामाजिक विज्ञानों का समन्वय (synthesis) नहीं माना है

---

* "Separate sciences are the "legitimate sub-sciences whose results would be synthesised by the parent science into a general theory of society." Spencer.

वरन् एक यौगिक माना है। इस संदर्भ में वार्ड ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा है : "यह कहना उचित नहीं है कि समाजशास्त्र विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का समन्वय है। यह (समाजशास्त्र) वह विज्ञान है जिसे अन्य सामाजिक विज्ञान स्वत: बनाते हैं। विशेष सामाजिक विज्ञान समाजशास्त्र रूपी यौगिक की विभिन्न इकाइयाँ हैं जो इसके निर्माण के लिए पूरी तरह से विलीन हो जाती हैं; लेकिन आपस में मिलने के बाद वे रसायनशास्त्र की इकाइयों के समान ही अपने अस्तित्व को उसी में खो देती हैं।" इस दृष्टि से समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध पृथकता के आधार पर नहीं वरन् समानता के आधार पर ही किया जाना चाहिये।

वार्ड के विचार भी लगभग उतने ही दोषपूर्ण हैं जितने कि स्पेन्सर के विचार। वास्तव में, विशेष सामाजिक विज्ञानों का न तो पूर्ण स्वतन्त्र रहना (स्पेन्सर के अनुसार) और न ही पूर्णतया खो जाना (वार्ड के अनुसार) सम्भव है। सच तो यह है कि समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञान परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हुये अपने-अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाये रहते हैं।

(४) गिडिंग्स के विचार (Views of Giddings)

गिडिंग्स का मत है कि समाजशास्त्र अन्य विशिष्ट विज्ञानों का सामान्य आधार है। उसकी भी मौलिक सत्ता है तथा वह एक स्वतन्त्र सामाजिक विज्ञान है। एक स्वतन्त्र विज्ञान होते हुये भी वह (समाजशास्त्र) अन्य विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों के विषय-क्षेत्रों में प्रवेश करके उनकी मौलिक एवं सामान्य घटनाओं एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन अपने दृष्टिकोण से करता है। इस प्रकार वह अपने अध्ययन को अन्य विशिष्ट विज्ञानों के क्षेत्र तक विस्तृत करता है। इसलिये समाजशास्त्र अन्य विशिष्ट विज्ञानों का कुल योग नहीं है बल्कि सामान्य आधार है और अन्य सामाजिक विज्ञान उसके अंगमात्र हैं।

वर्तमान विचारधारा के अनुसार अन्य सामाजिक विज्ञानों को समाजशास्त्र का अंग-मात्र मानना गलत होगा क्योंकि आज समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञान को समान श्रेणी में रखकर अध्ययन करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

(५) सारोकिन के विचार (Views of Sorokin)

अमेरिकन समाजशास्त्री सॉरोकिन समाजशास्त्र को एक सामान्य विज्ञान मानते हैं। इनके अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सामान्य घटनाओं का अध्ययन करता है। अध्ययन करते समय समाजशास्त्र को अन्य सभी सामाजिक विज्ञानों से सहायता लेनी पड़ती है। इस पारस्परिक सहायता के अभाव में किसी भी सामाजिक विज्ञान के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। इस प्रकार समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों का स्तर समान है, केवल

की आयु में थोड़ा बहुत अन्तर है। सॉरोकिन द्वारा प्रस्तुत आधार विभिन्न सामाजिक विज्ञानों को एक दूसरे के निकट लाने में सहायक रहा है। वस्तुतः समाजशास्त्र की प्रगति की दिशा में यह महत्वपूर्ण कदम है।

बार्न्स और बेकर (Barnes and Becker) ने भी सॉरोकिन के विचारों से अपनी सहमति प्रकट की और लिखा है : "समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों की न तो गृह स्वामिनी है और न उनकी दासी, बल्कि उनकी बहन है।"* इसका अर्थ यह है कि समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों का स्तर समानता का है। इनकी आयु में थोड़ा बहुत अन्तर है। यह विज्ञान एक दूसरे से कुछ लेते-देते हैं। ऐसा करते हुए भी वे अपना अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखते हैं। समाजशास्त्र आयु में अपनी सब बहिनों से छोटा है लेकिन अधिक प्रगतिशाली व प्रभावशाली है। समाजशास्त्र अपनी बहिनों के मतभेदों और द्वेषों को दूर करके उनको एक सामान्य पटल (platform) पर ले आता है, जिससे सामाजिक जीवन की जटिलताओं को भी सुगमता से समझा जा सकता है। वास्तव में, समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों का यह आपसी सम्बन्ध बहुत निकट का है, घुला मिला है। यह सब विज्ञान आपस में मिल कर एक सहयोगी व्यवस्था का निर्माण करते हैं जो समाज के अध्ययन में बहुत सहायक हो रही है।

विभिन्न समाजाशास्त्रियों के विचारों से यह स्पष्ट हो चुका है कि समाजशास्त्र सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का एक सामान्य अध्ययन है और समाज का यह सामान्य अध्ययन विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के पारस्परिक सहायता व आदान-प्रदान के बिना सम्भव नहीं है। इसी आवश्यकता के परिणाम स्वरूप विभिन्न सामाजिक विज्ञानों (जिसमें समाजशास्त्र भी सम्मिलित है) में पारस्परिक एकता व सहयोग की भावना निरन्तर बढ़ती जा रही है। इस प्रकार, सामाजिक जीवन की जटिलताओं का अध्ययन व विश्लेषण सरलता से सम्भव होता जा रहा है। वास्तव में, विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के मध्य आदान-प्रदान की यह कसौटी ही इनके पारस्परिक सम्बन्धों का मुख्य आधार है।

समाजशास्त्र और मनोविज्ञान (Sociology and Psychology)

मैकाइवर का कथन है : "समाजशास्त्र विशेषरूप से मनोविज्ञान को सहायता देता है, जिस प्रकार मनोविज्ञान समाजशास्त्र को विशेष सहायता देता है।"†

---

* "Sociology is regarded neither as mistress nor as the handmaid of the social sciences but as their sister." Barnes and Becker, Social Thought form lore to Science.

† Sociology in special gives aid to psychology, just as psychology gives special aid to sociology." —MacIver.

सामान्य मनोविज्ञान मनुष्य के मानसिक व्यवहार का अध्ययन सामाजिक स्थिति को परे रख कर करता है। परन्तु मानसिक व्यवहार अथवा मानसिक प्रक्रिया भी इस अर्थ में सामाजिक है कि यह सामाजिक परिस्थिति द्वारा प्रभावित, निश्चित, निर्धारित एवं सम्बद्ध होती है। सामाजिक परिस्थिति से अलग-अलग रूप में व्यक्ति के मानसिक व्यवहार का अध्ययन सही अर्थों में संभव नहीं है। दूसरी ओर, हमारा मानसिक व्यवहार भी नवीन सामाजिक परिस्थितियों को उत्पन्न व विकसित करता है। गिन्सबर्ग (Ginsberg) के अनुसार मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की सीमायें कुछ स्थलों पर परस्पर इतनी मिल गई हैं कि इनमें कोई भी विभेद करना सम्भव नहीं है। सामाजिक मनोविज्ञान और समाजशास्त्र के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुये सामाजिक मनोवैज्ञानिक किम्बाल यंग ने लिखा है : "हम यूं कहें कि, जबकि हमारा बल विशेष व्यक्तियों की परस्पर सम्बन्धी क्रिया पर है फिर भी ऐसी अन्त:क्रिया केवल उसी सामाजिक तथा सांस्कृतिक सांचे में समझी जा सकती है जिसमें वह घटित होती है।"*

मनोवैज्ञानिक शरीर-रचना के अन्दर चलने वाली प्रक्रियाओं जैसे चिन्ता, उद्वेग, विचारना का विशेष रूप से अध्ययन करता है। वह ऐसी बात का अध्ययन करता है जैसे प्रौढ़ता प्राप्त करना, सीखना, प्रेरक, और दृष्टि। दूसरी ओर, समाज शास्त्री लोगों के बीच में होने वाली बातों, एक दूसरे पर परस्पर प्रभाव, या एक दूसरे के साथ सम्बन्ध और आदान-प्रदान पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इस प्रकार, मनोविज्ञान व्यक्ति का और समाजशास्त्र लोगों के अन्त:क्रिया करने के ढंग का अध्ययन करता है।

समाजशास्त्री इस बात से सचेत रहता है कि व्यक्तियों के अन्दर ऐसी प्रक्रियायें चलती रहती हैं जो समूह-जीवन को प्रभावित कर सकती हैं, और मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के ऊपर समूह-जीवन के प्रभाव से सचेत होता है।

व्यवहार के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान मुख्य रूप से व्यक्ति का अध्ययन करता है। वह उसकी बुद्धि और सीखने, उसके प्रेरक और स्मरणशक्ति, उसकी नाड़ी-प्रणाली, उसके भय और मस्तिष्क के ठीक से चलने और बिगड़े रूप में रुचि रखता है। सामाजिक मनोविज्ञान समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के बीच एक पुल का कार्य करता है और व्यक्ति पर ही विशेष ध्यान केन्द्रित रखते हुए इस बात का अध्ययन करता है कि व्यक्ति अपने समूहों में किस प्रकार व्यवहार करता है, वह अन्य

* "We might say that while our major emphasis is on the individual in interaction with others, such interaction can only be understood within the social and cultural matrix in which it occurs." —Kimball Young, Handbook of Social Psychology.

व्यक्तियों के साथ सामूहिक रूप से किस प्रकार व्यवहार करता है, और किस प्रकार उसका व्यक्तित्व एक ओर उसके मौलिक शरीरशास्त्रीय और स्वभाव के ढाँचे से बनता है, और दूसरी ओर सामाजिक और साँस्कृतिक प्रभावों से बनता है।

समाजशास्त्र, इसके विपरीत न व्यक्ति में, न उसके व्यक्तित्व में, न उसके व्यवहार में विशेष रुचि रखता है बल्कि उन समूहों की प्रवृत्ति में जिसका वह सदस्य होते हैं और उन समाजों की प्रकृति में रुचि रखता है जिसमें वे रहते हैं। यदि मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तियों के व्यवहार में मुख्य रूप से रुचि रखते हैं, समाजशास्त्री उन सामाजिक स्वरूपों और ढाँचों में रुचि रखता है जिसमें यह व्यवहार होता है। हम यों कह सकते हैं कि मनोविज्ञान व्यक्ति का सामाजिक मनोविज्ञान सामाजिक समूहों में व्यक्ति का, और समाजशास्त्र व्यक्ति को घेरे रहने वाले समूहों और विशाल समाज का अध्ययन करते हैं।

मानव स्वभाव के विषय में ज्ञान एकत्रित करने को ही मनोविज्ञान कहा गया है। यह मनुष्य का एक वैज्ञानिक अध्ययन है। शुरू में मनोविज्ञान को परिभाषा देते हुए अनेक शास्त्रियों ने कहा था कि यह मानसिक गुणों का अध्ययन करता था। आधुनिक लेखक इसके सामाजिक चरित्र पर बल देते हुये कहते हैं कि यह मनुष्यों के कार्यों का अध्ययन है। वुडवर्थ का कथन है कि मनोविज्ञान व्यक्तियों के कार्यों का अध्ययन है, जिसके एक ओर देह व्यापारशास्त्र (Physiology) और दूसरी ओर सामाजिक विज्ञान है। तीनों ही शास्त्र मानव-क्रियाओं का अध्ययन करते हैं—देह-व्यापारशास्त्र (Physiology) उन अंगों का अध्ययन करता है जिससे मनुष्य का शरीर बनता है, मनोविज्ञान व्यक्ति का और सामाजिक विज्ञान समूहों का जो कि व्यक्तियों से बनते हैं। मनोविज्ञान मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन करता है जोकि सामाजिक समूह का एक सदस्य है। इसलिये दोनों शास्त्रों का निकट सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। मनोविज्ञान की दो शाखायें हैं—व्यक्तिगत मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान। सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन कहीं पर समाजशास्त्र के अन्तर्गत और कहीं मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान दोनों ही व्यक्ति के चरित्र पर सामाजिक अनुभवों का प्रभाव बतलाते हैं। सामाजिक मनोविज्ञान समाजशास्त्री को भीड़ जैसे मनुष्यों के समूहों के व्यवहार का चित्रण करने में सहायता करता है। इन समूहों में थोड़ी देर के लिए ही सही व्यक्ति की विशेषतायें पायी जाती हैं। सामाजिक मनोविज्ञान मानव विज्ञान के सिद्धान्तों का सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में प्रवेश कराता है। प्रत्येक व्यक्ति की स्वभाव (temperament), रुचि (taste) और निर्णय (judgement) के सम्बन्ध में अपनी विशेषता होती है। इन्हीं कारणों से हम विधि, धार्मिक सिद्धान्त, वस्त्रों और भोजन में विभिन्नता पाते हैं। हम देखते हैं कि इन विषयों में

समान विचार रखने वाले व्यक्ति समूह बनाते हैं। एक दूसरे का साथ स्वभाव एवं रूचि को दबा देता है। समाजशास्त्र समूहों और उनके ढाँचों का अध्ययन करता है और मनोविज्ञान उन मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है जो कि एक दूसरे के साथ रहने का फल हैं।

समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में अन्तर
(Distinction between Sociology and Psychology)

समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के बीच अन्तर पर प्रकाश डालेते हुये बियरस्टैड (Biersted) ने कहा है : "यह अलगाव कठिन है, और इसको अत्यन्त सरल ढंग से प्रस्तुत करना आसान है, परन्तु विद्यार्थी बहुत अधिक गलती नहीं कर रहा होगा यदि वह कहे कि मनोविज्ञान व्यक्ति का अध्ययन करता है, समाज मनोविज्ञान सामाजिक समूहों में व्यक्ति का और समाजशास्त्र उन्हीं समूहों व उससे अधिक बड़े समाज का जो हम सब को घेरे हुए हैं।"* कुछ भी हो समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में पाये जाने वाले अन्तरों को निम्न प्रकार समझाया जा सकता है।

(१) समाजशास्त्र सामाजिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करता है और मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करता है।

(२) समाजशास्त्र का दृष्टिकोण प्रमुख रूप से सामाजिक है और मनोविज्ञान का दृष्टिकोण मौलिक रूप से मनोवैज्ञानिक है।

(६) समाजशास्त्र का अध्ययन-क्षेत्र मनोविज्ञान से कहीं अधिक विस्तृत है और मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र केवल मानसिक प्रक्रियाओं तक सीमित है।

(४) समाजशास्त्र की इकाई समूह है और मनोविज्ञान की इकाई व्यक्ति है।

(५) समाजशास्त्र में सामाजिक सर्वेक्षण (social survey), संख्यात्मक पद्धति (statistical method), व्यक्तिगत जीवन पद्धति (case study method) आदि पद्धतियों का प्रयोग होता है और मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक पद्धति (experimental method) और विकास सम्बन्धी पद्धति (developmental method) का प्रयोग किया जाता है।

समाजशास्त्र और इतिहास (Sociology and History)

यह दोनों ही सामाजिक विज्ञान हैं ओर दोनों ही मानव क्रियाओं और घटनाओं में रुचि रखते हैं। इतिहास मुख्य रूप से भूतकाल के अभिलेख (record) में रुचि रखता है। इतिहासकार चाहता है कि जितना अधिक सही ढंग से सम्भव हो वह इस बात का वर्णन करे कि जब से मनुष्य भूमितल पर रहने लगा उसके साथ क्या हुआ है, विशेषकर उस काल में जब वह शहरों में रहने लगा और सभ्यता पर प्रभाव डालने लगा। वह घटनाओं का बिल्कुल सही वर्णन चाहता है जिनका

एक दूसरे के साथ वह इस प्रकार सम्बन्ध जोड़ता है कि भूतकाल से वर्तमानकाल तक निरन्तर क्रम में उसके पास एक कहानी जुड़ जाती है। इतिहासकार केवल घटनाओं के वर्णन से ही सन्तोष प्राप्त नहीं करता, वह उनके कारणों की भी खोज करता है।

समाजशास्त्री उन भूतकालीन अभिलेखों का प्रयोग करते हुए भी उन घटनाओं में केवल इतनी ही रुचि रखता है कि वे विभिन्न स्थितियों और दशाओं में मनुष्यों की संगति और अन्त:क्रियाओं से उत्पन्न होने वाली सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायता देती हैं। वह उन स्वयं घटनाओं में रुचि नहीं रखता बल्कि उन व्यवहार प्रतिमानों में रुचि रखता है जो यह घटनायें प्रकट करती हैं। उदाहरण के लिये, इतिहासकार हर प्रकार के युद्धों के अभिलेखन में रुचि रखेगा : परन्तु समाजशास्त्र किसी भी विशेष युद्ध में रुचि नहीं रखता, वह तो युद्ध को केवल एक सामाजिक घटना, विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच होने वाला एक प्रकार का संघर्ष मात्र मानता है। इतिहासकार मिलिट्री, राजनीति, धर्म, विज्ञान आदि क्षेत्रों में हुए विख्यात व प्रमुख नेताओं और व्यक्तियों के जीवन में रुचि रखता है, परन्तु समाजशास्त्री उन मनुष्यों में रुचि न रखकर नेतृत्व के प्रमेय में रुचि रखता है क्योंकि यह एक ऐसा प्रमेय है जो लगभग सभी सामाजिक समूहों में पाया जाता है।

अनेक इतिहासकार विशेष घटनाओं में प्रकट हुए मानव व्यवहार में रुचि रख सकते हैं। कुछ इतिहासकारों ने विभिन्न घटनाओं की तुलना करके उनकी समानता और अन्तरों को बताने की कोशिश की है, और इस तुलना से प्रक्रियाओं का सामान्यीकरण किया है। इन लेखकों को सैद्धान्तिक इतिहासकार कहा जाता है। यहाँ दोनों सामाजिक वैज्ञानिकों के स्वार्थ एक से हैं। समाजशास्त्री और सैद्धान्तिक इतिहासकार दोनों ही अभूतपूर्व घटना में रुचि रखते हैं क्योंकि इससे अन्य घटनाओं के बारे में सामान्यीकरण किया जा सकता है।

इतिहास मनुष्य के कार्यों का अध्ययन है। समाजशास्त्र को इतिहास के अध्ययन से सहायता मिलती है। इतिहास का काम मानव समाज की शताब्दियों से चली आ रही घटनाओं का क्रम-बद्ध उल्लेख करना है। पीछे की कहानी इतिहास लिखता है, तथा इतिहास द्वारा लिखी कहानी को हाथ से लेकर आगे का रास्ता समाजशास्त्र बतलाता है। आधुनिक इतिहासकार समाज में जनसाधारण के व्यवहार, संस्कृति की विशेषताओं, दर्शन साहित्य, कला कौशल व अद्वितीय घटनाओं का अध्ययन इसलिए करते हैं जिससे समाज के व्यवहार को समझने में सहायता मिले। पाल बार्थ (Paul Barth) के शब्दों में "संस्कृति और संस्थाओं का इतिहास समाज-को समझने व उसकी सामग्री जुटाने में सहायक होता है। अब इतिहास का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से किया जाने लगा है। इतिहास अपनी सामग्री

की विवेचना सामाजिक संगठन के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर ही करता है। इतिहास व समाजशास्त्र में बहुत निकट सम्बन्ध होते हुए भी समाजशास्त्र इतिहास नहीं है, दोनों शास्त्रों में अन्तर है।

यदि समाजशास्त्र को विशुद्ध रूप से औपचारिक नहीं होना है तो उसे इतिहास की सहायता लेनी पड़ेगी। राजनीति शास्त्र की भाँति समाजशास्त्र भी इतिहास का फल है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समाजशास्त्र और इतिहास में घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि इतिहास की सहायता के बिना किसी प्रकार के भी समाजशास्त्रीय नियम (sociological laws) बनाना सम्भव नहीं है, चाहे यह नियम सामाजिक परिवर्तन से, सामाजिक संस्थाओं के स्वरूपों से या किसी अन्य बात से सम्बन्धित हों। उदाहरण के लिए, बिना इतिहास की सहायता लिए हम कैसे कह सकते हैं कि भविष्य में परिवर्तन की दशा क्या होगी।

आजकल समाजशास्त्रीय अध्ययन में ऐतिहासिक पद्धति (historical method) का महत्व दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार, इतिहास और समाजशास्त्र का निकट सम्बन्ध भी स्पष्ट होता जा रहा है। संभवतया इसीलिये बियरस्टैड ने कहा है: "यदि भूत को शताब्दियों से लुढ़कता हुआ एक वस्त्र मान लिया जाये तो इतिहास की रुचि उन विशेष धागों एवं किनारों में होगी जो इस वस्त्र को निर्मित करते हैं जब कि समाजशास्त्र की रुचि इस वस्त्र के दिखाई देने वाले नमूने में होगी।"*

समाजशास्त्र और इतिहास में अन्तर
(Distinction between Sociology and History)

(१) इतिहास विशेषीकरण करने वाला और समाजशास्त्र सामान्यीकरण करने वाला विज्ञान है।

(२) इतिहास वर्णन करने वाला और समाजशास्त्र विश्लेषण करने वाला विज्ञान है।

(३) इतिहास दुर्लभ और विशेष का अध्ययन है, समाजशास्त्र सामान्य और बारम्बार घटित होने वाली बात का अध्ययन है। भूतकाल में केवल एक बार घटित होने वाली किसी घटना में समाजशास्त्री तब तक रुचि नहीं रखता जब तक उसका सम्बन्ध घटनाओं के प्रतिमानों से न जोड़ा जा सके जो पीढ़ी दर पीढ़ी, एक समूह से दूसरे समूह में दोहरायी न जाये।

---

* "If the past is conceived of as a continuons cloth unrolling through the centuries, history is interested in the individual threads and strands that make it up, Sociology in the patterns it exhibits. R. Bierstead, The social Order.

(४) समाजशास्त्र आधुनिक दशाओं का उल्लेख करता है जब कि इतिहास वास्तविक घटनाओं का ही वर्णन करता है।

(५) समाजशास्त्र के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है जब कि इतिहास में ऐतिहासिक पद्धति की सहायता ली जाती है।

(६) इतिहास घटनाओं व संस्कृति का प्रारम्भ से अन्त तक वर्णन करता है, जब कि समाजशास्त्र उन घटनाओं व संस्कृति के सामान्य कारणों व सिद्धान्तों की खोज करता है।

समाजशास्त्री का मुख्य कार्य समाज के सामान्य नियमों का पता लगाना है और इतिहासकार को उस क्रम को बनाना है जिसमें ऐतिहासिक घटनायें होती रहती हैं। फिर भी, न तो समाजशास्त्री सामाजिक तथ्यों की अवहेलना कर सकता है, न तो इतिहासकार ऐतिहासिक नियमों की अवहेलना कर सकता है।

इन दोनों के गहरे अन्तर को हम इस बात में देखते हैं कि इतिहास एक निश्चित काल के संदर्भ में मानव घटनाओं का अध्ययन करता है, जब कि समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों को दृष्टि में रख कर उन पर विचार करता है। इस प्रकार, नेपोलियनिक युद्धों का वर्णन करने में इतिहासकार तत्सम्बन्धित परिस्थितियों पर जोर देता है, जब कि समाजशास्त्री लोगों के प्रभाव का, योरप में बाद में राष्ट्रवादी भावना से विकास में इन युद्धों के योग का और इन आक्रमणकारियों के विरुद्ध देश-भक्ति की भावना जागृत करने में प्रचार और विश्वास के कार्य का अध्ययन करेगा।

अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र (Economics and Sociology)

अर्थशास्त्र मानव की आर्थिक क्रिया-कलापों का अध्ययन है। प्रमुख अर्थशास्त्री प्रोफेसर मार्शल के अनुसार : "अर्थशास्त्र यह जानने का प्रयास करता है कि मानव किस प्रकार से धन अर्जित करता है और किस प्रकार से खर्च करता है— इस प्रकार अर्थशास्त्र एक ओर सम्पत्ति का अध्ययन और दूसरी ओर अधिक महत्वपूर्ण पक्ष मानव के अध्ययन का एक भाग है।"* इस प्रकार स्पष्ट ही है कि अर्थशास्त्र में मानव की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र मानव का समग्र रूप में अध्ययन करता है। इन दोनों विज्ञानों में सम्बन्ध होना स्वाभाविक है क्योंकि सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ सदा से ही एक दूसरे से प्रभावित व निर्धारित रही हैं। इतना ही नहीं, प्रारम्भिक काल में समाजशास्त्र

* "Economics is the study of man's actions in the ordinary business of life; it enquires how he gets his income and how he spends it. Thus it is on one side a study of wealth, and on the other and more important side a part of the study of man."

—Marshall.

का अध्ययन अर्थशास्त्र के अन्तर्गत ही किया जाता था। बाद में समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्वीकार किया गया। अनेकों ऐसे विचारकों की भी संसार के इतिहास में चर्चा आती है जो अर्थशास्त्री समाजशास्त्री दोनों ही रूपों में प्रसिद्ध हुये। ऐसे विचारकों में कॉम्त, रॉबर्ट मिल, वेबलन, कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विचारकों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि सामाजिक और आर्थिक कारकों को एक दूसरे से अलग करके अध्ययन नहीं किया जा सकता। लोवी ने इस संदर्भ में यहाँ तक कह डाला है कि सामाजिक कारकों की अवहेलना करके अर्थशास्त्र को किसी भी भाँति स्वतंत्र विज्ञान नहीं माना जा सकता है।

वास्तव में अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र का सम्बन्ध बहुत निकट का है। आर्थिक क्रियाओं को करने वाला मानव भी सामाजिक प्राणी है। मानव जीवन के सामाजिक व आर्थिक पहलू एक दूसरे से प्रभावित तथा एक दूसरे पर आश्रित हैं। अपराध, निर्धनता, बेकारी आदि घटनायें सामाजिक हैं परन्तु इनमें आर्थिक कारक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस संदर्भ में मैकाइवर ने ठीक ही लिखा है : "आर्थिक घटनायें सदैव सामाजिक आवश्यकताओं और क्रियाओं के समस्त रूपों द्वारा निर्धारित होती हैं और वे सदैव प्रत्येक प्रकार की सामाजिक आवश्यकताओं और क्रियाओं को पुनः निर्धारित, निर्मित, रूपान्तरित और परिवर्तित करती हैं।"*

समाजशास्त्र के प्रारम्भिक काल से उसके अनेक शिक्षकों को अर्थशास्त्र में भी शिक्षा दी जाती थी और बहुधा उन्हें समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों ही पढ़ने पड़ते थे। अर्थशास्त्र की पहले धन के विज्ञान के रूप में परिभाषा दी जाती थी परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्र को देखते हुये यह बहुत ही सूक्ष्म विचार है। यह कहना अधिक उचित होगा कि अर्थशास्त्र मनुष्य के धनोपार्जन के प्रयास का अध्ययन करता है। अर्थशास्त्र क्योंकि मनुष्य की धनोपार्जन और धन व्यय करने वाली क्रियाओं से सम्बन्ध रखता है इसलिये, समाजशास्त्र की भाँति यह पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के सामाजिक अनुभवों में भी रुचि रखता है क्योंकि इनका सम्बन्ध उन विषयों से हैं जो कि भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन और वितरण से सम्बन्धित हैं। इधर कुछ वर्षों में अर्थशास्त्र ने अपनी समस्याओं के सामाजिक पहलू को भी अपनाया है और उन सामाजिक उद्देश्यों (motives) पर बल दिया जो कि आर्थिक क्रियाओं का कारण

---

* "Thus economic phenomena is constantly determined by all kinds of social need activity and in turn they are constantly re-determining, shaping and transforming social need and activity of every kind." Mac Iver, Community, A sociological Study.

हैं। इसी प्रकार समाजशास्त्री भी यह स्वीकार करता है कि प्रत्येक सामाजिक समस्या में आर्थिक पुट भी उपस्थित है। अर्थशास्त्र अपना ध्यान मनुष्य की उन सामाजिक क्रियाओं पर केन्द्रित करता है जो कि धन से सम्बन्ध रखती हैं। यह मानव समूहों को अपने भौतिक पर्यावरण से प्राप्त साधनों द्वारा अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को संतुष्ट होते हुए देखता है। सामाजिक समस्याओं में आर्थिक कारण के भी सदैव उपस्थित होने के कारण समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

अर्थशास्त्र समाजशास्त्र से इस अर्थ में भी भिन्न है कि यह मानव अंत:क्रिया पर अधिक ध्यान नहीं देता। अनेक अर्थशास्त्री मानव अंत:क्रियाओं के कुछ फलों में रुचि रखते हैं, विशेषकर जो कि मूल्यों में, मज़दूरी में या वस्तुओं के दामों में दिखाई पड़ते हैं। अर्थशास्त्री वस्तुओं के वितरण की प्रक्रिया में भी रुचि रखते हैं। समाजशास्त्री भी मानव अन्त:क्रियाओं के फ़लों में रुचि रखता है परन्तु उसका ध्यान अनेक वस्तुओं पर होता है। वह समूहगत विशेषताओं पर अनेक प्रकार की अन्त:क्रियाओं के प्रभाव का अध्ययन करते हैं। वह सामाजिक मूल्यों और विश्वासों पर भी अन्त:क्रियाओं के प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

अर्थशास्त्री मूल्य और बचत लागत, माँग और पूर्ति के प्रमेय का अध्ययन करता है। अर्थशास्त्री इस बात की कल्पना करता है कि व्यक्ति अपने आर्थिक जीवन के क्या लक्ष्य बनाते हैं, और उसे इस कल्पना की सत्यता की खोज करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में उसे समाजशास्त्र की सहायता लेनी पड़ती है। इसके साथ ही, किसी समाज की आर्थिक व्यवस्था वहाँ की गैर आर्थिक शक्तियों जैसे सरकार, जनमत, परिवार, और देशान्तरण से सम्बन्धित और उस पर निर्भर करती है। समाजशास्त्री इन सम्बन्धों का पता लगाने और औद्योगिक स्थिरता और परिवर्तन में उनके महत्व को बताने में सहायक होते हैं। वास्तव में आर्थिक सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्ध भी होते हैं।

अर्थशास्त्री मुख्य रूप से आर्थिक संस्थाओं के ढाँचे और उनके आधार-स्तम्भ विचारों में रुचि रखते हैं। परन्तु आर्थिक संस्थाओं का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वे किसी समाज की संस्कृति का एक अंग हैं और संस्कृति के अन्य अंगों से प्रभावित होते हैं और बदले में उनको प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में आर्थिक क्रियाओं को सामाजिक जीवन से अलग नहीं किया जा सकता और अलग करके समझा भी नहीं जा सकता। अनेक आर्थिक क्रियायें सामाजिक भी होती हैं, जैसा कि वाल्टर हैमिल्टन ने कहा है, आर्थिक संगठन में समाज में मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन निहित है। समाजशास्त्री आर्थिक क्रियाओं के इन सामाजिक पहलुओं पर विशेष रूप से रुचि रखता है, न कि उत्पादन और वितरण के ढंग पर।

समाजशास्त्र के प्रारम्भिक काल से ही समाजशास्त्री आर्थिक संस्थाओं में रुचि रखते रहे हैं। पुराने समाजशास्त्री, विशेषकर स्पेन्सर, सामाजिक सम्बन्धों के विश्लेषण में मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं को शामिल करते थे। अनेक प्रमुख समाज शास्त्रियों जैसे समनर, डरखम, पैरेटो, और वैबर ने आर्थिक संस्थाओं के माध्यम से ही समाज का अध्ययन करने का प्रयत्न किया। इन लोगों ने आर्थिक परिवर्तन का एक पहलू बताते हुये यह कहा कि सामाजिक संरचना के बाहर अर्थशास्त्र का अध्ययन न केवल गलत होगा बल्कि अपूर्ण भी होगा। क्योंकि आर्थिक प्रणाली सामाजिक संरचना का एक अंग है इसलिये एक दूसरे के सम्बन्ध में ही उनका अध्ययन हो सकता है। इसीलिये एक प्रमुख लेखक ने कहा था कि अर्थशास्त्र को समाजशास्त्र की दासी होना चाहिये।

दूसरी ओर, मार्क्स एंजिल्स जैसे लेखकों ने सामाजिक वास्तविकता को आर्थिक या प्राद्योगिक शक्तियों के बीच होने वाली अन्त:क्रिया का फल बताया और समाजशास्त्र को अर्थशास्त्र का एक भाग या पहलू बताया। वास्तव में, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में अन्तर :
(Difference between Sociology and Economics)

(१) समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना है और अर्थशास्त्र आर्थिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है। इसीलिये समाजशास्त्र सामान्य विज्ञान है और अर्थशास्त्र विशेष विज्ञान है।

(२) मनुष्य के सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू का अध्ययन करने के कारण समाजशास्त्र एक विस्तृत विज्ञान है जब कि अर्थशास्त्र मानव के आर्थिक पहलू से सम्बन्धित होने के कारण विशेष विज्ञान है।

(३) समाजशास्त्र का दृष्टिकोण व्यापक है और अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण केवल आर्थिक होने के कारण संकुचित है।

(४) समाजशास्त्र के अध्ययन की प्रकृति समूहवादी है और अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रकृति व्यक्तिवादी है।

(५) दोनों की अध्ययन-पद्धतियाँ भिन्न हैं। समाजशास्त्र में अनेक गुणात्मक व संख्यात्मक पद्धतियों का अनुसरण किया जाना है, जब कि अर्थशास्त्र में आगमन (Inductive) और निगमन (Deductive) पद्धतियों द्वारा अध्ययन किया जाता है।

(६) समाजशास्त्र के नियम सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित होते हैं, जब कि अर्थशास्त्र के नियमों में आर्थिक क्रियाओं को आधार माना जाता है।

समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र
(Sociology and Political Science)

राजनीतिशास्त्र मुख्यतः सरकार का अध्ययन करता है। हाल के कुछ वर्षों में राजनीतिशास्त्री उन सब कारकों में रुचि लेने लगे हैं जो राजनीतिक और शासन सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करते हैं। वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि राजनीतिक व्यवस्था कोई अलग वस्तु नहीं है बल्कि संस्कृति और सामाजिक संगठन का अङ्ग है। यही कारण है कि सामाजिक जीवन के अनेक क्षेत्रों से सम्बन्धित राजनीतिक निर्णयों का महत्व बढ़ा है और राजनीतिक समाजशास्त्र में रुचि बढ़ी है।

राजनीतिशास्त्र राज्य की सत्ता के आधीन संगठित सामाजिक समूहों का अध्ययन करता है। राज्य का एक सामाजिक संस्था के रूप में भी अध्ययन होता है। राज्य एक ऐसी संरचना है जिसके अन्तर्गत अन्य छोटे समाज जसे कि परिवार व्यापार-संसार या विश्वविद्यालय विकसित होते हैं परन्तु एक सामाजिक समूह और संस्था के रूप में इसका समाजशास्त्र द्वारा भी अध्ययन किया जाता है।

राजनीतिशास्त्र मानव जीवन के राजनीतिक पहलू का अध्ययन है। राजनीतिशास्त्र वह सामाजिक अध्ययन है जिसके अन्तर्गत राज्य की उत्पत्ति, विकास, संगठन, महत्व, उद्देश्य, शासन सिद्धान्त, नीतियों आदि की व्याख्या की जाती है। इस प्रकार, राजनीतिशास्त्र की अध्ययन-वस्तु प्रमुख रूप से राज्य है। अथवा यह सम्पूर्ण सामाजिक जीवन के एक भाग राजनीतिक से सम्बन्धित है। इस संदर्भ में गार्नर ने उचित ही लिखा है: "राजनीतिशास्त्र राज्य से सम्बन्ध रखता है लेकिन समाजशास्त्र सभी प्रकार के मानव सम्बन्धों का अध्ययन करता है।* वास्तव में, राजनीतिशास्त्र मानव को एक राजनैतिक प्राणी के रूप में देखता है, जब कि समाजशास्त्र यह बताता है कि मनुष्य एक राजनैतिक प्राणी कैसे बना। यह तथ्य राजनीतिशास्त्र को समाजशास्त्र से ही पता लगा है। कुछ भी हो, यह दोनों विज्ञान प्रारम्भ से ही एक दूसरे से सम्बद्ध रहे हैं। समाज के संगठन में राज्य के नियम-उपनियम घुले-मिले हैं और यही कारण है कि इन दोनों पक्षों, सामाजिक व राजनैतिक का अध्ययन करने वाले विज्ञानों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के सम्बन्ध के बारे में बार्न्स ने लिखा है: "समाजशास्त्र और आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के विषय में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात

---

* "Political Science is concerned with only one form of human association, The State; Sociology deals with all forms of associations." J. W. Garner, Political Science and Government.

यह है कि राज्य सिद्धान्त में पिछले तीस वर्षों में जो परिवर्तन हुए हैं, उनमें अधिकतर समाजशास्त्र द्वारा सुझाये गये और बतलाये गये मार्ग के अनुसार हुये हैं।"* वास्तव में राजनीतिशास्त्र की समस्याओं को भली भाँति समझने के लिये समाजशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि राजनीतिक समस्याओं का सामाजिक पक्ष भी होता है। जी. ई. जी. कैटलिन (Catlin) ने राजनीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र को एक चित्र के दो पक्ष कहा है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है क्योंकि पहले राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र में भेद नहीं किया जाता था। इससे पहले सामाजिक विचारों पर लिखी गई पुस्तकें जैसे प्लेटो की Republic और अरस्तू की Politics और पूर्व और पश्चिम के विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकें राजनीतिशास्त्र की पुस्तकें समझी गईं। राजनीतिशास्त्र के कुछ विषय जैसे कानून और स्वतंत्रता का संबंध समाजशास्त्र के अध्ययन के भी विषय हैं। वास्तव में, दोनों में केवल दृष्टिकोण का अन्तर है : समाजशास्त्र राज्य को एक सामाजिक संस्था या समिति समझता है और राजनीतिशास्त्र राज्य को समुदाय में नियंत्रण की सबसे प्रबल शक्ति और राजनीतिक शक्ति का स्रोत समझता है।

समाजशास्त्र का राजनीतिशास्त्र के साथ सम्बन्ध इस बात से भी स्पष्ट है कि राजनीतिक संस्थाओं और समितियों की अपनी नीति और कार्यों में सामाजिक मूल्य और आदर्शों का भी ध्यान रखना पड़ता है जो समाजशास्त्र के विषय हैं। दूसरी ओर, राजनैतिक संस्थाओं के कार्यों का सामाजिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, हिन्दू उत्तराधिकार नियम ने परिवार पर प्रभाव डाला है।

समाजशास्त्र को राजनीतिशास्त्र का ही एक विशाल रूप कहा जाता है जिसमें राज्य के अतिरिक्त परिवार जैसी अन्य संस्थायें, सम्पत्ति के रूप और संस्कृति और सभ्यता के धर्म व कला जैसे सामाजिक तत्वों का अध्ययन किया जाता है। राज्य सामाजिक और राजनैतिक संस्था दोनों ही हैं और अपनी प्रारम्भिक अवस्था में, जैसा रैजन हौवर ने कहा है, यह राजनैतिक संस्था की अपेक्षा सामाजिक संस्था ही अधिक है। यद्यपि दोनों के क्षेत्र अलग हैं, राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र एक दूसर के सहायक हैं। समाजशास्त्र राज्य के संगठन और कार्यों का ज्ञान राजनीति-

---

* "The most significant thing about Sociology and modern political theory is that most of the changes that have taken place in the political theory in the last thirty years have been along the line of development suggested and marked out by Sociology."
–Barnes.

शास्त्र से प्राप्त करता है जबकि राजनीतिशास्त्र बहुत हद तक राजनैतिक शक्ति की उत्पत्ति और सामाजिक नियंत्रण का ज्ञान समाजशास्त्र से प्राप्त करता है। गिडिंग्स के विचार में प्रत्येक राजनीतिज्ञ समाजशास्त्री होता है और प्रत्येक समाजशास्त्री राजनीतिज्ञ होता है। इनके विचार में किसी ऐसे व्यक्ति को राज्य के सिद्धान्त बतलाना जिसने समाजशास्त्र के प्रथम सिद्धान्त नहीं पढ़े हैं, वैसा ही है जैसे ऐसे व्यक्तियों को गणित-ज्योतिष (Astronomy) अथवा थर्मोडायनैमिक्स (Thermodynamics पढ़ाना जिन्होंने न्यूटन के मोशन (Motion) के सिद्धान्त न सीखे हों।

समाज पर राज्य के कानूनों का काफी प्रभाव रहता है। कानून के द्वारा राज्य समाज को बदलता है, उसमें सुधार लाता है परन्तु कानून बनाते समय देश के रीतिरिवाजों, प्रथाओं, परम्पराओं आदि का ध्यान रखना पड़ता है। इसके लिये समाजशास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता है। राज्य की नीति निर्धारण की समस्या दोनों की सम्मिलित समस्या है। प्रथाओं, संस्थाओं, व्यवहारों, आन्दोलनों आदि का अध्ययन राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र की सम्मिलित एवं समान समस्याओं के अन्तर्गत आता है।

समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में अन्तर
(Difference between Sociology and Political Science)

(१) समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है और राजनीतिशास्त्र राज्य या राजनीतिक समाज का विज्ञान है।

(२) समाजशास्त्र का दृष्टिकोण सामाजिक है और राजनीतिशास्त्र का दृष्टिकोण शासकीय है।

(३) समाजशास्त्र विघटित और संगठित सभी प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन है, जबकि राजनीतिशास्त्र केवल समाज की उन संगठित अवस्थाओं का अध्ययन है जिन पर राजनैतिक जीवन की स्पष्ट छाप हो।

(४) समाजशास्त्र में सामाजिक नियंत्रण के सभी साधनों का अध्ययन होता है और राजनीतिशास्त्र में राज्य द्वारा स्वीकृत नियंत्रण के साधनों का अध्ययन होता है।

(५) राजनीतिशास्त्र व्यक्ति को एक राजनैतिक प्राणी के रूप में देखता है, जबकि समाजशास्त्र यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति राजनैतिक प्राणी क्यों बना है।

(६) समाज का निर्माण और विकास राज्य से बहुत पहले हो चुका था और उसका अध्ययन दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत ही सही बहुत पहले से होता रहा है। इस अर्थ में समाजशास्त्र राजनीतिशास्त्र से अधिक प्राचीन है।

समाजशास्त्र और मानवशास्त्र
(Sociology and Anthropology)

मानवशास्त्र और समाजशास्त्र का सम्बन्ध इतना अधिक घनिष्ठ है कि दोनों

का अन्तर स्पष्ट करना कठिन है। अनेक अमेरिकन विश्वविद्यालयों में इसीलिए दोनों विषयों को अक्सर एक ही विभाग के अन्तर्गत रखा जाता है। दोनों ही विज्ञान मानव समाजों का अध्ययन करते हैं। फिर भी, मानवशास्त्र मुख्यतः अपना ध्यान असभ्य समाजों पर ही केन्द्रित करता है। वह ऐसे समाजों का अध्ययन करता है जो लिख या पढ़ नहीं सकते, जो आदिवासी या लोक समाज हैं। इन समाजों का अध्ययन करते समय मानवशास्त्री न केवल उनके सामाजिक संगठन और सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन करता है जो समाजशास्त्री करता है, बल्कि उनकी अर्थ-व्यवस्था, धर्म, सरकार, भाषा, गौरव-गाथा, और प्रथाओं का भी अध्ययन करता है।

दूसरी ओर समाजशास्त्र अपना प्रत्यक्ष ध्यान ऐतिहासिक समाजों पर केंद्रित करता है। यह ऐसे समाजों का अध्ययन करता है जो जटिल हैं न कि सरल, संक्षेप में ऐसे समाज जिनके सदस्य लिख-पढ़ सकते हैं। क्योंकि यह समाज जटिल है, इसलिए समाजशास्त्री इनकी अर्थ-व्यवस्था, धर्म, सरकार, भाषा, साहित्य और विज्ञान का अलग से अध्ययन नहीं करता बल्कि सामाजिक संगठन और संरचना का अध्ययन करता है जिसके अन्तर्गत उपरोक्त प्रमेय प्रकट होते हैं।

सामाजिक और साँस्कृतिक मानवशास्त्र ने संसार भर की वन्यजातियों के जीवन-यापन के ढंगों का अध्ययन करके समाजों के तुलनात्मक विश्लेषण में योगदान दिया है। हाल के कुछ वर्षों में मानवशास्त्र और समाजशास्त्र के सम्बन्ध घनिष्ठ हुये हैं क्योंकि मानवशास्त्रियों ने पढ़े-लिखे समाजों का अध्ययन करना भी शुरू कर दिया है।

मानव सृष्टि के आरम्भ से मानव की शारीरिक, सामाजिक, साँस्कृतिक और उद्विकास सम्बन्धी विशेषताओं का क्रमबद्ध अध्ययन मानवशास्त्र करता है। समाजशास्त्र का सम्बन्ध आजकल इतना घनिष्ठ माना जाता है कि मानवशास्त्री क्रोबर (Kroeber) ने इन्हें जुड़वा बहिनें कहा है। वास्तव में दोनों विज्ञान समान समस्याओं का अध्ययन करते हैं और दोनों का ही उद्देश्य सामाजिक सम्बन्धों व सामाजिक संगठनों का अध्ययन करना होता है। मानवशास्त्री हेबल का कहना है : "व्यापक अर्थों में, समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र बिल्कुल समान व एक हैं।"* प्रोफेसर सत्यव्रत ने भी इन दोनों विज्ञानों के घनिष्ठ सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुये कहा : यदि समाजशास्त्र के कपड़े उतार दिये जायें तो मानवशास्त्र बन जाता है, और यदि मानवशास्त्र को कपड़े पहना दिये जायें तो समाजशास्त्र बन जाता है।"

बॉटोमोर (T. B. Bottomore) ने मानवशास्त्र और समाजशास्त्र का सम्बन्ध भारतीय समाज का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है। इनके अनुसार, भारतीय

समाज न तो औद्योगिक रूप से विकसित है और न ही आदिम समाजों की भाँति पिछड़ा हुआ।* इसलिए इन लेखक के अनुसार, भारत जैसे विकासशील समाजों में समाजशास्त्र और मानवशास्त्र की अध्ययन वस्तु लगभग समान है।

समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में अन्तर
(Difference between Sociology and Anthropology)

(१) क्षेत्र के दृष्टिकोण से दोनों में भिन्नता है। समाजशास्त्र का सम्बन्ध वर्तमान जटिल और सभ्य समाज से है जब कि मानवशास्त्र सरल और आदिम समाजों के अध्ययन से सम्बन्धित है।

(२) समाजशास्त्र का दृष्टिकोण सामाजिक है और मानवशास्त्र का दृष्टि-कोण साँस्कृतिक होता है क्योंकि मानवशास्त्र का अधिक ध्यान मानव व संस्कृति की उत्पत्ति व विकास पर होता है। क्लूखॉन के शब्दों में : "समाजशास्त्र का दृष्टिकोण व्यावहारिक तथा वर्तमान की ओर उन्मुख है, और मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण विशुद्ध ज्ञान और भूत की ओर।"†

(३) दोनों की अध्ययन विधियाँ भिन्न हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन में सामाजिक सर्वेक्षण, समाजमिति आदि पद्धतियों का विशेष महत्व है, जबकि मानव-शास्त्री अध्ययन में 'सहभागी अवलोकन' (Participant observation) का अधिक प्रयोग किया जाता है।

(४) मानवशास्त्र भूत से सम्बन्धित है, जब कि समाजशास्त्र वर्तमान को समझकर भविष्य की ओर इशारा करता है।

निष्कर्ष :
Conclusion :

सभी सामाजिक विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं :
(All Social Sciences are supplementary to one another)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सभी सामाजिक विज्ञान समाजशास्त्र से किसी रूप में सम्बन्धित हैं और दूसरी ओर भिन्न भी हैं। इसलिए, समाजशास्त्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों को न तो एक दूसरे पर पूरी तरह से निर्भर कहा जा सकता है और न ही एक दूसरे से पृथक।

---

* "Sociology and Social Anthropology are, in their, broadest senses one and the same."

E. A. Hobel, Man in the Primitive World.

† "The sociological attitude has tended towards the practical and present, the anthropological pure understanding and the past."

C. Klukhohn, Mirror for Man. p. 269.

सामाजिक जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित होने के कारण. सभी सामाजिक विज्ञान परस्पर सम्बन्धित होते हुये, आदान-प्रदान करते हुये एक दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि इनके आपसी सहयोग के द्वारा ही विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन सुचारु रूप से सम्भव है। अन्त में यह कहना उचित होगा कि सभी सामाजिक विज्ञानों की स्वतंत्र सत्ता भी है और उनमें आपस में आदान-प्रदान भी होता है।

९ सामाजिक क्रिया
(Social Action)

समाज में रहकर प्रत्येक व्यक्ति कुछ प्रकार की क्रियायें करता है । इनमें से कुछ क्रियायें अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध नहीं रखतीं परन्तु जिनका कर्त्ता (actor क्रिया करने वाले) के लिये अर्थ होता है । इनको केवल 'क्रिया' कहते हैं । दूसरी प्रकार की क्रियायें वे हैं जो अन्य व्यक्तियों, उनके मनोभावों और क्रियाओं को दृष्टि में रखकर की जाती हैं । इनको 'सामाजिक क्रिया' कहा जाता है । तीसरे प्रकार की क्रियायें वे हैं जो दूसरे व्यक्तियों के लिए प्रेरक का कार्य करती हैं जिसके फलस्वरूप दूसरे व्यक्ति उसके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं । जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों की क्रियायें एक दूसरे के लिए प्रेरक का कार्य करती हैं जिससे वे एक दूसरे के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं तो उसे अन्तःक्रिया (interaction) कहते हैं ।

क्रिया (Action)

क्रिया का शाब्दिक अर्थ कर्म या कार्य है । कर्म शब्द 'कृ' धातु से बना है । इसका अर्थ 'करना', व्यापार या हलचल होता है । इस परम्परागत व्याख्या के अनुसार यह कहा जा सकता है कि क्रिया का सम्बन्ध शरीर, वचन तथा मस्तिष्क से होता है । ये क्रिया के आधार हैं ।

मैक्स वैबर ने कहा है : "क्रिया में हम उन सब मानव व्यवहार को शामिल करते हैं जब और जिसका कर्त्ता (उस क्रिया को करने वाले) के लिये कोई अर्थ होता है या जब वह अपने दृष्टिकोण से उसका कोई अर्थ लगाता है ।"* उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति का बागीचे में अकेले घूमना अन्य व्यक्तियों को निरर्थक या मूर्खतापूर्ण लग सकता है परन्तु कर्त्ता के लिये उसका कुछ अर्थ हो सकता है, वह

* "In 'action' is included all human behaviour when and in so far as the acting individual attaches a subjective meaning to it."

—Max Weber.

अपने मन के तनाव को दूर करने के लिये अकेले खुली हवा में घूमता है। इसी प्रकार, किसी व्यक्ति का एक सिगरेट के बाद दूसरी सिगरेट पीना किसी को हास्यास्पद या मूर्खतापूर्ण लग सकता है, परन्तु जिसका कर्ता के लिये अर्थ हो सकता है। वह अपने चित्त को स्थिर करने के लिये निरन्तर सिगरेट पी सकता है। वह शरीर, वाणी या मन से कार्य कर सकता है। किसी बेजानदार वस्तु के सम्बन्ध में किया गया कार्य जैसे मूर्ति पूजा केवल 'क्रिया' है क्योंकि इसका केवल कर्ता के लिए अर्थ है। इसमें अन्य व्यक्तियों, उनके मनोभावों या क्रियाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। मन में ही किसी बात का निर्णय लेना भी 'क्रिया' है। इस अर्थ में क्रिया प्रकट, बाह्य (overt) हो सकती है या आन्तरिक, मन में हो सकती है। इस प्रकार, किसी स्थिति में प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करना या जानबूझ कर हस्तक्षेप न करना या किसी स्थिति में आत्म-समर्पण कर देना जैसी बातें क्रिया में शामिल हैं।

सामाजिक क्रिया (Social Action)

क्रिया उस समय सामाजिक होती है जब तीन शर्तों में से एक या अधिक पूरी होती हों : पहले, कर्ता की स्थिति में अन्य कर्ता भी शामिल हैं जिनकी उपस्थिति को क्रिया करते समय ध्यान में रखा जाता है; दूसरे, स्थिति ऐसी है कि इन अन्य व्यक्तियों के पास सुविधायें हैं जिसके कारण वे कर्ता के व्यवहार को प्रभावित करते हैं, तीसरे, कर्ता इन अन्य व्यक्तियों के भाँति ही कुछ सामान्य प्रत्याशायें (expectations) और सम्भवतः कुछ मूल्य, विश्वास और प्रतीकों (symbols) को रखता है।

इससे स्पष्ट होता है कि अन्य व्यक्ति कर्ता की क्रिया को अपनी उपस्थिति, क्रिया आदि से प्रभावित करते हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात है सामान्य संस्कृति का होना जिसके कारण वह अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं का अर्थ लगा सके।

माक्स वैबर के अनुसार सामाजिक क्रिया वह क्रिया है जिसमें, उसको करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा लगाये गये प्रातीतिक अर्थ के अनुसार दूसरे व्यक्तियों के मनोभाव और क्रियाओं का समावेश हो और उन्हीं के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।* इस भाषा के अनुसार केवल वही क्रिया सामाजिक क्रिया कहलायेगी जो अन्य व्यक्तियों, उनके मनोभावों और क्रियाओं को दृष्टि में रखकर कोई व्यक्ति करता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य का एक अर्थ (meaning) होता है जो कर्ता को स्पष्ट होता है।

सामाजिक क्रिया में हम शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार की क्रियाओं

---

* "Social action is such action as, according to its subjective meaning to the actor or actors, involves the attitudes and action of others and is oriented to them in its course." --Max Weber.

को शामिल करते हैं। कुछ न कर सकना, करने की इच्छा न करना और करने में असफल होना भी क्रियायें हैं। वास्तव में इस बात को समझने के लिये कर्त्ता के दृष्टिकोण को समझना आवश्यक होगा। कर्ता किसी कार्य को इसलिये भी नहीं कर सकता है क्योंकि उससे सम्बन्धित उद्देश्य उसे मान्य नहीं हैं या वह उनके प्रति उदासीन है। चाहे इसका कारण उसकी निर्बलता या साधनहीनता हो। वह परिस्थितिवश भी कार्य नहीं कर सकता। उसे अपनी क्रिया से उत्पन्न होने वाली अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की प्रतिक्रिया का भी भय है। यह सब सामाजिक परिस्थिति के कारण हैं। इनको हम बाधायें कह सकते हैं।

उपरोक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए वैबर ने कहा है कि हम क्रिया को कोई ऐसा मानव मनोभाव या कार्य कह सकते हैं चाहे उसमें बाह्य या आन्तरिक कार्य हों, कार्य करने की असमर्थता हो या निष्क्रिय स्वीकारोक्ति हो यदि और जब तक कर्ता या अनेक कर्ता उसका प्रातीतिक अर्थ लगाते हैं।* सामाजिक कार्य की व्याख्या करते समय प्रेरकों (motives) को ध्यान में रखना आवश्यक है। इन प्रेरकों पर दूसरों का प्रभाव पड़ना आवश्यक है। जो कार्य दूसरों से प्रभावित नहीं होते चाहे वे दूसरों पर प्रभाव डालने का उद्देश्य रखते हों वे सामाजिक कार्य नहीं होते।

टाल्कट पारसन्स † ने कहा है कि क्रिया कर्त्ता-स्थिति प्रणाली की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसकी कर्ता या कर्ताओं के लिये कोई प्रेरणात्मक महत्ता हो। * इसका यह अर्थ है कि समाज में रहता हुआ व्यक्ति जब सामाजिक प्रेरकों के कारण कोई कार्य करता है, जिसका अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों पर किसी न किसी प्रकार का प्रभाव पड़ना निश्चित है, तो उसे सामाजिक क्रिया कहा जा सकता है। क्रिया सामाजिक तब होती है जब कर्त्ता या कर्ताओं द्वारा अपने दृष्टिकोण से उसका अर्थ लगाये जाने पर वह अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को दृष्टि में रखती है और उसी के अनुसार कार्य करती हैं। इस प्रकार, जब हम कोई कार्य, बाहरी या अन्दरूनी (विचार में), करते समय अन्य मनुष्यों और उनके व्यवहार को दृष्टि में रखते हुये करते हैं वह सामाजिक क्रिया कहलाता है।

---

* "We shall call action any human attitude or activity (no matter whether involving external or internal acts, failure to act or passive acquiescence) if and in so far as the actor or actors associate a subjective meaning with it.' –Max Weber.

‡ "Action is a process in the actor situation system which has motivational significance to the individual actor, or in the case of collectivity, its compentent individuals"' --Talcot Parsons.

मैक्स वैबर के विचार (Views of Max Weber)

(१) सामाजिक क्रिया, जिसमें कार्य करने में असफलता और सहिष्णुता (passive acquiescence) भी सम्मिलित है, दूसरों के भूतकालीन, वर्तमान, और भविष्य के आशित व्यवहार से प्रभावित होती है। इस प्रकार यह गत आक्रमण से, वर्तमान की सुरक्षा, या भविष्य में होने वाले आक्रमण से सुरक्षा करने की विधियों से प्रेरित हो सकती है। यह 'दूसरे' अलग-अलग व्यक्ति हो सकते हैं और क्रिया करने वाला* व्यक्ति उनसे परिचित हो सकता है या वे एक अनिश्चित समूह हो सकते हैं जिन्हें वह बिल्कुल भी न जानता हो। इस प्रकार मुद्रा (money) विनिमय (exchange) का एक साधन है जिसे ऐक्टर भुगतान (payment) के रूप में इसलिये स्वीकार करता है कि उसकी क्रिया इस आशा से प्रभावित है कि भविष्य में अनगिनती अनजान व्यक्ति विनिमय के रूप में उसे लेने को तैयार हो जायेंगे।

(२) प्रत्येक प्रकार की क्रिया सामाजिक नहीं होती। वाह्य व्यवहार उस समय गैर-सामाजिक है जब कि वह वेजानदार वस्तुओं से प्रभावित हो। उदाहरण के लिये, धार्मिक व्यवहार उस समय सामाजिक नहीं है यदि वह केवल ध्यानावस्था या केवल प्रार्थना करने से सम्बन्धित हैं। किसी व्यक्ति की आर्थिक क्रिया उसी समय सामाजिक है यदि उसमें दूसरे व्यक्ति के व्यवहार का भी ध्यान रखा जाता है। उदाहरण के लिए, औपचारिक अर्थ में यह तब सामाजिक होती है जब आर्थिक पदार्थों पर कर्ता के वास्तविक नियन्त्रण का दूसरों के द्वारा आदर होता है। वस्तुतः (concretely) यह तब सामाजिक है यदि कर्ता के स्वयं के उपभोग के सम्बन्ध में दूसरों की भावी आवश्यकताओं को भी दृष्टि में रखा जाता है जिससे कर्ता कुछ अपनी बचत करता है। या, दूसरे सम्बन्ध में, उत्पादन लोगों की भावी आवश्यकताओं से प्रभावित हो।

(३) मनुष्यों के प्रत्येक प्रकार के सम्पर्क का सामाजिक चरित्र नहीं होता। उदाहरण के लिये, दो साइकिलों का केवल टकरा जाना एक प्राकृतिक घटना ही है। दूसरी ओर, एक दूसरे को बचाने की उनकी कोशिश, या टक्कर के बाद गालियों का प्रयोग, मार पीट या मैत्रीपूर्ण विवाद सामाजिक क्रिया होगी।

(४) सामाजिक क्रिया अनेक व्यक्तियों के एक से कार्यों या दूसरे व्यक्तियों से प्रभावित कार्य से तत्सम (identical) नहीं है। इस प्रकार, यदि वर्षा शुरू होने पर सड़क पर अनेक व्यक्ति एक साथ ही अपने छाते खोल लेते हैं तो यह एक दूसरे के प्रति होने वाली घटना न होगी परन्तु वर्षा से रक्षा करने की एक सी आवश्यकता के प्रति एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया होगी। यह भलीभाँति विदित

* आगे : "क्रिया करने वाले" के लिये ऐक्टर शब्द का प्रयोग किया गया है।

है कि व्यक्तियों के व्यवहार केवल इसी बात से प्रभावित हो सकते हैं कि वे किसी भीड़ के सदस्य हैं। इस प्रकार यह सम्भव है कि उसमें प्रसन्नता, क्रोध, उत्साह, निराशा, और काम की भावनायें भीड़ में उत्पन्न हों जो कि उस स्थिति में उत्पन्न हों यदि व्यक्ति अकेला है। परन्तु इस प्रकार की क्रिया को सामाजिक क्रिया नहीं कहा जायगा क्योंकि व्यक्ति के व्यवहार और भीड़ की उसकी सदस्यता में कोई अर्थपूर्ण सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है।

(५) इसी प्रकार, दूसरे व्यक्तियों का अर्थहीन अनुकरण (imitation) भी सामाजिक क्रिया नहीं समझा जायगा यदि वह केवल एक ऐसी प्रतिक्रिया है जिसका नकल किये जाने वाले व्यक्ति के लिए कोई अर्थ नहीं है।

सामाजिक क्रिया के तत्व (Elements of Social Action)

सामाजिक क्रिया के विचारकों ने सामाजिक क्रिया की व्याख्या करते हुये उनके निम्नलिखित तत्वों को दृष्टि में रखा है। क्रिया करने वाले व्यक्तियों को कर्त्ता (actors) कहा गया है।

(i) कर्त्ता के लक्ष्य या उद्देश्य होते हैं; उसकी क्रियायें इन लक्ष्यों की प्राप्ति के सिलसिले में की जाती हैं।

(ii) क्रियाओं में अक्सर लक्ष्यों (goals) की प्राप्ति के लिये साधनों (means) का चुनाव भी शामिल रहता है; परन्तु जहाँ ऐसा देखने में लगता है कि साधन नहीं है, देखने वाले के लिए फिर भी सम्भव रहता है कि वह साधनों और लक्ष्यों में भेद कर सके।

(iii) प्रत्येक कर्त्ता के हमेशा अनेक लक्ष्य होते हैं; किसी एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये की गई उसकी क्रियायें अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की गई उनकी क्रियाओं को प्रभावित करती हैं और उनसे प्रभावित भी होती हैं।

(iv) लक्ष्यों की खोज और साधनों का चुनाव उन स्थितियों के अन्दर ही हमेशा होते हैं जो क्रिया की दिशा को (course of action) प्रभावित करते हैं।

(v) कर्त्ता अपने लक्ष्यों की प्रकृति और उनकी प्राप्ति की सम्भावनाओं के बारे में हमेशा कुछ धारणायें बनाता है।

(vi) क्रिया केवल स्थिति से ही प्रभावित नहीं होती बल्कि उसके बारे में कर्त्ता के ज्ञान से भी प्रभावित होती है।

(vii) कर्त्ता के अपने कुछ विचार या परिज्ञान, पहचानने (cognition) के ढंग होते हैं जो स्थितियों को चुनकर उसके ध्यान देने को प्रभावित करते हैं।

(viii) कर्त्ता की कुछ भावनायें होती हैं जो स्थितियों को उसके द्वारा देखे जाने और लक्ष्यों के उसके चुनाव को प्रभावित करती है।

(ix) कर्ता के कुछ व्यवहार-आदर्श (norms) और मूल्य होते हैं जो लक्ष्यों के उसके चुनाव और उनकी वरीयता (priority) को निश्चित करते हैं।

अब हम क्रम से सामाजिक क्रिया के इन तत्वों की व्याख्या करने का प्रयत्न करेंगे।

(i) लक्ष्य (**Goal Orientation**)

इस बात पर सभी की सहमति है कि सब मानव क्रियायें लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में होती हैं। यह कहा जाता है कि यदि कोई निष्क्रिय (inactive) नहीं रहता तो वह प्रेरित (motivated) रहता है; प्रेरित होने का अर्थ लक्ष्य होना है और उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना है।

फिर भी, कुछ प्रकार की क्रियायें देखने में बिना लक्ष्य की लगती हैं : कुछ प्रकार के व्यवहार जैसे कि कमरे के अन्दर किसी व्यक्ति का चहलकदमी करना 'निरुद्देश्य (aimless) लगता है; लोग यह भी कह सकते हैं कि सिगरेट का पीना बगैर लक्ष्य के ही होता है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि ऐसी क्रिया केवल देखने में बिना लक्ष्य के लगती है। कोई व्यक्ति इसलिये कमरे में चहल-कदमी करता है जिससे कि वह अपने तनाव को दूर कर सके या वह उस समय कोई भी विशेष कार्य नहीं करना चाहता। कोई व्यक्ति सिगरेट इस लिये पीता है जिससे वह अपने चित्त को सन्तुलित कर सके और परेशानी का सामना कर सके। ऐसी क्रियाओं के लिये यह कहा जा सकता है कि उनका कोई स्पष्ट, चेतन लक्ष्य नहीं होता और जो कुछ भी लक्ष्य होता है वह अत्यन्त अविशिष्ट (unspecific) होता है। परन्तु यह कहना कि लक्ष्य विशिष्ट नहीं है केवल यह दिखाता है कि उसको प्राप्त करने के अनेक तरीके हैं।

अनेक लक्ष्य अत्यन्त विशिष्ट होते हैं और उनकी प्राप्ति को पहचाना जा सकता है, इसका एक उदाहरण आमदनी में वृद्धि है। दूसरे, कुछ लक्ष्यों को उसकी प्राप्ति में लगे सब या कुछ कर्त्ता चेतन रूप से पहचानते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि व्यक्ति अपने लक्ष्यों को चेतन रूप से नहीं पहचानते हैं—कम से कम वह यह मानते नहीं कि वे अपने लक्ष्यों को पहचानते हैं—परन्तु दूसरे व्यक्तियों में उन्हीं लक्ष्यों को सरलता से पहचान लेते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है अपनी प्रतिष्ठा या शक्ति बढ़ाने का लक्ष्य। फिर भी, यह लक्ष्य आवश्यक रूप से अत्यन्त विशिष्ट नहीं होता, न ही उसकी प्राप्ति को हमेशा आसानी से पहचाना जा सकता है।

(ii) **साधनों का चुनाव (Selection of Means)**

यह कहना कि क्रिया में लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये साधनों का प्रयोग भी शामिल है यह मान लेना है कि अनुभवसिद्ध दृष्टि से (empirically)

या विश्लेषणात्मक दृष्टि से (analytically) साधन और लक्ष्य दो अलग बातें हैं। इसका यह भी अर्थ लगाया जाता है कि साधनों का लक्ष्यों के अर्थ में प्रयोग नहीं किया जाता; जहाँ लक्ष्य इतना विशिष्ट होता है कि उसको प्राप्त करने का केवल एक तरीका है, वहाँ लक्ष्य और साधन में लगभग कोई अन्तर नहीं होता। लक्ष्य और साधन में भेद करना उस समय सबसे आसान होता है जब लक्ष्य प्राप्त करने के अनेक तरीके हों, या दूसरे शब्दों में जब लक्ष्य अस्पष्ट हो।

जहाँ लक्ष्य और साधन मूर्त वस्तुयें होते हैं जिन्हें पहचाना जा सकता है, वहाँ लक्ष्य और साधन में भेद करना सरल होता है। जहाँ वे केवल घटनायें होती हैं उनमें भेद केवल विश्लेषणात्मक प्रयास के द्वारा ही किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, हम सरलता से बीज बोने और पौधों को पानी देने को एक लक्ष्य के साधन के रूप में पहचान सकते हैं, इसमें लक्ष्य फसल पैदा करना है। दूसरी ओर, नियमित रूप से राजनीतिक चुनाव को प्रजातांत्रिक स्वतंत्रता कायम रखने के लक्ष्य के साधन के रूप में आसानी से नहीं पहचाना जा सकता, क्योंकि चुनावों की नियमितता (regularity) स्वयं एक प्रजातांत्रिक स्वतन्त्रता है, वह स्वयं साधन और लक्ष्य दोनों ही है।

समाजशास्त्रियों का कहना है कि कर्ताओं के लिए उनके लक्ष्य चाहे जितने भी विशिष्ट क्यों न हों, वे उनको कम विशिष्ट भी बना सकते हैं। जो मजदूर या मिस्त्री किन्हीं विशेष फर्म या उद्योगों में ही रहकर अपनी आमदनी बढ़ाने का लक्ष्य रखते हैं उनके पास कम साधन होते हैं: वे ऊँची तनख्वाह की माँग कर सकते हैं या अधिक देर तक काम करने को तैयार हो सकते हैं। परन्तु यदि उसी फर्म या उद्योग में रहकर यह विशिष्ट लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता तो वे इसको कम विशिष्ट बना सकते हैं, उदाहरण के लिये, एक उद्योग को छोड़कर दूसरे उद्योग में जाकर।

(iii) लक्ष्यों के बीच सम्बन्ध (The Relationship Between Goals)

किसी भी व्यक्ति का केवल एक लक्ष्य नहीं होता। कभी कभी कुछ लोग कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति में ऐसे लग जाते हैं जिससे लगता है कि बाकी सब लक्ष्य इन लक्ष्यों के अधीन हैं। उदाहरण के लिये, कुछ लक्ष्य जैसे कि 'आत्म-सम्मान' अन्तिम (ultimate) होते हैं, और अनेक लक्ष्य इसकी प्राप्ति में साधन का कार्य करते हैं; दूसरी ओर, कुछ लक्ष्य जैसे कि धन-सम्पत्ति का संचय इतने अधिक महत्वपूर्ण होते हैं कि उनकी प्राप्ति के द्वारा अनेक किस्म के अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है—राजनीतिक शक्ति, विवाह के लिए सुन्दर, गुणवान लड़की, प्रतिष्ठा। क्योंकि कुछ मानों में कुछ लक्ष्य अन्य लक्ष्यों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होते हैं, इसलिये विभिन्न लक्ष्यों के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

इस बात के तीन कारण हैं कि कुछ लक्ष्यों को अन्य लक्ष्यों के मुकाबले में वरीयता (priority) क्यों प्राप्त होती है। इसका सबसे पहला कारण यह है कि अन्य लक्ष्यों की अपेक्षा कुछ लक्ष्य अधिक मूल्यवान समझे जाते हैं। यदि व्यक्ति आराम में तत्काल वृद्धि को आमदनी में तत्काल वृद्धि की अपेक्षा अधिक मूल्यवान समझते हैं तो वे अधिक घण्टे काम नहीं करेंगे चाहें वे कहीं अधिक मेहनत करें जिससे कम समय में ही पहले जैसी आमदनी वे कर सकें। दूसरी ओर, यदि व्यक्ति आराम का वक्त काटने की क्रियाओं के ढंग (patterns of leisure activities) में कुछ परिवर्तनों को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं बनिस्बत आराम के समय की वृद्धि के तो वे तत्काल भविष्य में अधिक घण्टों तक और अधिक मेहनत करने के लिये तैयार हो सकते हैं। फिर भी परिस्थितियों के बदलने से लक्ष्यों के महत्व का क्रम भी बदल जाता है! उदाहरण के लिए, आमदनी में वृद्धि होने के साथ ही कुछ लोगों के लिए तत्काल आराम में वृद्धि का मूल्य कहीं अधिक बढ़ सकता है बनिस्बत आराम सम्बन्धी क्रियाओं के ढंग में परिवर्तन के मूल्य के।

दूसरा कारण यह है कि कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति दूसरे लक्ष्यों की प्राप्ति में आवश्यक साधन है। यदि आराम से पहले व्यक्ति परिश्रम करते हैं तो इसका यह कारण नहीं है कि वे आवश्यक रूप से मेहनत को अधिक मूल्यवान समझते हैं बल्कि यह कि आराम का समय वे ऐसे ठाट-बाट के ढंग से बिताना चाहते हैं जिसके लिए आमदनी में वृद्धि होना आवश्यक है।

इसका तीसरा कारण यह है कि कुछ परिस्थितियों में कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयत्न सम्भव नहीं है या यह प्रयत्न इतना मंहगा पड़ सकता है कि उससे उस लक्ष्य प्राप्ति का गुण या खूबी बिगड़ने का खतरा हो या उसके कारण अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधा पड़े। उदाहरण के लिए, राजनीतिक नेता सुधार की अपेक्षा क्रान्ति को अधिक महत्वपूर्ण समझ सकते हैं; परन्तु कुछ परिस्थितियों में वे यह अनुभव कर सकते हैं कि क्रान्ति लाने का प्रयास असफल रहेगा जब कि सुधार लाने के प्रयत्न से क्रान्ति के निरन्तर समर्थन की निश्चितता बढ़ जाती है, यद्यपि क्रान्ति के सफल होने में इससे देर चाहे हो जाए। दूसरी ओर, ऐसी भी परिस्थितियाँ हो सकती हैं कि जिसमें नेता कुछ विशेष सुधार लाने के प्रयत्न करने के पक्ष में न हों क्योंकि वे यह सोच सकते हैं कि इस प्रकार अनेक अन्य सुधार को लाने की सम्भावना कम हो जायेगी जो क्रान्तिकारी क्रिया से लाये जा सकते हैं।

इस सम्बन्ध में विभिन्न लक्ष्यों के बीच सम्बन्ध ही नहीं महत्वपूर्ण है बल्कि उन प्रभावों का अनुमान भी महत्वपूर्ण है जो कुछ विशेष साधनों के प्रयोग से अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति पर पड़ेगा।

(iv) कर्त्ता की स्थिति (The Actor's Situation)

क्रिया की व्याख्या करना, बहुत हद तक, किसी विशेष स्थिति या प्रकार की स्थिति में कर्त्ता की स्थिति को समझना है। विशिष्ट क्रियायें वे हैं जो उस समय की जाती हैं जब कि स्थिति कुछ हद तक सामाजिक सम्बन्धों और संस्कृति के तथ्य होते हैं।

कुछ हद तक व्यक्ति अपने लक्ष्यों को अपनी स्थितियों में लाते हैं: स्थिति जैसी भी क्यों न हो अपने को जीवित रखने का लक्ष्य हमेशा बना रहता है। परन्तु काफी हद तक लक्ष्य स्थितियों का फल होते हैं। कोई कर्त्ता किसी स्थिति में इसलिए प्रवेश कर सकता है क्योंकि वह कुछ लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है और उस स्थिति में प्रवेश करने के बाद कुछ अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति का भी प्रयत्न कर सकता है। परन्तु कभी-कभी परिस्थितियाँ कर्ता को कुछ लक्ष्य प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिये, आदिवासी समाजों के सदस्यों का उनके विजेता उपनिवेशवादी (Colonists) अपनी आमदनी बढ़ाने के लिये प्रभावित करते हैं जिससे वे अपने जीवन-यापन के नये ढंग की कीमत चुका सकें।

किसी स्थिति का एक महत्वपूर्ण पहलू विशेष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने के साधनों का उपलब्ध होना है। उदाहरण के लिये, जिन लोगों को विदेशियों ने जीत लिया है वे अपनी संस्कृति के कुछ बहुमूल्य तत्वों को कायम रखने की इच्छा कर सकते हैं। परन्तु यदि परिस्थितियाँ उनसे ऐसा करने के साधनों को छीन लेती हैं, तो वे उन्हीं बहुमूल्य लक्ष्यों के लिये कुछ प्रतिस्थापन (substitutes) की तरकीब कर सकते हैं। उदाहरण के लिये, अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की स्पर्धा के लिये मनुष्यों के सिर के शिकार के निषिद्ध हो जाने पर वे कुछ अन्य लक्ष्य बना सकते हैं, जैसे कि स्पर्धापूर्ण खेलों में अन्य समूहों को हराना जिसमें व्यक्ति प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके।

(v) कर्ता की धारणायें (The Actor's Assumptions)

मनुष्यों की क्रियायें केवल परिस्थितियों से ही जो बाह्य होती हैं निश्चित नहीं होती हैं, बल्कि उस प्रातीतिक (subjective) ढंग से भी निश्चित होती हैं जिसमें यह स्थितियाँ अनुभव की जाती हैं। स्थितियों के प्रातीतिक तत्व कर्त्ता के विचार, भावनायें और ज्ञान की स्थिति होते हैं। यह तत्व अक्सर समूह की संस्कृति का अंग होते हैं।

यदि कोई कर्ता यह धारणा बनाता है कि किसी विशेष ढंग से किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयत्न किये जाने की सम्भावना है, या वह यह सोचता है कि

लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है, या वह सोचता है कि कुछ विशेष प्रकार की क्रिया करने से कुछ विशेष परिणाम होंगे तो वह इन धारणाओं से प्रभावित होकर क्रिया कर सकता है चाहे वह धारणायें सही हों या गलत, या उन्हें सही दिखाया जा सकता हो या नहीं। यह धारणायें दो किस्म की होती हैं : जिनकी अनुभवसिद्ध ढंग से (empirically) परीक्षा की जा सकती है और जिनकी नहीं। अनुभवसिद्ध ढंग से परीक्षा करने योग्य धारणायें वे हैं जिनके समर्थन में प्रमाण (evidence) जुटाई जा सकती है और जिनको, सैद्धान्तिक रूप से, अनुभवसिद्ध प्रमाण द्वारा गलत भी ठहराया जा सकता है। धारणाओं की कुछ कारणों से परीक्षा नहीं हो सकती। उसमें साधन और लक्ष्य का अस्तित्व छुपा हो सकता है जो अनुभवसिद्ध बातें हो सकती हैं, परन्तु उनके बीच (साधन और लक्ष्य) के सम्बन्ध पर भी जोर दिया जा सकता है जिसकी अनुभवसिद्ध ढंग से परीक्षा नहीं की जा सकती, या वे लक्ष्यों की प्राप्ति की कुछ शर्तें बता सकते हैं जो अनुभवसिद्ध बातें नहीं हैं। जादू सम्बन्धी विश्वास—उदाहरण के लिए, पानी छिड़कने से वर्षा होती है—अनुभवसिद्ध बातों से सम्बन्ध रखता है, कोई भी व्यक्ति पानी छिड़कने और वर्षा को देख सकता है; परन्तु दोनों में कोई सम्बन्ध है इसकी परीक्षा नहीं हो सकती। धार्मिक विश्वास—उदाहरण के लिये कि प्रार्थना से मोक्ष प्राप्त होता है—की परीक्षा नहीं हो सकती क्योंकि, न केवल यह कि प्रार्थना और मोक्ष के सम्बन्ध की परीक्षा नहीं हो सकती बल्कि मोक्ष जैसी कोई चीज होती है स्वयं गैर-अनुभव सिद्ध बात (entity) है।

(vi) कर्त्ता का स्थिति का ज्ञान
(The Actor's Knowledge of the Situation)

कर्ता के व्यवहार की केवल स्थिति के उस रूप की दृष्टि से व्याख्या नहीं की जा सकती जो देखने वाले को दिखाई देती हैं, क्योंकि कर्ता को स्थिति का ज्ञान देखने वाले के ज्ञान से भिन्न हो सकता है। कर्ता का ज्ञान किसी स्थिति के प्रति उसकी प्रतिक्रिया को निश्चित करती है : यदि किसी सेना नायक को यह सूचित किया जाता है कि शत्रुओं की सेना उसकी अपनी सेना से काफी छोटी है तो वह उन पर आक्रमण कर सकता है। हो सकता है कि उसकी सूचना सही हो, कुछ अंश में सही हो (छोटी होने पर भी शत्रु सेना ऐसे शस्त्रों से सज्जित हो कि उसके आक्रमण का सामना कर सके) या गलत हो। कुछ भी नतीजा बाद में क्यों न निकले, उसकी क्रिया (निर्णय) उस स्थिति के उसके ज्ञान पर निर्भर करेगी।

(vii) विचार और परिज्ञान या पहचानने के ढंग
(Ideas and Modes of Cognition)

कर्ता का सूचना का चुनाव, अपनी स्थिति का उसके द्वारा अवलोकन और

फलस्वरूप उसका व्यवहार न केवल इस बात से प्रभावित होंगे कि किन्हीं विशेष ढंग से कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति की सम्भावना के बारे में उसकी अपनी धारणा क्या है, बल्कि उसके विचारने के ढंग से भी प्रभावित होंगे चाहें उससे वह अचेतन क्यों न हो। व्यक्तियों को अच्छे या बुरे, लम्बे या नाटे, शूर या कायर में वर्गीकरण या वस्तुओं का चिकने, खुरदुरे, भारी या कोमल में वर्गीकरण केवल उसके सोचने के ढंग को प्रतिबिम्बित करते हैं।

(viii) संवेग और भावनायें (Affects and Sentiments)

स्थितियों को देखना और लक्ष्यों का चुनाव संवेगात्मक आवश्यकताओं या भावनाओं से भी प्रभावित होते हैं। उद्वेग जैसे कि शत्रुता, प्रेम, ईर्ष्या, निष्ठा या संरक्षण की आवश्यकता सरल हो सकते हैं या अनेक भिन्न तत्वों का योग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक दल के प्रति निष्ठा को प्रकट करना दूसरे दल के प्रति शत्रुता व्यक्त करना हो सकता है। संवेग या भावनायें किन्हीं वस्तुओं के प्रति प्रत्यक्ष रूप से प्रकट की जा सकती हैं या उनको जटिल प्रक्रियाओं द्वारा संवेगात्मक महत्व प्रदान किया जा सकता है जिसके द्वारा कर्ता और वे वस्तुयें अन्तः-सम्बन्धित होती हैं। इस प्रकार की मुख्य प्रक्रियायें हैं : समीकरण (identification), आत्मसात (incorporation), प्रक्षेपण (projection), और प्रस्थापन (displacement)। समीकरण में कर्ता कुछ वस्तुओं की विशेषताओं को अपनी विशेषतायें समझकर सन्तोष प्राप्त करता है : लोग अपने को नेता का अनुयायी दिखाने के लिये नेता की कुछ विशेषताओं को स्वयं ग्रहण कर लेते हैं। आत्मसात करने का अर्थ है उन विशेषताओं को प्राप्त करना जो किसी अन्य पदार्थ से ली गई हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को किसी दूसरी वस्तु की स्थिति में अपने को रखकर वस्तु ज्ञान करने की आवश्यकता नहीं होती। प्रक्षेपण में कर्ता अपनी विशेषता को किसी दूसरी वस्तु पर थोपता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई व्यक्ति दूसरे को शत्रुतापूर्ण भावना के लिए दोष देता है तो वह अक्सर उसके प्रति अपनी भावना को प्रकट करता है जिसके फलस्वरूप दूसरे में भी वैसी ही भावना जागृत होती है। प्रस्थापन का अर्थ है किसी एक वस्तु को ऐसी विशेषतायें प्रदान करना जो वास्तव में किसी अन्य वस्तु की विशेषता है।

(ix) व्यवहार-आदर्शों और मूल्यों का महत्व (The Significance of Norms and Values)

कर्ता द्वारा लक्ष्यों का चुनाव और विशेषकर लक्ष्यों को वरीयता प्रदान करना व्यवहार-आदर्शों और मूल्यों से विशेष प्रभावित होता है। व्यवहार-आदर्श

समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहारों के सम्बन्ध में अनुशंसायें (prescriptions) और निषेध होते हैं। दूसरी ओर, मूल्य किन्हीं स्थितियों या बातों को उचित या वांछनीय बताती हैं, उनके प्रति वरीयता (priority) प्रकट करती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि व्यवहार-आदर्शों को हमेशा मूल्यों का समर्थन प्राप्त हो। गुलाम लोग अपने मालिकों द्वारा दी गई अनुशंसाओं के अनुसार ही सामान्यतः कार्य करते हैं परन्तु वे ऐसा करने के लिये बाध्य हैं : उनको आज्ञापालन और दण्ड जो कि अक्सर मृत्यु हो में से एक वस्तु चुनना है, वे इन व्यवहार-आदर्शों को अवसर प्राप्त होने पर अस्वीकार कर सकते हैं।

व्यवहार-आदर्श लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये कुछ साधनों की अनुशंसा कर सकते हैं या उसकी सीमा बढ़ा सकते हैं। उदाहरण के लिये, वस्तुओं की अदला-बदली (barter) जिस साधन के द्वारा कुछ वस्तुयें प्राप्त की जाती हैं, उन समाजों में एक व्यवहार-आदर्श है जहाँ बैंक नोट या सिक्के जैसी कोई वस्तु नहीं होती।

व्यवहार-आदर्श तब तक लक्ष्यों की अनुशंसा नहीं करते जब तक वे अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति में भी साधन नहीं होते या फिर इन व्यवहार-आदर्शों को मूल्यों का समर्थन प्राप्त हो। उदाहरण के लिए रईस होना स्वयं में कोई व्यवहार-आदर्श नहीं है जब तक समाज में इसका मूल्य न हो या फिर यह प्रतिष्ठा प्राप्त करने का साधन हो।

जिस हद तक व्यक्ति की क्रियायें व्यवहार-आदर्शों और मूल्यों से प्रभावित होती हैं वह एक किस्म के व्यवहार से दूसरे किस्म के व्यवहार में और एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न होती हैं।

किंग्सले डेविस (Kingsley Davis) ने सामाजिक क्रिया के चार तत्व बताये हैं: (i) कर्त्ता (An actor), (ii) लक्ष्य (An end), (iii) शर्तों का एक कुलक (A set of conditions), स्थिति के वे पहलू जिन पर कर्ता का कोई नियंत्रण नहीं है; (iv) साधनों का एक कुलक (A set of means), स्थिति के वे पहलू जिनके ऊपर कर्ता का नियंत्रण है।

(i) **कर्ता (Actor)** : जब हम क्रिया को करने वाले की बात करते हैं, तो हमारे मस्तिष्क में कर्ता का शरीर नहीं होता, बल्कि उसका अहम् (ego) या स्व (self) होता है। अहम् एक प्रातीतिक वस्तु (subjective entity) होती है जिसके पास चेतना और अनुभव होता है, जो निर्णय लेती है और बाद में इन लिये गये निर्णयों पर विचार करती है जो भूतकाल में घटित घटनाओं का एक दूसरे से सम्बन्ध बताती है और भविष्य में होने वाली घटनाओं की कल्पना करती है।

अहम् के किसी अंश को खोये बगैर शरीर का कोई भाग (हाथ या आँख) खोया जा सकता है, अहम् के बदले बगैर शरीर के गुण (रंग या वज़न) बदल सकते हैं। स्व के लिये शरीर स्थिति का एक भाग है, लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन या शर्त है।

(ii) लक्ष्य (**end**) : इसका सम्बन्ध मौजूदा बातों से नहीं होता, बल्कि भविष्य में होने वाली बातों से होता है। इसके लिये कल्पनाशक्ति के प्रयोग और प्रयास और इच्छाशक्ति के उपयोग की आवश्यकता होती है। व्यक्ति लक्ष्यों का चुनाव करते हैं। इस चुनाव में मूल्यों (values) का विशेष महत्व है। मूल्य ऐसा गुण है जिसे वांछनीय समझा जाता है। मूल्य का आधार हमें भावनाओं में मिलता है।

(iii) **शर्तें (conditions)** : लक्ष्य में केवल प्रयास और इच्छाशक्ति ही नहीं शामिल है बल्कि मार्ग में आने वाली बाधायें भी शामिल हैं। यदि बाधायें न हों, कर्ता के प्रयास के बगैर सभी वांछित स्थितियाँ और बातें मौजूद रहें और फिर न लक्ष्य की आवश्यकता हो न क्रिया की। दूसरी ओर, क्रिया की धारणा में यह बात भी छिपी है कि बाधाओं को दूर किया जा सकता है। यदि सभी बाधायें अजेय हों तो लक्ष्य प्राप्ति के लिये किया प्रत्येक प्रयास असफल हो और शीघ्र ही कर्ता प्रयत्न करना बन्द कर दे। उन बाधाओं को हम शर्तें कहते हैं जो अजेय हैं। वे उस अवस्था को निश्चित करते हैं जिसके भीतर ही क्रिया की जानी चाहिये। उदाहरण के लिये, यदि कोई यात्री किसी दूर शहर को पहुँचना चाहता है तो केवल हाथ हिलाकर ही वह उस दूरी को एकदम कम या समाप्त नहीं कर सकता। उसे दूरी को एक शर्त या बाधा के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा और अन्य साधनों से (जैसे बहुत तेज मोटर चला कर) उस कमी को दूर करना पड़ेगा।

कर्ता पर लगाई गई सभी शर्तें बाहरी नहीं होतीं। उसमें से कुछ दशायें कर्ता के शरीर में छिपी होती हैं। वायलिनिस्ट बनने की आकांक्षा रखने वाले अनेक लोग असफल रहते हैं क्योंकि उनमें योग्यता (talent) की कमी होती है। कुछ दशायें व्यक्तित्व का अंग हो सकती हैं, जैसे कायर होने के कारण कोई व्यक्ति कोई बड़ा अवसर खो देता है। दूसरी दशायें सामाजिक होती हैं परन्तु आत्मसात (internalize) नहीं की जातीं, जैसे कि कानून जिनका पालन हम इसलिये करते हैं क्योंकि वाँछित फल से कहीं अधिक सजा का डर है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि लक्ष्य की प्राप्ति को सीमित करने वाली दशायें तीन सामान्य स्रोतों से उत्पन्न होती हैं : भौगोलिक पर्यावरण, जन्मजात क्षमता, और समाज।

(iv) **साधन (means)** : लक्ष्य प्राप्त करने के लिये किन्हीं साधनों का प्रयोग आवश्यक है। कुछ स्थितियों में साधन अत्यन्त सरल हो सकते हैं जैसे वाणी।

दूसरों में वे जटिल हो सकते हैं जैसे फैक्टरी। अक्सर एक ही लक्ष्य अनेक साधनों द्वारा प्राप्त हो सकता है जिससे कर्ता को इस बात की सुविधा रहती है कि वह कोई भी साधन प्रयोग करे। परन्तु इसमें ग़लती होने की भी सम्भावना है क्योंकि चुना गया साधन सबसे अच्छा नहीं भी हो सकता है।

जो चीज़ एक के लिये साधन है वह दूसरे के लिये शर्त हो सकती है। उदाहरण के लिये, एक ही स्थिति में एक व्यक्ति सच बोलने को बाध्य समझ सकता है जब कि दूसरा व्यक्ति झूठ बोलना उचित समझ सकता है। इसी प्रकार, जो आदमी कोई मशीन जैसे मोटर चलाना जानता है उसके लिये वह साधन है, परन्तु जो व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता उसके लिये वह बाधा या शर्त है।

दूसरे, जो चीज एक स्थिति में साधन है वह दूसरी स्थिति में लक्ष्य हो सकता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई व्यक्ति मकान खरीदना चाहता है तो वह अपनी तनख्वाह का एक भाग बचाने का साधन प्रयोग कर सकता है, जिस स्थिति में पैसा बचाना उसका तत्काल लक्ष्य होगा और बजट बनाना आदि इस लक्ष्य प्राप्ति का साधन है।

क्रियाओं का वर्गीकरण (Classification of Actions)

(१) **मैक्स वैबर** ने चार प्रकार की क्रियायें बताई हैं :—

(i) Zweckrational क्रिया, या किसी लक्ष्य को दृष्टि में रख कर की जाने वाली क्रिया, (ii) Wertrational क्रिया, किसी मूल्य के अनुसार होने वाली बौद्धिक क्रिया, (iii) Affective या संवेगात्मक क्रिया, और (iv) परम्परागत क्रिया।

(i) किसी लक्ष्य के सम्बन्ध में की गई बौद्धिक क्रिया (Rational action in relation to a Goal)—इस प्रकार की क्रिया में हम किसी इंजीनियर की क्रिया को शामिल करते हैं जो एक पुल बना रहा है, सट्टा बाजार में एक सट्टा खेलने वाले की क्रिया को ले सकते हैं जो धन पैदा करने का प्रयत्न कर रहा है, एक सेनापति की क्रिया को ले सकते हैं, जो युद्ध में विजय प्राप्त कर सकते हैं। इन सभी क्रियाओं में कर्ता अपने लक्ष्य को स्पष्ट रूप से देखता है और उसकी पूर्ति के लिये साधन जुटाता है। बौद्धिकता कर्ता के ज्ञान (साधन का) पर आधारित है, न कि देखने वाले के ज्ञान पर।

(ii) किसी मूल्य के सम्बन्ध में बौद्धिक क्रिया (Rational action in relation to a value)—इसमें हम ऐसी क्रियाओं को ले सकते हैं जैसे कि द्वन्द युद्ध में मारा जाना, जहाज के कैप्टन का जहाज के साथ डूब जाना। यह क्रिया इसलिये बौद्धिक नहीं है कि इसके द्वारा कोई बाहरी और निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति

का प्रयत्न होता है बल्कि इसलिये कि द्वन्द युद्ध की चुनौती स्वीकार न करना, या डूबते हुये जहाज को छोड़कर चले आना निन्दनीय समझा जाता है, इससे कर्ता की प्रतिष्ठा को धक्का लग सकता है। इस प्रकार हमारे जीवन के सम्बन्ध में कर्ता भारी खतरा लेकर बौद्धिक क्रिया कर रहा है क्योंकि सम्मान की अपनी धारणा के प्रति वह वफादार रहना चाहता है।

(iii) **संवेगात्मक क्रिया (Affective or emotional action)** - यह ऐसी क्रिया है जो कर्त्ता की मानसिक स्थिति या मिजाज (humour) द्वारा संचालित होती है : माँ के द्वारा बच्चे के चांटा मारना क्योंकि बच्चे ने बेहद बदतमीजी दिखाई है, या आत्म नियंत्रण खो देने पर किसी फुटबाल खिलाड़ी द्वारा रेफ्री या विरोधी दल के खिलाड़ी पर प्रहार। इन सब उदाहरण में क्रिया की व्याख्या किसी लक्ष्य या मूल्यों की प्रणाली के संदर्भ में नहीं की जाती बल्कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में कर्त्ता की संवेगात्मक प्रक्रिया के रूप में की जाती है।

(iv) **परम्परागत क्रिया (Traditional action)**—यह ऐसी क्रिया है जो प्रथाओं से संचालित होती है, उन विश्वासों से संचालित होती है जो आदत और 'दूसरी प्रकृति' बन गई हैं जिससे परम्परा के अनुसार कार्य करने में कर्त्ता न किसी लक्ष्य को दृष्टि में रखता है, न किसी मूल्य से सचेत है, न किसी आवेश में क्रिया करता है। वह तो केवल अपनी आदत के अनुसार क्रिया करता है, इन आदतों पर प्रथाओं का प्रभाव है।

(२) पैरेटो द्वारा तर्कपूर्ण और ग़ैर-तर्कपूर्ण क्रिया पर विचार (Pareto on Logical and Non-Logical Conduct)

पैरेटो ने तर्कपूर्ण और ग़ैर-तर्कपूर्ण व्यवहार में भेद किया। उसने ग़ैर-तर्कपूर्ण क्रिया को विशेष महत्वपूर्ण बताया। पैरेटो का विचार था कि क्रिया के वास्तविक प्रयोजन स्वयं कर्ता से भी छिपे हो सकते हैं।

पैरेटो के अनुसार, तर्कपूर्ण क्रिया उस समय होती है जब कर्ता तार्किक प्रयोगात्मक (logico-experimental) विधि का प्रयोग करता है। इसका अर्थ है कि लक्ष्य की प्राप्ति के लिये साधनों के चुनाव में कर्ता अनुभवसिद्ध (empirical) ज्ञान और वैध निष्कर्ष का प्रयोग करता है। कुछ प्रकार के सामाजिक व्यवहार दूसरी श्रेणी में आते हैं।

पैरेटो ने कहा कि अनेक कारणों से व्यवहार ग़ैर-तर्कपूर्ण हो सकता है : यदि व्यवहार के बारे में धारणायें ग़लत हैं या अनुभवसिद्ध नहीं है; यदि क्रिया के परिणामों पर विचार नहीं किया गया है; यदि क्रिया के प्रयोजन (motives) कर्ता नहीं पहचानता है; और यदि क्रियायें धारणाओं के अनुरूप नहीं हैं। इस प्रश्न

के उत्तर में कि ग़ैर-तर्कपूर्ण क्रियायें क्यों की जाती हैं, पैरेटो ने कुछ कारक बताये हैं : मूलप्रवृत्तियाँ (instincts), चालक (residues), स्वार्थ (interests), भावनायें (sentiments) और तर्कपूर्ण व्याख्या (derivations)।

पैरेटो ने कहा है कि शुद्ध मूलप्रवृत्ति, जो कि मानव क्रिया का मूलभूत स्रोत है, सामाजिक जीवन की अधिकतर बिशिष्ट विशेषताओं का कारण नहीं हो सकती। इसलिये, उसने चालकों और स्वार्थों की विभिन्न श्रेणियों को अधिक महत्वपूर्ण बताया। चालक मूलप्रवृत्तियों का परिवर्धित (modified) और परिष्कृत (refined) स्वरूप है जिनका अनुभव द्वारा निर्माण होता है : इस प्रकार, यौन एक मूल प्रवृत्ति है परन्तु रक्त सम्बन्धियों में यौन निषेध (incest taboo) और ब्रह्मचर्य चालक हैं। स्वार्थ या रुचि विशेष प्रकार के चालक हैं, वे सम्पत्ति, प्रतिष्ठा और शक्ति की प्राप्ति के प्रयोजन हैं। पैरेटो ने भावनाओं की धारणा का भी उपयोग किया है, जो काफी हद तक मूलप्रवृत्यात्मक होते हुये भी, मूलप्रवृत्तियों के काफी सुधरे हुये रूप हैं और इसलिये एक प्रकार के चालक हैं। तर्कपूर्ण व्याख्या (derivations or rationalizations) वे सिद्धान्त हैं जो व्यक्ति अपने कार्यों को उचित ठहराने के लिये देते हैं परन्तु जो व्यवहार के असली प्रयोजन को छुपाते हैं जो कहीं और होते हैं।

———

१० सामाजिक समूह (Social Groups)

व्यक्तियों के किसी संग्रह मात्र को ही हम एक समूह नहीं कह सकते हैं। किसी खेल के मैदान में खेलते हुये अनेक बच्चों को हम किसी एक समूह के सदस्य नहीं कह सकते जब तक कि वे एक दूसरे की उपस्थिति से सजग नहीं हो जाते और एक दूसरे के प्रति प्रतिक्रिया नहीं करने लगते। रेलगाड़ी के किसी डिब्बे में बैठे यात्री, या घर वापस जाने के लिये सड़क पर चलते हुये स्त्री पुरुषों का संग्रह समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक समूह नहीं कहा जा सकता। फिर भी, जब सहयात्री एक दूसरे पर गौर करते हैं और एक दूसरे को बैठने को जगह देने का प्रयास करते हैं, या किसी बाहरी व्यक्ति को कम्पार्टमेंट में घुसने से मिलकर रोकते हैं, या आपस में किसी विषय पर बहस करने लगते हैं तो हम उसे एक समूह कहते हैं। समूह तो केवल ऐसे व्यक्तियों के संग्रह को कहेंगे जो यह अनुभव करें कि वे एक समूह के सदस्य हैं और उनके व्यवहार इस भावना से प्रभावित हों। प्रातीतिक आधार, यही भावना ही, समूह का आधार है। वैषयिक (objective) आधार पर भी अक्सर बल दिया जाता है परन्तु उसको अनिवार्य नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिये, शारीरिक निकटता को एक आवश्यक आधार नहीं माना जा सकता यद्यपि इससे समूह-निर्माण में सहायता मिलती है क्योंकि इससे निरन्तर अन्तः क्रिया की सम्भावना बढ़ जाती है जो समूह के अस्तित्व के लिये आवश्यक है। परन्तु स्वयं अकेला न तो वह काफी है, न हर अवसर पर आवश्यक ही है। उदाहरण के लिये, किसी राजनीतिक दल या किसी जनता के सदस्य उसी भौगोलिक क्षेत्र में नहीं रहते, फिर भी वे यह अनुभव करते हैं कि वे एक ही समूह के सदस्य हैं।

इसी प्रकार, व्यवसाय, आय या पद की समानता भी समूह निर्माण के लिये आवश्यक नहीं है। जब समान व्यवसाय या आय के व्यक्ति एक दूसरे में रुचि लेने लगते हैं और वर्ग-चेतन (class conscious) हो जाते हैं, तभी यह कहा जा सकता है कि वे एक समूह के सदस्य हैं। शारीरिक निकटता की भांति व्यवसाय या

आय की समानता समूह-निर्माण में सहायक हो सकती है परन्तु अनिवार्य नहीं है। एक से व्यवसाय में लगे हुए व्यक्ति आवश्यक रूप से किसी समूह को नहीं बनाते हैं, और न आय अथवा व्यवसाय की असमानता व अन्तर समूह-निर्माण में कोई बाधा हैं। यह तो सामान्य हित व रुचियाँ हैं जो समूह-निर्माण का आधार होती हैं।

सामान्यत: कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं रहता। इसी सम्बन्ध में प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने कहा था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं (zoon politikon)। सन्यासियों, गड़रियों, लाइट हाउस के चौकीदारों, एकान्त स्थान में बन्द क़ैदियों और सम्भवत: कुछ दूसरे व्यक्तियों के अतिरिक्त कोई भी मानव काफी समय तक अकेला नहीं रहता। वास्तव में अपने साथी-मनुष्यों के साथ हमारा सम्बन्ध इतना आवश्यक है कि इसके बगैर जीवित रहना मुश्किल है, इसके अभाव में व्यक्तित्व का ह्रास शुरू हो जाता है और अपने समूहों से निकाला जाना सम्भवत: किसी भी व्यक्ति के लिए सबसे अधिक क्रूर दण्ड है।

क्योंकि अधिकतर हम लोग अकेले नहीं रहते, फलत: हम समूहों में, सब प्रकार के समूहों में, रहते हैं। हम में से प्रत्येक व्यक्ति किसी परिवार का सदस्य है अथवा रहा है। हम लोगों के मित्र होते हैं, कम से कम परिचित तो होते ही हैं। हम किसी स्थान में रहते हैं और इसलिए हमारी सड़क, हमारा पड़ोस, हमारा शहर, हमारा प्रान्त और हमारा देश कुछ प्रकार के समूहों का उदाहरण है। हमारा कोई व्यवसाय या पेशा होता है या कम से कम किसी प्रकार का उद्देश्य, कार्य या शौक होता है। इसके फलस्वरूप हम अक्सर ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क में रहते हैं जिनके समान उद्देश्य हैं और उनके साथ हममें कुछ सामान्य विशेषता होती है, चाहे हम उनसे मिलें या न मिलें। हर व्यक्ति जो कोई एक विशेष सामान्य पुस्तक पढ़ता है, एक समूह बनाता है। क्लास रूम एक समूह है और इसी प्रकार कारपोरेशन भी एक समूह है। यूनिवर्सिटी एक प्रकार का समूह है और कालेज के सब विद्यार्थी भी एक समूह हैं, परन्तु वे एक ही प्रकार के समूह नहीं हैं। वे सब लोग जो एक धर्म का पालन करते हैं, एक ही झण्डे को सलाम करते हैं, एक ही प्रजातीय उत्पत्ति वाले हैं, एक ही अखबार को पढ़ते हैं, आदि, किसी न किसी अर्थ में एक से समूहों के सदस्य हैं।*

इस प्रकार सामाजिक समूह से हम ऐसे व्यक्तियों की एक संख्या से अर्थ लगा सकते हैं जिनकी सामान्य रुचियां और स्वार्थ होती हैं, जो एक दूसरे को प्रेरित करते हैं, जो सामान्य रूप से स्वामिभक्त होते हैं और जो सामान्य कार्यों में भाग लेते हैं।† यह एक छोटे परिवार से लेकर, जिसमें माता-पिता और एक बच्चा हो या बच्चा न भी हो, करोड़ों व्यक्तियों से पूर्ण एक राष्ट्र तक फैला है।

* Bierstedt, The Social Order. P. 245.

† A social group may be thought of as a number of persons who

सामाजिक समूह का मूलभूत आधार दो या अधिक व्यक्तियों का एक-दूसरे के साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। ऐसे व्यक्ति से हाथ मिलाना जो कि अपनी ही भाषा बोलता हो प्रत्यक्ष सम्बन्ध का एक उदाहरण है। किसी व्यक्ति से टेलीफोन पर वार्तालाप करना एक प्रकार का अप्रत्यक्ष (indirect) सम्बन्ध है क्योंकि इसमें एक उपकरण (instrument) का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार किसी पत्रवाहक के द्वारा संवादों का आदान-प्रदान भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है क्योंकि इसमें एक तीसरे व्यक्ति को मध्य में रखकर सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

सामाजिक समूह से तात्पर्य व्यक्तियों के एक संग्रह से होता है जो कि एक दूसरे के प्रति अन्त:क्रिया (interact) करते हैं। यह चाहे कोई राजनैतिक पार्टी, क्रिकेट क्लब अथवा सामाजिक वर्ग (social class) हो, यह ऐसे व्यक्तियों से बनता है जिनमे कुछ सामान्य विशेषतायें पायी जाती हैं। वास्तव में किसी समूह का निर्माण किसी ऐसे स्वार्थ की पूर्ति के लिये होता है जो कि सब सदस्यों में सामान्य होता है।*

सामाजिक समूह के लिए यह आवश्यक है कि उसके सदस्यों में परस्पर सामाजिक सम्बन्ध हों। इन सामाजिक सम्बन्धों में दो बातें विशेष रूप से पायी जाती हैं—(अ) सदस्यों में थोड़ा बहुत पारस्परिक आदान-प्रदान (reciprocity) और (ब) थोड़ी बहुत पारस्परिक जागरूकता (mutual awareness)। इन्हीं बातों को दृष्टि में रखते हुए मैकाइवर ने कहा है कि समूह से तात्पर्य मनुष्यों के किसी भी संग्रह से हो सकता है जिनमें कि एक दूसरे के साथ सामाजिक सम्बन्ध होते हैं।** सैण्डरसन ने समूह का अर्थ बतलाते हुए कहा है कि यह दो या अधिक मनुष्यों का संग्रह है जिनमें मनोवैज्ञानिक अन्त:क्रिया का एक निश्चित ढंग पाया जाता है, यह अपने विशेष प्रकार के सामूहिक व्यवहार के कारण अपने सदस्यों और अधिकतर दूसरों के द्वारा भी एक वास्तविक वस्तु (दीर्घकालीन) समझा जाता है।†ऑगबर्न और

---

have some common interest, who are stimulating to each other who have a common loyalty, and who participate in common activities" —Bogardus, *Sociology*, P. 4.

* "Any group is constituted by the fact that there is some interest which holds its members together."–Edward Sapir : Groups, *Encyclopedia of Social Sciences.*

** "...by group we mean any collection of human beings who are brought into social relationships with one another." Mac Iver, R. M. and Page, C.H. *Society*, p.213.

† "...two or more people between whom there is an established pattern of psychological interaction; it is recognized as an entity by its own members and usually by others, because of its particular type of collective behaviour." Dwight Sanderson. *Dictionary of Sociology, edited by Fairchild.*

निमकाफ के अनुसार जब कभी दो या अधिक व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तो वे एक सामाजिक समूह का निर्माण करते हैं ।*

वास्तव में समाज में अनेक प्रकार के समूह निर्माण (group formation) होते हैं जिनमें से कुछ मनुष्यों के लिए अधिक महत्वपूर्ण होते हैं और कुछ कम । सबसे कम महत्वपूर्ण ऐसी वस्तुओं का संग्रह है जो कि एक दूसरे के अत्यन्त निकट है परन्तु जिनके बीच किसी भी प्रकार की अन्तःक्रिया (interplay) नहीं पायी जाती है । पेड़ों का एक समूह भी एक संग्रह (aggregation) है और किसी अस्पताल के सूतिका विभाग (maternity ward) में झूलों पर लेटे हुए नवजात शिशु भी एक संग्रह (aggregation) हैं । परन्तु इनको हम सामाजिक समूह नहीं कह सकते । किसी समूह के लिए, 'सामाजिक समूह' शब्दों का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब कि उनमें अन्तःप्रेरणा (interstimulation) तथा प्रतिक्रिया(response) पाया जाता हो ।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि समूह के सदस्यों में सामाजिक सम्पर्क (contact) होते हैं । समाजशास्त्र में सम्पर्क (contact) का अर्थ या तो यह होता है कि (१) व्यक्ति इस स्थिति में है कि वे एक दूसरे को प्रेरित (stimulate) कर सकें और एक दूसरे की प्रेरणा (stimuli) का अर्थपूर्ण ढंग से उत्तर दे सकें, अथवा (२) वे ऐसी स्थिति में हैं कि एक सामान्य प्रोत्साहक (common stimulus) का उत्तर (response) दे सकें । इसका परिणाम एक या दूसरे प्रकार की सामाजिक अन्तःक्रिया अथवा सामाजिक सम्बन्ध होता है ।

जब हम कहते हैं कि सम्पर्क (contact) के अन्दर अर्थपूर्ण प्रतिक्रिया (meaningful response) होती हैं तो उसका अर्थ कुछ सामान्य पिछला अनुभव अथवा ट्रेनिंग है । महज प्रेरणा से ही अर्थपूर्ण उत्तर की आशा नहीं की जा सकती चाहे व्यक्ति एक दूसरे के आमने-सामने ही क्यों न हों । कोई विदेशी जो कि अपने इर्द-गिर्द लोगों की भाषा नहीं जानता उसके लिये सामाजिक सम्बन्ध बनाना और सामूहिक जीवन में प्रविष्ट होना बहुत कठिन होता है । इसी प्रकार अंग्रेज उन लोगों के साथ सामाजिक क्रियाओं में भाग नहीं लेते हैं जिनके साथ उनका ठीक से परिचय नहीं कराया गया है और वे अनेक सम्बन्धों से वंचित रहते हैं । दूसरी ओर मुख के कुछ ऐसे भाव होते हैं, जैसे कि मुस्कान, जिसको कि सार्वभौमिक रूप से (universally) मित्रता का द्योतक समझा जाता है, और कुछ अवसरों पर ऐसे साधनों के द्वारा भी सामूहिक सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं जैसे कि अनेक सभ्य

---

* "Whenever two or more individuals come together and influence one another, they may be said to constitute a social group." --Ogburn, W. F,, and Nimkoff, M.F. *A Handbook of Sociology.* p. 172.

लोगों के साथ हुआ है जो कि जंगलों में खो गये और आदिवासियों के द्वारा बनाये गये और जो फिर महीनों, यहाँ तक कि सालों, आदिवासियों के समुदायों में रहे। ऐसी सब घटनाओं में 'अर्थपूर्णता' (meaningfulness) का अर्थ सामान्य ज्ञान (common understanding) का कोई आधार होता है। और यही सामान्य बोध का आधार ही सभी सामाजिक सम्बन्धों के लिये मूलभूत (basic) कारक होता है।

एक बार अर्थपूर्ण स्तर पर अन्तःक्रिया स्थापित हो जाने पर समूह में सामाजिक सम्बन्ध हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि समूह के सदस्य किसी सामान्य समझौते (common understanding) से संयुक्त (united) हैं। सामान्य समझौते का फल सामान्य स्वार्थ (common interest or interests) होता है।

न्यूकोम्ब (Newcomb) ने कहा है कि दो तत्व सार्वभौमिक रूप से समूह में पाये जाते हैं। पहले, समूह में केवल ऐसे व्यक्ति होते हैं जो किसी वस्तु के सम्बन्ध में कुछ व्यवहार-आदर्शों और मूल्यों का सामान्य रूप से पालन करते हैं। दूसरे, इन सदस्यों की सामाजिक क्रियायें अन्तःसम्बन्धित होती हैं। न्यूकोम्ब के शब्दों में : "इस प्रकार, समूह में दो या अधिक व्यक्ति होते हैं जो किन्हीं बातों के सम्बन्ध में सामान्य व्यवहार आदर्श रखते हैं और जिनकी सामाजिक क्रियायें एक दूसरे से गुंथी हुई हैं।"*

ऊपर सब बातों पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सामाजिक समूह के निम्नलिखित तत्व हैं।

(१) समूह दो या अधिक व्यक्तियों का संग्रह है।

(२) इन व्यक्तियों में सामाजिक सम्बन्ध होते हैं जो कि अन्तःप्रेरणा (inter stimulation) और प्रतिक्रिया (response) से उत्पन्न होते हैं।

(३) इन व्यक्तियों के बीच एक सामान्य समझौता (common understanding) होता है।

(४) सामान्य समझौते के कारण उनमें सामान्य स्वार्थ (common interest) भी पाये जाते है।

(५) सामाजिक सम्बन्ध के लिए पारस्परिक आदान-प्रदान (reciprocity) भी सदस्यों में पाया जाता है।

(६) समूह के सदस्यों में पारस्परिक जागरूकता (mutual awareness) होती है।

(७) सदस्य सामान्य व्यवहार-आदर्शों (norms) और मूल्यों (values) का पालन करते हैं।

---

* "Thus a group consists of two or more persons who share norms about certain things with one another and whose social roles are inter-locking."–Newcomb.

(८) सदस्यों की सामाजिक क्रियायें (roles) अन्तःसम्बन्धित होती हैं।

(९) समूह अपने सदस्यों के सामूहिक व्यवहार (collective behaviour) के कारण एक एन्टिटी (entity) समझा जाता है, जैसा कि सैण्डरसन की परिभाषा से स्पष्ट है।

फिचटर* ने कहा है कि समूह की परिभाषा तभी पूर्ण होगी जब कि उसमें निम्नलिखित बातें हों :—

(१) एक समूह कहलाने वाली कोई भी सामाजिक इकाई इस अर्थ में अपने सदस्यों और बाहरी व्यक्तियों के द्वारा पहचानी जानी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से हर दूसरे सदस्य या गैर सदस्य से परिचित हो। गुप्त समाज (secret societies) आदि की सदस्यता भी गुप्त रखी जाती है। किसी भी विशाल नगर में समूहों की संख्या इतनी अधिक होती है कि उन सब के बारे में व्यक्तिगत ज्ञान प्राप्त करना किसी भी व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं है परन्तु उसके बारे में कुछ न कुछ जाना अवश्य जा सकता है।

(२) समूह का इस अर्थ में एक सामाजिक ढाँचा होता है। उनके प्रत्येक अंग या व्यक्ति की दूसरी व्यक्तियों के सम्बन्ध में एक स्थिति होती है। इस प्रकार सामाजिक स्तरण (social stratification) या सामाजिक पद की श्रेणी (ranking) छोटे से छोटे अनौपचारिक समूह में भी पायी जाती है।

(३) समूह में व्यक्तियों के अलग-अलग कार्य होते हैं, व्यक्ति इस प्रकार समूह में भाग लेते हैं। जब सदस्य अपना कार्य करना बन्द कर देते हैं, समूह के अस्तित्व का ही अन्त हो जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ऐसा समूह अविचारणीय है जिसमें एक निश्चित प्रकार का वैयक्तिक कार्य नहीं होता।

(४) पारस्परिक आदान-प्रदान के सम्बन्ध समूह के लिए आवश्यक हैं। दूसरे शब्दों में, समूह के सदस्यों के बीच सम्पर्क और वार्ता होनी चाहिये।

(५) प्रत्येक समूह के कुछ व्यवहार-आदर्श (norms) होते हैं जो कि यह निश्चित करते हैं कि किस प्रकार के कार्य किये जायेंगे। इनके लिए लिखित नियम होना आवश्यक नहीं है, परन्तु वे व्यवहार के ऐसे प्रतिमान (patterns) होते हैं जिन्हें सदस्य समझते और पालन करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति का व्यवहार आवश्यक रूप से परिवर्तित (modify) किया जाता है।

(६) समूह के सदस्यों के कुछ सामान्य स्वार्थ और मूल्य होते हैं। यह इस बात से देखा जा सकता है कि मूल्यों में संघर्ष होने पर समूह टूट जाता है।

---

* Fichter, Sociology p. 109.

(७) सामूहिक क्रिया का लक्ष्य किन्हीं सामाजिक उद्देश्यों की ओर होना चाहिये। इससे इस प्रश्न का उत्तर भी मिल जाता है कि समूह किस कारण पाये जाते हैं।

(८) समूह में थोड़ी बहुत स्थिरता और स्थायित्व होना आवश्यक है।

उपरोक्त सब विशेषताओं को एक साथ लेते हुए, फिचटर ने सामाजिक समूह की निम्नलिखित परिभाषा दी है—'समूह ऐसे सामाजिक व्यक्तियों की एक पहचानी जाने वाली, ढाँचेपूर्ण, निरन्तर सामूहिकता है जो सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सामाजिक व्यवहार-आदर्शों, स्वार्थों और मूल्यों के अनुसार पारस्परिक आदान-प्रदान के कार्य करते हैं।'*

सामाजिक सम्बन्ध होने का आधार

सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होने के अनेक आधार हो सकते हैं। यहाँ हम सॉरोकिन, जिमरमैन और गैलपिन द्वारा दिये गये आधारों की ही संक्षिप्त सूची दे रहे हैं।†

(१) रक्त सम्बन्ध, तथा शारीरिक या कथित पूर्वजों से उत्पत्ति।
(२) विवाह।
(३) धर्म या जादू टोने में समान विश्वास।
(४) सामान्य भाषा।
(५) सामान्य रीति-रिवाज तथा रूढ़ियाँ।
(६) एक ही भूमि का प्रयोग या स्वामित्व।
(७) पड़ोस।
(८) सामान्य उत्तरदायित्व।
(९) सामान्य व्यवसाय।
(१०) एक ही स्वामी के आधीन होना।
(११) एक सामाजिक संस्था से सम्बन्ध।
(१२) पारस्परिक सहयोग।
(१३) सामान्य शत्रु।
(१४) साथ रहना और साथ कार्य करना।

---

* "A group is an identifiable structure, continuing collectivity of social persons who enact reciporcal roles according to social norms, interests and values in the pursuit of common goals"
—Fichter, p. 110

† Sorokin, Zimmerman, Galpin : *A Systematic Source Book in Rural Sociology*. Vol. I pp. 302-8.

समूह दृढ़ता, सामूहिक क्रिया में भाग लेना और नैतिक स्तर
(Group integration, participation and morale)

किसी भी समूह की दृढ़ता मुख्यतः सदस्यों की अन्तःक्रिया की निरन्तरता, विविधता और उद्वेगात्मक विशेषताओं पर निर्भर करती है। जब कभी किसी परिवार या धार्मिक समूह में एकता और दृढ़ता होती है तो सामान्यतः वह इसलिए होती है कि सदस्य अनेक सामान्य स्वार्थों से बँधे हैं, एक दूसरे के साथ उनके सम्बन्ध अविराम होते हैं और उनकी अन्तःक्रिया की उद्वेगात्मक विशेषता से नैतिकता, स्वामिभक्ति और उत्साह प्रकट होता है। आदिवासी समाजों में समूह-दृढ़ता बिना किसी योजना के विकसित हुई क्योंकि व्यक्ति परिवारों और गोत्र सम्बन्धों में जन्म लेते थे, जिसमें उनके सब सामाजिक अनुभव छिपे थे, परन्तु आधुनिक जीवन में अधिक विशिष्ट और क्षणिक सम्बन्धों के कारण एकता जानबूझ कर किये गये प्रयासों के कारण बनाई जाती है।

सदरलैण्ड के विचार में, सामान्य रूप से, नैतिक स्तर या उद्वेगात्मक एकता उस समय सबसे अधिक होती है जबकि (१) सदस्य यह अनुभव करते हैं कि समूह का अस्तित्व बनाये रखना उनके व्यक्तिगत कल्याण के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है, (२) समूह के उद्देश्यों की पूर्ति का ज्ञान व अनुभव प्रत्येक सदस्य को होता है, (३) सदस्यों के सम्बन्ध घनिष्ठ और व्यक्तिगत होते हैं जिससे वे निस्संकोच भाव से एक दूसरे के लिये प्रशंसा और उत्साहपूर्ण शब्दों का प्रयोग करते हैं; (४) समूह का उद्देश्य अत्यन्त सरलता से पूरा नहीं होता बल्कि उसके लिये सामूहिक प्रयास की आवश्यकता होती है, (५) समूह के सामान्य स्वार्थों को सदस्यों के सामने संगीत, संस्कार, उपाधियों, झण्डों, नारों, पदकों रूपी प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और जब (६) सदस्य अपने समूह के महत्वपूर्ण कार्यों की परम्परा से परिचित होकर अपने समूह के महत्व और श्रेष्ठता को समझते हैं।

समूह का ढांचा (The structure of a group)

सदरलैण्ड कहता है कि सामाजिक ढांचे से समूह जीवन के अधिक स्थाई पहलुओं से मतलब है। समूह की अन्तःक्रिया के इन अधिक औपचारिक (formal) और व्यक्तिगत पहलुओं के अन्तर्गत निम्न बातें आती हैं: (१) विभिन्न सदस्यों में उत्तरदायित्व बाँटने की एक योजना, (२) समूह में नये सदस्यों का प्रवेश करने और उन्हें अपनी परम्पराओं और आदर्शों को हस्तान्तरित करने के कुछ साधन, (३) सदस्यों के व्यवहारों को नियन्त्रित और एक से स्तर के बनाने के कुछ साधन (लोक-रीतियाँ, रूढ़ियाँ या कानून) और (४) समाज में दूसरे समूहों के सम्बन्ध में अपने समूह का पद बनाये रखने या सुधारने की कोई व्यवस्था।

समूहों का वर्गीकरण करते समय हमारे लिये यही उचित होगा कि हम व्यक्तियों के स्वार्थों, शारीरिक विशेषताओं, निवास स्थान या भू-भाग को और समूह की स्थाई और अस्थाई प्रकृति को भी दृष्टि में रक्खें। इन्हीं सब बातों को दृष्टि में रखते हुये गिलिन और गिलिन ने निम्नलिखित ढंग से समूहों का वर्गीकरण किया है :

(१) **रक्त सम्बन्धी समूह**
- (अ) परिवार
- (ब) जाति

(२) **शारीरिक विशेषता सम्बन्धी समूह**
- (अ) लिंग
- (ब) आयु
- (स) प्रजाति

(३) **क्षेत्रीय समूह**
- (अ) जनजाति
- (ब) राज्य
- (स) राष्ट्र

(४) **अस्थाई समूह**
- (अ) भीड़
- (ब) श्रोता समूह

(५) **स्थाई समूह**
- (अ) खानाबदोश जत्थे
- (ब) गाँव
- (स) कस्बे और शहर

(६) **साँस्कृतिक समूह**
- (अ) आर्थिक समूह
- (ब) धार्मिक समूह
- (स) शिक्षा-सम्बन्धी समूह
- (द) राजनीतिक समूह
- (प) मनोरंजनात्मक समूह, इत्यादि

अन्तःसमूह और वाह्य-समूह
(In-group and Out-group)

In-group शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम समनर (Sumner) ने अपनी 'Folk

ways' नामक पुस्तक में सन् १९०७ ईसवी में किया था। तबसे इसका प्रयोग समस्त समाजशास्त्रियों द्वारा होता रहा है।

मनुष्य में एक इच्छा और प्रवृत्ति होती है कि वह सब वस्तुओं को अच्छा या बुरा समझे। इस प्रवृत्ति का सबसे सुन्दर उदाहरण हमें अन्तःसमूह और वाह्य-समूह के भेद में मिलता है। अन्तःसमूह और वाह्य-समूह में सम्बन्ध ऐसे स्थानों व अवसरों पर पाये जाते हैं जहाँ समूहों में एक दूसरे के प्रति अपरिचितता (strangeness) अथवा शत्रुता की भावना होती है। ऐसी परिस्थितियों में एक ही समूह के सब सदस्य एक अन्तःसमूह का निर्माण करते हैं।

यंग-मैक (Young-Mack) ने कहा है कि अन्तःसमूह एक ऐसी समिति है—प्राथमिक अथवा द्वैतीयक—जिसके प्रति हम परस्पर-अधीनता, दृढ़ता (solidarity), वफादारी, मित्रता और सहयोग अनुभव करते हों। इसकी विशेषता 'हम-भावना' है और इसके सदस्य इस प्रकार के उद्गार प्रकट करते हैं जैसे 'हम यह विश्वास करते हैं', 'हम यह अनुभव करते हैं', 'हम ऐसा करते हैं', 'हम इस समिति के सदस्य हैं', आदि। अपने समूह के सदस्यों के प्रति हमारे कुछ निश्चित उत्तरदायित्व होते हैं, विशेषकर किसी गम्भीर स्थिति में जो उनके और हमारे लिये खतरनाक हो सकती हैं। हम उनकी रक्षा करते हैं जैसे वे भी हमारी रक्षा करते हैं। अन्तःसमूह में हम स्नेह और सहानुभूति की गहनतम भावनाओं को प्रकट करते हैं। हम इन सदस्यों के बीच में आराम और संतोष का अनुभव करते हैं। हम उनके कार्य करने और सोचने के ढंग से परिचित होते हैं, और वे हमारे ढंग से। हम उनके इशारों को समझते हैं, उनके शब्द हमारे शब्द होते हैं। जिस हद तक किसी व्यक्ति का जीवन किसी अन्तःसमूह से सम्बद्ध होता है वह इस बात पर निर्भर करता है कि वह समूह उस व्यक्ति की मुख्य आवश्यकताओं और स्वार्थों की कहाँ तक पूर्ति करता है।

अन्तःसमूह की विशेषता इस बात में है कि हम ऐसे व्यक्ति के साथ दयालु व्यवहार करते हैं जिसे हम अपने समूह का सदस्य समझते हैं। ऐसे व्यक्ति के साथ हम सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने के लिये सदा तैयार रहते हैं अथवा उसके साथ अपमान अनुभव करते हैं। वाह्य-समूह के सदस्य के प्रति हमारी मनोवृत्तियाँ (attitudes) कम सौजन्यपूर्ण (favourable) होती हैं, जैसे कि उदासीनता (indifference), सन्देह (suspicion), अथवा घृणा (scorn)। इसका कारण यह है कि वह हममें से एक नहीं है। किसी व्यक्ति के रूप में उससे व्यवहार करने के बजाय वह उससे एक समूह के प्रतिनिधि के रूप में बात करते हैं। हम उसे मुसलमान, ईसाई, अछूत, यहूदी, हब्शी आदि की श्रेणी (category) में रखते हैं, जैसी स्थिति होती है। वास्तव में हम उनके लिये कम आदरपूर्ण शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं, जैसे कि 'गन्दा विदेशी', 'उचक्का', 'म्लेच्छ' आदि। ग्रीक ऐसे सब लोगों को जंगली

(barbarians)कहते थे जो कि ग्रीक नहीं थे, और प्राचीन यहूदी भी इस भावनावश अन्य लोगों को जैण्टाइल (Gentile) कहते थे। इस प्रकार सदस्यों और गैरसदस्यों में भेद करना और उनके साथ भिन्न प्रकार के व्यवहार करना एक समूह विशेषता (group characteristic) हो जाती है।

वह पक्षपाती भावना जो कि व्यक्तियों में अपने समूह के लिये होती है Ethnocentrism कही जाती है। मनुष्यों में यह प्रवृत्ति होती हैं कि वे अपनी संस्कृति को अन्य संस्कृतियों (cultures) से अच्छी कहें, और अपने समुदाय (community) को 'भगवान का अपना देश' (God's own country) बतलायें। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि वे समूह जिनके साथ कोई व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति करता है (identifies himself) वे उसके अन्त:समूह (ingroups) होते हैं, जैसे कि परिवार अथवा वन्यजाति (tribe) अथवा योनि (sex) अथवा कालेज अथवा व्यवसाय अथवा धर्म, जिसका कारण समानता की उसकी जागरूकता (awareness of likeness) अथवा किस्म की चेतना (consciousness of kind) है। अन्त: समूह की मनोवृत्तियों (attitudes) में थोड़ी सहानुभूति और समूह के अन्य सदस्यों के प्रति लगाव (attachment) पाया जाता है।

व्यक्ति 'हम समूह' (we group) या अंत:समूह को 'मेरा-समूह', 'वह समूह जिसके सदस्यों को मैं जानता हूँ, जिसके उद्देश्य मेरे उद्देश्य हैं, जिसकी परम्पराओं का मैं आदर करता हूँ' समझता है जबकि इसके विपरीत वाह्य-समूह या दूसरों के समूह के सम्बन्ध में वह यह सोचता है कि 'उसके सदस्य के लिये अपरिचित, विदेशी और कभी-कभी दुश्मन हैं क्योंकि उनकी परम्परायें और उद्देश्य भिन्न हैं और कभी-कभी मेरे समूह के विरोध में हैं।' भिन्नता की भावना संघर्ष के काल में बढ़ जाती है। युद्ध काल में किसी राष्ट्र की 'हम भावना' उसके निवासियों में वाह्य-समूह के प्रति पक्षपात (prejudice) की भावना जागृत कर देती है। किसी व्यक्ति की अंत: समूह सम्बन्धी मनोवृत्ति इस बात से भी जाँची जा सकती है कि वह समूह के प्रति उत्तरदायित्वों को कहाँ तक मानता है।

वाह्य-समूह व्यक्तियों की ऐसी समिति है जिसके प्रति हम नापसन्दगी, स्पर्धा, हिंसा, भय, घृणा, बचाव (avoidance), अरुचि (disgust) की भावना अनुभव करते हैं। यह ऐसा समूह है जिसके प्रति व्यक्ति वफादारी, पारस्परिक सहायता, सहयोग या सहानुभूति की भावना अनुभव नहीं करता। इसके विपरीत, वह वाह्य-समूह के सदस्यों के विरुद्ध-पूर्ण धारणा रखता (prejudiced) है। हम कहते हैं कि सड़क के उस पार रहने वाला परिवार हमारे परिवार से हीन है। दूसरे मोहल्ले की अपेक्षा हमारा पड़ोस अच्छा है। हमारा धर्म या प्रजाति दूसरे धर्म या प्रजातियों से अच्छा है। व्यक्ति का विरोध, पक्षपात, घृणा की भावना सामान्यत:

वाह्य-समूह पर केन्द्रित होती है। ट्रेड यूनियन एम्पलायर्स (employers) एसोसिएशन का विरोध करती है। यूनियन के सदस्यों के प्रति व्यक्ति परस्पर दृढ़ता (solidarity), वफादारी, मददगारी, और सहयोग की भावना अनुभव करता है। मालिक के विरुद्ध अत्यधिक कटुता और घृणा होती है। इसी प्रकार, विरोधी कला-समूह एक दूसरे की कला की आलोचना और उपहास करते हैं।

वाह्य-समूह की मनोवृत्तियों की विशेषता अन्तर की भावना (feeling of difference) होती है और कभी-कभी उसमें विरोध (antagonism) की भावना भी पाई जाती है। अनेक आदिवासी समाजों में स्त्रियों को संगठनों से अलग रखा जाता है, उनको सदस्य नहीं बनाया जाता, जैसे कि धार्मिक मान्यतायें (religious cults) तथा लड़ने वाले समूह। मनुष्यों के इन समूहों को पुरुषों के लिए अन्तःसमूह और स्त्रियों के लिए वाह्य-समूह कहा जा सकता है। इसी प्रकार, हमारे समाज में भी अनेक समूह होते हैं जो कि एक व्यक्ति के लिए अन्तः समूह तो दूसरे व्यक्ति के लिए वाह्य समूह होते हैं।

यहाँ यह याद रखना जरूरी है कि यह आवश्यक नहीं है कि जितने अन्तःसमूहों के हम सदस्य होते हैं उनमें से प्रत्येक के साथ एक वाह्य समूह होना भी जरूरी हो। इसके अतिरिक्त, यदि हम किसी समूह के सदस्य नहीं हैं तो आवश्यक रूप से वह हमारे लिए वाह्य-समूह नहीं हो जाता। ऐसे अनेक समूह हैं जिनके प्रति हम केवल उदासीन (indifferent) ही होते हैं, न कि उनके प्रति घृणा की भावना रखते हैं।

प्राथमिक और द्वैतीयक समूह
(Primary and Secondary Groups)

मानव समूहों के वर्गीकरण में अत्यन्त महत्वपूर्ण और विस्तृत भेदों में एक भेद एक तरफ छोटे और घनिष्ठ समूहों में और दूसरी तरफ बड़े और अव्यक्तिगत (impersonal) समूह में किया जाता है। अमेरिकन समाजशास्त्री चार्ल्स कूले के प्राथमिक (primary) तथा द्वैतीयक (secondary) समूहों के भेद को स्वीकार करते हैं। योरोप के समाजशास्त्रियों ने इसी से मिलते-जुलते हुए और जर्मन समाज शास्त्री फर्डिनेण्ड टूनीज (Ferdinand Tonnies) के बताये हुए जेमीनशेफ्ट (Gemeinschaft) अथवा निकट सामूहिक सम्बन्ध और गैसलशेफ्ट (Geselschaft) अथवा संगठित अव्यक्तिगत के भेद को स्वीकार किया है।

प्राथमिक समूह (Primary Group)—इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग चार्ल्स कूले (Charles Cooley) ने १९०१ में किया था। समाजशास्त्रीय साहित्य में परिवार, बच्चों के खेलकूद के समूह और पड़ोस जैसे समूहों का वर्णन करने के लिए कूले ने इस शब्द का प्रयोग किया। उसने इन समूहों को इसलिए प्राथमिक

कहा क्योंकि समय और महत्व को देखते हुए यह सर्वप्रथम है। यह शिशुकाल और बाल्यावस्था के प्रारम्भिक काल के समूह हैं जिनका व्यक्तित्व के विकास में बड़ा प्रभाव है। कूले ने ठीक ही इन्हें 'मानव स्वभाव की वृक्षारोपिणी' (nursery of human nature) कहा है। यह बच्चे को स्वामिभक्ति, ईमानदारी, आकाँक्षा और सहानुभूति जैसी भावनायें प्रदान करते हैं जिससे वह सच्चा मानव बनता है।

चार्ल्स कूले ने प्राथमिक समूहों की निम्नलिखित परिभाषा दी है :—

"प्राथमिक समूहों से मेरा तात्पर्य उन समूहों से है जिनकी विशेषता घनिष्ठ आमने-सामने के सम्बन्ध और सहयोग होती है। वे प्राथमिक अनेक अर्थों में हैं, परन्तु मुख्यतः इस अर्थ में कि व्यक्ति के सामाजिक स्वभाव व आदर्शों के निर्माण में वे मौलिक हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, घनिष्ठ सम्बन्धों का परिणाम अनेक व्यक्तियों का एक सामान्य पूर्णता में घुल-मिल जाना होता है, जिससे कि व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व, कम से कम अनेक उद्देश्यों के लिए, समूह का सामान्य जीवन और उद्देश्य बन जाता है। सम्भवतः इस पूर्णता का वर्णन करने के लिये सबसे सरल ढंग यह है कि इसे एक 'हम' कहा जाये, इसके अन्दर इस प्रकार की सहानुभूति तथा पारस्परिक अभिव्यक्ति पाई जाती है जिसके लिये 'हम' ही स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। व्यक्ति सब लोगों की भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए रहता है और उन्हीं भावनाओं में अपनी इच्छाओं के मुख्य उद्देश्यों को पाता है।"*

प्राथमिक समूह अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि, जैसा कि चार्ल्स कूले ने कहा है, यह व्यक्ति के अनुभव में सर्वप्रथम है और समाज के विकास में भी सर्वप्रथम है। जन्म के पश्चात् थोड़े दिनों तक कोई भी मानव किसी बड़े व्यक्ति अथवा किन्हीं बड़े व्यक्तियों की घनिष्ठ तथा लगातार देख-रेख के बगैर जीवित नहीं रह सकता।

* By primary groups I mean those characterised by intimate face to-face association and co-operation. They are primary in several senses, but chiefly in that they are fundamental in forming the social nature and ideals of the individual. The result of intimate association, psychologically, is a certain fusion of individualities in a common whole, so that one's very self for many purposes at least, is the common life and purpose of the group. Perhaps the simplest way of describing the wholeness is by saying that it is a "we", it involves the sort of sympathy and mutual identification for which "we" is the natural expression. One lives in the feeling of the whole and finds chief aims of his will in that feeling."

–C.H. Cooley ; *Social Organization*, p. 32.

मानव शिशु अपने जीवन के कुछ प्रथम वर्ष किसी प्राथमिक समूह में ही व्यतीत करता है जिसमें कम से कम वह और उसकी माँ या उसके स्थान में कोई और व्यक्ति होता है। इस प्रकार, व्यक्ति का प्रथम अनुभव परिवार से होता है जो कि एक प्राथमिक समूह है। सामाजिक विकास में भी इसकी देन सर्वप्रथम है क्योंकि सर्वप्रथम शिक्षा परिवार से ही प्राप्त होती है। यहीं समाजीकरण (socialization) शुरू होता है। इसलिये सभी समाजों में सर्वप्रथम समूह परिवार ही होता है जिसमें माता और पिता दोनों होते हैं।

चार्ल्स कूले ने सबसे महत्वपूर्ण तीन प्राथमिक समूह बतलाये हैं— (१) परिवार (family), (२) बच्चों का क्रीड़ा समूह (playgroup of children) और (३) पड़ोस या वयस्कों का सामुदायिक समूह (neighbourhood or community group of elders)। यह समूह सार्वभौमिक (universal) है जो सभी कालों (times) और विकास की सभी अवस्थाओं (stages) में पाये गये हैं। कूले के अनुसार, इसीलिए ये उन बातों का मुख्य आधार भी हैं जो कि सार्वभौमिक रूप से (universally) मानव स्वभाव और मानव-आदर्शों में पाई जाती हैं।

कूले ने कहा कि यह समूह इसलिये प्रभावशाली हैं क्योंकि यह स्वभाव से व्यक्तिगत (personal) होते हैं। नियम के रूप में, इनकी सबसे बड़ी विशेषता प्रत्यक्ष आमने-सामने का सम्बन्ध (face-to-face association) है। हम अपने मित्रों को देखते हैं, उनसे बातें करते हैं, अपनी कोहनियाँ (elbows) रगड़ते हैं। फिर भी, इस प्रकार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्राथमिक समूहों के लिये अनिवार्य नहीं है। फैरिस (Faris) ने कहा है कि इसका अनिवार्य गुण इसकी घनिष्ठता है। स्वयं कूले ने यह स्वीकार किया कि यदि कोई अनिवार्य वस्तु है तो वह एक प्रकार की घनिष्ठता और व्यक्तित्वों का घुलमिल जाना है (......the only essential thing......is a certain intimacy and fusion of individualities)। किन्हीं दो व्यक्तियों के लिए जो कि कभी भी एक दूसरे से न मिले हों, यह सम्भव है कि वे पत्र व्यवहार के द्वारा परस्पर ऐसे सम्बन्ध स्थापित कर लें जिनमें कि प्राथमिक समूह के अनुभवों की सभी बातें हों। रॉबर्ट ब्राउनिग (Robert Browning) तथा एलिजाबेथ बैरेट (Elizabeth Barrert) में एक दूसरे के प्रति प्रेम (romantic love) एक दूसरे की प्रकाशित कविताओं के द्वारा ही उत्पन्न हुआ।

चार्ल्स कूले ने प्राथमिक समूह के सम्बन्ध में कहा है कि यह एक ऐसा छोटा समूह है जिसमें दो से लेकर सम्भवतः पचास या साठ व्यक्ति होते हैं जो कि बिना किसी एक विशेष उद्देश्य के एक दूसरे के साथ दीर्घकाल तक आमने-सामने के सम्बन्ध (face-to-face association) में रहते हैं। इसकी एक यह विशेषता भी है कि इसके

सदस्य व्यक्तियों के रूप में एक दूसरे से मिलते हैं, न कि किसी संगठन के एजेण्ट, कर्मचारी (employees) आदि के रूप में।

प्राथमिक समूहों की वाह्य विशेषतायें
(External Characteristics of Primary Groups)

अपनी Introductory Sociology नामक पुस्तक में चार्ल्स कूले ने प्राथमिक समूहों की निम्नलिखित विशेषतायें बतायी हैं :—

(१) आमने-सामने के सम्बन्ध (face-to face association)

(२) सम्बन्धों का विशिष्ट चरित्र न होना (The unspecialized character of the association)

(३) अन्य समूहों की अपेक्षा अधिक स्थायित्व (Relative permanence)

(४) सदस्यों की कम संख्या (The small number of persons involved)

(५) सदस्यों में अधिक घनिष्ठता (The relative intimacy among the participants)

(१) **आमने-सामने के सम्बन्ध**—प्राथमिक समूहों की सबसे पहली विशेषता यह है कि उसके सदस्यों में आमने-सामने के सम्बन्ध (face-to-face-association) होते हैं। वास्तव में घनिष्ठता बढ़ाने के लिये यह अत्यावश्यक है कि लोग एक दूसरे से निकट सम्बन्ध रखें और इसकी सबसे अधिक सम्भावना आमने-सामने के सम्बन्धों में ही होती है। एक दूसरे को देखने और आपस में बात करने से विचारों और भावनाओं का आदान-प्रदान सरल हो जाता है। इससे आपस में एक दूसरे के प्रति ज्ञान (understanding) प्राप्त होता है और इससे घनिष्ठता बढ़ाने में सहायता मिलती है।

(२) **सम्बन्धों का विशिष्ट चरित्र नहीं होता** : इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इन समूहों का एक विशेष उद्देश्य नहीं होता। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि ये समूह अपने आप जन्म लेते हैं (spontaneous formation) अथवा इन्हें जान-बूझ कर बनाया नहीं जाता है। इस बात का निश्चय नहीं है कि यह कौन से विशेष कार्य करेगा। इसके असीमित और अनेक कार्य होते हैं।

(३) **अन्य समूहों की अपेक्षा अधिक स्थायित्व** : प्राथमिक समूह अन्य समूहों की अपेक्षा अधिक दिन स्थापित रहते हैं। सत्य तो यह है कि जानबूझ कर बनाये गये संघ या समूह उद्देश्य की पूर्ति के पश्चात् कभी भी भंग हो सकते हैं। परन्तु प्राथमिक समूहों के किसी विशेष उद्देश्य के न होने से यह अन्य समूहों की अपेक्षा अधिक दीर्घ-जीवी होते हैं। वास्तव में बार-बार मिलने से और सम्बन्धों की गहराई (intensity)

से ही घनिष्ठता (intimacy) का जन्म होता है, प्राथमिक समूहों के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध भी अधिक लम्बे होते हैं। जितने अधिक समय तक समूह एक साथ रहता है उतने ही अधिक और गहरे सम्बन्ध उसके सदस्यों में विकसित होते हैं। यही कारण है कि प्राथमिक समूह के सदस्यों के सम्बन्ध घनिष्ठ होते हैं।

(४) **सदस्यों की कम संख्या** : ऊपर कहा जा चुका है कि कूले के अनुसार प्राथमिक समूहों में दो से लेकर लगभग पचास या साठ सदस्य होते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि समूह छोटा होता है, सदस्यों की संख्या कम होती है। राष्ट्र जैसे द्वैतीयक समूहों के सदस्यों की कोई सीमा नहीं होती परन्तु प्राथमिक समूहों की सदस्यता सीमित होती है। डेविस (Davis) ने Human Society नामक पुस्तक में लिखा है कि आमने-सामने के समूह को एक छोटा समूह होना चाहिये क्योंकि यह सम्भव है कि एक ही समय में अनेक व्यक्तियों के साथ बुद्धिमान(sensible) सम्बन्ध स्थापित किये जा सकें। छोटे समूहों में सदस्य एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जान सकते हैं और समय पड़ने पर सामूहिक निर्णयों (group decisions) में भाग ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे एक सामूहिक चरित्र (group character) तथा एक सामूहिक घनिष्ठता (group intimacy) अधिक जल्दी विकसित कर सकते हैं। यदि समय बड़ा होगा तो सदस्यों में पारस्परिक जान पहचान बनाने के लिये अधिक समय की आवश्यकता होगी।

(५) **सदस्यों में घनिष्ठता** : उपरोक्त बातों से हमें यह पता चलता है कि प्राथमिक समूह छोटे, व्यक्तिगत और दीर्घजीवी होते हैं। लगातार काफ़ी समय तक किसी से मिलते-जुलते रहने से घनिष्ठता का विकसित होना स्वाभाविक ही है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके सदस्य व्यक्तियों के रूप में मिलते हैं, न कि विशिष्ट मानव अणु (specialized human atoms) के रूप में।*

इन पांच विशेषताओं के साथ एक छठी विशेषता भी जोड़ी जा सकती है— स्वत: जन्म (spontaneous formation)। प्राथमिक समूहों का जन्म अपने आप होता है। इन्हें जानबूझ कर बनाया नहीं जाता है। किम्बाल यंग† (Kimball Young) ने कहा है कि व्यक्तियों के ऐसे संघ की विशेषता यह है कि यह ऐसे क्षेत्र में अचेतन रूप से विकसित होते हैं (unconscious growth) तथा स्वत: जन्म (spontaneous formation) लेते हैं जहाँ कि एक से रक्त और संस्कृति (homogeneous blood and culture) के लोग रहते हैं। इन समूहों के प्रभाव में, किम्बाल यंग के अनुसार, मूल अन्त:क्रियाओं को अनुभव किया जाता है और संस्कृति की

* Charles Cooley, *Social Organization.*

† *Personality and Problem of its Adjustment.*

विशेषताओं, विशेषकर नैतिकता (moral conduct) को बढ़ाते हुए लड़के अथवा लड़की के ऊपर अंकित (impress) किया जाता है।

किम्बाल यंग ने कहा है यह प्राथमिक समूह मौलिक (fundamental) मानव संघों के प्रतिनिधि हैं। यह सम्भवतः उतने ही पुराने हैं जितना कि मनुष्य का सामाजिक जीवन पुराना है और सबसे सरल रूप में प्राथमिक समुदाय (community) निर्मित करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा समुदाय समाज की सबसे छोटी इकाई है जो कि व्यक्ति की मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ है।

प्राथमिक समूहों की आन्तरिक विशेषतायें
(Internal Qualities of Primary Group)

आन्तरिक विशेषताओं से हमारा तात्पर्य उन विशेषताओं से है जो कि वाह्य विशेषताओं के कारण जन्म लेती हैं। प्राथमिक समूहों में इन सम्बन्धों के उत्पन्न होने से इन्हें प्राथमिक सम्बन्ध (primary relationship) कहा जाता है। प्राथमिक सम्बन्ध में अनेक विशेषतायें होती हैं, जिन पर हम विचार करेंगे।

(१) **सम उद्देश्य** (Identity of ends) : यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्राथमिक समूहों में सदस्यों की संख्या कम होने से आमने-सामने के (face-to-face) और व्यक्तिगत सम्बन्ध होते हैं। इससे विचारों और भावनाओं का आदान-प्रदान भी होता है जिससे उनमें एक दूसरे के सम्बन्ध में ज्ञान (common understanding) उत्पन्न होता है। इसका फल सामान्य स्वार्थ अथवा उद्देश्यों का उत्पन्न होना है। वास्तव में व्यक्तियों के आपस में घुल मिल जाने (fusion of personalities) के बाद उद्देश्यों के सम होने में देर नहीं लगती है। इसका दूसरा दृष्टिकोण यह है कि प्राथमिक समूह के सदस्य एक दूसरे का कल्याण तथा भलाई को ही अपना उद्देश्य मान लेते हैं। उदाहरण के लिए, माता अपने बच्चों के हित को अपना हित मान लेती है, स्वयं अनेक कष्ट उठाती है और अपने बच्चों के सुख को ही अपना सुख अनुभव करती है।

सत्य तो यह है कि जहाँ "मैं" के स्थान में "हम" भावना का जन्म होता है वहीं सम उद्देश्यों का जन्म हो जाता है। इससे स्वार्थपरता का स्थान परोपकार की भावना ले लेती है।

(२) **सम्बन्ध स्वयं साध्य होता है** (The relationship is an end in itself)—आदर्श प्राथमिक सम्बन्ध किसी विशेष उद्देश्य के साधन के रूप में नहीं होता है परन्तु स्वयं साध्य होता है। प्राथमिक समूहों में किसी स्वार्थ की भावना के वशीभूत होकर पारस्परिक सम्बन्ध नहीं बनाये जाते हैं। यह सम्बन्ध स्वयं विकसित होते हैं। एक 'आदर्श मित्रता' किसी लाभ के लिए स्थापित नहीं होती है। यह

ऐच्छिक होती है और स्वयं साध्य होती है। जब मित्रता किसी स्वार्थ की भावना से स्थापित की जाती है, तब उसे हम मित्रता नहीं कह सकते। वैवाहिक सम्बन्ध केवल आर्थिक लाभ एवं कामना-पूर्ति के लिये नहीं होता परन्तु उससे सम्पूर्ण जीवन के उद्देश्य एक हो जाते हैं।

(३) **वैयक्तिक सम्बन्ध** (Personal relationship)—प्राथमिक समूह के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध वैयक्तिक होते हैं और उसमें दिखावटीपन आदि बातें नहीं पायी जातीं। वैयक्तिक सम्बन्ध से यह तात्पर्य है कि सम्बन्ध व्यक्ति के महत्व के ऊपर आधारित होता है न कि उसके गुण व कार्यों के आधार पर। एक व्यक्ति के स्थान पर दूसरे को रखना सम्भव नहीं है। डेविस ने ठीक ही कहा है कि "एक नवीन वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, एक पुराना वैयक्तिक सम्बन्ध समाप्त किया जा सकता है। सम्भवतः वह चालक शक्ति, जिसने सम्बन्ध को जन्म दिया, दूसरे को मार्ग दे सकती है, परन्तु उसी सम्बन्ध में एक व्यक्ति के स्थान में दूसरे का प्रतिस्थापन नहीं किया जा सकता।"* यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्राथमिक समूहों के दीर्घजीवी होने के कारण उनके सदस्यों के सम्बन्ध भी दीर्घजीवी होते हैं। इसके फलस्वरूप, लगातार मिलते-जुलते रहने से, पारस्परिक सहयोग और सहानुभूति की भावना भी जन्म लेती है जो स्वयं वैयक्तिक सम्बन्धों की द्योतक है।

(४) **सर्वाङ्गीण सम्बन्ध** (Inclusive relationship)—प्राथमिक समूह में प्रत्येक सदस्य पूर्णतः और सम्पूर्ण हृदय से भाग लेता है। प्राथमिक समूह में निश्चित और सीमित उद्देश्यों के न होने से सम्बन्धों की भी कोई सीमा नहीं होती है। सदस्य एक दूसरे को भली-भाँति जानते हैं। इसलिये वे एक कार्य में नहीं, सम्पूर्ण कार्यों में रुचि रखते हैं।

(५) **प्राथमिक सम्बन्ध स्वाभाविक होता है** (Spontaneous relationship)—जिस प्रकार प्राथमिक समूह का जन्म स्वतः होता है, उसी प्रकार प्राथमिक सम्बन्ध भी अपने आप स्थापित होते हैं। परिवार के सदस्यों में भाई-बहनों आदि में जबरदस्ती सम्बन्ध स्थापित नहीं करवाये जाते हैं बल्कि यह सम्बन्ध अपने आप विकसित हो जाते हैं। यही कारण है कि प्राथमिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ और मैत्रीपूर्ण होते हैं।

---

* "A new personal relationship can be established, an old one be abandoned, perhaps the driving force that initiated the relationship may give way to another, but no substitution can be made of one individual for another in the same relationship."
—Kingsley Davis, *Human Society* p.269.

(६) **प्राथमिक सम्बन्ध की नियन्त्रण शक्ति** (The power of control of primary relationship)—प्राथमिक सम्बन्ध में एक नियन्त्रण शक्ति होती है। माता-पिता, बड़े भाई आदि बच्चों के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखते हैं: यही नहीं बल्कि प्रत्येक सदस्य एक दूसरे पर नियन्त्रण रखता है। इसी प्रकार, पड़ोसी भी किसी के व्यवहार पर नियन्त्रण रख सकते हैं। इन नियन्त्रणों को प्राथमिक समूह के सदस्य स्वेच्छा से स्वीकार कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ और विशेषतायें भी हैं जिन्हें प्राथमिक समूहों की स्थापना के लिए आवश्यक समझा जाता है। उदाहरण के लिये, हम समान पृष्ठ-भूमि (similar background) और सीमित स्वार्थ (limited self-interest) को ले सकते हैं। यदि एक समूह के सदस्यों के अनुभव और उनकी समझ का स्तर भिन्न होगा, यदि प्रत्येक सदस्य अपने ही स्वार्थ अथवा स्वार्थों की पूर्ति में लगा रहेगा तो पारस्परिक घनिष्ठता, सहयोग और सहानुभूति की भावना का उत्पन्न होना एक प्रकार से असम्भव ही हो जायेगा। इस भावना के बगैर प्राथमिक समूह और प्राथमिक सम्बन्ध उत्पन्न नहीं हो सकते क्योंकि यही भावना इनकी मुख्य शर्त है।

चार्ल्स कूले ने कहा है कि "यह सोचना गलत होगा कि प्राथमिक समूह की एकता केवल शान्ति और प्रेम की एकता है। यह हमेशा ही एक पृथक की हुई और साधारणतया एक स्पर्धापूर्ण एकता होती है जिसमें अपने अधिकारों पर बल देना और अन्य दूसरे संक्षोभ (passion) भी उपस्थित रहते हैं। इन संक्षोभों (passions) का सहानुभूति के द्वारा समाजीकरण किया जाता है, जोकि एक सामान्य उत्साह के अनुशासन में आ जाते हैं। व्यक्ति महत्वाकाँक्षी होगा परन्तु उसकी महत्वाकांक्षाओं का मुख्य उद्देश्य दूसरों के ख्याल में कोई ऐच्छिक स्थान प्राप्त करना होगा और वह व्यक्ति सेवा और ईमानदारी के सामान्य स्तरों के अनुकूल कार्य करने की आवश्यकता अनुभव करेगा। कोई लड़का, सम्भव है, किसी टीम में स्थान प्राप्त करने के लिए अपने साथियों से झगड़ा करे, परन्तु इन झगड़ों के ऊपर वह अपनी कक्षा और स्कूल के यश को अधिक महत्व देगा।"* इन सब बातों का अर्थ यह है कि प्राथमिक समूहों

* It is not to be supposed that the unity of the primary groups is one of mere harmony and love. It is always a differential and usually a competitive unity, admitting of self assertion and various appropriate passions; but these passions are socialized by sympathy and come, or tend to come, under the discipline of a common spirit. The individual will be ambitious, but the chief object of his ambitions will be some desired place in the thought of the others, and he feels allegiance to common standards of service and fair play. So the boy will dispute with fellows a place on the team, but above such dispute will place the common glory of his class and school." —C. H. Cooley, Social Organization p. 23-24

में भी अन्य समूहों की भाँति स्पर्धा आदि बातें स्पायी जाती हैं। परन्तु सहानुभूति के भाव अधिक बलवान होने के कारण इन संक्षोभों (passion) को हानिकारक रूप में प्रकट होने नहीं दिया जाता। प्राथमिक समूहों के सदस्य भी महत्वाकांक्षी होते हैं। परन्तु अपनी आकाँक्षा की पूर्ति करते समय दूसरे व्यक्तियों के अधिकार स्वार्थ और हित का भी ध्यान रखते हैं। इस प्रकार के सम्बन्ध, स्पष्ट ही, अपने चारों ओर के संसार के मानव-स्वभाव की वृक्षारोपणी है और इस बात का कोई कारण समझ में नहीं आता कि कभी और कहीं बात इसके विपरीत रही हो।

प्राथमिक समूहों का महत्व (Importance of Primary Groups)—यह समूह अनेक अर्थों में प्राथमिक होते हैं: ये ही पहले समूह होते हैं जिनमें व्यक्ति अपनी आदतों और मनोवृत्तियों (attitudes) को बनाता है। यह सामाजिक स्व (social self) तथा नैतिक ज्ञान के विकास में मौलिक (fundamental) हैं और सामाजिक दृढ़ता और सहयोग में व्यक्ति को मूलभूत शिक्षा (basic training) देते हैं। यह समूह मौलिक मानव संघों के प्रतिनिधि हैं और सम्भवत: उतने ही पुरातन हैं जितना कि मनुष्य का सामाजिक जीवन।

पशुता से मानवता की ओर (From Animal to Man) — किस प्रकार प्राथमिक समूह मानवीकरण (humanization) करने वाले शक्तिशाली अभिकर्त्ता (agents) हैं? जैवकीय रूप से (biologically) हममें से प्रत्येक में लालसा (lust), लालच (greed), प्रतिशोध (revenge), शक्ति की इच्छा (lust for power) जैसी कुछ प्राकृतिक इच्छायें (drives) होती हैं। वास्तव में अपने रूक्ष रूप (crudest form) में यह इच्छायें पाशविक प्रवृत्तियाँ (animal drives) हैं, न कि मानव इच्छायें। व्यवहार का स्पष्ट रूप से मानव स्तर केवल उस समय प्रकट होता है जबकि इन कच्ची मूल प्रवृत्तियों को सहानुभूतिपूर्ण अन्तर्दृष्टि के द्वारा प्रेम, आकाँक्षा और असन्तोष जैसी भावनाओं के वशीभूत कर दिया जाता है।"† दूसरे शब्दों में प्राथमिक समूहों में जब व्यक्तियों को एक दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने की शिक्षा दी जाती है तभी व्यक्ति पशुता से मानवता की ओर अग्रसर होता है। चार्ल्स कूले ने कहा है कि पाशविक इच्छाओं का मानवीकरण ही सम्भवत: सबसे बड़ी सेवा है जो

* "Such association is clearly the nursery of human nature in the world about us, and there is no apparent reason to suppose that the case has anywhere or any time been essentially different."

—Ibid

† "The distinctively human level of behaviour appears only when the raw instincts have been conditioned through sympathetic insight into sentiments such as love, ambition, and resentment."

–C. H. Cooley, Introductory Sociology.

प्राथमिक समूह करते हैं (This humanizing of the animal drives is perhaps the greatest service performed by the primary group)। दूसरे प्रकार के संघ भी कुछ हद तक यह कार्य करते हैं। परन्तु प्राथमिक सम्बन्ध का लाभ यह है कि यह स्वत: (spontaneously) उत्पन्न होता है, वह भी बार-बार, चेतन उद्देश्य से सीमित नहीं है, इसमें व्यक्तित्व के समवेगात्मक नियन्त्रण के लिये पूर्वशाब्दिक (pre-verbal) और शाब्दिक (verbal) संवादों (communications) का पूर्ण रूप से आदान-प्रदान होता है और अन्त में, यह सार्वभौमिक ढंग (universal type) का एक अनुभव होता है जो सम्पूर्ण मानव प्रजाति को प्रभावित करता है। समाज अपने सामाजिक संगठन और प्रयास के द्वारा भी इतने अधिक व्यक्तियों पर इतने गहरे मनोवैज्ञानिक प्रभाव नहीं डाल सकता है जितना कि प्राथमिक समूह अपने सदस्यों पर डालते हैं।

सिरिल बार्ट (Cyril Burt) ने २०० बाल अपराधियों की सूक्ष्म विवेचना करते हुये यह निष्कर्ष निकाला कि पर्यावरण की सब दशाओं में, घर के बाहर का वातावरण उतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि घर के अन्दर का बातावरण। भौतिक (material) दशाये जैसे कि निर्धनता, उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी कि नैतिक दशायें जैसे कि अनुशासन (discipline), दुराचार (vice) और सबसे अधिक, सन्तान का अपने माता-पिता के साथ का सम्बन्ध।"*

यह शहादत, जैसे कि कूले ने कहा है, दृढ़तापूर्वक यह संकेत करती है कि समय को देखते हुये प्राथमिक समूह पाशविक प्रवृत्ति का अधिक होशियार मानवीकरण करने वाला है बनिस्बत किसी दूसरे प्रकार के संघ के जिनको बनाने में मनुष्य समर्थ हुआ है।†

अर्ध प्राथमिक समूह (Quasi Primary Group) —यह जान बूझ कर बनाये गये आमने-सामने के घनिष्ठ सम्बन्ध वाले समूह होते हैं, जिनकी घनिष्ठता विशेष उद्देश्य और संगठन के कारण कुछ मात्रा में सीमित होती है।‡ ब्वाय स्काउट ट्रूप (Boy Scout troops), कॉलेज फ्रैटर्निटी और सारोरिटी (fraternities and sororities), आहार क्लब (Luncheon-clubs) आदि इसके उदाहरण हैं। इनमें

---

* Quoted by Cooley.

† "Such evidence strongly suggests that the primary group is a more efficient humanizor of animal drives per unit of time than any other form of association that man has been able to devise."　Introductory Sociology.

‡ "These are organized face to face intimate groups, limited in some degree by special purpose and by the fact of organization."
—C. H. Cooley, Introductory Sociology.

प्राथमिक समूहों की अनेक विशेषतायें पाई जाती हैं और इनमें से अनेक समूह प्राथमिक समूहों में अनेक कार्य करते हैं; फिर भी संगठन और विशेष उद्देश्य की सीमायें इनको द्वैतीयक समूहों (secondary groups) की कुछ विशेषतायें प्रदान करती हैं। प्राथमिक समूहों की ही भाँति इनमें भी आमने सामने के सम्बन्ध (face-to-face association) तथा घनिष्ठता होती है, परन्तु इनका विशेष उद्देश्य होता है, जब कि प्राथमिक समूहों का कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता। इसके अतिरिक्त प्राथमिक समूह संगठित नहीं किये जाते हैं। अर्ध-प्राथमिक समूह में कुछ विशेषतायें प्राथमिक समूह की और कुछ द्वैतीयक समूहों की विशेषतायें पायी जाती हैं।

द्वैतीयक समूह (Secondary Groups)

मामूली तौर पर द्वैतीयक समूहों की यह परिभाषा दी जा सकती है कि यह ऐसे समूह हैं जिनमें प्राथमिक समूहों के ठीक विपरीत विशेषतायें पायी जाती हैं। सर्वप्रथम, इसके अस्तित्व (existence) की दशायें मुख्यत: उल्टी हैं। द्वैतीयक समूह इतने अधिक विस्तृत क्षेत्र में फैले हुये होते हैं कि इनके किन्हीं दो सदस्यों के लिये एक दूसरे के निकट रहना आवश्यक नहीं होता। इनके अतिरिक्त यह इतने बड़े होते हैं कि इनके सब सदस्य व्यक्तिगत रूप से एक दूसरे को जान नहीं सकते हैं। सम्भव है कि द्वैतीयक समूह बहुत लम्बे अर्से तक कायम रहें, परन्तु इनके सदस्यों के व्यक्तिगत सम्बन्ध बहुत छोटे (brief) होते हैं। दूसरी ओर इनकी विशेषतायें और प्राथमिक समूह की विशेषतायें विभिन्न छोरों (extremes) पर स्थिर हैं। प्राथमिक समूहों में शारीरिक निकटता (spatial proximity), कम संख्या (small number) और दीर्घ अवधि (long duration) पाई जाती हैं; द्वैतीयक समूहों में शारीरिक दूरी (spatial distance), भारी संख्या (long number) और अल्प अवधि (short duration) पाई जाती है। द्वैतीयक समूहों के सम्बन्ध निकट, व्यक्तिगत और घनिष्ठ नहीं होते। यह वे समूह हैं जिनमें घनिष्ठता का अभाव है।

ऑगबर्न और निमकॉफ ने कहा है, "द्वैतीयक समूह वे समूह हैं जो कि घनिष्ठता से विहीन अनुभवों को प्रदान करते हैं।* घनिष्ठता (warmth) की कमी के कारण पी० एच० लैंण्डिस (P. H. Landis) ने इन्हें शीत जगत (cold world) कहा है। चार्ल्स कूले ने कहा है: यह ऐसे समूह हैं जिनमें घनिष्ठता का अभाव होता है और आमतौर से अधिकतर अन्य प्राथमिक तथा अर्ध-प्राथमिक विशेषताओं का भी अभाव रहता है।†

* "The groups which provide experience lacking in intimacy are called secondary." —Ogburn and Nimkoff, *A Handbook of Sociology*, p. 178.

† "These are groups wholly lacking in intimacy of association and usually in most of the other primary and quasi-primary characteristics." —C. H. Cooley, *Introductory Sociology*.

द्वैतीयक समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध अधिक औपचारिक (formal), आकस्मिक (casual) तथा अव्यक्तिगत (impersonal) होते हैं। ऑगबर्न और निमकॉफ ने कहा है कि द्वैतीयक समूह के अनुभव का निचोड़ सम्बन्धों का आकस्मिक होना है (the essence of secondary group experience is casualness of contact)। अनेक द्वैतीयक समूह-सम्बन्ध अप्रत्यक्ष (indirect) भी होते हैं। कोई व्यक्ति ऐसी कमेटी का सदस्य हो सकता है जो कि कभी किसी एक स्थान पर एकत्रित न होती हो, परन्तु डाक के द्वारा अपना कार्य करती हो। इसके फलस्वरूप कोई व्यक्ति समूह के अन्य सदस्यों से कभी नहीं मिलता है। दूसरे, द्वैतीयक समूह-अनुभव प्रत्यक्ष (direct) परन्तु अव्यक्तिगत (impersonal) होते हैं। उदाहरण के लिए, कोई विद्यार्थी बहुत समय तक अपने शिक्षक को देखता और उसके भाषण को सुनता है, परन्तु सम्भव है कि वह उनको (उनके चरित्र को) न जान पाये। इस घटना में समूह की संख्या विद्यार्थी और शिक्षकों को एक दूसरे से दूर रखती है, परन्तु यह सोचना भी गलत होगा कि समूह के छोटे होने से घनिष्ठता निश्चित है। ऑगबर्न और निमकॉफ ने उदाहरण दिया है कि दस वर्ष के वैवाहिक जीवन के पश्चात् भी एक स्त्री ने विवाह सम्बन्धी विषयों के सलाहकार (marriage consultant) से यह शिकायत की कि उसका विचार था कि वह अपने पति को उससे अधिक नहीं जान पाई जितना कि वह विवाह से पहले उसको जानती थी। जिस प्रकार कि यह सम्भव है कि बिना आमने-सामने के सम्बन्ध (face-to-face contact) के निकट अथवा प्राथमिक सम्बन्ध स्थापित किया जावे, उसी प्रकार यह सम्भव है कि बिना घनिष्ठता के आमने-सामने के सम्बन्ध स्थापित हों।

प्राथमिक समूहों की अपेक्षा द्वैतीयक समूह अधिक जान बूझ कर (deliberately) तथा चैतन्य रूप से (consciously) बनाये हुये होते हैं। यह वास्तव में आँशिक (partial) तथा विशिष्ट स्वार्थों अथवा आवश्यकताओं के प्रतिनिधि होते हैं। किम्बाल यंग (Kimball Young) ने इन्हें 'विशेष स्वार्थ समूह' (special interest group) कहा है। यह आवश्यक रूप से आमने सामने के सम्बन्धों पर निर्भर नहीं रहते। वास्तव में, इस प्रकार के प्रत्यक्ष सम्बन्ध सामान्य (common) होते हैं, परन्तु वह बिल्कुल अनिवार्य नहीं होते। उदाहरण के लिए कोई वैज्ञानिक संघ सालों तक, सदस्यों के कभी एक दूसरे के व्यक्तिगत रूप में मिले बगैर कायम रह सकता है। अनेक सम्बन्धों में द्वैतीयक समूह लम्बी दूरी वाले यातायात के अप्रत्यक्ष साधनों (long distance indirect means of communication) का प्रयोग करते हैं—जैसे कि डाकखाना, टेलीफोन, टेलीग्राफ, रेडियो और प्रेस। द्वैतीयक समूहों का उदाहरण आधुनिक राजनीतिक राज्य, राजनैतिक पार्टी, धार्मिक संघ, स्कूल, व्यापारिक अथवा औद्योगिक कारपोरेशन, कर्मचारियों और मालिकों के अनेक आर्थिक संघ, मेडिकल एसोसियेशन, सब प्रकार के क्लब आदि हैं।

यद्यपि द्वैतीयक समूह विशेष स्वार्थों के प्रतिनिधि हैं, फिर भी यह स्वार्थ (interests) या आवश्यकतायें अनेक कालों में बनी रहती हैं (persist) और प्राथमिक समूहों की अपेक्षा अधिक औपचारिक (formal) संगठनों की माँग करती हैं। इनके आधार पर परम्परायें (traditions), नियम (codes), विशेष अवसर और कार्य करने के लिये निश्चित ढंग विकसित होते हैं जिनको हम सामाजिक संस्कार (social-rituals) तथा संस्थायें कहते हैं। वास्तव में अनेक लेखकों ने द्वैतीयक समूहों को 'संस्थात्मक-समूह, (institutional-groups) कहा है।

प्राथमिक समूहों और द्वैतीयक समूहों का मुख्य अन्तर समूहों (groups as such) के रूप में नहीं है, परन्तु उनके पारस्परिक सम्बन्धों में है। राष्ट्र को एक द्वैतीयक समूह कहा जाता है क्योंकि उसके सदस्यों में, सदस्यों के रूप में, निकट (close), व्यक्तिगत (personal), घनिष्ठ (warm) सम्बन्ध नहीं होते। इस प्रकार के–निकट, व्यक्तिगत, घनिष्ठ सम्बन्ध–दूसरे क्षेत्रों में–परिवार, गाँव आदि के सदस्यों के रूप में–उनके हो सकते हैं, परन्तु केवल उसी राष्ट्र के नागरिक होने के रूप में नहीं। डेविस ने कहा है कि द्वैतीयक समूहों के सदस्यों का दायित्व (liability) सीमित होता है।

बहुत सी आदतें और मनोवृत्तियाँ, जो प्राथमिक संघों में बनती हैं, द्वैतीयक समूहों में भाग लेते समय व्यक्ति के काम आती हैं। यद्यपि आधुनिक समाज की विशेषता द्वैतीयक समूहों का विकास है, फिर भी प्राथमिक सम्बन्धों का लोप नहीं हुआ है।

उपरोक्त बातों पर विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि द्वैतीयक समूहों की निम्नलिखित विशेषतायें हैं :

(१) द्वैतीयक समूहों में शारीरिक निकटता की सम्भावना कम रहती है।
(२) इसका आकार बड़ा होता है, सदस्यों की संख्या अधिक होती है।
(३) यह एक बड़े विस्तृत क्षेत्र में फैले होते हैं।
(४) इनमें सदस्यों के लिए एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानने की सम्भावना बहुत कम रहती है।
(५) यह विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाये जाते हैं। इनको 'special interest groups' कहा जाता है।
(६) द्वैतीयक सम्बन्ध आंशिक (partial) होते हैं; सदस्य एक दूसरे के बारे में पूरा ज्ञान नहीं रखते।
(७) सदस्यों का एक दूसरे के प्रति दायित्व सीमित होता है।
(८) इनमें निकट, घनिष्ठ सम्बन्धों का अभाव रहता है।
(९) अनेक सम्बन्धों में द्वैतीयक समूह लम्बी दूरी वाले यातायात के अप्रत्यक्ष

साधनों (long distance indirect means of communication) जैसे कि डाकखाना, टेलीफोन, तार, रेडियो, प्रेस आदि का प्रयोग करते हैं।

(१०) द्वैतीयक सम्बन्ध जान बूझ कर, चैतन्य रूप से बनाये जाते हैं।

(११) यही सामाजिक नियम संस्कार और संस्थायें बनाते हैं।

चार्ल्स कूले का द्वैतीयक समूहों का वर्गीकरण (Classification of secondary Groups):—

द्वैतीयक समूहों के उदाहरण भीड़ (crowds), समुदाय (communities) कॉरपोरेशन, राष्ट्र आदि हैं। द्वैतीयक समूहों का वर्गीकरण इस आधार पर किया जा सकता है, कि वे साँस्कृतिक तत्व (elements) के आधार पर बनें हैं या नहीं। द्वैतीयक समूहों में दो प्रकार की समानतायें पायी जाती हैं। चार्ल्स कूले ने निम्न-लिखित ढंग से द्वैतीयक समूहों का वर्गीकरण किया है *:—

(१) **संस्कृति के आधार पर बनाये गये समूह**
(Culturally organised Groups)

(क) स्थिति समूह, जैसे कि सामाजिक वर्ग।
(status groups, i. e. social classes)

(ख) राष्ट्रीयता समूह—राष्ट्र।
(Nationality groups—nations)

(ग) स्थानीय समूह—समुदाय और प्रादेशिक समूह।
(Residence groups—communities and regional groups)

(घ) ध्यान-स्वार्थ उद्देश्य-समूह—पब्लिक, संस्थात्मक समूह, कॉरपोरेशन।
(Attention-interest purpose-groups—public, institutional groups, corporations, etc.)

(२) **मौलिक रूप से संस्कृति द्वारा न संगठित समूह :**
(Groups not basically organised by culture) :

(क) जैविकीय समूह—आयु समूह, योनियाँ, प्रजातियाँ।
(Biological groups—age-groups, the sexes, races)

(ख) आकस्मिक समूह—भीड़ और परिषद् जैसे श्रोतागण, जनसंकुल आदि।

(Casual groups—crowds and assemblages, such as audiences, mobs, etc.)

---

* *Introductory Sociology.*

द्वैतीयक संघों की वृद्धि का क्या अर्थ है ?

(What does the increase in Secondary Association mean)?

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि आधुनिक समाज में द्वैतीयक संघ और सम्बन्ध वृद्धि पर है। प्राथमिक समूह की अवनति (decline) और उनके ही द्वैतीयक संघ की वृद्धि का एक अत्यन्त तत्कालिक (immediate) परिणाम होता है : द्वैतीयक संघ की प्रकृति के कारण हम एक दूसरे से अधिकतर केवल कार्यकर्ताओं या अधिकारियों (functionaries) के रूप में मिलते हैं और पूर्ण व्यक्तियों के रूप में कम। इसका क्या अर्थ है ?

प्राथमिक समूहों में लोग व्यक्तियों की तरह मिलते हैं, अर्थात् बनावटीपन, विशेष उद्देश्य, सीमित सम्बन्ध आदि से अप्रभावित हुए मिलते हैं। द्वैतीयक समूहों में दूसरी ओर वे केवल किसी संगठन में कार्य करने वाली इकाइयाँ (functioning units) ही होते हैं, अथवा केवल सुपरिचित (acquaintances at best) ही होते हैं। चार्ल्स कूले ने कहा है कि द्वैतीयक सम्बन्ध आँशिक सम्बन्ध हैं (secondary association is partial association)। "यह ऐसा सम्बन्ध है जो कि विशेष उद्देश्य, दूर के यातायात, नियम, सामाजिक बन्धनों अथवा सम्बन्धों के आकस्मिक रूप द्वारा संकुचित होता है। इसका अर्थ यह है कि ऐसी दशाओं में मिलने वाले व्यक्ति एक दूसरे के सामने अपने व्यक्तित्व के केवल विशेष पहलू रखते हैं। वे सम्पूर्ण व्यक्तियों के रूप में एक दूसरे से नहीं मिलते हैं।*

उदाहरण के लिए, एक विद्यार्थी और एक अखबार बेचने वाले लड़के के सड़क पर के सम्बन्ध, और यदि वह विद्यार्थी और वही अखबार बेचने वाला लड़का दोनों एक ही परिवार के सदस्य होते तो उनके उस समय के सम्बन्ध की तुलना कीजिये। अखबार बेचने वाले के रूप में वह अखबार बेचने वाला केवल एक कर्ता (functionary) है। ग्राहक उसकी घरेलू पृष्ठभूमि (home background), उसकी छोटी बहन के प्रति उसके व्यवहार, एवं फुटबाल शिक्षक होने की उसकी इच्छा, उसका अँधेरे से डरना और इसी प्रकार उसके व्यक्तिगत जीवन की अनेक बातों में बिल्कुल अनभिज्ञ है। "अपने जीवन के अन्य विषयों के अतिरिक्त" चार्ल्स कूले ने कहा है, "केवल एक अखबार बेचने वाले लड़के के रूप में, वह किसी भी तरह एक

---

* "It is association narrowed down by special purpose by communication at a distance, by rules, by social barriers, or by the casual nature of contact. This means that under such conditions associating personalities present only special facts of themselves to one another. They cannot meet as whole persons." —Ibid

जीवत व्यक्तित्व नहीं ; वह विशेषीकरण किया हुआ एक मानव अणु है, न कि एक व्यक्ति ।" *

यहाँ तक कि जिनके साथ हम नित्य घन्टों काम करते हैं वे भी हमारे सामने पूर्ण व्यक्तियों के रूप में प्रकट नहीं होते । विद्यार्थियों के रूप में हम शिक्षकों के औपचारिक (formal) व्याख्यानों को सुनते हैं परन्तु न तो हमें शिक्षकों के बारे में और न शिक्षकों को विद्यार्थियों के बारे में यह ज्ञान होता है कि व्यक्तियों के रूप में वे कैसे हैं । व्यापारियों के रूप में, हमारा सम्पर्क ग्राहकों और कर्मचारियों से होता है; परन्तु न तो हमें समय है और न अवसर ही मिलता है कि हम उनके पूर्ण व्यक्तित्व को जान सकें । नागरिकों और उपभोक्ताओं (consumers) के रूप में हम ऐसे व्यक्तियों के राजनीतिक भाषण सुनते हैं और ऐसे व्यक्तियों से गृहस्थी की आवश्यक वस्तुओं को खरीदते हैं जो कि केवल कर्ताओं (functionaries) के रूप में हमारे सामने प्रकट होते हैं, पूर्ण व्यक्तियों के रूप में कभी नहीं ।

अन्त में प्राथमिक और द्वैतीयक समूहों के महत्व पर हम केवल ऑगबर्न और निमकॉफ का समर्थन कर सकते हैं जिन्होंने कहा है कि "पहले में (प्राथमिक समूहों में) व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध पूर्ण होते हैं । दूसरे में (द्वैतीयक समूहों में) आँशिक । इसका परिणाम यह होता है कि जब किसी व्यक्ति के साथ हमारे प्राथमिक समूह-सम्बन्ध होते हैं तब हम यह अनुभव करते हैं कि हम वास्तव में उसे जानते हैं । परन्तु अधिकतर वह हमारे सामने एक अजनबी के रूप में ही रहता है यदि हमारे सम्बन्ध केवल औपचारिक होते हैं; जैसे कि द्वैतीयक समूहों में होते हैं । व्यक्तियों की अभिव्यक्ति प्राथमिक समूहों में निकट होती है, इसलिए व्यक्तित्व पर उनका प्रभाव भी अधिक होता है ।" †

---

* "As a mere newsboy, apart from the full context of his life, he is not a living personality at all, he is a specialized human atom, not a person"

† "In the first the relationship between persons is complete; in the second it is fractional. The result is that we feel we really know a person when we have a primary group relationship with him but he remains for the most part a stranger to us if our only contact with him is in a group of the formal secondary type. Since the identification of individual is closer in primary groups the effects on personality are greater."

—Ogburn and Nimkoff *A Handbook of Sociology* p. 183.

प्राथमिक समूह	द्वैतीयक समूह
१—यह छोटे समूह होते हैं। जैसा कि कूले ने कहा है, इनमें २ से लेकर ५० या ६० सदस्य होते हैं।	१—यह बड़े समूह होते हैं जिनकी सदस्यता की कोई सीमा नहीं है, उदाहरण के लिये हम राष्ट्र को ले सकते हैं।
२—यह छोटे से क्षेत्र में पाये जाते हैं। जैसे कि घर, पड़ोस या गाँव।	२—यह एक बड़े विस्तृत क्षेत्र के अन्दर फैले होते हैं।
३—इनमें आमने-सामने के सम्बन्ध होते हैं।	३—इनमें आमने-सामने के सम्बन्ध की सम्भावना कम रहती है।
४—इनके सदस्यों के पारस्परिक संबन्धों की अवधि लम्बी होती हैं।	४—इनके सदस्यों का एक दूसरे से व्यक्तिगत रूप में मिलना आवश्यक नहीं होता, यदि वे कभी मिलते भी हैं तो थोड़े समय के लिये।
५—यह समूह अपने आप उत्पन्न होते हैं।	५—इन्हें मनुष्यों ने अपने कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिये जानबूझ कर बनाया है।
६—इन समूहों का कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता।	६—इन समूहों का विशेष उद्देश्य होता है, इसलिये वह special interest groups कहे जाते हैं।
७—इन समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध के लिये तार, टेलीफोन आदि की आवश्यकता नहीं होती।	७—इन समूहों के सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध बनाने के लिये पत्र-व्यवहार तार, टेलीफोन, रेडियो आदि का भी बहुधा प्रयोग होता है।
८—इन समूहों में दिखावा, बनावटीपन और सीमित सम्बन्ध नहीं होते।	८—दिखावा, बनावटीपन, और सीमित सम्बन्ध इन समूहों की विशेषता कहे जाते हैं।
९—इन समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध निकट, घनिष्ठ और व्यक्तिगत होते हैं।	९—इन समूहों में निकट, घनिष्ठ और व्यक्तिगत सम्बन्धों का अभाव रहता है।
१०—प्राथमिक समूहों के सदस्य एक दूसरे से व्यक्तियों के रूप में मिलते हैं।	१०—द्वैतीयक समूहों के सदस्य एक दूसरे से व्यक्तियों के रूप में न मिलकर किसी व्यवसाय के प्रतिनिधि, कर्मचारी, आदि के रूप में मिलते हैं।

प्राथमिक समूह	द्वैतीयक समूह
११—प्राथमिक सम्बन्ध पूर्ण होते हैं	११—द्वैतीयक सम्बन्ध आंशिक (partial) होते हैं।
१२—प्राथमिक समूहों में सहयोग पाया जाता है और समूह के छोटे होने के कारण सामूहिक निर्णय (group decision) लिया जा सकता है।	१२—द्वैतीयक समूहों में सहयोग होने की सम्भावना कम रहती है और बड़ा होने के कारण इनमें सामूहिक निर्णय लेना सम्भव नहीं होता।
१३—व्यक्ति के समाजीकरण में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण ढंग से भाग लेते हैं। यहीं वह पाशविकता से मानवता की ओर ले जाया जाता है।	१३—व्यक्ति के समाजीकरण में प्राथमिक समूह के सामने इनकी देन तुच्छ है।
१४—यह समूह बहुत पुराने हैं, सम्भवतः उतने ही पुराने जितना पुराना मनुष्य का सामाजिक जीवन है।	१४—यह समूह इतने पुराने नहीं हैं जितने कि प्राथमिक समूह और अनेक द्वैतीयक समूह नवनिर्मित होते हैं।
१५—यह ऐसे स्थानों में पाये जाते हैं जहां सामान्य रक्त व सामान्य संस्कृति के लोग रहते हैं।	१५—इन समूहों के सदस्यों में सामान्य रक्त तो होता ही नहीं, संस्कृति भी भिन्न हो सकती है।
१६—इन समूहों में सबके व्यक्तित्व एक दूसरे में घुल-मिल जाते हैं या 'fusion of personalities' होता है।	१६—इन समूहों में व्यक्तियों का घुल-मिल जाना नहीं होता क्योंकि इनमें घनिष्ठता का अभाव रहता है, सदस्य एक दूसरे से अधिक देर तक नहीं मिलते या बिल्कुल ही नहीं मिलते और क्योंकि इनका विशेष उद्देश्य होता है।
१७—प्राथमिक समूहों के सदस्यों का दायित्व (liability) असीमित होता है, उसका कभी अन्त नहीं होता।	१७—द्वैतीयक समूहों के सदस्यों का दायित्व सीमित होता है।
१८—प्राथमिक समूहों की संख्या कम होती है; केवल परिवार, बच्चों का क्रीड़ा-समूह, पड़ोस आदि ही प्राथमिक समूह कहे जाते हैं।	१८—द्वैतीयक समूहों की कोई निश्चित संख्या नहीं है। इनकी विशेषता यह भी है कि इनके अन्दर ही प्राथमिक समूह पाये जाते हैं।
१९—प्राथमिक समूह सार्वभौमिक (universal) होते हैं। यह संसार	१९—सब द्वैतीयक समूह सार्वभौमिक नहीं होते। उदाहरण के लिए,

प्राथमिक समूह	द्वैतीयक समूह
के हर स्थान में, हर काल में पाये गये हैं।	वैज्ञानिक संघ आदिवासी समाज में नहीं पाये जाते।
२०—प्राथमिक समूहों की सदस्यता अनिवार्य होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन काल में परिवार, क्रीड़ा समूहों, गांव अथवा पड़ोस का सदस्य अवश्य रहता है।	२०—इनकी सदस्यता अनिवार्य नहीं होती है।
२१—प्राथमिक समूह केवल सामाजिक नियमों का ही पालन करते हैं।	२१—द्वैतीयक समूहों में ही सामाजिक नियम बनते हैं।
२२—प्राथमिक समूहों में 'हम-भावना' पायी जाती है।	२२—द्वैतीयक समूहों में 'हम' भावना नहीं पायी जाती है।
२३—प्राथमिक समूहों के रूप पर द्वैतीयक समूह बनते हैं। उदाहरण के लिए, परिवार के रूप पर ही राज्य बना है।	

समय की प्रगति के साथ और उद्योगवाद के प्रहारों से निश्चय ही प्राथमिक समूहों की महत्ता गिर रही है,परन्तु यह भी निश्चित है कि पूरी तौर पर इनका कभी भी ह्रास नहीं होगा क्योंकि यह कुछ ऐसे कार्य करते हैं जो कि अन्य समूहों के द्वारा सम्भव नहीं हैं। उदाहरण के लिए, परिवार एक प्राथमिक समूह है और वह सन्तानोत्पत्ति, स्नेह, पालन-पोषण का कार्य करता है। यह कार्य दूसरे समूहों में सम्भव नहीं है। मनुष्य का समाजीकरण करने का भी कार्य परिवार से पूर्णतया नहीं छीना जा सकता है। इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि द्वैतीयक समूहों की संख्या और महत्ता बढ़ रही है, फिर भी प्राथमिक समूहों की महत्ता नष्ट नहीं हो सकती।

---

११ समुदाय, समिति और संस्था (Community, Association and Institution)

समुदाय (Community)

मानव इतिहास के प्रारम्भ से ही मनुष्य समुदायों में रहा है। वास्तव में, मानव समुदायों से मिलते जुलते समूह पशुओं और यहाँ तक कि पौधों में भी पाये जाते हैं। 'समुदाय' शब्द का बहुत ढीले तौर पर प्रयोग किया गया है, परन्तु समाजशास्त्रियों ने इनकी सही परिभाषा देने का प्रयास किया है।

मैकाइवर ने समुदाय को मनुष्यों का एक ऐसा समूह बताया जो एक साथ रहते हैं, एक दूसरे के प्रति बन्धन अनुभव करते हैं, इस या उस विशेष स्वार्थ में सामान्य रूप से भाग न लेकर सम्पूर्ण स्वार्थों में सामान्य रूप से भाग लेते हुये उसी में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। मैकाइवर ने 'समुदाय' में छोटे मानव समूह जैसे कि गाँव और बड़े समूह जैसे शहर, वन्य जातियाँ और राष्ट्र शामिल किये। इसी प्रकार किंग्स्ले डेविस ने समुदाय को सबसे छोटा क्षेत्रीय समूह बताया जिसमें सामाजिक जीवन के सब पहलू आ जायें। अन्य समाजशास्त्रियों ने इसमें मनुष्यों के स्थानीय समूह का अर्थ लगाया जैसे गांव, कस्बा, और शहर। उनके विचार में अधिक बड़े समूह जैसे वन्यजाति या राष्ट्र को समाज कहना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार के विचार पार्क और बर्जेस, और ज़ोरबफ ने प्रकट किये। फिर भी सभी समाजशास्त्रियों में इस बात पर सहमति है कि समुदाय मनुष्यों का एक ऐसा समूह है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं जिससे वे अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं और इस समूह में काफी मात्रा में दृढ़ता पायी जाती है।

कुछ समाजशास्त्रियों ने गाँव या शहर के उपभागों के लिये 'समुदाय' शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि घनिष्ठ और निकट सम्बन्ध जो समुदाय के आवश्यक तत्व हैं केवल छोटे क्षेत्रों में ही पाये जाते हैं। सामान्यत: समुदायों को ग्रामीण और नागरिक, इन दो भागों में विभाजित किया जाता है।

समुदाय का अर्थ सामाजिक जीवन के किसी सम्पूर्ण क्षेत्र से है जैसे कि गाँव अथवा शहर अथवा देश। समुदाय एक ऐसा घेरा है जिसमें सामान्य जीवन व्यतीत

किया जाता है, जिसके अन्दर मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करते हैं, और इस प्रकार सामान्य सामाजिक विशेषतायें दिखाते हैं। यह अनिवार्य है कि मनुष्य, जो कि काफी लम्बे अर्से तक स्वतन्त्रतापूर्वक सामाजिक सम्बन्धों में रहते हैं, सामाजिक समानता स्थापित करें, उनके सामान्य सामाजिक विचार हों, सामान्य रीति-रिवाज हों, सामान्य परम्परायें (traditions) हों और एक दूसरे के प्रति लगाव का भाव हो। समुदाय छोटा और बड़ा दोनों हो सकता है। किसी बड़े समुदाय के अन्दर जैसे कि राष्ट्र के अन्दर अनेक छोटे-छोटे समुदाय और समूह हो सकते हैं जिनमें अनेक सामान्य विशेषतायें हों।

समुदाय एक ऐसा समूह है जिसकी दो प्रमुख विशेषतायें होती हैं : (१) इसके अन्दर व्यक्ति को अपने जीवन के अधिकतर अनुभव होते हैं और इसी के अन्दर वह अपनी अधिकतर क्रियाओं को करता है जो उसके लिये महत्वपूर्ण होती हैं : और (२) इसके सदस्यों में इस बात से एकता होती है कि वे यह अनुभव करते हैं कि वे एक ही समूह के सदस्य हैं और समूह प्रत्येक का स्थान व पद निश्चित करता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से समुदाय का सदस्य अपना सम्पूर्ण जीवन उसी में व्यतीत करता है, उसी समुदाय के सदस्यों के प्रति विशेष लगाव अनुभव करता है, और उस समुदाय को वह उसी प्रकार स्वीकार करता है जिस प्रकार वह अपना नाम और परिवार की सदस्यता स्वीकार करता है।

सामान्यतः समुदाय किसी स्थान पर आधारित होते हैं : एक गांव, शहर या राष्ट्र। भौगोलिक क्षेत्र और उस स्थान के प्रति चेतनता सामान्य जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करते हैं और समूह दृढ़ता के लिए आधार प्रस्तुत करते हैं। फिर भी, भौगोलिक क्षेत्र पर विचार किये वगैर भी हम ऐसे समुदायों की चर्चा कर सकते हैं जैसे अल्पमत दल वाले समुदाय, मुस्लिम समुदाय, ईसाई समुदाय, पारसी समुदाय आदि। जब हम 'ईसाई समुदाय' का प्रयोग करते हैं तो वह इस अर्थ में कि ईसाइयों की क्रियाओं और संस्थाओं का एक अद्भुत सैट (set) होता है जिसकी सीमा के अन्दर ईसाई लोगों के कार्य होते हैं। वे ईसाइयों के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करते हैं, ईसाई पड़ोस में रहते हैं, ईसाई संगठन के लिए कार्य करते हैं, ईसाई पेशेवर समाज के सदस्य होते हैं, और ईसाइयों द्वारा प्रकाशित मैगजीन पढ़ते हैं। इसी प्रकार हम इण्डो-अरब समुदाय, यहूदी समुदाय, और यहां तक कि बुद्धिजीवियों के समुदाय की चर्चा कर सकते हैं। फिर भी, अत्यधिक विकसित समुदायों के पास सामान्य भौगोलिक क्षेत्र भी होता है।

भारतीय समाज में राष्ट्रीय समुदाय की भावना के विकास में अनेक कारणों ने बाधा पहुंचायी है जैसे भाषा, प्रान्त, धर्म, प्रजाति के भेदभाव। दूसरी ओर संचार की प्राद्योगिकी में तीव्र परिवर्तन, उद्योग और सरकार का बढ़ता हुआ केन्द्रीयकरण, जनसंख्या की गतिशीलता और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में भारत के

बढ़ते हुये महत्व ने भारतीयों के जीवन में राष्ट्रीय समुदाय के महत्व को बढ़ाया भी है।

फेयर चाइल्ड ने अपनी (Dictionary of Sociology) में कहा है कि समुदाय एक ऐसा उप-समूह है जिसमें छोटे पैमाने पर समाज की अनेक विशेषतायें पायी जाती हैं, जिनके स्वार्थ सीमित होते हैं परन्तु सामान्य होते हैं। समुदाय की धारणा में कुछ बातें निहित हैं : भौगोलिक क्षेत्र, काफी हद तक सदस्यों में आपसी जान पहचान और सम्पर्क, और आपस में एकता होने का कोई विशेष आधार जो पड़ोस के समूहों से उनको अलग रखता है। समाज की अपेक्षा समुदाय में अधिक सीमित आत्म-निर्भरता होती है, परन्तु साथ ही सदस्यों के बीच अधिक गहरी सहानुभूति और निकट सम्पर्क भी रहता है। उनके बीच में एकता का कोई विशेष बन्धन हो सकता है जैसे प्रजाति, एक ही राष्ट्रीयता, या एक ही धर्म का पालन करना।

दूसरी ओर, मिचैल (Mitchell) ने भी अपनी Dictionary of Sociology में लिखा है कि इस शब्द का प्रयोग हम किसी बस्ती, गाँव, शहर, वन्यजाति या राष्ट्र के लिये करते हैं। शुरू में ही यह कहा जा सकता है कि जब किसी समूह के सदस्य अपने समूह से किसी विशेष स्वार्थ की पूर्ति के कारण सम्बन्धित न होकर उसमें अपना सामान्य जीवन बिताते हैं तो ऐसे छोटे या बड़े समूह को ही समुदाय कहा जाता है। क्योंकि किसी व्यापारिक संगठन, धार्मिक समूह, अथवा राजनीतिक दल के अन्दर व्यक्ति की केवल किसी विशेष आवश्यकता की ही पूर्ति होती है, न कि सामान्य लक्ष्यों की पूर्ति, इसलिये इनको समुदाय नहीं कहा जा सकता। दूसरी ओर, वन्यजाति, शहर या राष्ट्र में रह कर व्यक्तियों की सभी आवश्यकतायें पूरी हो सकती हैं, बहुत हद तक उनके जीवन यापन का ढंग एक सा होता है, इसलिये इनको समुदाय कहा जाता है। वास्तव में, समुदाय की प्रमुख विशेषता सदस्यों द्वारा सामान्य जीवन व्यतीत करना है।

समाजशास्त्रियों का विचार है कि सभ्यता में विकास होने के साथ ही समुदाय की धारणा में भी विस्तार होता जाता है। इसी बात को दृष्टि में रखकर बोगार्डस ने कहा है कि समुदाय का विचार पड़ोस से शुरू होकर सम्पूर्ण संसार तक पहुँच जाता है। इसको हम उन बच्चों के उदाहरण से समझ सकते हैं जो अपने मोहल्ले के बच्चों के साथ खेलते हैं, उनसे घनिष्ठता और एकता अनुभव करते हैं और दूसरे मोहल्ले के बच्चों के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हैं, अपने को संगठित करते हैं। धीरे-धीरे उसकी आवश्यकताओं के बढ़ने के साथ ही उसके सम्पर्क का दायरा या क्षेत्र भी बढ़ता है और वह सम्पूर्ण नगर को अपना समुदाय मानने लगता है। राजनीतिक चेतनता बढ़ने के साथ, अनेक अन्य व्यक्तियों के साथ सम्पर्क में

आने से वह फिर पूरे राष्ट्र को ही अपना समुदाय मानने लगता है। यही कारण है कि सम्पूर्ण जीवन को व्यतीत करना और सामान्य जीवन समुदाय की प्रमुख विशेषतायें हैं। इसीलिये ऑगबर्न ने समुदाय को सामाजिक जीवन का सम्पूर्ण संगठन (total organization of social life) कहा है।

समुदाय के आवश्यक तत्व

(१) **मनुष्यों का समूह**—समुदाय से सर्वप्रथम तात्पर्य हमारा मनुष्यों के समूह से है। इसलिये समुदाय मूर्तिमान होता है।

(२) **निश्चित भू-भाग (Definite territory)**—प्रत्येक समुदाय का अपना एक भौगोलिक क्षेत्र होता है। खानाबदोश लोगों का भी एक स्थानीय निवास स्थान (local habitation) होता है, यद्यपि वे उसे बदलते रहते हैं। प्रत्येक गांव, शहर, राष्ट्र, की एक निश्चित भौगोलिक सीमा होती है।

(३) **सामुदायिक भावना (Community Sentiment)**—आज कल हम अनेक व्यक्तियों को कुछ विशेष स्थानों में रहते हुये पाते हैं परन्तु उनमें सामाजिक घनिष्ठता (social coherence) न होने से उसे समुदाय नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए किसी डिस्ट्रिक्ट में रहने वाले मनुष्य एक ही भौगोलिक क्षेत्र अधिकृत किये होने पर पारस्परिक सम्बन्धों और सामान्य रुचियों के अभाव और एक ही भौगोलिक क्षेत्र में रहने पर भी उसके आधार पर आपस में सहानुभूति का भाव न रखने पर 'समुदाय' नहीं कहे जा सकते। एक दूसरे से सम्बद्ध होने की भावना को ही सामुदायिक भावना कहा जाता है। केवल सामान्य भौगोलिक क्षेत्र ही समुदाय को जन्म नहीं दे सकता। समुदाय सामान्य जीवन का एक घेरा है। वहाँ सामान्य जीवन के साथ इस बात की चेतना (awareness) भी होनी चाहिये कि वे एक ही सा जीवन व्यतीत करते हैं और एक ही स्थान में रहते हैं।

लम्ले के अनुसार समुदाय के सदस्यों द्वारा समुदायों के प्रति इस भावना की अभिव्यक्ति इस प्रकार होती है कि यह हमारा अपना है, यह वह जगह है जहाँ हम पैदा हुये हैं और पले हैं, यह वह जगह है जहाँ हमने अपनी भाषा सीखी, जहाँ हमने अनेक खेल खेले, जहाँ हम आशा, आकांक्षा और स्वप्न के झूले में झूलते रहे, यह वही है जिसने असंख्य रूप में हमें प्रभावित किया है और दुनियाँ के प्रति हमारे दृष्टिकोण ढाले हैं। लम्ले ने आगे कहा "एक स्थानीय समुदाय हम सबकी एक विराट माता है, यह हमारा एक विभिन्न अंग है, वह हजारों रूप में हम लोगों में और हमारे बीच है, और इसके विरुद्ध होने वाली आलोचना का द्रुत प्रतिवाद करके हम इस भावना को प्रदर्शित करते हैं।"*

---

* Thus a local community is but a larger mother of us all, it is an

सामुदायिक भावना में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं :

(i) **हम-भावना (We feeling)**: समुदाय के सदस्य एक दूसरे के प्रति लगाव और सहानुभूति व घनिष्ठता अनुभव करते हैं। उत्तरप्रदेश में पंजाबियों को पंजाबियों के साथ, बंगालियों को बंगालियों के साथ विशेष लगाव है। वे समझते हैं कि 'हम सब एक हैं।' इसी एकता की भावना को हम-भावना कहते हैं।

(ii) **योगदान की भावना (Participation)** : समुदाय के सदस्य सामूहिक कार्यों में भरसक योगदान देते हैं। वे समझते हैं कि 'यह समुदाय का कार्य है', इसमें सबका हित है, इसलिये उसमें योगदान देना सबका कर्त्तव्य है। यह भावना धीरे-धीरे सदस्यों में ऐसी आदत डलवाती है कि वे अचेतन रूप से समुदाय के कार्यों में योगदान देने लगते हैं।

(iii) **निर्भरता की भावना (Interdependence)** : समुदाय के सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। विशेषकर निर्धनों, वृद्धजनों और अपाहिजों का उत्तरदायित्व समुदाय के सदस्य संभालते हैं। विवाह आदि अवसरों पर भी समुदाय के सदस्य एक दूसरे की सहायता करते हैं। क्योंकि समुदाय के सदस्य एक दूसरे से लेते देते हैं इसलिये उनमें आपस में लगाव होना स्वाभाविक है।

(iv) **सामुदायिक नियंत्रण (Community Control)** : समुदाय का अपने सदस्यों पर नियंत्रण रहता है। एक से नियमों का पालन करने के कारण समुदाय के सदस्यों के व्यवहार में एकरूपता (uniformity) उत्पन्न होती है जो स्वयं हम-भावना बढ़ाने में महत्वपूर्ण है।

(४) **सामान्य जीवन (Common life)**—समुदाय की एक विशेषता सामान्य जीवन का होना है। सामान्य विचार, सामान्य रीति-रिवाज और सामान्य परम्पराओं का होना समुदाय की विशेषता है। गाँव में, उदाहरण के लिए, हम सब व्यक्तियों को एक ही प्रकार का जीवन-व्यतीत करते हुए देखते हैं।

गिन्सबर्ग ने नियमों की एक सामान्य व्यवस्था को समुदाय का एक आवश्यक तत्व माना है। यह उसकी परिभाषा से स्पष्ट है : "समुदाय वह समस्त जनसंख्या है जो किसी एक क्षेत्र में बसी हो और जो उनके जीवन के समागम को व्यवस्थित करने वाले नियमों की एक सामान्य व्यवस्था से बँधी हुई हो।"*

---

inseparable part of us, it is in and through us in thousands of ways, and we show this by our quick resentment of criticism."

—F. E. Lumley, Principles of Sociology.

* "Community is the entire population occupying a certain

(५) **स्वतः जन्म (Spontaneous formation)**—समुदाय को कोई बनाता नहीं है बल्कि इसका जन्म अपने आप होता है। एक ही स्थान पर बराबर रहने और उसके कारण आपस में समभाव की भावना के जागृत होने पर समुदाय का जन्म हो जाता है।

(६) **विशिष्ट नाम (Particular name)**—प्रत्येक समुदाय का अपना एक नाम होता है। समुदाय का नाम सामुदायिक भावना को बराबर जागृत रखता है। नाम के पीछे एक इतिहास छिपा होता है, जो कि मनुष्यों के सामने एकता के लिये आवश्यक सभी वस्तुओं को उपस्थित कर देता है।

इस सम्बन्ध में लम्ले ने कहा है : "एक गुलाब के पुष्प को किसी भी नाम से सम्बोधन किया जाये सम्भवतः उसकी सुगन्ध उतनी ही मधुर होगी, पर अगर एक समुदाय दूसरे नाम से पुकारा जाये तो हममें से किसी के लिये भी वह वही समुदाय न रहेगा।"*

(७) **क्षेत्रीय स्थायित्व (Territorial Permanence)**—साधारणतया कोई भी समुदाय किसी एक निश्चित भू-भाग में बहुत दिनों तक रहता है। हम जान सकते हैं कि कौन समुदाय किस स्थान पर बसा है।

(८) **समुदाय का आत्म-निर्भर होना आवश्यक नहीं है (Community need not be self-sufficient)**—हमने ऊपर यह कहा है कि समुदाय में सामान्य या समस्त जीवन बिताया जा सकता है। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं हैं कि समुदाय आवश्यक रूप से आत्म-निर्भर भी होता है। आज के युग में प्रत्येक मानव समूह को दूसरे समूह पर निर्भर करना पड़ता है।

समुदाय के अर्थ को समझते समय इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि सामान्य जीवन का कोई घेरा अथवा क्षेत्र समुदाय है। सामान्य जीवन एक संगठन अथवा सम्बन्ध से बड़ी वस्तु है। जब हम समाज शब्द का प्रयोग करते हैं तब अधिकतर हम किसी संगठन के विषय में ही सोचते हैं परन्तु जब हम 'समुदाय' का प्रयोग करते हैं तब उससे बड़ी वस्तु पर विचार करते हैं। उस समय हम ऐसे जीवन का ध्यान करते हैं जहाँ संगठन उत्पन्न होता है और संगठन जिसका केवल एक साधन (means) है।

---

territory......held together by a common system of rules regulating the intercourse of life."—Ginsberg, *Sociology*.

* "A rose by any other name would smell as sweet possibly, but a community by any other name would not be the same community to any of us," —Lumley.

९. **नियंत्रण(Control)**–समुदाय के सदस्य जीवन के व्यवहारों को नियन्त्रित करने वाले नियमों के एक सामान्य तार से जुड़े होते हैं। प्रत्येक समुदाय के पास सदस्यों के सम्बन्धों को निश्चित करने के व्यवहार सम्बन्धी निश्चित नियम होते हैं। समुदाय की दो विशेषतायें और भी हैं—(अ) समुदाय की सदस्यता स्थाई होती है। जिस समुदाय में हम जन्म लेते हैं उसी समुदाय के सदस्य हम जीवनपर्यन्त रहते हैं: (ब) समुदाय साधारणतया किसी सामान्य व्यक्ति को अपना पूर्वज मानते हैं। उदाहरण के लिए वन्यजाति के गोत्र (clan) के सदस्य एक ही व्यक्ति को पूर्वज मानते हैं।

समुदाय में सामाजिक नियंत्रण के महत्व के सम्बन्ध में बोडिन ने लिखा है: "समुदाय सभ्यता की सच्ची नैतिक इकाइयाँ हैं जिसका कारण यह है कि इन्हीं के अन्दर व्यक्ति के व्यवहार को सबसे अधिक प्रत्यक्ष तौर पर नियंत्रित किया जाता है, उसकी भावनायें विकसित होती हैं और समूह के नियमों का पालन करने की मनोवृत्ति विकसित होती है।*

(१०) **एकता का आधार (Basis of unity)**:—समुदाय के सदस्यों के बीच जो एकता या हम-भावना पायी जाती है उसका अक्सर कोई विशेष आधार भी होता है। उनमें एकता का कोई विशेष बन्धन हो सकता है जैसे एक ही प्रजाति, राष्ट्रीयता, धार्मिक संगठन, प्रांत का होना। यह आपसी जान पहचान और सम्पर्क बनाने और बढ़ाने में विशेष सहायक होती है।

(११) **समुदाय मूर्त होता है (Community is concrete)**–समुदाय समाज का एक ऐसा भाग है जिसको हम देख सकते हैं, अनुभव करते हैं। इससे किसी नियमों, या विधियों का बोध नहीं होता बल्कि मनुष्यों के समूह का बोध होता है। इसलिये यह एक मूर्त समूह है।

ऊपर हमने समुदाय की अनेक विशेषतायें बतायी हैं। इनमें से सामुदायिक भावना और भौगोलिक क्षेत्र को ही विशेष आवश्यक समझ कर विशेष महत्ता प्रदान की गई है। इनके बगैर समुदाय सम्भव नहीं है।

परिभाषायें (Definitions)

(१) **मेकाइवर ने समुदाय** की परिभाषा देते हुये कहा है, "जहाँ कहीं भी किसी छोटे अथवा बड़े समूह के सदस्य एक साथ इस प्रकार रहते हैं कि वे इस या

---

* "Communities are the true moral units of civilization on account of the fact that within them individual's behaviour is most directly controlled, his sentiments formed and the attitude of conformity to group norms built up".--Bodin,

उस विशेष उद्देश्य में भाग नहीं लेते, बल्कि सामान्य जीवन की मौलिक दशाओं में भाग लेते हैं, हम उस समूह को एक समुदाय कहते हैं।"*

(२) **लम्ले** के शब्दों में, 'समुदाय मनुष्यों का एक स्थायी स्थानीय संग्रह है जिसके पृथक और सामान्य दोनों ही उद्देश्य होते हैं और जिसकी संस्थाओं के एक समूह द्वारा सेवा की जाती है। †

(३) **किंग्सले डेविस** ने समुदाय की एक बहुत छोटी परिभाषा दी है : "समुदाय वह सबसे छोटा क्षेत्रीय समूह है जिसके अन्तर्गत सामाजिक जीवन के सभी पहलू शामिल हैं।' ‡'

(४) **मैकाइवर** : "समुदाय सामाजिक जीवन का एक क्षत्र है जिसकी विशेषता सामाजिक एकता है।"**

(५) **बोगार्डस** : "समुदाय एक सामाजिक समूह है जिसमें कुछ मात्रा में 'हम-भावना' पायी जाती है और जो एक निश्चित क्षेत्र में रहता है।"††

समुदाय के अन्दर समुदाय

पहले समुदाय बहुत छोटे-छोटे होते थे। यदि हम पहले के और आज के गांवों या शहरों के पड़ोसों की तुलना करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। परन्तु अब समुदाय बड़े बड़े हो गये हैं और अपने में अन्य समुदायों को लिये हुये हैं। उदाहरण के लिये, आज हमें बड़े-बड़े नगर मिलते हैं जिनमें अनगिनती मोहल्ले होते हैं जो स्वयं में उप-समुदाय हैं। इसी प्रकार, जाति के आधार पर समुदाय हैं। जातियों के भीतर होने वाली उप-जातियों के अपने अलग उप-समुदाय हैं।

---

* Wherever the members of any group, small or large live to together in such a way that they share, not this or that particular interest, but the basic conditions of a common life, we call that group a community."

—*MacIver; R. M. and Page, C. H. Society. p. 8.*

† "A community may be defined as a permanent local aggregation of people having diversified as well as common interests served by a constellation of institutions,"

Lumley,, P. E. *Principles of Sociology.* p. 209.

‡ "The community is the smallest territorial group that can embrace all aspects of social life." Kingsley Davis.

** "A community is an area of social living marked by some degree of social coherence." MacIver and Page.

†† "A community is a social group with some degree of we feeling' and living in a given area."—Bogardus.

समुदाय की नयी धारणा (New concept of communnity)

अनेक समाजशास्त्रियों का आज यह विचार है कि समुदाय के लिए सामुदायिक भावना या सामुदायिक एकता (coherence) ही एक मात्र महत्वपूर्ण तत्व है, भौगोलिक क्षेत्र या सीमा का तत्व अब आवश्यक नहीं रहा है। अब तो शहर, जाति, देश की भी भावना नहीं रही है। अब मानव मात्र की भावना ही शेष रह गई है और 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना का उदय हो रहा है।

समुदाय में भौगोलिक सीमा की भावना के महत्व में हुई कमी पर प्रकाश डालते हुये सामाजिक विज्ञानों के ज्ञान-कोष (Encyclopedia of Social Sciences) में लिखा है :

"जैसा कि पहले समाज विज्ञान में समुदाय को समझा जाता था, वह एक भौगोलिक क्षेत्र रखता था जिसकी अपनी निर्धारित वैधानिक सीमायें होती थीं, जिनमें लोग सामान्य रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित होते थे व आर्थिक जीवन व्यतीत करते थे, और जो राजनीतिक दृष्टिकोण से अपने में स्वयं एक स्व-संचालित राजनीतिक इकाई होती थी" ......"इसी प्रकार छोटे छोटे झुण्ड, गाँव, कस्बे, शहर आदि समुदाय समझे जाते थे और ऐसे समुदाय स्वयं बदले में विशाल सामाजिक इकाइयों जैसे बड़े ग्रामों, प्रान्तों या राष्ट्रों के भाग या टुकड़े समझे जाते थे।" यह पुरानी धारणा, संरचना पर आधारित है।

"समुदाय की नयी धारणा प्रक्रिया के विचारों से निकली है। मनोविज्ञान इस परिवर्तन के लिये जिम्मेवार है। आपस में आर्थिक रूप से बँधे होने की भावना औद्योगीकरण के कारण खत्म हो गई......संचार व संवाद के साधनों के विकास ने भौगोलिक धारणा (भौगोलिक सीमा को आवश्यक तत्व समझना) को नष्ट कर दिया। अब तो समुदाय में इच्छायें, स्वार्थ, आकाँक्षायें और ध्येय अधिक महत्वपूर्ण शक्तियाँ हैं।*

---

* "As originally used in the literature of social sciences Community designated a geographical area with definite legal boundaries, occupied by residents engaged in interrelated economic activities and constituting a politically self-governing unit......thus hamlets, villages, boroughs, towns and cities were considered to be communities and such communities in turn were thought of as being part, or fragments of larger social units such as countries, states and nations......This is based on structure. New conception of community is derived from ideas of process. Science of psychology is responsible for bringing about thi change....The idea of interrelated economic activity is falsified due to the advent of

उपरोक्त बातों को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि नयी परिभाषाओं के अनुसार समुदाय के लिये भौगोलिक सीमा आदि होना आवश्यक नहीं है। अब तो समुदाय के लिये जो एक-मात्र महत्वपूर्ण बात या विशेषता रह गई है वह है सदस्यों की सामान्य इच्छायें, स्वार्थ, आकांक्षायें और ध्येय।

आजकल के समुदाय एक सी संस्कृति के लोगों (homogenous) के समूह न रहकर बेमेल (heterogenous) हो गये हैं। यह सरल (simple) न रहकर जटिल (complex) हो गये हैं और छोटे-छोटे न रहकर बड़े हो गये हैं। इन सबका कारण संचार और परिवहन के साधनों में उन्नति होना है।

सामुदायिक भावना में परिवर्तन
(Changes in community sentiment)

संचार, परिवहन के साधनों में उन्नति, विशेषीकरण, श्रम-विभाजन, नगरीकरण की प्रक्रिया, आर्थिक क्रियाओं में विकास आदि के कारण वर्तमान युग में सामुदायिक भावना में परिवर्तन हुआ है। व्यक्ति आज केवल अपने गांव, नगर या राष्ट्र से ही सम्बन्धित न रह कर अन्य राष्ट्रों से भी सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न करता है।

आज के युग में मनुष्य की आवश्यकतायें अत्यधिक बढ़ गई हैं जिसके कारण वह अपने गांव, मोहल्ले या शहर में ही उनको पूरा नहीं कर पाता। इसलिए इन सबके प्रति उसके लगाव में भी कमी आती जा रही है।

'इस्लाम धर्म के देश एक हों' या 'संसार भर के मज़दूर एक हों' यह सब इस प्रकार के नारे हैं जिनसे किसी एक शहर या देश के लोगों की नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के लोगों की झलक आती है। यह तो बड़ी स्पष्ट बात है कि मनुष्यों की भावना केवल अपने या अपने आस-पास रहने वाले लोगों तक सीमित न रहकर विस्तृत हो गई है। हंगरी में होने वाले अत्याचार, वीतनाम में अमेरिकन बमबारी, बांगला देश में पाकिस्तानियों द्वारा जुल्म, अफ्रीका में गोरों द्वारा कालों पर अत्याचार–इन सब बातों से संसार के सभी लोग किसी न किसी तरह से अपने को सम्बन्धित पाते हैं। यह सब समुदाय की सीमाओं के क्षीण होने की ओर इशारा करते हैं।

---

industrialization....Development of communication was responsible for breaking the geographical nation. Now the desires, interests, wishes and purpose were more important forces." Encyclopedia of the social sciences.

कुछ सीमा रेखा वाले समुदायों के उदाहरण
(Examples of some borderline cases)

१—क्या पड़ोस एक समुदाय है ?
(Is neighbourhood a community ?)

एक निश्चित स्थान और नाम जैसे तत्वों के होते हुए भी आज के बदले हुए समाज में पड़ोस को एक समुदाय मानना कठिन होगा।

(अ) आधुनिक पड़ोस में सामुदायिक भावना का अभाव होता है। आजकल लोगों का जीवन इतना अधिक व्यस्त रहता है कि उन्हें यह पता ही नहीं रहता कि उनके पड़ोस में कौन रहता है, क्या करता है, आदि। इस प्रकार बड़े-बड़े शहरों में 'हम भावना' पड़ोसियों में नहीं पाई जाती।

(ब) नियमों की समानता पड़ोस में नहीं होती है। आज के पड़ोसी रात में देर तक तेज आवाज पर रेडियो बजाते हैं, एक दूसरे के दरवाजों पर कूड़ा डालते हैं अर्थात् एक दूसरे की सुविधा असुविधा का ध्यान नहीं रखते। दूसरे शब्दों में, वहां सामान्य नियमों का अभाव होता है जो सबके व्यवहारों में एकरूपता ला सके।

(स) पड़ोस का विकास स्वतः होना आवश्यक नहीं है। अनेक स्थानों में जान-बूझकर पड़ोसों को बसाया जाता है। मजदूर बस्तियां, दक्षिण अफ्रीका के गोरे और काले लोगों के अलग-अलग क्षेत्र इसके उदाहरण हैं।

(द) पड़ोस में सामान्य जीवन की समस्त विशेषतायें नहीं होती हैं। आधुनिक शहरों में विभिन्न सम्प्रदायों, जीवन-स्तर, राजनीतिक दलों के सदस्य एक दूसरे के पड़ोस में रहते हैं।

२—क्या जेल समुदाय है ? (Is prison a community ?)

इस सम्बन्ध में लेखकों में मतभेद है कि जेल समुदाय है या नहीं। मैकाइवर के अनुसार जेल एक समुदाय है क्योंकि इसका एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है और इसमें सामाजिक जीवन व्यतीत किया जाता है। मैकाइवर ने यह स्वीकार किया है कि इसके निवासियों के कार्यों पर सीमा लगा दी जाती है जिसके कारण कुछ लेखकों को इन्हें समुदाय मानने में आपत्ति हो सकती है परन्तु उनके विचार में अपनी समुदाय की प्रकृति के द्वारा मानव कार्य सदैव ही सीमित रहते हैं। परन्तु हम जेल को एक समुदाय नहीं मानते।

(अ) जेल का जन्म स्वतः नहीं होता। राज्य जानबूझ कर इसकी स्थापना करता है।

(ब) इसकी स्थापना किसी विशेष और निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए होती है चाहे यह उद्देश्य अपराधी को दण्ड देना हो या उसका सुधार करना हो।

(स) जेल में सब तरह के सम्बन्धों का अभाव है। उदाहरण के लिए पारिवारिक सम्बन्ध जेल में नहीं पाये जाते हैं।

३—क्या राज्य एक समुदाय है ? (Is state a community ?)

राज्य को भी समुदाय नहीं माना जा सकता क्योंकि (अ) यह समुदाय का केवल एक राजनैतिक संगठन है। इसका सम्बन्ध मुख्यत: राजनैतिक जीवन से ही होता है, न कि समस्त जीवन से। (ब) राज्य के उद्देश्य निश्चित होते हैं जिसके कारण यह एक औपचारिक संगठन है जबकि समुदाय एक प्राकृतिक संगठन है।

४—क्या जाति एक समुदाय है ? (Is caste a community ?)

मैकाइवर ने भी जाति को एक समुदाय मानने से इन्कार किया है। इसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा है कि पहले, यह अपने सदस्यों को घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्धों से, सामाजिक बन्धन लगाकर, ऊँच-नीच की भावना फैला कर, वंचित रखता है। दूसरे, इसका कोई क्षेत्रीय आधार नहीं होता। एक जाति के सदस्य तमाम भौगोलिक क्षेत्रों में छितराये होते हैं।

समाज और समुदाय में भेद

समाज	समुदाय
१. समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।	१. समुदाय मनुष्यों का एक समूह है।
२. सामाजिक सम्बन्धों के अदृश्य रहने के कारण समाज अमूर्त है।	२. समुदाय मनुष्यों की सदस्यता के कारण मूर्त है।
३. समाज के लिये कोई भौगोलिक सीमा नहीं है, इसे किसी निश्चित भू-भाग की आवश्यकता नहीं है।	३. प्रत्येक समुदाय का अपना निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है।
४. समाज में संगठन होता है पर यह जरूरी नहीं है कि वह लोगों को एकता के सूत्र में बाँधे।	४. इसमें घनिष्ठता और समीपता के कारण एकता होती है।
५. समाज बनाया जाता है।	५. समुदाय का स्वत: जन्म होता है।
६. समाज क्योंकि एक ही है, इसलिये उसके नाम का प्रश्न ही नहीं उठता।	६ समुदाय किसी विशिष्ट नाम से पुकारा जाता है।
७. समाज एक विस्तृत वस्तु है।	७. समुदाय उसका एक भाग है।
८. समाज में सामान्य हित विस्तृत होते हैं।	८. समुदाय में सामान्य हित कम विस्तृत और कम समन्वित होते हैं।
९. समाज के लिये सामुदायिक भावना का होना आवश्यक नहीं।	९. समुदाय में सामुदायिक भावना का होना पहली शर्त है।

समिति (Association)

किन्हीं विशेष और सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिये जान बूझ कर बनाये गये किसी संगठित समूह को हम समिति कह सकते हैं। इन समितियों की अपनी नियमावली और कार्यकारिणी होती है। उदाहरण के लिये, हमारे कॉलेजों की आर्थिक व राजनैतिक समितियाँ, व्यापारी समितियाँ, मजदूर संघ आदि। समितियाँ उन मनुष्यों का समूह होती हैं जो कि किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये संयुक्त होते हैं। ऑगबर्न और निमकॉफ ने समिति को सामाजिक कार्यों का संगठन करने वाला एक आविष्कार कहा है। उनके विचार में जिस प्रकार अन्य आविष्कारों के साथ बात होती है वैसे ही अधिक लाभदायक और प्रभावशाली समितियाँ बनी रहती हैं और प्रभावहीन समितियाँ लुप्त हो जाती हैं।

यह विशिष्ट-उद्देश्यों वाले संगठन हैं जैसे ट्रेड यूनियन, कारपोरेशन्स और राजनैतिक दल। इस श्रेणी में फैक्टरियों को भी रखा जाता है जिसमें भाग लेने का प्रमुख आकर्षण धन कमाना है। इसमें ऐच्छिक समितियों जैसे क्लब को भी शामिल किया जाता है। इस प्रकार के हजारों संगठन हमारे देश में पाये जाते हैं।

सामान्यत: समितियाँ सीमित, उपयोगितावादी स्वार्थों पर आधारित होती हैं। फिर भी, इनमें इस सम्बन्ध में अन्तर होता है कि इनके द्वारा व्यक्ति के कितने और कैसे स्वार्थों की पूर्ति होती है और लोग इनकी सदस्यता के क्या अर्थ लगाते हैं। फिर भी यह सच है कि समिति के उद्देश्य जितने अधिक विशिष्ट और उपयोगिता सम्बन्धी होते हैं उतने ही अव्यक्तिगत और संकुचित सम्बन्ध सदस्यों के बीच पाये जाते हैं।

समिति की परिभाषा—मेकाइवर ने समिति की परिभाषा देते हुए कहा है, "सामान्य उद्देश्य या उद्देश्यों के समूह की पूर्ति के लिये संगठित किसी भी समूह" को समिति कहा जा सकता है।*

गिन्सबर्ग के अनुसार : समिति एक दूसरे से सम्बद्ध सामाजिक प्राणियों का समूह है जो इस सत्य पर आधारित है कि उन्होंने किसी विशिष्ट हित या हितों की सिद्धि के लिये एक सामान्य संगठन बनाया है।†

---

* "A group organized for the pursuit of an interest or group of interests in common" MacIver, R.M., and Page, C. H., *Society* P. 12.

† "A group of social beings related to one another by the fact that they possess or have instituted in common an organization with a view to securing a specific end or specific ends."

—Ginsberg

बोगार्डस : "साधारणतया किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये व्यक्तियों द्वारा मिलकर कार्य करने को ही समिति कहते हैं।*"

ओलसन : "समिति एक सामाजिक संगठन है जिसका कि निर्माण किन्हीं विशिष्ट और सीमित लक्ष्यों की पूर्ति के लिये जान बूझ कर किया जाता है।"†

समिति की विशेषतायें

(१) **समिति का सामान्य हित या उद्देश्य होता है**—समिति जिन उद्देश्यों को लेकर बनती है वह उसके सदस्यों में सामान्य होते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि किसी समिति के समस्त सदस्य पूर्ण रूप से उसके सामान्य उद्देश्य से सहमत हों। जिस समय समिति की स्थापना होती है उस समय सामान्य उद्देश्यों का होना आवश्यक है, बाद में उसमें परिवर्तन हो सकता है।

(२) **समिति का अस्थाई रूप**—समिति स्वभाव से अस्थाई होती है। प्रायः यह देखा जाता है कि अपने उद्देश्यों की पूर्ति के बाद समिति का अन्त हो जाता है। जब समिति के सदस्य यह अनुभव करते हैं कि "उनका स्वार्थ सिद्ध हो गया और समिति के बनाये रखने की कोई आवश्यकता नहीं" तब समिति भंग हो जाती है।

(३) **समिति की नियमावलि**—प्रत्येक समिति के अपने नियम होते हैं जिनके अनुसार समिति के सदस्य कार्य करते हैं। नियमों का उल्लंघन करने वाले की सदस्यता छीन ली जाती है। नियम लिखित और अलिखित दोनों ही प्रकार के होते हैं।

(४) **समिति का जन्म स्वतः नहीं होता**—समुदाय की भाँति समिति का जन्म अपने आप नहीं होता है बल्कि विशेष उद्देश्यों को लेकर जान बूझकर इसकी स्थापना की जाती है।

(५) **समिति का मूर्तिमान (concrete) होना**—समिति से तात्पर्य क्योंकि मनुष्य से होता है जो सामान्य उद्देश्यों के कारण संयुक्त होते हैं इसलिये समिति को मूर्तिमान कहा जाता है।

(६) **निश्चित उद्देश्य**—प्रत्येक समिति के एक या अनेक निश्चित उद्देश्य होते हैं। उदाहरण के लिए, कोई क्रिकेट एसोसियेशन केवल क्रिकेट से सम्बन्ध रखेगी।

---

* "Association is usually a working together of people to achieve some purpose." —Bogardus.

† "An association is a social organization that is more or less purposefully created for the attainment of relatively specific and limited goals." —Olsen.

(७) **सदस्यता ऐच्छिक (voluntary) होती है**—समिति के सदस्य को इस बात की स्वतन्त्रता होती है कि वे जब चाहें समिति की सदस्यता छोड़ दें। समिति के कार्यक्रम, कार्य प्रणाली, व्यक्तिगत मतभेद के कारण अक्सर सदस्य समिति की सदस्यता त्याग देते हैं।

बियरस्टैड ने सात कारक बताये हैं जिनके आधार पर समिति को अन्य समूहों से अलग समझा जा सकता है।

(१) **विशिष्ट कार्य**—प्रत्येक समिति का निर्माण किसी विशेष स्वार्थ या क्रिया की पूर्ति के लिये किया जाता है। समाज में विशेष व्यवसाय, खेल-कूद, संगीत, धर्म, शिक्षा, शान्ति आदि के लिये अनगिनती समितियाँ होती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि एक समिति एक कार्य या स्वार्थ तक ही सीमित रहे। विश्व-विद्यालय जिसका कार्य शिक्षा देना है, खेल-कूद, साँस्कृतिक कार्यक्रम की भी व्यवस्था करता है।

(२) **समितियों के व्यवहार-आदर्श**—प्रत्येक समिति के अपने व्यवहार आदर्श या नियम होते हैं। कुछ प्रकार के कार्य विश्वविद्यालय, फैक्ट्री, ऑफिस, दूकान, अस्पताल, सेना आदि में उचित होते हैं, अन्य नहीं। शिक्षक और छात्र, मिल मालिक और मजदूर, डाक्टर और नर्स आदि एक दूसरे के प्रति अन्तःक्रिया करने में कुछ व्यवहार- आदर्शों का पालन करते हैं।

(३) **समितिगत प्रस्थिति :**—समितियों के कुछ पद या प्रस्थिति भी होते हैं जिसके साथ व्यवहार आदर्श जुड़े रहते हैं। संगीत समिति के सभापति का पद एक समितिगत पद है जो केवल उस समिति-विशेष के सदस्यों को प्रभावित करता है।

(४) **अधिकार-शक्ति :**— सामान्यतः अधिकार-शक्ति का सम्बन्ध सरकार से ही लगाया जाता है। परन्तु अधिकार-शक्ति सभी समितियों में भी पायी जाती है। वास्तव में, संगठन अधिकार-शक्ति को जन्म देता है। जहाँ संगठन नहीं है वहाँ अधिकार-शक्ति नहीं, और जहाँ अधिकार-शक्ति नहीं वहाँ संगठन नहीं। उदाहरण के लिये, संगठन कुछ सदस्यों को यह अधिकार-शक्ति देता है कि वे मीटिंग की तारीख निश्चित करें, मीटिंग में शान्ति स्थापित करें, सबका ध्यान आकर्षित करें, सदस्यों के सुझावों को स्वीकार करें, कमेटियाँ नियुक्त करें, सदस्यता शुल्क वसूलें, तनख्वाह बाँटें, आदि।

(५) **सदस्यता परीक्षण :**—कुछ समितियों की सदस्यता प्राप्त करना जहाँ आसान है, वहाँ अन्य समितियों की सदस्यता मिलना कठिन है। फिर भी, सभी समितियाँ कुछ न कुछ शर्त सदस्यता के सम्बन्ध में लगाती हैं, चाहे वे कितनी ही मामूली शर्तें क्यों न हों। किसी भी समिति की सदस्यता लगभग हमेशा एक अर्जित

पद होता है। किसी भी समिति का सदस्य बनने वाले व्यक्ति को उस समिति के व्यवहार-आदर्शों का पालन करने का बचन देना पड़ता है और ऐसा न करने से वह सदस्यता से वंचित रह जाता है। यह बचन देना स्वयं सदस्यता-परीक्षण हैं। बहुत सी समितियों में दीक्षा-संस्कार भी होते हैं जो नये सदस्यों को इस बात की चेतना कराते हैं कि उस समिति की सदस्यता एक विशेष अधिकार है।

(६) **सम्पत्ति :**—कुछ बहुत ही सरल और छोटी समितियों के अतिरिक्त सभी समितियों की अपनी सम्पत्ति होती है। सदस्यता-शुल्क पर न कोषाध्यक्ष अथवा किसी सदस्य का अधिकार होता है, वह समिति का होता है और उस धन को समिति की ओर से व्यय किया जाता है। जिस प्रकार कालेज में खड़िया, ब्लैक बोर्ड, मेज कुर्सी आदि होते हैं उसी प्रकार प्रत्येक समिति की कम या अधिक कोई न कोई सम्पत्ति अवश्य होती है।

(७) **नाम और पहचान के अन्य प्रतीक :**—प्रत्येक समिति का अपना एक नाम होता है, अक्सर संगठित समितियों के संविधान के पहिले ही वाक्य में उसका नाम दिया रहता है। नाम के अतिरिक्त पहचान के अन्य प्रतीक भी समितियों में रहते हैं जैसे मौटो, नारे, गीत, कलर (जैसे स्कूल कलर), सील मोहर, ट्रेड मार्क आदि।

संस्था (Institution)

हम ऊपर कह चुके हैं कि समिति एक संगठित समूह होता है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। अपने संगठन की वजह से उसका एक ढाँचा और कुछ स्थिरता होती है। साथ ही, उसका नाम और पहचान होनी है। दूसरी ओर, एक संस्था समूह नहीं होती, न संगठित न असंगठित। यह तो कोई कार्य करने का एक संगठित तरीका है। संस्था समाज में कोई क्रिया करने का एक औपचारिक, स्वीकृत, स्थापित और स्थिर ढंग होती है। जैसा मैकाइवर ने कहा है, यह समूह में क्रिया करने का एक स्थापित स्वरूप या दशा है। दूसरे शब्दों में, जहाँ समिति एक संगठित समूह है, संस्था एक संगठित कार्य-प्रणाली है। एक संस्था भी एक व्यवहार-आदर्श (norm) होती है, जैसे कि लोकरीति, रूढ़ियाँ और क़ानून व्यवहार-आदर्श हैं परन्तु यह उन से भिन्न है।

यह अन्तर समझने के लिये हमें "संस्थागत करना" (to institutionalize) शब्द पर गौर करना पड़ेगा। अपने जीवन काल में मनुष्य हजारों क्रियायें करते हैं। इनमें से कुछ क्रियायें संस्थागत होती हैं, कुछ नहीं। उदाहरण के लिये, हममें से प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी शिक्षक की भूमिका अदा करता है, अर्थात् किसी अन्य व्यक्ति को कोई कार्य करना सिखाता है। बड़ा भाई छोटे भाई को अ ब स पढ़ना

सिखाता है। माँ बच्चे को जूता पहनना सिखाती है। मित्र ताश खेलना सिखाते हैं। पिता लड़के को मोटर चलाना सिखाता है। परन्तु यद्यपि हर व्यक्ति किसी न किसी समय पढ़ने-पढ़ाने की क्रिया करता है, परन्तु हर व्यक्ति न शिक्षक का पद प्राप्त करता है, न विद्यार्थी का। पढ़ाना और सीखना ऐसी क्रियायें हैं जो हर समाज में पायी जाती हैं परन्तु कुछ समाजों में वे इतने अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि उन्हें संस्थागत कर लिया जाता है। इन समाजों में हमें शिक्षा की संस्था मिलती है।

इस प्रकार, संक्षेप में, एक संस्था कुछ करने का एक निश्चित, औपचारिक और व्यापक ढंग है। यह एक स्थापित कार्य-प्रणाली है। किसी समाज में कुछ कार्यों को बार-बार दोहराया जाता है, और यह दोहराना उस क्रिया को एक प्रतिमान प्रदान करता है और उसे एक स्वीकृत कार्य-प्रणाली बनाता है। यह कार्य-प्रणाली जब समाज में स्थापित हो जाती हैं तब संस्था का रूप ले जाती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जब कोई क्रिया समाज में संस्थागत हो जाती है तब भी वह असंस्थागत ढंग से भी चलती रहती है। यद्यपि हमारे पास शिक्षा की संस्था है, परन्तु फिर भी अनौपचारिक ढंग से भी पढ़ाने और सीखने का कार्य होता रहता है।

व्यक्तियों और समूहों के सम्बन्धों को नियन्त्रित करने वाले सिद्ध और स्वीकृत नियमों को संस्था कहते हैं। उदाहरण के लिये, सम्पत्ति एक संस्था है। मनुष्यों की भौतिक वस्तुएँ (material things),उनकी प्राप्ति और विनिमय के ऊपर नियन्त्रण रखने के लिये सम्पत्ति स्वीकृत रीतियों का एक समूह है। संस्थायें समुदाय एवं समितियों द्वारा उत्पन्न होती हैं। अनेक संस्थायें जान बूझ कर बनाई जाती हैं और कुछ अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिये, परिवार का संस्था के रूप में अपने आप जन्म हुआ था। संस्थाओं के इस अन्तर पर सबसे पहले समनर (Sumner) ने प्रकाश डाला था।

मनुष्यों की मौलिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिये बनाए गए संगठित और सिद्ध (established) ढंगों को सामाजिक संस्था कहते हैं। सभी नियमित मानव क्रियाओं को, फिर भी सामाजिक संस्था नहीं कहा जाता है। बहुतों को सामूहिक आदत (group habits) कहा जाता है। स्वागत करने या खाने की आदतों को, उदाहरण के लिये, लोक-रीति (folkways) कहा जाता है। सामाजिक व्यवहार में से केवल बहुत अधिक महत्वपूर्ण सामाजिक आदतों को, जोकि अधिकतर संस्कृतियों (cultural) में पायी जाती हैं, और जो बहुत लम्बे अर्से से चलती आ रही हैं, सामाजिक संस्था कहते हैं। उदाहरण के लिये परिवार और राज्य। यह संस्थायें समूह की मौलिक आवश्यकताओं को संतुष्टि करने का कार्य करती हैं जैसे कि सुरक्षा भोजन और स्थान, यौन सम्बन्ध और शिक्षा।

विभिन्न समाज भिन्न क्रियाओं को संस्थागत करते हैं। सरल समाज में यह अन्तर अधिक स्पष्ट दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए यद्यपि सभी समाजों में पुरोहित होते हैं, कुछ में चिकित्सक या राजनीतिक मुखिया नहीं होते। साथ ही सरल समाजों में एक ही व्यक्ति उपरोक्त तीनों कार्य कर सकता है परन्तु जैसे-जैसे समाजों का आकार और जटिलता बढ़ते हैं, संस्थायें एक दूसरे से अलग हो जाती हैं और वहाँ अधिक श्रम विभाजन पाया जाता है।

हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि किस अर्थ में संस्थाएँ अन्य व्यवहार-आदर्शों, विशेष कर लोकरीतियों और रूढ़ियों से भिन्न हैं। इसके उत्तर के लिए हमें संस्थाओं की एक अन्य विशेषता पर विचार करना होगा। लोकरीतियाँ और रूढ़ियाँ समाज के अन्दर असंगठित समूहों और सम्पूर्ण समुदायों के द्वारा स्वीकृत और कायम रखी जाती हैं। परन्तु अपने को कायम रखने के लिए संस्थाओं को विशिष्ट समितियों की आवश्यकता होती है। हमें जहाँ भी कोई संस्था मिलती है वहाँ हमें कम से कम एक समिति अवश्य मिलती है। उदाहरण के लिये, शिक्षा की संस्था स्कूल और कॉलेज जैसी समितियों के बगैर सम्भव नहीं।

समिति और संस्था के अन्तर के सम्बन्ध में हमें यह बात याद रखना चाहिये कि समिति का किसी एक स्थान से सम्बन्ध हो सकता है, और इसलिये यह पूछा जा सकता है कि वह कहाँ है। परन्तु संस्था के पास जगह नहीं होती। विश्वविद्यालय का एक स्थान है परन्तु शिक्षा का नहीं। दूसरे, हम समिति के सदस्य होते हैं, न कि संस्था के। हम किसी कमेटी, क्लब या कारपोरेशन के सदस्य हो सकते हैं परन्तु किसी धर्म या शिक्षा के नहीं। कोई व्यक्ति किसी चर्च का सदस्य बन सकता है और वह किसी परिवार का भी सदस्य है। इस प्रकार, चर्च और परिवार समितियाँ हैं परन्तु धर्म और विवाह संस्था हैं जिनका सदस्य नहीं बना जा सकता।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि अनेक समितियाँ एक ही संस्था का कार्य कर सकती हैं और एक ही समिति की अनेक संस्थागत क्रियायें हो सकती हैं। उदाहरण के लिये, शिक्षा की संस्था के लिये अनेक स्कूल और कॉलेज हो सकते हैं। व्यापार की संस्था के लिये अनेक कारपोरेशन हो सकते हैं। इसी प्रकार एक ही समिति अनेक संस्थागत क्रियायें कर सकती हैं। कोई समिति व्यापार के अतिरिक्त अस्पताल, धर्मशाला, रिसर्च सेन्टर खोलने का भी कार्य कर सकती है।

गोल्डनर और गोल्डनर ने कहा है कि एक संस्था विशिष्ट व्यवहार की समाज द्वारा बतायी गई एक प्रणाली है जिसके द्वारा समाज में बराबर कायम रखने वाली समस्याओं का समाधान किया जाता है।* इस परिभाषा में संस्था के

* "An institution is a societally prescribed system of (more or

अनेक तत्व मौजूद हैं और उन पर अलग से गौर करने से संस्था की प्रकृति को अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकेगा।

संस्था का उद्विकास (Evolution of Institution)—समनर ने कहा है : "एक संस्था एक विचारधारा (विचार, मत, सिद्धान्त, स्वार्थ, आवश्यकता) और एक ढाँचे से मिल कर बनाती है।" विचारधारा से अर्थ व्यक्तियों की आवश्यकता और उसकी पूर्ति के सम्बन्ध में सोचे गये विचार से हैं। ढाँचे से तात्पर्य उस आवश्यकता की पूर्ति के लिये बनाये गये नियमों, अपनाये गये तरीकों, और कार्य कर्त्ताओं से है जो किसी निश्चित तरीके से उस आवश्यकता की पूर्ति में सहायक होते हैं। ढाँचा विचारधारा को कार्य रूप में परिणित करता है और उसके लिये ऐसे साधन और उपकरण जुटाता है कि समाज में मनुष्यों के स्वार्थों की पूर्ति हो सके।

समनर ने संस्था के उद्विकास की प्रक्रिया की व्याख्या करते हुये कहा है : "संस्थायें लोकरीतियों से शुरू होती हैं। फिर वे प्रथाएँ बन जाती है। उनमें कल्याण का दर्शन जुड़ जाने पर वे रूढ़ियों में विकसित हो जाती हैं। इसके बाद जिन नियमों, विहिति कार्यों और साधनों का प्रयोग होना है उनके बारे में वे अधिक निश्चित और स्पष्ट बना दी जाती हैं।"

संस्था के उद्विकास के चरणों (stages) को निम्नलिखित ढंग से बताया जा सकता है :

(१) **विचार (Concept)**—समाज का कोई व्यक्ति किन्हीं आवश्यकताओं को अनुभव करता है और उसकी पूर्ति करने के सम्बन्ध में विचार करता है, उसका उपाय निकालने के लिए तर्क वितर्क करता है।

(२) **व्यक्तिगत आदत (Individual habit)**—वह व्यक्ति इस आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये स्वयं अपने द्वारा विचारे गये उपायों का प्रयोग करता है। सफलता मिलने और इसका निरन्तर प्रयोग करने से यह उसकी व्यक्तिगत आदत बन जाती है।

(३) **समूह की आदत या लोकरीति (Group habit or folkways)**—जब समूह के अन्य सदस्य यह देखते हैं कि किसी विशेष प्रकार से कार्य करने से किसी एक व्यक्ति की आवश्यकता अच्छी तरह से पूरी होती है तो वह स्वयं भी ऐसा ही करने लगते हैं। इससे यह पूरे समूह की आदत या लोकरीति बन जाती है।

---

less) differentiated behaviour by means of which recurrent problems are resolved."

—Gouldner and Gouldner, *Modern Sociology*.

(४) **प्रथा (Custom)**—पीढ़ी दर पीढ़ी कार्य करने के इस ढंग के हस्तान्तरित होते रहने से यह प्रथा का रूप ले लेती है।

(५) **रूढ़ि (Mores)**—धीरे-धीरे लोगों में यह विश्वास पैदा हो जाता है कि यही समाज की उस आवश्यकता की पूर्ति का सही तरीका है और इस तरीके को अपनाने में ही समाज का कल्याण है। इससे भिन्न तरीके से व्यवहार करने में समाज का अमंगल हो सकता है। इसलिए इस तरीके के विरुद्ध कार्य करने वाले के लिये दण्ड की व्यवस्था की जाती है।

(६) **ढाँचा (Structure)**—जन-कल्याण की भावना जुड़ जाने से इसको संचालित करने के लिये नियमों, कानूनों, कार्य-विधियों का एक ढाँचा बना दिया जाता है।

(७) **संस्था (Institution)**—इस ढाँचे के पूरा हो जाने पर आवश्यकता की पूर्ति के इस साधन या तरीके को संस्था कहा जाने लगता है।

उपरोक्त बातों पर विचार करने से संस्था के कुछ आवश्यक तत्व स्पष्ट हो जाते हैं:—आवश्यकता, इसको पूरा करने के लिये एक विचार, सही ढंग से क्रियान्वित करने के लिए नियमों और कार्य-विधियों का एक संग्रह, पीढ़ी दर-पीढ़ी इन्हीं तरीकों का पालन होने से इसका सामाजिक विरासत (heritage) या संस्कृति की एक इकाई बन जाना, और इसको निर्मित करने, लोकप्रिय करने व स्थायी रूप से बनाये रखने में सामूहिक प्रयत्न न कि केवल एक या दो व्यक्तियों द्वारा प्रयत्न।

संस्था की विशेषतायें (Characteristics of Institutions)

गिलिन और गिलिन ने संस्था की निम्नलिखित विशेषतायें बतलाई हैं :—

(१) **सम्पूर्ण साँस्कृतिक व्यवस्था की इकाई के रूप में कार्य (The institution functions as a unit in the cultural system viewed as a whole)**—लोकरीतियों, रूढ़ियों और विधियों के अधिक विकसित, संगठित और स्वीकृत तरीके को ही संस्था कहते हैं। हैमिल्टन ने संस्था को 'सामाजिक रीति-रिवाजों का एक गुच्छा' (cluster of social usages) कहा है। यह समाज की साँस्कृतिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में कार्य करती है।

(२) **अधिक स्थायित्व (Relative degree of permanence)**:—सभी संस्थायें विश्वासों की अन्य प्रणालियों और कार्य करने के अन्य ढंगों के मुकाबले में अधिक स्थायी होती हैं। यह काफी लम्बे अर्से तक अपनी उपयोगिता प्रमाणित करने के बाद ही संस्था का रूप लेती हैं, इसलिए आसानी से इनका विनाश नहीं होता। उदाहरण के लिए, अधिकतर सभ्य देशों में एक-विवाह (monogamy) और प्राइवेट सम्पत्ति को सैकड़ों वर्षों से स्वीकार किया जा रहा है। इनका यह भी अर्थ नहीं है

कि संस्थायें अमर होती हैं। उदाहरण के लिए, योरप में सामन्तवाद (feudalism) का नाश हुआ।

(३) एक या अनेक स्पष्ट उद्देश्य (One or more fairly well defined objective or objectives):—प्रत्येक संस्था किसी एक या अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का उद्देश्य रखती है। इन उद्देश्यों को किसी विशेष समाज के संदर्भ में ही समझा जा सकता है अर्थात् किन्हीं दो समाजों में एक सी संस्था होने पर भी उनके उद्देश्य भिन्न हो सकते हैं। उदाहरण के लिये, परम्परागत हिन्दू समाज में विवाह का प्रथम उद्देश्य धर्म था। आदिवासी समाजों में ऐसा होना आवश्यक नहीं है।

(४) साँस्कृतिक उपकरण का प्रयोग (Cultural objects of utilitarian value (cultural equipment) are involved):—संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनेक साँस्कृतिक उपकरण का प्रयोग किया जाता है—जैसे इमारत, औज़ार, मशीन, फ़र्नीचर आदि।

(५) प्रतीक (Symbols):—प्रतीक संस्थाओं की एक प्रमुख विशेषता है। यह प्रतीक भौतिक और अभौतिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरण के लिये, आर्य समाज की संस्था का प्रतीक 'ऊँ' और क्रिश्चियन चर्च का प्रतीक 'क्रॉस' (cross) है।

(६) निश्चित मौखिक या लिखित परम्परा (A fairly definite oral or written tradition):—संस्था में भाग लेने वाले व्यक्तियों के उद्देश्य, मनोवृत्तियों (attitudes), और व्यवहार के सम्बन्ध में स्पष्ट जुबानी या लिखित परम्परा होती है। इससे संस्था का कार्य सुचारु रूप से चलता है।

संस्था की कुछ अन्य विशेषतायें

संस्थायें सामाजिक (Societal) हैं: समाज किसी सदस्य या समिति के पहले और उसके बाद कायम रहता है। संस्था को सामाजिक कहना उसके दीर्घजीवी होने की ओर संकेत करता है। अक्सर हम किसी शिक्षक के लिये कहते हैं कि वह यहाँ इतने वर्षों से है कि वह स्वयं एक संस्था बन गया है। संस्था को सामाजिक कहने का एक अर्थ यह भी है कि संस्थायें व्यवहार करने के ऐसे ढंग हैं जिनका पालन समाज के सभी सदस्य करते हैं।

संस्थायें विहित (Prescribed) हैं: संस्थायें केवल व्यवहार के ढंग ही नहीं वे व्यवहार के विहित तरीके हैं। दाह संस्कार से सम्बन्धित कार्यप्रणालियाँ मृत्यु से निपटने के सरल ढंग ही नहीं हैं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति पर यह नैतिक रूप से अनिवार्य भी होती हैं। जिस प्रकार से जनजातियाँ शव के प्रति व्यवहार करती हैं, उसी प्रकार हम शव के प्रति व्यवहार नहीं कर सकते। इसके लिये हमें समाज द्वारा

निरादर और दण्ड मिलने का खतरा है। इस प्रकार, संस्थायें ऐसे व्यवहार-प्रतिमान हैं जिन्हें कुछ स्थितियों में समाज द्वारा उचित और सही बताया जाता है।

संस्थाओं में व्यवहार-प्रणाली विहित हैं : संस्थागत कार्यों में एक दूसरे से सम्बन्धित कार्यों का क्रम शामिल रहता है। उदाहरण के लिए, दाह संस्कार के समय पुरोहित, रक्त-सम्बन्धियों और गैर सम्बन्धियों के कार्य बँटे होते हैं। मेडिकल संस्था के संदर्भ में हम डॉक्टर और मरीज के पारस्परिक सम्बन्ध को ले सकते हैं। अपने प्रशिक्षण में डॉक्टर न केवल तकनीकी ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु मरीजों के प्रति निश्चित रुख अख्तियार करना भी सीखता है। इसी प्रकार, मरीज भी डाक्टर के प्रति एक निश्चित मनोवृत्ति बनाता है। वह डॉक्टर की अधिकार शक्ति के सामने झुकना, उसके ज्ञान का आदर करना और उसके कार्य में बाधा न डालना सीखता है। इसी प्रकार, नर्स, स्वागताधिकारी, एक्सरे लेने वाले, अस्पताल प्रशासक और अन्य अधिकारी अलग-अलग व्यवहार प्रतिमानों को, जो अन्त: सम्बन्धित होते हैं, प्रदर्शित करते हैं।

संस्थायें एक दूसरे से अलग दिखाई पड़ती हैं :—संस्थाओं में जीवन के किसी क्षेत्र से सम्बन्धित व्यवहार होते हैं जो जीवन के अन्य क्षेत्रों के व्यवहार से अलग किये जा सकते हैं। सभी समाजों में प्रत्येक परिवार की कार्य सीमा निश्चित होती है। परिवार के सदस्यों के सम्बन्धों को निश्चित करने और विवाह द्वारा परिवार की सदस्यता प्राप्त करने के स्पष्ट नियम होते हैं।

संस्थायें बारम्बार उठने वाली समस्याओं के समाधान में सहायता करती हैं : कुछ समस्यायें जैसे कि पदार्थों का उत्पादन और वितरण, बच्चों का समाजीकरण या मरीजों का इलाज समाज में अचानक नहीं उठती है, वे बारम्बार उठती हैं। समाज के सदस्य के लिये, संस्थायें ऐसी समस्याओं के विहित समाधान हैं। बीमारी को रोकने या अच्छा करने के लिये व्यक्ति मैडिकल संस्था के माध्यम से कार्य करता है। आधुनिक समाज में इसका यह अर्थ है कि वह अपने को किसी होशियार डाक्टर के अधीन या परामर्श पर छोड़ देता है : संस्थायें व्यक्ति और समूह दोनों की समस्याओं को हल करते हैं।

संस्थाओं का ढाँचा या संरचना

संस्थाओं की संरचना के मौलिक तत्वों में विश्वास और मूल्य, भूमिकायें (roles) और शक्ति या अधिकार-शक्ति प्रणाली प्रमुख हैं।

संस्थागत मूल्य (Institutional values) :—किसी भी संस्था का एक महत्वपूर्ण भाग मूल्यों का उसका विलग सैट होता है। संस्थागत विश्वासों और मूल्यों के अन्तर के उदाहरण के रूप में हम दो, औद्योगिक प्रशासन के अन्तर को ले सकते हैं—संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस। रूस में किसी भी

फैक्ट्री के संचालन की मौलिक नीति बनाने में कम्युनिस्ट पार्टी के अफ़सर और फ़ैक्ट्री के मैनेजर को समान अधिकार प्राप्त होते हैं। फैक्ट्री प्रशासन के सम्बन्ध में अमेरिकन विश्वास और मूल्य अधिकतर अधिकार-शक्ति मैनेजर को देते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि प्राइवेट उद्यम (enterprise) सबसे अच्छी प्रणाली है। हर समाज में दूसरे समाज के विश्वासों और मूल्यों को गलत या मूर्खतापूर्ण या अनैतिक समझा जाता है।

संस्थागत भूमिकायें (Institutional roles) :— बहुत सी भूमिकायें जो आदतन हम समाज में अदा करते हैं वे संस्थाओं द्वारा विहित होती है और विभिन्न संस्थाओं के क्षेत्रों के अन्तर्गत उचित समझी जाती हैं। उदाहरण के लिये, हम परिवार के सदस्यों से यह आशा नहीं कर सकते कि वे घर में या घर के बाहर एक दूसरे के साथ उसी प्रकार व्यवहार करेंगे जैसे कि खरीदार और दूकानदार बाजार में करते हैं।

प्रकार्यकारी और प्राप्तकर्त्ता :—किसी भी संस्था में यह दो प्रकार की स्पष्ट भूमिकायें होती हैं। एक ओर प्रकार्यकारी (functionaries) कर्मचारी वर्ग होते हैं जो वे सब कार्य करते हैं जिन्हें समाज संस्था की जिम्मेदारी समझता है और दूसरी ओर प्राप्तकर्ता (recipient) वे व्यक्ति होते हैं जिनके लिये यह कार्य किये जाते हैं। योरोप और अमेरिका की धार्मिक संस्थाओं में पादरी आदि मुख्य प्रकार्यकारी होते हैं। चर्च में इकट्ठे होने वाले व्यक्तियों की भीड़ प्राप्तकर्ता होती है। मेडिकल संस्थाओं में डाक्टर और नर्स प्रमुख प्रकार्यकारी और मरीज़ प्रमुख प्राप्तकर्ता होते हैं। आर्थिक प्रणाली में मालिक और मजदूर प्रकार्यकारी हैं और उपभोक्ता प्राप्तकर्ता हैं।

अधिकारशक्ति और अधीनता :—किसी भी संस्था के मूल्यों में नियमों का एक सैट भी होता है जो अनेक प्रकार के निर्णये लेने और उन्हें लागू करने के लिये, अधिकार-शक्ति देता है। उदाहरण के लिये, पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली का एक निश्चित तत्व यह है कि जो व्यक्ति पूंजी लगाते हैं उन्हें उत्पादित होने वाली वस्तु की मात्रा, गुण और किस्म के सम्बन्ध में नीति बनाने की अधिकार-शक्ति रहेगी। इसी प्रकार, योरोप में समाज के प्रत्येक सदस्य को यह अधिकार नहीं है कि वह बच्चों को दण्ड दे सके। वहाँ केवल माता-पिता को ही यह अधिकार प्राप्त है। बाबा, दादी, चाचा, चाची और अन्य रक्त सम्बन्धियों को बच्चों को दण्ड देने का सीमित अधिकार है।

परिभाषा :—ऑगबर्न और निमकॉफ ने संस्था की परिभाषा इस प्रकार से

दी है "सामाजिक संस्थायें मौलिक मानव आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की संगठित और सिद्ध विधियाँ हैं।"*

मूर के शब्दों में "संस्था व्यवहार का एक स्थायी, गूढ़, सम्पूर्ण, संगठित नमूना है जिसके द्वारा सामाजिक नियंत्रण स्थापित किया जाता है और जिसके द्वारा मौलिक सामाजिक इच्छायें या अवश्यकतायें पूरी होती हैं।"†

समिति और संस्था :—जब मनुष्य समितियाँ बनाते हैं तो सामान्य कार्यों को करने के लिये और सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को नियन्त्रित करने के लिये नियम और विधियाँ (procedures) बनाना भी आवश्यक होता है। प्रत्येक समिति के अपने विशेष उद्देश्य के अनुसार विशेष संस्था होती है। परिवार के पास विवाह है अर्थात् यौन सम्बन्ध की एक संस्था; राज्य के पास विधान और कानून होता है। हम समितियों के सदस्य होते हैं न कि संस्थाओं के। बहुधा समिति तथा संस्था में धोखा उत्पन्न होता है क्योंकि एक ही शब्द का दोनों अर्थों में प्रयोग किया जा सकता है। हमारी परिभाषा के अनुसार परिवार एक समिति है और एक विवाह (monogamy) एक संस्था है, कालेज एक समिति है और लेक्चर और परीक्षा सम्बन्धी नियम संस्था हैं। परन्तु अस्पताल, पार्लमिंट और जेलखानों को हम क्या कहेंगे? जब अस्पताल का हम अर्थ किसी इमारत या उपचार के नियम से लगाते हैं तब हम उसे संस्था कह सकते हैं। जब हम अस्पताल का अर्थ डाक्टरों, नर्सों आदि से लगाते हैं तब हम उसे समिति कह सकते हैं। यदि हम किसी संगठित समूह के विषय में सोचते हैं तब वह समिति हैं; यदि किसी विधि या नियम के बारे में सोचते हैं तो वह संस्था है। समिति से सदस्यता का बोध होता है, संस्था से सेवा के ढंग या साधन का। हम संस्थाओं के सदस्य नहीं होते हैं। हम विवाह के सदस्य नहीं बल्कि परिवार के सदस्य होते हैं। समिति संस्था के मुकाबले में कम सार्वभौमिक और कम स्थायी होती है। समिति मूर्त और संस्था अमूर्त होती हैं।

समुदाय और समिति :—समुदाय और समिति का अन्तर स्पष्ट हो जाता है यदि हम एक या दो उदाहरण लें। हम किसी शहर को समुदाय कह सकते हैं। परन्तु अपने अर्थ में किसी कालेज या ट्रेड यूनियन को नहीं। हम देश को एक

---

* "Social institutions are organised, established ways of satisfying certain basic human needs."

—Ogburn and Nimkoff. *A Hand book of Sociology*. p, 365.

† An enduring, complex, integrated, organised behaviour pattern through which social control is exerted and by means of which the fundamental social desires or needs are met."

—Moore, H. E. Fairchild's *Dictionary of Sociology*. p 167.

समुदाय कह सकते हैं न कि व्यापारियों की किसी राष्ट्रीय समिति को। ट्रेड यूनियन, व्यापारियों की समिति आदि संगठन हैं जो कि समुदाय के अन्दर पाये जाते हैं। समिति सदस्यों के सामान्य उद्देश्य या उद्देश्यों की सामूहिक पूर्ति के लिये बनाई जाती है। समुदाय किन्हीं विशेष उद्देश्यों के लिये नहीं है। यह जान-बूझकर नहीं बनाया जाता। इसका कोई आदि अन्त नहीं होता। यह केवल सामान्य जीवन का एक क्षेत्र है जो किसी भी समिति की अपेक्षा अधिक पूर्ण है और अपने आप बना है। समिति विशेष उद्देश्यों के कारण बनी हुई होती है ,इसलिये आँशिक (partial) होती है, समुदाय सम्पूर्ण (integral) है न कि आंशिक। आधुनिक सामाजिक विकास की एक विशेषता यह है कि समुदाय के अन्दर असंख्य समितियाँ बन गई हैं। प्रत्येक उद्देश्य या स्वार्थ जो कि कुछ मनुष्यों के लिये सामान्य होता है किसी समिति को जन्म देता है। समुदाय की सदस्यता अनिवार्य है, पर समिति की सदस्यता ऐच्छिक होती है। समुदाय स्थायी होता है जब कि समिति अस्थायी होती है।

समिति और समाज में अन्तर—समिति और समाज का सबसे पहला अन्तर यह है कि समिति मनुष्यों की सदस्यता पर निर्भर है और समाज केवल सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। इस प्रकार समिति मूर्त है और समाज अमूर्त। मनुष्य किसी विशेष समिति के बिना भी रह सकता है परन्तु समाज के बाहर मनुष्य का रहना सम्भव नहीं है। समाज के जन्म का कोई समय नहीं और न कभी उसका अन्त ही हो सकता है। समाज चिरस्थायी है। समिति किसी विशेष उद्देश्य को लेकर किसी विशेष समय पर बनाई जाती है और उद्देश्य की पूर्ति के बाद वह समाप्त हो जाती है।

---

१२ सामाजिक पद और कार्य या भूमिकायें (Social Status and Roles)

पद (status) समाज में किसी व्यक्ति की स्थिति (position) का द्योतक है। एक ओर यह शब्द पदवी का संकेत करता है। किसी व्यक्ति की समूह में स्थिति या दूसरे व्यक्ति के सामने उसका स्थान ही उसका पद है। इस प्रकार, हम कहते हैं कि समूह में किसी व्यक्ति का ऊँचा या नीचा स्थान (rank) है, वह नेता है या अनुयायी है। दूसरी ओर, पद एक प्रकार के औपचारिक (formalised) व्यवहार के विचार को प्रकट करता है। नेता योजनायें बनाता है, आज्ञायें देता है और उनका पालन करवाता है, उसको अनेक कार्य करने होते हैं, एक निश्चित पार्ट अदा करना होता है। किसी विशेष पद से सम्बद्ध व्यवहार को ही कार्य (role) कहा जाता है। समूह में किसी व्यक्ति का कार्य उसके पद को प्रकट करता है।*

पद क्योंकि एक समूह में स्थिति है, इसलिये व्यक्ति के जितने भी समूहों से जितने प्रकार के सम्बन्ध होते हैं, उतने उसके पद होते हैं। साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न प्रकार के अनेक पद होते हैं। उदाहरण के लिये, श्री विजयकुमार का एक पुरुष, एक वयस्क, एक पति और एक पिता के रूप में पद है। श्री विजयकुमार का संगीत समिति में भी पद है जिसके वह सदस्य हैं, परन्तु जिसमें वह कोई पदाधिकारी नहीं है और न कोई महत्वपूर्ण कार्य ही करते हैं। वह परिवार के मुखिया हैं और इसलिये परिवार में उनका पद ऊँचा है। अपने व्यावसायिक समूह में भी उनका एक पद है। वह अनेक वर्षों से किसी जगह नौकरी करते हैं परन्तु कई वर्ष तक वहाँ कार्य करने के बावजूद भी उनका पद निम्न है क्योंकि वह अपने सहकार्यकर्त्ताओं और अफसरों के द्वारा कुछ अकुशल समझे जाते हैं। इसी प्रकार, विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति के अनेक पद होते हैं। हो सकता है कि कुछ क्षेत्रों में उनका पद ऊँचा हो और दूसरों में निम्न जैसा कि श्री विजयकुमार के उदाहरण से स्पष्ट है।

---

* Ogburn and Nimkoff. A Handbook of Sociology, p. 203

पद का प्रयोग एक वचन में किया जाता है; किसी व्यक्ति का पद उसके सब अलग-अलग पदों का जोड़ होता है। इस तथ्य का औचित्य प्रमाणित करना दुष्कर होगा। यह बतलाना कि किस प्रकार पदों को जोड़ा जा सकता है उसी तरह कठिन है जिस प्रकार कि दो सेबों और दो सन्तरों को जोड़ना कठिन है। जब हम किसी व्यक्ति के पद के विषय में बात करते हैं तब हम उसके अनेक पदों में से चुनाव करते हैं। हमारे मस्तिष्क में एक विशेष पद होता है—उसका सामाजिक वर्ग। हम उन क्लबों पर विचार करते हैं जिनका वह सदस्य है, उसके धन ऐश्वर्य की मात्रा पर भी विचार करते हैं। जब हम साम्राज्ञी एलिजाबेथ के पद पर विचार करते हैं तो युवती या पत्नी के रूप में उनके पद को ध्यान नहीं देते हैं बल्कि एक साम्राज्य की शासिका के रूप में विचार करते हैं। इस प्रकार अनेक पदों में से चुनाव किया जाता है।

मैकाइवर ने कहा है: "पद वह सामाजिक स्थिति है जो अपने स्वामी के लिये, उसके व्यक्तिगत गुणों अथवा सामाजिक सेवाओं के अतिरिक्त, आदर, प्रतिष्ठा और प्रभाव की मात्रा निश्चित करती है।"*

मार्टिन्डेल और मौनेकसी के अनुसार: प्रतिष्ठा स्थिति सामाजिक झुण्ड में एक स्थान है जिसका परिज्ञान आदर के प्रतीकों और कार्य के स्वरूपों से किया जा सकता है।†

'पद' के तथ्यों के अपने व्यावहारिक प्रदर्शन (behaviorial manifestation) में ऐसी सामाजिक कियायें सम्मिलित हैं जैसे कि किसी परेड में सबसे आगे घोड़े पर या पैदल चलना, किसी विशेष अवसर और स्थान पर द्वार से सबसे पहले प्रविष्ट होना, सबसे पहले परिचित कराया जाना, डिनर टेबिल पर आतिथ्यकारिणी के दायें या बायें बैठना। जिन व्यक्तियों के समान पद होते हैं वे प्रतिष्ठित अवसरों पर समान आदर पाते हैं।

पद का सूक्ष्म अध्ययन करने से हमें दो प्रकार के पद दिखलाई देते हैं: पहले प्रकार के पद को हम नैसर्गिक पद कहेंगे। इसका सम्बन्ध प्रतिष्ठा स्थितियों से है जिसमें कोई व्यक्ति परिवार, शारीरिक गुण, ज्ञान या निपुणता के कारण प्रतिष्ठा

---

* "Status is the social position that determines for its possessor, apart from his personal attribute or social service, a degree of respect, prestige and influence."

—MacIver and Page, *Society* p. 350

† "We define status as a position in social aggregate identified with patterns of prestige symbols and action."

—Martindale and Monachesi, *Elements of Sociology*, p. 640

और सम्मान प्राप्त करता है। नैसर्गिक पद से हमारा तात्पर्य उन प्रतिष्ठा स्थितियों से है जिनमें उन गुणों से सम्पन्न होने के कारण कोई व्यक्ति भाग लेता है जो समाज में उच्च स्थान व आदर प्राप्त किये हुए है। जहाँ शारीरिक सौन्दर्य, संगीतकला, प्रवीणता, वैज्ञानिक ज्ञान, साहित्यिक योग्यता आदि का मूल्य व महत्व होता है वहाँ ऐसे व्यक्ति प्रतिष्ठित समझे जाते हैं जो इन गुणों से युक्त होते हैं। इस प्रकार के हमारे पास अनेक उदाहरण हैं कि अपने शारीरिक सौन्दर्य के कारण निम्न परिवार में उत्पन्न स्त्रियाँ उच्च परिवारों में विवाह करके उच्च श्रेणी में आ गई। इस मामले में प्रतिष्ठा और पद उस गुण पर निर्भर है जिनका समाज में विशेष आदर है।

दूसरे प्रकार के पदों को हम 'प्राप्त' पद कह सकते हैं। इसके अन्दर वह प्रतिष्ठा और पद आता है जो कि ऊँचे ऑफिस या पदवी पर आरूढ़ होने के कारण कोई व्यक्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार भारतवर्ष के राष्ट्रपति का ऑफिस उसके अधिकारी को विशेष पद प्रदान करता हैं।

सामाजिक पद के आधार (Bases of Social Status)

सामाजिक पद के आधार एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न पाये जाते हैं और एक ही समाज में एक ऐतिहासिक काल से दूसरे ऐतिहासिक काल में भिन्न पाये जाते हैं। वास्तव में सामाजिक पद संस्कृति के ऊपर निर्भर करते हैं—किस संस्कृति में किन गुणों को अधिक महत्व और आदर प्रदान किया जाता है। कुछ आदिवासी समुदायों में प्रतिष्ठा व्यक्तिगत निष्पत्ति (achievement) पर निर्भर करती है और कुछ में अन्य विषयों पर। सामाजिक पद (status) जन्म, सम्पत्ति, राजनैतिक शक्ति, प्रजाति अथवा जैसा कि चीन में होता है, बौद्धिक उन्नति के अन्तरों के आधार पर निश्चित हो सकता हैं।

कार्ल मार्क्स (Karl Marx) जैसे अनेक लेखकों ने इस बात पर बल दिया है कि किसी व्यक्ति का पद उसकी आर्थिक स्थिति से ही निश्चित होता हैं। आधुनिक शास्त्रकारों ने इस बात का खण्डन किया है। उनके विचार में धन के अतिरिक्त भी अनेक वस्तुयें हैं जो किसी व्यक्ति के पद व प्रतिष्ठा को निश्चित करती हैं। उदाहरण के लिए, भारतवर्ष के किसी गाँव में यदि कोई निर्धन ब्राह्मण किसी धनी शूद्र के घर नौकरी कर लेता है तब भी उसका आदर उस शूद्र की अपेक्षा अधिक होगा। यही जन्म पद का आधार हुआ। इसी प्रकार किसी गाँव में अनेक पीढ़ियों से रहने वाला कोई वयोवृद्ध हाल में वहाँ बसे हुए एक धनी व्यक्ति की अपेक्षा आदर का अधिक पात्र माना जायेगा। वास्तव में वर्तमान सामाजिक स्थिति को देखते हुए हमें कार्ल मार्क्स से सहमत होना पड़ता है कि आर्थिक स्थिति ही किसी व्यक्ति के पद को निश्चित करने में प्रमुख हाथ रखती है। उच्च अट्टालिकाओं में रहने वाले, चमचमाती

हुई मोटरों पर बैठने वाले, बड़े-बड़े क्लबों में विचरण करने वाले व्यक्ति ही वास्तव में आधुनिक काल में सर्वसाधारण की आँखों में ऊँचा स्थान प्राप्त करते हैं। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि धन के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती। बर्टरेण्ड रसल (Bertrand Russel) सम्पूर्ण संसार में एक अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति समझे जाते हैं जिसका कारण उनकी बौद्धिक प्रतिभा है न कि धन।

प्रतिष्ठा और सम्मान (Prestige and Esteem)

सामाजिक संरचना में प्रत्येक पद के साथ उसका मूल्यांकन भी जुड़ा होता है। प्रत्येक पद 'अच्छा' या 'महत्वपूर्ण' या मुश्किल' या 'अपराधी' या 'गन्दा' समझा जाता है। समाज के व्यवहार-आदर्शों में इस बात का निर्णय होता है कि किस हद तक कोई पद वांछनीय है। पद का यह मूल्यांकन ही उसकी प्रतिष्ठा है। किसी पद पर आरूढ़ व्यक्ति के कार्य करने के ढंग के मूल्यांकन को हम सम्मान (esteem) कहते हैं। यह उसके साथियों के द्वारा इस बात का निर्णय है कि कितने अच्छे या बुरे ढंग से वह अपने कार्य से सम्बन्धित आशाओं को पूरा करता है। हमारे देश में एक मिनिस्टर के पद की प्रतिष्ठा कहीं अधिक है बनिस्बत किसी अफसर के। चाहे मिनिस्टर कार्य अच्छे ढंग से करे या न करे, उसके लिये वह योग्य हो या न हो, उसके पद की प्रतिष्ठा ऊँची रहेगी। परन्तु एक ही पद पर होते हुए भी भिन्न अफसरों या मिनिस्टरों को प्राप्त सम्मान में अन्तर होगा। यह उनके गुण और कार्यकुशलता पर निर्भर करेगा। ऊँचे पद पर होकर भी कोई व्यक्ति कम सम्मान पा सकता है, और नीचे पद पर होकर भी कोई अधिक सम्मान पा सकता है।

कार्य पद का एक गत्यात्मक या व्यवहार-सम्बन्धी पहलू है। पद ग्रहण किये जाते हैं, कार्य किये जाते हैं। कार्य वह ढंग है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति किसी पद की जिम्मेदारी पूरी करता है और उससे सम्बन्धित विशेषाधिकार (privilege) और परमाधिकार (prerogatives) का आनन्द उठाता है।* किसी पद पर होने पर जो भी कोई व्यक्ति करता है वह उसका कार्य है। एक ही से पदों में विभिन्न व्यक्ति भिन्न बातें करते हैं। उदाहरण के लिये, अमेरिका के प्रेसीडेन्ट होते हुये कैल्विन कूलिज के कार्य हर्बर्ट हूवर के कार्य से, और फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के कार्य हैरी ट्रूमैन के कार्य से भिन्न थे। पद लगभग वही था, परन्तु कार्यों में अन्तर आ गया था। हम 'लगभग वही' कहते हैं क्योंकि समय के साथ पद भी बदलता है। उसमें नये व्यवहार-आदर्श (norms) जुड़ते हैं और पुराने हटा लिये जाते हैं। इस प्रकार, युद्ध

* "A role is the manner in which a given individual fulfills the obligations of a status and enjoys its privileges and prerogatives." Bierstedt, *The Social Order*.

काल के कारण रूजवेल्ट और ट्रूमैन को विशेष संकटकालीन या युद्ध सम्बन्धी अधिकार दिये गये जो कूलिज और हूवर को नहीं प्राप्त थे।

कार्यों की अन्योन्य प्रकृति (The reciprocal nature of roles)

प्रत्येक कार्य के साथ कुछ प्रत्याशायें बँधी होती हैं। जिस ढंग से, अच्छा या बुरा, कोई कार्य किया जाता है उसे कार्य-व्यवहार (role behaviour) कहते हैं ? इस प्रकार, किसी दूसरे कार्य की चर्चा किये बगैर हम किसी एक कार्य को नहीं समझ सकते। उदाहरण के लिये, संतान के बगैर कोई पिता नहीं हो सकता,नौकर के बगैर मालिक नहीं हो सकता। यह आवश्यक है कि प्रत्याशित ढंग से करने वाला कोई दूसरा कार्य भी होना चाहिए। इस अर्थ में, कार्य अधिकार और कर्त्तव्यों का एक क्रम होते हैं, यानी उनसे हमें व्यक्तियों के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान के सम्बन्धों का ज्ञान होता है।

पद और कार्यों के स्वरूप (Forms of status and role)

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति के अनेक पद होते हैं। इनमें से कुछ प्रदत्त (ascribed)और कुछ अर्जित (achieved) होते हैं। प्रदत्त पद से हमारा तात्पर्य उन स्थितियों से है जो व्यक्ति की योग्यता या कार्य-कुशलता का ख्याल किये बगैर उसे दी जाती हैं। "राजकुमार" एक प्रदत्त पद है; जहाँ वंशानुगत राजशाही है और जहाँ राजकुमार कहलाने के लिये किसी को कोई प्रयास नहीं करना पड़ता वह राजकुमार के रूप में ही जन्म लेता है, चाहे वह खूबसूरत या बदसूरत है, नाटा या लम्बा है, बुद्धिमान या मूर्ख है; वह राजकुमार ही रहेगा। दूसरी ओर अर्जित पद जन्म से प्राप्त नहीं होते बल्कि उनको प्राप्त करने के लिये व्यक्तियों को सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। पुरुष होना एक प्रदत्त पद है; परन्तु पति होना एक अर्जित पद है। बिना विवाह किये कोई पति नहीं हो सकता। हब्शी एक प्रदत्त पद है। परन्तु पुलिसमैन एक अर्जित पद है। कोई व्यक्ति अपना काले से गोरा रंग नहीं कर सकता परन्तु कोई पुलिसमैन के रूप में पैदा नहीं होता।

बियरस्टैड ने कहा है कि प्रदत्त पद अनैच्छिक (involuntary) समूहों की सदस्यता से प्राप्त होते हैं, यानी जन्म के बाद ही अनिवार्य रूप से जिसका सदस्य बनना पड़ता है; अर्जित पद ऐच्छिक समूहों की सदस्यता से।* उदाहरण के लिये, आयु-पद और योनि-पद प्रदत्त होते हैं, न कि अर्जित। यह पद जैवकीय दशाओं पर

---

* "Ascribed statuses are derived from membership in involuntary groups;achieved statuses from membership in voluntary groups."
—Bierstedt. op. cit. p. 519.

निर्भर करते हैं और इनके सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कर सकते। नातेदारी से सम्बन्धित (kinship) पद भी प्रदत्त होते हैं। हम अपने सम्बन्धियों का चयन नहीं करते, न बहनों का, न चचेरे बन्धुओं का, न मौसी चाची का। यह सम्बन्ध व पद हम पर जबरदस्ती लादे जाते हैं। दूसरी ओर, वैवाहिक और पिता-सम्बन्धी पद प्राप्त किये जाते हैं। किसी के लिये यह अनिवार्य नहीं है कि वह पिता, पत्नी या पति बने ही।

इसी प्रकार, व्यक्ति को अपने जन्म स्थान के सम्बन्ध में कोई छूट (choice) नहीं होती है और इसीलिये उसके भौगोलिक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय पद भी प्रदत्त होते हैं। यह पद बाद में बदले जा सकते हैं, परन्तु शुरू में नहीं। कोई अपना प्रजातीय पद भी नहीं चुनता है। इसी प्रकार, शुरू में किसी धार्मिक समूह के सदस्य के रूप में भी हमारा पद प्रदत्त होता है। हम अपने माता-पिता के धार्मिक पद के साथ अपना जीवन प्रारम्भ करते हैं। बाद में चाहें तो हम धर्म परिवर्तन करके यह पद बदल सकते हैं। इसी प्रकार, वर्ग-पद भी शुरू में प्रदत्त होता है, जन्म के समय हम अपने माता-पिता की वर्ग-स्थिति प्राप्त करते हैं बाद में उसे बदला जा सकता है। दूसरे शब्दों में, कुछ पद शुरू में प्रदत्त होते हैं और बाद में अर्जित हो जाते हैं।

शिक्षित होने का पद प्राप्त किया जाता है। इसी प्रकार, व्यवसाय-सम्बन्धी पद भी प्राप्त किया जाता है। कोई अनिवार्य रूप से मिस्त्री, ठेकेदार, प्रोफेसर या बैंकर नहीं होता। हमारे समाज में राजनीतिक-दल से सम्बन्धित पद भी अर्जित किया जाता है। व्यक्ति कांग्रेसी, जनसंघी या समाजवादी का पद अर्जित करता है। सत्य तो यह है कि अधिकतर संगठित समूह या समितियाँ ऐच्छिक होती हैं। इसलिये उनकी सदस्यता से प्राप्त पद भी अर्जित कहे जाते हैं।

इस सम्बन्ध में यह बताना भी आवश्यक है कि कुछ पद जो एक समाज में अर्जित होते हैं, वे दूसरे समाज में प्रदत्त हो सकते हैं। उदाहरण के लिये मध्यकालीन समाज में धार्मिक पद, वर्ग पद, और सामान्यतः व्यवसाय-सम्बन्धी पद प्रदत्त होते थे। एक तानाशाही समाज में राजनैतिक पद प्राप्त होता है और उसमें परिवर्तन करने का प्रयास खतरे से खाली नहीं होता। कुछ समाजों में, जैसे आदिवासी समाज में सदस्यों के व्यवसाय-सम्बन्धी पद उनकी आयु और योनि और नातेदारी से निश्चित होते हैं और पुत्र पिता के कदमों में चलते हैं। भारत में जाति-पद नातेदारी के पद से निश्चित होता था और स्थायी पद होता था। खुले समाजों में जहाँ सामाजिक गतिशीलता (mobility) सम्भव है, वर्ग-पद अर्जित किये जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रदत्त और अर्जित पदों की मात्रा में विभिन्न समाजों में अन्तर होता है।

प्रदत्त पद और कार्य (Ascribed statuses and roles)

आयु—सभी समाजों में आयु के आधार पर व्यक्ति के पद और कार्यों में अन्तर होता है। वयस्क लोगों में किशोर लोगों की अपेक्षा अधिक शारीरिक शक्ति और अनुभव होता है। वृद्धावस्था में मानसिक और शारीरिक शक्ति कम हो जाती है परन्तु आयु से सम्बन्धित पद और कार्य प्रथा से अधिक निश्चित होते हैं, न कि शरीरशास्त्र से।

शिशु का प्रदत्त पद—कुछ समाजों में बच्चे को लघुरूप (miniature) वयस्क समझा जाता है। और उससे यह आशा की जाती है कि वह एक 'छोटे पुरुष' या 'छोटी स्त्री' के प्रकार व्यवहार करेगा। दूसरे लोगों में बच्चों से निःशब्द समरूपता (conformity) की मांग की जाती है। अपने से बड़ों के सामने बोलना मना होता है। कुछ दूसरे समाजों में बच्चे को बहुत ऊँचा पद दिया जाता है। ऐसा मारक्वीसन लोगों में होता है जहाँ सबसे बड़े लड़के को, उसकी आयु को दृष्टि में रखे बगैर, परिवार का मुखिया समझा जाता है।

क्योंकि प्रत्येक कार्य की परिभाषा दूसरे कार्य के सन्दर्भ में दी जाती है, माता-पिता और बच्चे के बीच के सम्बन्ध अन्योन्य (reciprocal) होते हैं। पिता से भी यह आशा की जाती है कि वह अपने बच्चों की उचित रूप से देखभाल करेगा। अक्सर ऐसी उदासीनता के लिए उसे दण्ड भी दिया जाता है।

युवा लोगों का प्रदत्त पद—कुछ समाजों में बाल्यावस्था से किशोरावस्था में प्रवेश करने पर विशेष संस्कार किये जातेहैं। हम स्कूल जाने के सम्बन्ध में—प्राइमरी, सैकेण्ड्री और कालेज—एक प्रकार का आयु-विभाजन करते हैं। मकतब और हाईस्कूल पास होने पर संस्कार होना इस बात का द्योतक है कि लड़के या लड़की ने नये कार्य और पद में प्रवेश किया है। वहुत सी प्रतियोगिता परीक्षायें जैसे कि I. A. S. में परीक्षार्थी की कम से कम आयु भी निर्धारित होती है। मिलों में नौकरी के लिए आयु, विवाह योग्य आयु, अपराध के उत्तरदायित्व की आयु (बाल-अपराधी की आयु से यह स्पष्ट है) के सम्बन्ध में कानूनों में परिवर्तन हुए हैं।

वयस्क का प्रदत्त पद—प्रत्येक वन्य जाति या राज्य इस बात की व्यवस्था वयस्कों के लिये रखता है कि वे समुदाय के नियन्त्रण में कुछ कार्य करें। पूरी तौर से समुदाय की सदस्यता प्राप्त करने की आयु भिन्न समाजों में भिन्न होती है। हमारे समाज में राजनैतिक वयस्कता (majority) व्यक्ति तब प्राप्त करता है जब उसे वोट डालने का अधिकार मिलता है। विभिन्न पदों के लिये भी आयु निश्चित होती है।

वृद्धजनों का प्रदत्त पद—ऐस्किमों लोगों में वृद्धजनों का पद अत्यन्त निम्न

होता है। खाद्य-सामग्री के अभाव में उनकी हत्या करने का अधिकार अन्य सदस्यों को रहता है। इसके विपरीत कुछ समाजों में, विशेषकर आदिवासी समाजों में, वृद्धजनों को सबसे अधिक सम्मान और शक्ति प्राप्त होते हैं। चीन में, जहाँ पूर्वजों की पूजा की जाती है, पारिवारिक और सामुदायिक जीवन में वृद्धजनों की शक्ति असीमित रही है।

योनि (Sex)—प्रत्येक समाज में स्त्री और पुरुषों के भिन्न पद और कार्य हैं। आधुनिक सभ्यताओं में स्त्रियों के पद और कार्यों में विशेष उन्नति हुई है। फिर भी, अधिकतर समाजों में सामान्यतः शारीरिक (manual) श्रम पुरुष करते हैं। योरप, अमेरिका आदि में टाइपिस्ट, सेक्रेटरी आदि के पद और कार्य स्त्रियों को ही दिये जाते हैं। कुछ समाजों में स्त्रियाँ ही अधिकतर शारीरिक (manual) श्रम करती हैं। मारक्वीसन लोगों में खाना बनाना, घर की व्यवस्था, बच्चों को पालना पुरुषों का कार्य है। मातृसत्ताक और पितृ सत्ताक समाजों में स्त्रियों और पुरुषों के पद और कार्यों में विशेष अन्तर होता है।

प्रजाति (Race)—संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, रोडेसिया और कुछ अन्य समाजों में, प्रजाति एक प्रदत्त पद है। दक्षिण अफ्रीका और रोडेसिया में प्रजाति विभेद अपनी चरम सीमा पर है। वहाँ गोरों और कालों के रहने के क्षेत्र, स्कूल, अस्पताल, खेलकूद से सम्बन्धित क्लब अलग हैं। वहाँ उच्च सामाजिक, राजनैतिक पद केवल गोरे ही प्राप्त कर सकते हैं।

जाति (Caste)—प्रजाति की भाँति जाति भी अनेक समाजों, विशेषकर भारत, में रहा है। अनेक समाज सुधारकों और कानूनों के कारण बहुत हद तक इसका महत्व कम हो गया है परन्तु राजनीतिक चुनावों, नौकरी, आदि के अवसरों पर इसका प्रभाव स्पष्ट होता है। यद्यपि अधिकतर स्थानों में उच्च जातियों में परस्पर ऊँच-नीच की भावना कम हो गई है, फिर भी अछूतों को जाति में पूरी तरह से नहीं अपनाया गया है।

अर्जित पद और कार्य (Achieved Statuses and Roles)

चाहे कितना भी महत्व कोई समाज प्रदत्त पदों को क्यों न दे, हर समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपनी विशेष योग्यताओं या आकांक्षाओं के कारण उस स्थिति को बदल देते हैं जो सामाजिक संरचना में उनको प्रदान की गई है। इसलिए हर समाज इस बात की थोड़ी बहुत गुंजायश रखता है कि पद में ढंग से परिवर्तन हो सके। वास्तव में नियम-विरुद्ध चलने वाले व्यक्ति से समाज लाभ उठाता है, बजाय उसको दण्ड देने के। साथ ही, पदों में कुछ परिवर्तनों को मान्यता देकर व्यक्ति ऐसे सदस्यों को भर्ती कर सकता है जिसमें ऐसे पदों के लिये असाधारण

योग्यता है जो औसत योग्यता से पूरे नहीं किये जा सकते। सेना का मुखिया, कलात्मक वस्तुओं का निर्माणकर्त्ता, आविष्कारक—यह ऐसे पदों के उदाहरण हैं जिन्हें समाज प्रतियोगिता द्वारा प्राप्त करना अधिक लाभदायक समझता है, बनिस्बत जन्म के आधार पर उन्हें प्रदत्त करने के।

जितना अधिक जटिल कोई समाज होता है—उसका श्रम-विभाजन जितना ही विशिष्ट होगा—वहाँ अर्जित पदों की संख्या उतनी अधिक होगी। यदि समाज का प्रत्येक पुरुष सदस्य स्वयं अपने लिये शिकार करे, मकान बनाये, औजार बनाये, और अन्य कार्य करे तो उसकी योग्यता सीमित रहेगी और समाज और स्वयं के लिये लाभकारी न होगी। परन्तु एक बार समाज की संरचना ऐसी हो जाने पर कि एक व्यक्ति मकान बनाने में, दूसरा व्यक्ति औजार बनाने में प्रवीणता प्राप्त करता है, समाज और प्रवीण व्यक्ति दोनों ही अधिक लाभ उठा सकते हैं। अधिक और अच्छे मकान बन सकते हैं, अधिक और अच्छे मकान बन सकते हैं यदि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा कार्य करने के लिये प्रोत्साहन दिया जाता है जिसमें वह प्रवीण है।

हमारे समाज में, व्यवसाय-सम्बन्धी लगभग सभी पेशे अर्जित होते हैं। द्वैतीयक समूहों के विस्तार का भी यह अर्थ है कि अधिकतर संगठनों की सदस्यता अर्जित है। हम जन्म से ही Chambers of Commerce के सदस्य नहीं हो जाते। इसी प्रकार, अनेक प्राथमिक समूह के कार्य भी अर्जित होते हैं। उदाहरण के लिये, हम अपने मित्रों का चुनाव करने के लिये स्वतन्त्र हैं। बहुत से समाजों में हम इच्छानुसार कुछ प्रदत्त पदों को अर्जित पदों में बदल सकते हैं। जब हम जन्म लेते हैं तब हमारा धार्मिक पद वही होता है जो हमारे माता-पिता का था, परन्तु बाद में धर्म परिवर्तन करके हम अपना धार्मिक पद बदल सकते हैं।

जिस सामाजिक संरचना में इतने अधिक अर्जित पद होते हैं उसकी प्रमुख विशेषता कार्यों का एक दूसरे से अलग व असम्बद्ध होना नहीं है बल्कि आवश्यक रूप से उनका अन्तःनिर्भर होना है। बढ़ई औजार बनाने वाले पर निर्भर होता है, बुनाई करने वाले गड़रिये पर, व्यापारी बैंकर पर। ऐसी सामाजिक संरचना में इन पदों के लिये प्रतियोगिता बढ़ जाती है, परन्तु इन कार्यों में विशेष प्रवीणता प्राप्त करने के लिये सहयोग भी आवश्यक है।

प्रदत्त और अर्जित-पदों का अन्तःसम्बन्ध (The Inter-relationship of Ascribed and Achieved Statuses)

यदि सभी पद अर्जित हों तो उनमें से अनेकों की पूर्ति न हो सके। इसलिये, इस बात को दृष्टि में रखते हुये समाज कार्य करते हैं जिससे कम से कम इस बात का निश्चय हो सके कि कोई कार्य होगा, चाहे साधारण ढंग से ही हो, बजाय बहुत

अच्छे ढंग से होने की आशा में बिल्कुल ही न हो। प्रत्येक व्यक्ति को कुछ पद प्रदत्त करने से कुछ सुरक्षा (security) हो जाती है। व्यक्ति को ऐसे जीवन का सामना नहीं करना पड़ता जिसमें उसका हर साथी छोटी-छोटी सी बात व प्रतिष्ठा के लिये उसका प्रतियोगी हो। यदि पुरुषों को मालूम हो कि टेलीफोन ऐक्सचेंज में केवल लड़कियाँ ही ली जायेंगी, उन्हें उस पद के लिये प्रतियोगिता करने की आवश्यकता ही नहीं होगी।

१३ सहयोग और संघर्ष (Cooperation and Conflict)

सामाजिक प्रक्रियायें (Social Processes)

समाज का एक संरचनात्मक स्वरूप होता है, उसमें समूह और संस्थायें होती हैं, परन्तु वह गतिशील (dynamic) भी होता है जो लगातार बदलता रहता है और भिन्न दशाओं में भिन्न प्रकार के व्यवहार प्रस्तुत करता है। यहाँ तक कि उसकी संरचना में भी परिवर्धन (modification) होता रहता है। इस अर्थ में समाज एक जीवित प्राणी की भांति है। मनुष्यों के बीच होने वाली अंत:क्रिया का अध्ययन करने पर हम उन प्रक्रियाओं पर भी विचार करते हैं जो उस समय होती हैं जब समूहों का निर्माण होता है, जब सम्बन्ध प्रणाली की स्थापना होती है, जब विभिन्न समूह और संस्कृतियाँ परस्पर मिलती और सुदृढ़ होती हैं या जब समाज में किसी कारणवश परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार सामाजिक प्रक्रियाओं से हमारा तात्पर्य अन्त:क्रिया करने के उन ढंगों से है जिन्हें हम उस समय देखते हैं जब विभिन्न व्यक्ति और समूह परस्पर मिलते हैं और सम्बन्धों की प्रणालियाँ कायम करते हैं या जब जीवन-यापन के वर्तमान ढंगों पर परिवर्तन प्रहार करते हैं।* अपने गतिशील पहलू में समाज से तात्पर्य अन्त:क्रिया करते हुए व्यक्तियों और समूहों से होता है। यह प्रक्रियायें अन्त:क्रिया की पहलू हैं।

वास्तव में सामाजिक प्रक्रियायें समूहों और व्यक्तियों के अन्त:क्रिया करने और सम्बन्ध बनाने के ढंग हैं। मैकाइवर ने कहा है कि सामाजिक प्रक्रिया वह ढंग है जिसमें किसी समूह के सदस्यों के सम्बन्ध एक अपूर्व विशेषता ग्रहण कर लेते हैं। उसने यह भी कहा कि इसमें एक प्रकार के सम्बन्ध से दूसरे प्रकार में परिवर्तन भी

* "By social processes we mean those ways of interacting which we can observe when individuals and groups meet and establish systems of relationships, or what happens when changes disturb already existing mode of life." —Gillin, *Cultural Sociology*.

निहित है। यह परिवर्तन ऊपर की ओर या नीचे की ओर, और आगे की ओर या पीछे की ओर भी हो सकता है जिससे एकीकरण (integration) या विदारण (disintegration) पैदा हो।

किसी समुदाय के जीवन में सामाजिक प्रक्रियायें इतनी मौलिक होती हैं कि मानव समाज को समझने के लिए उनका अध्ययन आवश्यक होता है। वास्तव में कुछ समाजशास्त्रियों ने समाज को भिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं या अन्त.क्रियाओं के स्वरूपों का प्रकटन (expression) माना है, और कहा है कि समाजशास्त्र को केवल इन स्वरूपों का ही अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार, सिमैल ने कहा है कि समाज वहीं पर है जहाँ अनेक व्यक्ति पारस्परिक आदान-प्रदान के सम्बन्ध में हों और जो चीज समाज बनाती है वह हों पारस्परिक प्रभाव डालने की किस्में। इसी प्रकार की धारणा रखने वाले अन्य जर्मन समाजशास्त्री थे रैजनहोफर, टूनीज, वीरकान्त और वानवीज। अमेरिका में सामाजिक प्रक्रियाओं के रूप में समाज का विश्लेषण करने वाले समाजशास्त्री हेज, पार्क, बर्जेस, और रास थे।

सामाजिक सम्बन्ध

समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। हम समाज की व्याख्या सामाजिक सम्बन्धों के द्वारा करते हैं। हम एक "पिता और पुत्र" के बीच सम्बन्ध सोच सकते हैं, "दूकानदार और ग्राहक", "मालिक और नौकर", "नेता एवं अनुयायी", "दो दोस्तों अथवा दुश्मनों अथवा बच्चों" इत्यादि के बीच सामाजिक सम्बन्ध सोच सकते हैं। एक समाज दूसरे समाज से इन सम्बन्धों की जटिलता पर भिन्न हो सकता है।

जब हम इन सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं तो यह अत्यन्त जटिल प्रतीत होते हैं। इन सम्बन्धों में व्यवहार-आदर्श (norms), पद, साधन व साध्य तथा पारस्परिक कर्तव्य, पारस्परिक पद, भी सम्मिलित होते हैं जब दो या दो से अधिक व्यक्ति पारस्परिक सम्पर्क में आ जाते है।*

सबसे पहले प्रश्न उठता है कि सामाजिक सम्बन्ध किसे कहते हैं? सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं—भौतिक सम्बन्ध और सामाजिक सम्बन्ध। मेज पर पड़ी हुई पुस्तकों और मेज के बीच में सम्बन्ध है। इसी प्रकार, कुर्सी व व्यक्ति के बीच, टाइप राइटर और टाइपिस्ट के बीच भी सम्बन्ध है। परन्तु इसमें कुर्सी, टाइप राइटर अथवा मेज व्यक्ति, टाइपिस्ट और पुस्तकों की उपस्थिति से अनभिज्ञ हैं, जागरूक नहीं हैं। ऐसे सम्बन्धों को सामाजिक सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता। वे वस्तुयें एक दूसरे को प्रभावित नहीं करतीं। यह भौतिक सम्बन्ध है।

---

* Davis, *Human Society*.

दूसरी ओर, विभिन्न व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध हैं। यहाँ पर दोनों एक दूसरे के प्रति जागरूक हैं, एक दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं। दोनों में आदान-प्रदान हो सकता है। ऐसे सम्बन्धों को सामाजिक सम्बन्ध कहा जायेगा। यह सामाजिक सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं और यह विभिन्न व्यक्तियों के बीच होने वाली अन्तःक्रिया का संबोधन करते हैं।

वर्गीकरण—सामाजिक सम्बन्धों या सामाजिक प्रक्रियाओं के विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किये गये हैं।

पार्क और बर्जेस के अनुसार मुख्य रूप से सामाजिक घटनाओं का अध्ययन निम्नलिखित सामाजिक प्रक्रियाओं द्वारा होता है—पृथक्करण (isolation), सामाजिक सम्पर्क, सामाजिक अन्तःक्रिया, स्पर्धा, संघर्ष, व्यवस्थान (accommodation) एकीकरण (assimilation), सम्मिश्रण (amalgamation), सामाजिक नियन्त्रण और उन्नति।*

बोगार्डस ने पृथक्करण, प्रेरक (stimulation), संदेशवाहन, संकेत (suggestion), अनुकरण (imitation), प्रसार (diffusion), भेदभाव (discrimination), वादविवाद (discussion), व्यवस्थान (accommodation), एकीकरण (assimilation), और समाजीकरण ((socialization), की सामाजिक प्रक्रियाओं के रूप में चर्चा की है।†

सॉरोकिन ने सामाजिक सम्बन्धों को सात भागों में विभाजित किया है:—

(i) ऐसे सम्बन्ध जो क्रिया के करने और न करने से बनें—बहुत से व्यक्ति एक दूसरे को केवल क्रिया करके ही नहीं बल्कि क्रिया न करके भी प्रभावित कर सकते हैं।

(ii) द्विमुखी (two-sided) और एक-मुखी सम्बन्ध उदाहरण के लिये एक व्यक्ति या समूह दूसरे से प्रभावित होता है परन्तु स्वयं उसको प्रभावित नहीं करता; जैसे, जो पीढ़ी जीवित है वह पिछली पीढ़ी से प्रभावित हो सकती है, परन्तु स्वयं उसको प्रभावित नहीं कर सकती है।

(iii) दीर्घकालीन एवं स्थायी सम्बन्ध और वे सम्बन्ध जो आकस्मिक या अस्थायी हों।

(iv) विरोधी और दृढ़ता प्रदान करने वाले।

(v) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष।

(vi) जागरूकता और असचेत।

(vii) औपचारिक (formal) या नियमित और अनियमित।

समूहों के बीच सामाजिक सम्बन्धः—सामाजिक सम्बन्ध केवल दो व्यक्तियों

---

* Park and Burgess, *Introduction to Science of Sociology.*

† Bogardus, *Fundamentals of Sociology.*

के बीच नहीं होते हैं। वे दो या दो से अधिक समूहों के बीच भी हो सकते हैं, जैसे दो देशों के बीच में लड़ाई, दो व्यावसायिक कम्पनियों में प्रतिस्पर्धा या दो वर्गों में संघर्ष।

हजारों प्रकार के सम्बन्ध—प्रत्येक समाज में सैकड़ों-हजारों प्रकार के विभिन्न सामाजिक सम्बन्ध पाये जाते हैं। एक परिवार में कम से कम पन्द्रह प्रकार के संबंध पाये जा सकते हैं। किसी भी समाज में किस प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध है यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की कसौटियों का प्रयोग उनके व्यवहार में किया गया है। परिवार तीन कसौटियों पर निर्भर करता है—आयु, लिंग और पीढ़ी। इसमें सम्भवत: १५ प्रकार के सम्बन्ध पाये जाते हैं—

पिता	बड़ा लड़का	पति	पत्नी
पिता	छोटा लड़का	बड़ा भाई	छोटा भाई
पिता	बड़ी लड़की	बड़ा भाई	बड़ी बहन
पिता	छोटी लड़की	बड़ा भाई	छोटी बहन
माता	बड़ा लड़का	छोटा भाई	बड़ा भाई
माता	छोटा लड़का	छोटा भाई	छोटी बहन
माता	बड़ी लड़की	बड़ी बहन	छोटी बहन
माता	छोटी लड़की		

उपरोक्त १५ प्रकार के सम्बन्ध साधारणतया सभी एकाकी (nuclear) परिवारों में पाये जाते हैं। संयुक्त परिवार में इसी प्रकार से सम्बन्धों की गिनती अन्य सदस्यों के होने से बढ़ जाएगी।

वर्गीकरण की आवश्यकता—सामाजिक सम्बन्धों की अधिकता और किस्म होने के कारण यह आवश्यक है कि अर्थपूर्ण सामाजिक सम्बन्धों का वर्गीकरण कर दिया जाए। सामाजिक सम्बन्धों की व्याख्या व वर्गीकरण, उनमें होने वाली अन्त:-क्रिया की किस्म के आधार पर किया गया है।

सामाजिक अन्त:क्रिया को दो प्रमुख वर्गों में बाँटा गया है :—

सहगामी (associative) : सहयोग (cooperation), व्यवस्थापन (accommodation), एकीकरण (assimilation)।

असहगामी (Dissociative) : प्रतिस्पर्धा (competitive), संघर्ष (conflict), श्रम-विभाजन।

सामाजिक अन्त:क्रिया (Social Interaction)

सभी सामाजिक जीवन में अन्त:क्रिया मुख्य कारक होती है। बिना अन्त:क्रिया के कोई भी सामूहिक या सामाजिक जीवन नहीं हो सकता। शारीरिक निकटता होने से ही व्यक्ति एक सामाजिक इकाई या समूह नहीं बन जाते। जब व्यक्ति या व्यक्तियों

के समूह ऐसे कार्य करते हैं जैसे कि सामान्य उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए एक साथ काम करना, खेलना, बातचीत करना, तब सामाजिक जीवन बनता है।

मनुष्य समाज में रहता है और उसे दूसरे व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। यह केवल शारीरिक सम्पर्क ही नहीं होता, इसमें मानसिक संपर्क भी होता है। वे एक दूसरे की उपस्थिति से प्रभावित होते हैं। उनके व्यवहार में न्यूनाधिक परिवर्तन भी स्वाभाविक होता जाता है। जब दो व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं तो उनकी अन्त:क्रिया का माध्यम संचार (communication) होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जितने भी सामाजिक सम्बन्ध होते हैं उन सबका आधार सामाजिक अन्त:क्रिया है।

जब दो व्यक्ति या समूह एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं तो उनमें अन्त:-क्रिया होती है। यह चाहे संघर्ष हो, या सहयोग हो, प्रतिस्पर्धा हो या व्यवस्थापन हो। सामाजिक संबंधों के सम्पूर्ण विस्तार को सामाजिक अन्त:क्रिया कहा जा सकता है।

ग्रीन ने लिखा है "सामाजिक अन्त:क्रिया से तात्पर्य उस पारस्परिक प्रभाव से है जो समस्याओं को हल करने और लक्ष्यों की पूर्ति के प्रयत्न में व्यक्ति और समूह एक दूसरे पर डालते हैं।"*

एलड्रिज और मैरिल के विचार में, "सामाजिक अन्त:क्रिया वह सामान्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा दो या अधिक व्यक्ति किसी अर्थपूर्ण संपर्क में आते हैं जिसके फलस्वरूप उनके व्यवहार में, चाहे कम ही, संशोधन हो जाता है।"†

सामाजिक अन्त:क्रिया में हम केवल मनुष्यों के उन्हीं व्यवहारों को नहीं लेते हैं जिनको हम देख सकते हैं—एक दूसरे को नमस्कार कर कुशल मंगल पूछना, अन्य कोई बात करना, हाथ मिलाना ही सामाजिक प्रक्रिया नहीं है—बल्कि यदि दो व्यक्ति कोई शब्द भी नहीं बोलते हैं या स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष व्यवहार नहीं करते तब भी सामाजिक अन्त:क्रिया होती है। उदाहरण के लिये, कोई भी व्यक्ति आवाज, सुगन्ध या अन्य प्रकार से दूसरे व्यक्ति में प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय सावधान होती है। ऐसी प्रत्येक अवस्था में मनुष्य के मस्तिष्क पर दूसरे की आकृति या छाप पड़ जाती है। यही आकृति सामाजिक सम्बन्धों को निर्मित करती है।

---

* "By social interaction is meant the mutual influence the individuals and groups have upon one another in their attempt to solve problems and their striving toward goals."

—Green, *Sociology*.

† "Social interaction is thus the general process whereby two or more persons are in meaningful contact, as a result of which their behaviour is modified, however, slightly."

—Eldredge and Merrill, *Society and Culture*.

अन्त:क्रिया केवल दो व्यक्तियों में ही नहीं बल्कि व्यक्ति और समूहों, व दो समूहों में भी होती है। इस प्रकार सामाजिक अन्त:क्रिया के तीन रूप हैं: —

(१) एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के साथ (person-to-person)

(२) एक व्यक्ति की एक समूह के साथ (person-to-group)

(३) एक समूह की दूसरे समूह के साथ (group-to-group)

वक्तागण व अभिनेता वगैरह श्रोतागण के साथ होने वाली अन्त:क्रिया से पूर्ण-रूप से परिचित होते हैं; दोनों ही एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार से हम सुनते हैं कि दो देशों में युद्ध छिड़ गया है अथवा दो देशों में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की योजना बनी है।

अन्त:क्रिया समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि कर्त्ता की ओर से क्रिया होती है जो दूसरे व्यक्ति में प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। इसी से सामाजिक अन्त:क्रिया होती है। यदि प्रतिक्रिया न हो तो वह अन्त:क्रिया नहीं कही जायेगी। उदाहरण के तौर पर, यदि एक व्यक्ति एक अँधेरे कमरे में कुर्सी से ठोकर खाकर गिर जाये तो वह झुंझलाहट में कुर्सी को ठोकर मारता है परन्तु कुर्सी की ओर से उसकी इस क्रिया के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। इसको अन्त:क्रिया नहीं कहा जाएगा।

अन्त:क्रिया दो किस्म की होती है—प्रत्यक्ष (direct) और प्रतीकात्मक (symbolic)। पहले में हम व्यक्ति की शारीरिक क्रिया को लेते हैं जैसे धक्का देना, लड़ना, नोचना, काटना या अन्य व्यक्तियों से मिलकर कार्य करना या मनोरंजन करना या किसी के साथ घनिष्ट शारीरिक सम्पर्क करना। प्रतीकात्मक अन्त:क्रिया या संदेश (communication) में हम व्यक्ति के जुबानी या अन्य संकेतों, हाव-भावों को और भाषा को, लिखित या बोली जाने वाली को, लेते हैं। प्रतीक (symbol) किसी वस्तु, क्रिया, गुण या सम्बन्ध का प्रतिनिधित्व करता है। यह किसी माने गये (implied) या प्रत्याशित घटना या वस्तु के लिये स्वीकार किया जाता है।

सामाजिक जीवन के लिये संदेशवाहन बहुत ही महत्वपूर्ण है। आधुनिक संसार में जहाँ द्वैतीयक समूहों की संख्या अत्यधिक हो गई है, यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह प्रत्यक्ष आमने-सामने की बोली और इशारों से व्यक्त कर सकते हैं या लम्बी-दूरी के सम्पर्क जैसे छपी हुई पुस्तक, टेलीफोन, टेलीग्राफ़, सिनेमा, टेलीविज़न के द्वारा हो सकता है।

सामाजिक अन्त:क्रिया की दशायें
(Conditions of Social Interaction)

सामाजिक अन्त:क्रिया की मुख्य दशायें दो हैं जिनके बगैर सामाजिक अन्त:क्रिया सम्भव नहीं।

(१) सामाजिक सम्पर्क (social contact)

(२) संचार (communication)

(१) **सामाजिक सम्पर्क:**—अंग्रेजी का contact शब्द लैटिन शब्द con या cum (together) और tango (touch) से मिलकर बना है जिसका अर्थ है 'एक साथ छूना'। 'जब हम 'contact' शब्द का प्रयोग भौतिक क्षेत्र में करते हैं तब तो हमारा तात्पर्य वास्तविक छूने से है पर जब हम सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में इस शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य वास्तविक छूने से, जैसा कि भौतिक पदार्थों के क्षेत्र में होता है, नहीं होता। सामाजिक सम्पर्क का अर्थ व्यक्तियों अथवा समूहों के बीच किसी शारीरिक सम्पर्क का होना नहीं है। शारीरिक सम्पर्क के बिना भी सामाजिक सम्पर्क सम्भव है।

सामाजिक सम्पर्क की स्थापना तब भी हो जाती है जब व्यक्ति आमने-सामने खड़े भर हों अथवा उन्हें एक दूसरे की स्थिति और कार्य का ज्ञान हो जाये। व्यक्ति यदि एक दूसरे से बहुत दूर भी हों, तब भी विभिन्न आविष्कारों के द्वारा, जिनसे इन्द्रियों को प्रभावित किया जा सकता है, सामाजिक सम्पर्क हो जाता है—जैसे कि टेलीफोन द्वारा, टेलीग्राफ, रेडियो, डाक अथवा बहुत से संचार के साधनों द्वारा।

अतः सामाजिक अन्तःक्रिया की सबसे मुख्य दशा सामाजिक सम्पर्क है। बिना सामाजिक सम्पर्क के अन्तःक्रिया प्रारम्भ ही नहीं हो सकती क्योंकि उसके बिना परस्पर प्रभाव पड़ ही नहीं सकता। एक दूसरे से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से विचारों का आदान-प्रदान होने से सामाजिक सम्पर्क स्थापित हो जाता है।

यद्यपि शारीरिक सम्पर्क सामाजिक सम्पर्क का आवश्यक अंग नहीं है, फिर भी शारीरिक सम्पर्क होने पर सामाजिक सम्पर्क गहन रूप से होता है। उससे व्यक्तियों को अन्तःप्रेरणा अधिक मिलती है। आलिङ्गन, हाथ मिलाना, चुम्बन करना, इत्यादि सामाजिक सम्पर्क के लिए आवश्यक पूर्वदशा—प्रतिक्रिया—का आरम्भ होना है। मुस्कराहट, आँख मारना, हाथ मिलाना भी सामाजिक सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

नकारात्मक और सकारात्मक सामाजिक सम्पर्क (Negative and Positive Social Contact)

सामाजिक सम्पर्क सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही प्रकार का सम्भव है। सकारात्मक सामाजिक सम्पर्क वह है जो सहयोगी अन्तःक्रियाओं को उत्पन्न करता है, जैसे सहिष्णुता, व्यवस्था, समझौता, इत्यादि। नकारात्मक सम्पर्क वह है जिनसे असहयोगी अन्तःक्रियाओं का जन्म होता है, जैसे संघर्ष, द्वन्द्व इत्यादि।

एक बीमा कम्पनी का एजेन्ट यदि पालिसी बेचने जाये और उसका ग्राहक उससे हाथ मिलाने से, ठीक से बात करने से, इन्कार कर दे तो उसे भी नकारात्मक सामाजिक सम्पर्क कहेंगे।

इसके अतिरिक्त सामाजिक सम्पर्क प्राथमिक एवं द्वैतीयक भी हो सकता है। प्राथमिक सम्पर्क से तात्पर्य आमने-सामने का सम्पर्क है। द्वैतीयक सम्पर्क किसी एजेन्सी द्वारा होता है, जैसे राम श्याम से कहता है कि रमेश को उसकी कला से बहुत श्रद्धा है। श्याम और रमेश मिले बग़ैर राम के द्वारा सामाजिक सम्पर्क में आ जाते हैं।

(२) **संचार (Communication)** :—सामाजिक अन्त:क्रिया की दूसरी आवश्यक दशा सामाजिक संचार है। मनुष्यों में सम्पर्क पशुओं की भाँति स्वत:चालित अन्त:क्रिया नहीं होती। व्यक्तियों और समूहों में जो भी अन्त:क्रिया होती है वह अर्थपूर्ण होती है। एक व्यक्ति या समूह की मनोवृत्तियाँ और इरादे संचार से ही दूसरे व्यक्ति या समूह को ज्ञात हो पाते हैं। उनकी अन्त:क्रिया संचार द्वारा ही निर्धारित होती है।

यद्यपि सामाजिक सम्पर्क बिना वास्तविक संचार के हो सकता है, परन्तु वह ठीक प्रकार से सामाजिक अन्त:क्रिया का निर्माण नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति बिना मतलब किसी से हाथ मिलाता है, उनमें कोई अर्थपूर्ण संचार नहीं है। व्यक्तियों के बीच संचार शब्दों, शब्द समूहों, पदार्थों और संकेतों, प्रतीकों से हो सकता है। अर्थ न समझने पर कोई संचार नहीं होता और पूर्ण अर्थ समझने पर पूर्ण संचार होता है।

यदि आप किसी से किसी प्रश्न पर वाद-विवाद कर रहे हैं और यदि वह व्यक्ति धीरे से मुस्करा दे तो उस मुस्कान के दो अर्थ हो सकते हैं। पहला, वह आपकी बात से सन्तुष्ट है; दूसरा वह आपकी बात को व्यर्थ अथवा तिरस्कार योग्य समझता है।

सामाजिक पृथक्करण (Social Isolation)

मनुष्यों के बीच होने वाली अन्त:क्रिया में सम्पर्क और संचार का उपयुक्त महत्व समझने के लिए सामाजिक पृथक्करण पर विचार कर लेना सहायक होगा।

व्यक्तियों में पृथक्करण तब पैदा होता है जब या तो उनकी शारीरिक, मानसिक अथवा सामाजिक दशा सामान्य सामाजिक अन्त:क्रिया में रुकावट या बाधा बने अथवा वे किसी ऐसी स्थिति में फँस जायें जो इस अन्त:क्रिया को सामान्य रूप में न होने दे।

पृथक्करण के प्रकार (Forms of Isolation)

पूर्ण पृथक्करण—यह केवल कल्पना मात्र है, क्योंकि ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं होता जिस पर समाज का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता हो। जंगली जानवरों द्वारा अवश्य कुछ बच्चे पैदा होते ही उठा लिए गए, जो साधारण बच्चों से बाद में भिन्न पाये गये, उनमें मानव गुणों का अभाव था। पूर्ण पृथक्करण में एक व्यक्ति

दूसरे व्यक्ति से सम्पर्क रखने या संचार करने में सर्वथा अयोग्य हो जाता है, अतः उसे सामाजिक अन्तःक्रिया का कोई अवसर ही नहीं मिलता।

कभी-कभी पृथक्करण मनुष्यों में इन्द्रियों के अभाव या उनके बिगड़ जाने के कारण भी होता है—उदाहरण के लिए, जैसे, अन्धे व बहरे लोग। इसी प्रकार से मन्द बुद्धि, विक्षिप्त और पागल व्यक्तियों को भी सामाजिक पृथक्करण में रहना पड़ता है। इसी प्रकार, जिन व्यक्तियों में उद्वेगात्मक गड़बड़ी का दोष आ जाता है वे भी सामान्य व्यक्तियों के समान व्यवहार नहीं कर पाते।

प्रजातीय व सांस्कृतिक अन्तरों के द्वारा पृथक्करण—दूसरे प्रकार का पृथक्करण प्रजातीय एवं साँस्कृतिक असमानताओं के कारण होता है। यदि कोई विदेशी हमारे यहाँ आये, तो वह यहाँ की भाषा नहीं समझ सकेगा। यहाँ की संस्कृति उसके लिए नई होगी, और बहुत सी बातों से उसका कोई भी सामाजिक संपर्क नहीं हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त, हिन्दू जातियों में छुआ-छूत पर आधारित पृथकता, स्त्री और पुरुषों में सामाजिक दूरी सामाजिक पृथकता के अन्य उदाहरण हैं। इसी प्रकार दक्षिणी अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीका में विभिन्न प्रजातियों के बीच पृथकता रखी जाती है।

सामाजिक अन्तःक्रिया के प्रकार सामाजिक प्रक्रियायें
(Types of Social Interaction : Social Processes)

सैमुअल बटलर के अनुसार व्यक्तियों के साथ हमारे अनुभव दो प्रकार के हुआ करते हैं। अनुभव या तो रस्सी की भाँति हैं या चाकू की भाँति, अर्थात् वे या तो हमें एक दूसरे से एक सूत्र में बाँधते हैं, या फिर एक दूसरे से अलग हटाते हैं। प्रत्येक सामूहिक जीवन में एक करने वाली और विलग करने वाली दोनों ही क्रियायें चला करती हैं। मनुष्य विवाह करता है, विवाह-विच्छेद भी करता है। मजदूर कार्य भी करते हैं, हड़ताल भी करते हैं।

यह सब मौलिक सामाजिक प्रक्रियायें हैं जो कि समूह जीवन में रहती हैं। जब व्यक्ति एक दूसरे के साथ एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिये कार्य करते हैं, तो उसे 'सहयोग' कहते हैं और जब वे एक दूसरे के प्रति संघर्ष करते हैं तो उनके व्यवहार को 'विरोध' कह कर पुकारते हैं।

'विरोधी' व्यवहार के विभिन्न रूप होते हैं। जब बहुत से व्यक्ति ऐसे उद्देश्यों के पीछे भागते हैं जो कि कम मात्रा में उपलब्ध हैं तो उनमें प्रतियोगिता होती है। जब उद्देश्यों की प्राप्ति छोड़कर प्रतियोगिताओं में केवल एक-दूसरे का विरोध करने की भावना जागृत हो जाये तो वह संघर्ष का रूप धारण कर लेती है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में मुख्य रूप से दो प्रकार की सामाजिक प्रक्रियायें होती हैं या सामाजिक अन्तःक्रियाओं के दो मोटे रूप होते हैं :—

(१) सहगामी (Associative) (२) असहगामी (Dissociative)

सहयोग, व्यवस्थान, आत्मसात वगैरह सहगामी सामाजिक प्रक्रियायें हैं और संघर्ष, प्रतिस्पर्धा, श्रम-विभाजन वगैरह असहगामी सामाजिक प्रक्रियायें कहलाती हैं।

सहयोग वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति और समूह अपने प्रयत्नों को करीब-करीब संगठित रूप में सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संयुक्त कर देते है। समाज में मनुष्य का जीवन मुख्य रूप से 'सहयोग' पर आधारित है। अपने जन्म, पालन-पोषण, शिक्षा और सफल जीवन आदि सभी के लिये उसे दूसरे व्यक्तियों के सहयोग पर निर्भर रहना पड़ता है। समाज की न्यूनतम इकाई परिवार है। परिवार सन्तानोत्पत्ति के द्वारा ही कायम रह सकता है जो कि पति-पत्नी के सहयोग पर निर्भर करता है।

बच्चे का समाजीकरण अर्थात् बच्चे से सामाजिक व्यक्ति बनना उसकी शिक्षा, भाषा, संस्कृति का ज्ञान, समूह में अन्त:क्रिया करने की विधि, इत्यादि की प्राप्ति — दूसरे व्यक्तियों के सहयोग से ही सम्भव है। मनुष्य की बहुत सी आदतें व इच्छायें बिना सहयोग के सन्तुष्ट नहीं की जा सकतीं। अत: हम कह सकते हैं कि 'सहयोग' मनुष्यों के सामाजिक जीवन की एक बहुत ही आवश्यक प्रक्रिया है।

प्रतिस्पर्धा को मूल सामाजिक प्रक्रिया मानने वालों की भूल

बहुत से समाजशास्त्रियों ने प्रतिस्पर्धा को, न कि सहयोग को, मौलिक सामाजिक प्रक्रिया माना है: उन्होंने यह निष्कर्ष वर्तमान प्रतियोगी समाज को लेकर निकाला है। अमेरिकन समाज बहुत ही अधिक प्रतियोगी है। अत: उनका मत है कि प्रतिस्पर्धा ही मौलिक सामाजिक प्रक्रिया है। परन्तु ठीक प्रकार से व्याख्या करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया होने के लिये भी सहयोग का होना आवश्यक है।

जब किसी भी वस्तु के प्राप्त करने वालों की संख्या उस वस्तु की मात्रा से अधिक हो जायेगी, प्रतिस्पर्धा का जन्म हो जायेगा, चाहे वह नौकरी का क्षेत्र हो या सामाजिक स्थिति अथवा सत्ता, शक्ति, ख्याति या किसी साथी को प्राप्त करना हो। जब प्रतिद्वन्द्वियों का ध्यान उस वस्तु की प्राप्ति से हट कर स्वयं एक दूसरे पर केन्द्रित हो जाये तो प्रतिस्पर्धा संघर्ष का रूप ले लेती है।

विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं का सह-अस्तित्व

पहले के समाज के विचारकों ने प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष को ही मुख्य सामाजिक प्रक्रिया माना है। हॉब्स संघर्ष को ही जीवन का आधार मानता है। हॉब्स के मत के समर्थन करने वालों में, रूसो और बेजहाट थे।

प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त की विफलता

डारविन ने अपनी पुस्तक Origin of Species में उद्विकासीय उपकल्पना, "Survival of the fittest" एव "struggle for existence" आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उसके विचार में केवल वे ही व्यक्ति जीवित रहते हैं जो प्राकृतिक पर्यावरण से अनुकूलन कर सकते हैं, जो अधिक उपयुक्त हैं। जो कमजोर हैं वे अधिक उपयुक्त के मुकाबले में जीवित नहीं रह पाते और उनका निरसन हो जाता है। इस सिद्धान्त का प्रयोग सबसे पहले पेड़ पौधों, व जानवरों के लिये किया गया था परन्तु बाद में मानव समाज के लिए भी इसी सिद्धान्त को सही माना गया।

क्रोपोकिन द्वारा डारविन के सिद्धान्त की आलोचना

डा विन के उपरोक्त सिद्धान्त की आलोचना क्रोपोकिन ने अपनी पुस्तक Mutual Aid में की। उसने इस सिद्धान्त पर दो प्रश्न किये। एक तो वह कौन सा क्षेत्र है जिसमें मुख्य रूप से संघर्ष चलता है और दूसरा, इस जीवन के संघर्ष में कौन सबसे अधिक उपयुक्त है।

क्रोपोकिन ने अपने अध्ययन में बताया कि यह संघर्ष एक ही जाति (species) में नहीं था, जितना भिन्न जातियों (species) में। उनके विचार में सहयोग मुख्य सामाजिक प्रक्रिया है, न कि संघर्ष। जानवरों में सदैव सहयोग की भावना रहती है और एक ही तरह के जानवर आपस में झुण्ड में रहते हैं।

वास्तविकता यह है कि सहयोगी एवं विरोधी दोनों ही प्रकार की प्रक्रियायें सामाजिक जीवन के मुख्य अंग हैं। एक बच्चा अपनी माँ से प्यार करता है और सहयोग करता है क्योंकि माँ उसकी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और आनन्द प्रदान करती है। परन्तु वही बच्चा उसके द्वारा लगाये नियन्त्रणों से घृणा करता है।

सहयोग संघर्ष और प्रतियोगिता दोनों की शर्त है

इसके अतिरिक्त प्रतिस्पर्धा और संघर्ष के होने के लिये सहयोग का होना अत्यन्तावश्यक है। यदि दो व्यक्तियों या समूहों में संघर्ष है तो उसके लिये भी उन्हें किसी न किसी का सहयोग प्राप्त करना होगा। यदि दो पहलवान आपस में कुश्ती लड़ना चाहते हैं तो जब तक वे एक दूसरे की चुनौती को स्वीकार नहीं कर लेते अर्थात् सहयोग नहीं करते, लड़ाई हो ही नहीं सकती। इसी प्रकार, प्रतिस्पर्धा भी तभी हो सकती हैं जब उनमें सहयोग हो।

किसी समाज की मुख्य सामाजिक प्रक्रिया वहाँ की संस्कृति पर निर्भर करती है

बहुत से समाज मुख्य रूप से सहयोगी होते हैं और बहुत से समाजों में

प्रतिस्पर्धा मुख्य प्रक्रिया होती है। यह उस समाज की संस्कृति पर, जो व्यक्तियों के सामने जीवन-लक्ष्य रखती है, निर्भर करता है। अमेरिका में धन संचय अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि धन ही व्यक्तियों की सामाजिक प्रतिष्ठा को निश्चित करता है। अत: वहाँ पर प्रतिस्पर्धा की चरम सीमा पायी जाती है। इसी प्रकार जूनी वन्यजाति में हर एक कार्य समूह के कल्याण के लिए होता है। वहाँ पर व्यक्ति से अधिक समूह को महत्व दिया जाता है। इसलिये यहाँ पर सहयोग मुख्य सामाजिक प्रक्रिया है।

सहयोग (Co-operation)

किसी समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए किए गये प्रयत्न को सहयोग कहते हैं। ग्रीन ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है :

"सहयोग दो या अधिक व्यक्तियों के किसी कार्य को करने या किसी उद्देश्य, जिसकी समान रूप से इच्छा की जाती है, पर पहुँचने के निरन्तर एवं सामान्य प्रयत्न को कहते हैं।"*

फेयरचाइल्ड के अनुसार : "सहयोग वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति और समूह अपने प्रयत्नों को करीब-करीब संगठित रूप में सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये संयुक्त कर देते हैं।"†

सहयोग के रूप

ग्रीन ने तीन प्रकार के सहयोगों का वर्णन किया है :—

(१) **प्राथमिक सहयोग (Primary Co-operation)**—यह वह सहयोग है जो कि प्राथमिक समूहों में होने वाले सामाजिक सम्बन्ध पर आधारित है। यहाँ व्यक्ति और समूह के स्वार्थ में कोई अन्तर नहीं होता है। प्रत्येक सदस्य समूह के स्वार्थों की पूर्ति में ही अपने स्वार्थों की पूर्ति कर सकता है। यहाँ साधन और साध्यों में भेद नहीं होता। उदाहरण के लिये, परिवार, पड़ोस, मित्रमण्डली आदि प्राथमिक समूहों में प्राथमिक सहयोग पाया जाता है।

(२) **द्वैतीयक सहयोग (Secondary Cooperation)**—जब कि प्राथमिक

---

* "Cooperation is the continuous and common endeavour of two or more persons to perform a task or to reach a goal that is commonly cherished." Green, *Sociology* p. 59.

† "Cooperation is the process by which individuals or groups combine their efforts, in a more or less organized way, for the attainment of common objectives."

—Fairchild, *Dictionary of Sociology*.

सहयोग आदिम समाज की विशेषता है, द्वैतीयक सहयोग वर्तमान समाज की विशेषता है। द्वैतीयक सहयोग अत्यन्त औपचारिक (formal) एवं विशिष्ट होता है और प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने जीवन का एक भाग ही समूह के स्वार्थों में लगाता है। वह समूह के प्रति थोड़ी बहुत निष्ठा रखता है, परन्तु पूर्णरूप से समूह का कल्याण ही उसका मुख्य कार्य नहीं है। श्रमविभाजन, विशेषीकरण आदि के अनुसार प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यता के अनुसार पृथक कार्य करता है जो दूसरे लोगों के कार्य का पूरक एवं सहायक होता है। आर्थिक संगठन, राजनीतिक संगठन, साँस्कृतिक एवं धार्मिक संगठन इस प्रकार के सहयोग के उदाहरण हैं।

(३) **तृतीय सहयोग (Tertiary Co-operation or Accommodation)**—संघर्ष से सहयोग की ओर बढ़ने के प्रथम चरण को व्यवस्था कहते हैं। दोनों सहयोगी दलों की धारणायें अवसरवादी होती हैं। उनके सहयोग का संगठन अत्यन्त ही ढीला व अस्थिर होता है। संघर्ष को टालने के लिए जो समझौता किया जाता है उसे व्यवस्थान कहते हैं। समनर (Sumner) ने व्यवस्थान को विरोधी सहयोग कहकर पुकारा है। उदाहरण के लिये, किसी मिल में हड़ताल हो जाये, श्रमिकों की माँगे मिल मालिक न मानें; उसके बाद दोनों दलों में समझौता होता है; मिल मालिकों की कुछ शर्तें मजदूर मानते हैं, उनकी कुछ शर्तें मिल मालिक मानते हैं। इस प्रकार के सहयोग को, जो कि संघर्ष से शुरू हुआ था, व्यवस्थान कहेंगे।

मैकाइवर का वर्गीकरण

बगैर सहयोग के मनुष्य कोई भी कार्य नहीं कर सकता। एक ही सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वह सहयोग करता है। सामाजिक जीवन में सहयोग के विभिन्न रूपों को मैकाइवर दो वर्गों में विभाजित करता है।

(१) **प्रत्यक्ष सहयोग (Direct Co-operation)**—जब दो या अधिक व्यक्ति एक साथ समान या मिलते-जुलते कार्य करते हैं तो उनके बीच में प्रत्यक्ष सहयोग होता है—एक साथ पूजा करना, एक साथ खेलना या कई व्यक्तियों द्वारा मिलकर खेत को जोतना, बोना या काटना प्रत्यक्ष सहयोग है। इस सहयोग की मुख्य विशेषता यह है कि वे बहुत से कार्य, जो अकेले या स्वयं करे जा सकते हैं, वे दूसरों के साथ मिलकर करे जाते हैं या तो इसलिए कि दूसरों की उपस्थिति एक उत्तेजक का कार्य करती है या उनको अन्य सामाजिक संतुष्टि प्राप्त होती हैं।

(२) **अप्रत्यक्ष सहयोग (Indirect Co-operation)**—इसके अन्तर्गत हम उस प्रकार के सहयोग को लेते हैं जिसमें व्यक्ति भिन्न-भिन्न कार्य कर रहे हैं पर वे सब एक ही उद्देश्य या साध्य की ओर लक्ष्य करते हैं जैसे कि श्रम-विभाजन पर आधारित सहयोग। प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना कार्य कर रहा है और उन सबके

कार्य एक ही उद्देश्य से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार वे एक दूसरे से अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग कर रहे हैं। यह एक विश्वविद्यालय, सरकारी दफ्तरों या आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र में हमें मुख्य रूप से मिलता है।

आगबर्न का वर्गीकरण

(१) **सामान्य श्रम (labour in common)**—जब लोग एक सा कार्य करने में साथ-साथ प्रयत्न करते हैं तो उनके सहयोग को सामान्य श्रम या सहयोग करते हैं। इसके भिन्न प्रकार हैं।

(i) **मित्रवत् सहयोग (companionable labour)**—जब यह सामान्य सहयोग दूसरे की उपस्थिति में केवल आनन्द प्राप्ति के लिए किया जाता है तो उसे मित्रवत् सहयोग कहते हैं। इराकास वन्य जाति में स्त्रियाँ अकेले ही खेतों की रक्षा व देख-भाल कर सकती हैं। परन्तु पुरुष केवल इसलिए इस कार्य में सहयोग करते हैं कि दोनों के लिये कार्य आनन्दप्रद हो जाता है।

(ii) **सहायक श्रम (supplementary labour)**—जब व्यक्ति एक दूसरे को इसलिये सहयोग देते हैं क्योंकि वे अकेले वह कार्य नहीं कर सकते तो हम इस सामान्य सहयोग को सहायक श्रम कहते हैं, जैसे कि एक मोटर कार को दलदल से निकालने के लिये बहुत से व्यक्ति धक्का देते हैं।

(२) **विभिन्न श्रमों का एकीकरण (integration of differentiated labour)**—इसमें सबका उद्देश्य एक होता है, परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति भिन्न-भिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार का श्रम करके करते हैं। उदाहरण के लिए, बढ़ई, राज, मजदूर इत्यादि एक भवन के निर्माण में सहयोग देते हैं।

सहयोग : मनोवैज्ञानिक आवश्यकता

बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में सहयोग मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुत ही आवश्यक है। व्यक्ति से एक सामाजिक व्यक्ति वह तभी बन सकता है जब उसकी आवश्यकताओं के लिए माता पिता या अन्य सदस्य उसके साथ सहयोग करें। इसके बिना उसमें हीनता, ईर्ष्या व घृणा की भावनायें उत्पन्न हो सकती हैं। वह सामाजिक मूल्य, प्रथायें, रूढ़ियां, धर्म, ज्ञान, भाषा इत्यादि सहयोग द्वारा ही सीखता है।

सामाजिक आवश्यकता

समाज का कोई भी कार्य बिना सहयोग के पूरा नहीं हो सकता। व्यक्तियों अथवा समूहों के उद्देश्य बिना सहयोग के पूरे नहीं हो सकते। प्रेम, व्यापार या दोस्ती कुछ भी बिना सहयोग के सम्भव नहीं है। परिवार, जो कि समाज की न्यूनतम इकाई है, वह भी पति-पत्नी के सहयोग पर आधारित है। सड़क पर हम बायें चलते

हैं, चौराहे पर लाल बत्ती देख कर रुक जाते हैं, सिनेमा घर में टिकट लेने के लिये लाइन लगाते हैं। इस प्रकार हम नित्य विभिन्न प्रकार से सहयोग करते हैं जिसकी हम चेतन रूप में व्याख्या भी नहीं करते।

संघर्ष (Conflict)

गिलिन के अनुसार, संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति या समूह अपने विरोधी को प्रत्यक्ष रूप से हिंसा या हिंसा की चुनौती देकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते हैं।*

संघर्ष की प्रकृति (Nature of conflict)

संघर्ष की प्रकृति की हम निम्न रूप से व्याख्या कर सकते हैं।

(१) **चेतन प्रक्रिया (Conscious process)**: संघर्ष में प्रतिद्वन्द्वियों को एक दूसरे का पूर्ण ज्ञान होता है और वे न केवल अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते हैं बल्कि एक दूसरे का नाश भी कर देना चाहते हैं।

(२) **वैयक्तिक प्रक्रिया (Personal process)**—संघर्ष में प्रतिद्वन्द्वियों के एक दूसरे के प्रति जागरूक होने से यह वैयक्तिक प्रक्रिया है।

(३) **अनिरन्तर प्रक्रिया (intermittent process)**—संघर्ष अनिरन्तर प्रक्रिया है। यह सदैव नहीं होती है। सहयोग सबसे अधिक, प्रतिस्पर्धा उससे कम और संघर्ष सबसे कम निरन्तर प्रक्रिया है :

संघर्ष के स्वरूप (Forms of conflict)

संघर्ष को विभिन्न स्वरूपों में बाँटा जा सकता है—वैयक्तिक, प्रजातीय, वर्गीय और राजनैतिक संघर्ष।

(१) **वैयक्तिक संघर्ष (Personal conflict)**—जब दो व्यक्ति या समूह अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये लड़ते हैं तो ऐसे संघर्ष को वैयक्तिक संघर्ष कहते हैं। वे एक दूसरे से घृणा करते हैं, गन्दी भाषा का प्रयोग करते हैं, मार-पीट करते हैं। ईर्ष्या और द्वेष व्यक्तिगत संघर्ष को जन्म देते हैं। कभी-कभी व्यक्ति मिल कर कार्य करते हैं परन्तु पुरस्कार के वितरण को लेकर संघर्ष पैदा हो जाता है।

(२) **प्रजातीय संघर्ष (Racial conflict)**—जब विभिन्न प्रजातियाँ एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं और एक दूसरे की विभिन्नताओं के प्रति जागरूक हो जाती हैं उस समय प्रजाति संघर्ष विकसित हो जाता है। नीग्रो और अमेरिकन, जापानी और गोरों आदि प्रजातियों में अक्सर संघर्ष देखने को मिलता है। इनमें

* "Conflict is the social process in which individuals or groups seek their ends by directly challenging the antagonist by violence or the threat of violence."—Gillin and Gillin.

शारीरिक असमानताओं के अतिरिक्त आर्थिक एवं साँस्कृतिक विभिन्नतायें भी होती हैं, जो प्रजातीय संघर्ष को बढ़ावा देती हैं। गोरे हब्शियों को अपने से हीन प्रजाति का समझते हैं और उनसे सामाजिक दूरी बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। हब्शी अपने अधिकारों की माँग करते हैं और उनके अत्याचारों के विरोध में अपनी आवाज उठाते हैं। इस प्रकार प्रजातीय संघर्ष विकसित हो जाता है।

(३) **वर्ग संघर्ष (Class conflict)**—जब एक वर्ग दूसरे वर्ग पर आधिपत्य जमाना चाहता है व अपने स्वार्थों के हेतु उससे ऊँचा उठना चाहता है तो वर्ग संघर्ष विकसित हो जाता है। वर्ग संघर्ष आर्थिक स्तर पर पैदा हो सकता है जब बड़े-बड़े आविष्कार पुरानी आर्थिक व्यवस्था को समाप्त कर देते हैं और उद्योगपतियों को मजदूरों का शोषण करने का अवसर प्राप्त होता है। वर्ग संघर्ष एक शिक्षित वर्ग और एक अशिक्षित वर्ग के बीच भी उत्पन्न हो सकता है।

(४) **राजनीतिक संघर्ष (Political conflict)**—यह दो प्रकार का होता है : अन्तरादेशीय और अन्तर्राष्ट्रीय।

(i) **अन्तरादेशीय संघर्ष (Intranational conflict)**—प्रजातन्त्रीय देशों में जहाँ विचारों एवं बोलने की स्वतन्त्रता है, दो राजनीतिक दलों में संघर्ष रहता है। प्रारम्भ में विभिन्न राजनीतिक दल एक दूसरे के प्रतियोगी होते हैं जो कि जनता से निर्वाचित होने के लिए प्रतिस्पर्धा करते रहते हैं। परन्तु बहुधा उनमें वाणी अथवा शरीर द्वारा हिंसा का प्रयोग भी देखा जाता है, जो संघर्ष है।

(ii) **अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष (International conflict)**—अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का सबसे भयंकर रूप युद्ध में दृष्टिगोचर होता है। एक राष्ट्र में विभिन्न सम्प्रदाय, मत, मूल्य व राजनीतिक विषमताओं के लोग एकत्रित होकर दूसरे राष्ट्र के प्रति घातक मनोवृत्तियाँ प्रदर्शित करते हैं।

संघर्ष की जड़ें (Roots of conflict)

जब व्यक्ति या समूह एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं तो उनमें निम्नलिखित कारणों से संघर्ष उत्पन्न हो जाता है—व्यक्तिगत असमानतायें, सांस्कृतिक असमानतायें, विभिन्न प्रकार के स्वार्थों में संघर्ष, सामाजिक परिवर्तन।

(१) **व्यक्तिगत असमानतायें (individual differences)**—कोई भी दो व्यक्ति एक से नहीं हैं। उनमें शारीरिक एवं मानसिक अनेक भिन्नतायें हैं। व्यक्तियों में यह भिन्नतायें दो कारण से उत्पन्न होती हैं—जन्मजात प्राणीशास्त्रीय अन्तर और व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया के दरम्यान भिन्न-भिन्न अनुभव।

इन व्यक्तिगत भिन्नताओं के कारण व्यक्तियों में विभिन्न दृष्टिकोण विकसित होते हैं जिनके द्वारा संवेगात्मक असमानतायें पैदा होती हैं जिनका परिणाम संघर्ष होता है।

(२) **साँस्कृतिक भिन्नतायें (cultural differences)**—एक व्यक्ति का व्यक्तित्व न केवल उसकी शारीरिक बनावट पर निर्भर करता है बल्कि उस संस्कृति पर भी निर्भर करता है जिसमें उसके व्यक्तित्व का विकास हुआ है। जब विभिन्न संस्कृतियों में विकसित हुए समूह या व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं तो उनमें आपस में दृष्टिकोण, मूल्य आदर्शों में मतभेद होने के कारण संघर्ष हो जाता है।

(३) **स्वार्थों का संघर्ष (clashing interest)**—जब व्यक्तियों या समूहों में आर्थिक, साँस्कृतिक या राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये विषमतायें उत्पन्न हो जाती हैं तो वे संघर्ष का रूप ले लेती हैं। वर्तमान समाज में मुख्य रूप से आर्थिक संघर्ष देखने को मिलता है। एक व्यक्ति दूसरे से व्यापार में बढ़ने का प्रयत्न करता है, बहुत से सम्पूर्ण एकाधिकार (monopoly) करना चाहते हैं और इस प्रकार से हम देखते हैं कि उनमें संघर्ष होता है।

(४) **सामाजिक परिवर्तन**—किसी भी समाज में अत्यन्त तीव्र परिवर्तन स्थिर सम्बन्धों को तोड़ देता है और जनता को विभिन्न समूहों में विभाजित कर देता है जो अपने उद्देश्यों की पूर्ति में लगे हैं। नये-नये आविष्कारों के कारण उत्पादन के पुराने तरीके छोड़ दिये जाये हैं। कुटीर उद्योगों के स्थान में फैक्टरी प्रणाली आने से आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ और व्यक्तियों के बीच बहुत से सम्बन्धों में अत्यधिक परिवर्तन हुए, लोगों के विभिन्न स्वार्थ बढ़े और औद्योगिक संघर्ष ने जन्म लिया।

संघर्ष के परिणाम

(i) **अन्त: समूह की दृढ़ता (Solidarity of the in-group)**—जब दो विभिन्न समूह एक दूसरे से संघर्ष में होते हैं तो प्रत्येक समूह के अपने व्यक्तियों में संगठन अधिक दृढ़ हो जाता है। अन्दरूनी झगड़े, व्यक्तिगत विरोध समाप्त हो जाते हैं और समूह के अन्दर एकता की भावना जागृत हो जाती है। पाकिस्तान और चीन की अनाधिकार चेष्टाओं से भारत की विभिन्न राजनैतिक पार्टियों, धार्मिक, सांस्कृतिक दलों में शत्रुओं के विरुद्ध एकता दृढ़ हो गई है।

(ii) **समूह की एकता कम होना**—जब संघर्ष एक समूह के अन्दर होता है तो उस समूह की शान्ति एवं एकता भंग हो जाती है। हमारे देश में नित्य जाति-पाँति के झगड़े, विभिन्न प्रान्तों और विभिन्न भाषा बोलने वालों में झगड़े, विभिन्न धर्मानुयायियों में झगड़े लगे रहते है जिससे देश की अन्त:समूह एकता कम होती जा रही है जिसके कारण राष्ट्रीय एकीकरण (national integraion) की चर्चा सर्वत्र हो रही है।

(iii) **व्यक्तित्व में परिवर्तन**—जब एक ही समाज के दो विभिन्न समूहों में

संघर्ष होता है तो उनमें कुछ ऐसे व्यक्ति अवश्य होते हैं जो दोनों समूहों के मूल्य एवं सद्‌भावनाओं को अपनाते हैं। कुछ लोग ऐसी परिस्थितियों से अनुकूलन कर लेते हैं और कुछ इसमें असफल होने पर मानसिक पीड़ा के शिकारी हो जाते हैं। उदाहरण के लिये, प्रथम महायुद्ध में जो अमेरिकन जर्मनी में थे जर्मन संस्कृति के कुछ गुणों व मूल्यों को पसन्द करने लगे जिससे वे जर्मनी में न रहने वाले अमेरिकनों की भाँति उनसे सौ फीसदी घृणा न कर सके। दूसरी ओर स्वयं अमेरिकन होने के कारण वे अमेरिकन संस्कृति को भी पसन्द करते थे जो जर्मन संस्कृति से भिन्न व विरोधी थी। क्या करें और क्या न करें की चिन्ता में वे मानसिक संघर्ष से ग्रसित हो गये।

(iv) **रक्त और धन का नाश**—महायुद्धों में लाखों की संख्या में व्यक्ति मरते हैं। प्रथम महायुद्ध में १७७८८०६ सिपाही एवं नाविकों की हत्या हुई। इसके साथ देश की सम्पत्ति का भी नाश होता है।

(v) **व्यवस्थान, या आधिपत्य और अधीनता**—यदि दोनों समूह लगभग बराबर शक्ति के हैं तो उनमें व्यवस्थान (accommodation) हो जाता है। यदि एक अधिक बलवान और दूसरा कमजोर है तो उनमें आधिपत्य एवं अधीनता पायी जायेगी।

१४ सामाजिक विभेदीकरण (Social Differentiation)

सामाजिक विभेदीकरण की प्रक्रिया सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया के समान ही समाज की पूर्णता में भिन्नता का बोध कराती है। न्यूमिनर के अनुसार सामाजिक स्तरीकरण की तरह ही विभेदीकरण भी एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों तथा समूहों की भिन्नता प्राणिशास्त्रीय विरासत व शारीरिक लक्षणों के आधार पर प्रकट होती है, जैसे आयु, लिंग, प्रजाति, व्यवसाय तथा सामाजिक स्तर इत्यादि।* एक बात स्पष्टतया समझ लेनी चाहिये कि इस प्रक्रिया के द्वारा व्यक्तियों
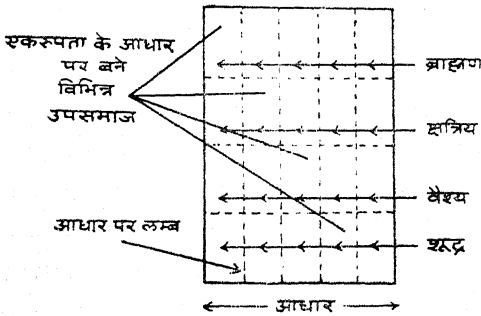
इस चित्र की क्षैतिज रेखायें स्तरीकरण तथा लम्ब रेखायें विभेदीकरण को प्रस्तुत करती हैं।

[सम्पूर्ण हिन्दू समाज]

और समूहों को अन्य व्यक्तियों और समूह से मात्र सामाजिक विभेदी ही दर्शाया जाता है। इसके आधार पर सामाजिक दूरी जैसे उच्चस्थिति के बारे में कुछ भी

---

* Social differentiation is the process whereby social differences of persons and groups occur, due to biological heredity and physical characteristics—age, sex, race and individual variations, social status, cultural background.........Social differences are both phases and products of the process of differentiation.

पता नहीं लगता। सरल रूप में समझने के लिये विभिन्नीकरण को ऐसी प्रक्रिया के रूप में माना जा सकता है जो समाज के विभिन्न समूहों के बीच, आधार पर लम्बवत् रेखा खींचे जाने से सम्पूर्ण समाज को एकरूपता के आधार पर, विभिन्न भागों में बँट जाने देती है। इस प्रकार से बने हुये प्रत्येक विभाग में रहने वाले व्यक्ति या समूह कुछ विशेषताओं के कारण दूसरे विभाग में रहने वाले समान स्तर (strata) के व्यक्ति या समूह से भिन्न होते हैं उदाहरण के लिये बंगाल के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; महाराष्ट्र, यू० पी० या काश्मीर के समान स्तर की स्थिति वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र से, बहुत सारी विशेषताओं के कारण, भिन्न होंगे। जब कि हिन्दू समाज की मान्यताओं के अनुरूप समस्त भारतवर्ष के हिन्दू समाज के स्तरीयकरण की व्यवस्था में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च और शूद्रों का निम्नतम होता है अर्थात् वे जहाँ कहीं भी होंगे उनका सामाजिक स्तर समान ही होगा। इस प्रकार की विभिन्नता बड़े-बड़े समाजों के अतिरिक्त छोटे-छोटे उपसमूहों में दिखायी पड़ती है। आज का प्रान्तवाद, भाषावाद, प्रजातिवाद, साम्प्रदायिकतावाद, विभिन्नीकरण की प्रक्रिया के द्वारा ही पनप रहा है।

सामाजिक विभिन्नीकरण के कारक :
(Factors of Social Differentiation)

न्यूमिनर की परिभाषा को देखने पर यह ज्ञात होता है कि सामाजिक विभिन्नीकरण के कई कारक हैं जिन्हें मुख्यता दो भागों में रखा जा सकता है।

१. वे कारक जो जन्म से ही प्रभावशील हैं (Ascribed)।

२. वे कारक जो समाज में आने पर प्रभावशील होते हैं (Acquired)।

इनको दृष्टि में रखकर हम विभिन्न मौलिक कारकों पर विचार करेंगे।

(अ) **जन्म से व्यापक भिन्नतायें** : यह माना जाता है कि रचना की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही भिन्नता लिये हुये होता है। उनका वंशानुक्रमित गुण वातावरण में पनपकर उनके व्यवहारों को प्रभावित करता है।। शरीर की आकृति, रंग, रक्त और वेशभूषा आदि में अन्तर होने के कारण भी समाज में विभिन्न प्रकार के समूहों का उद्भव होता है। वैयक्तिक विभिन्नताओं (Individual differences) का प्रभाव व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति (status) पर पड़ता है जिससे सामाजिक विभेदीकरण की स्थिति उत्पन्न होती है।

(ब) **समाज में कार्यों की भिन्नता** : जिस प्रकार व्यक्ति की अपनी कुछ मौलिक विशेषतायें होती हैं उसी प्रकार समाज की भी समय, स्थान, कारण (Time-space and causation) के संदर्भ में, कुछ विशेषतायें होती हैं। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर विभिन्न प्रकार के कार्यों का विकास होता है जो एक व्यक्ति के द्वारा पूर्ण नहीं हो सकते। परिणामस्वरूप एकाधिक व्यक्ति अपनी अर्जित

(Achieved) योग्यताओं, प्रखरता, ज्ञान और अनुभव के आधार पर उन्हें करने लगते हैं। हमेशा ही ऐसे व्यक्ति मिलते रहें इसलिये समाज ट्रेनिंग की व्यवस्था रखता है। इन कारणों से भी व्यक्ति या समूह में विभिन्नता पैदा होती है।

(स) **सामाजिक सन्तुलन और व्यवस्था की आवश्यकता :**—प्रकृति की सृष्टि में यह सर्वव्यापक नियम है कि कोई भी कार्य तभी तक होता रहेगा जब तक किसी न किसी रूप में असमानता रहेगी। जैसा कि हम अनुभव भी करते हैं, इस प्रकार की असमानता को बनाये रखने के लिये प्रकृति के साथ-साथ समाज भी, किसी न किसी रूप में कार्य करता रहता है। जहाँ प्रकृति जन्म से ही कुछ लोगों में जैविक व मनोवैज्ञानिक विशिष्टतायें भर देती है वहीं पर समाज विभिन्न प्रकार की प्रस्थितियों और भूमिकाओं (Status & Roles) का निर्माण करके विभिन्नता की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है। इस प्रकार की विभिन्नता का कार्यकारी परिणाम (Functional Result) यह है कि प्रत्येक समाज में सन्तुलन और व्यवस्था बनी रहती है तथा व्यक्ति को हीनता (Inferiority) का बोध नहीं होता।

(द) **भेद-भाव से छुटकारा पाने की मनोवैज्ञानिक भूख :**—वर्तमान भारत के संदर्भ में यदि इस प्रक्रिया का निरीक्षण किया जाय तो स्पष्ट होगा कि यहाँ के रहने वाले लोग आपस में विभिन्नता की बनावटी दीवार खींच रहे हैं। भारत और पाकिस्तान का बँटवारा इसी प्रकार की मानसिक भूख के कारण हुआ है। राज-नैतिक विघटन जो इसी प्रकार की मानसिक भूख और दिखावा तथा असुरक्षा का परिणाम है हिन्दुस्तान में विभिन्नीकरण की प्रक्रिया एवं उसके फैलाव की ओर इशारा करता है। धर्मों की विभिन्नता आस्था और विश्वासों के अन्तर पर कम आधारित है बल्कि यह अहम्वाद का लौकिक परिणाम है। यह प्रस्थिति और कर्त्तव्यों के द्वन्द्व का नतीजा है। इन सब आधारों पर यह माना जाना चाहिये कि बहुत सी मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ स्वाभाविक ढंग से व्यक्ति को विभिन्नता की ओर ले जाती है परिणामस्वरूप प्रस्थिति और कर्त्तव्य आपस में द्वन्द्व (conflicts) युक्त हो जाते हैं। वृहद् सामाजिक भावनायें टूटती हैं जिससे समाज में अनेकानेक मत, धर्म और एकाधिक प्रक्रियाओं का जन्म होता है; सामाजिक विभेदीकरण की स्थिति पैदा होती है।

विभेदीकरण के रूप (Forms of Differentiation)

कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते। इस आधार पर देखा जाय तो विभेदी करण के असंख्य रूप हैं। परन्तु समाज विभेदीकरण उत्पन्न करने वाले विभिन्न उत्तरदायी कारणों में से (अ) जैविकीय (biological) (ब) सामाजिक-साँस्कृतिक (social-cultural) मुख्य हैं।
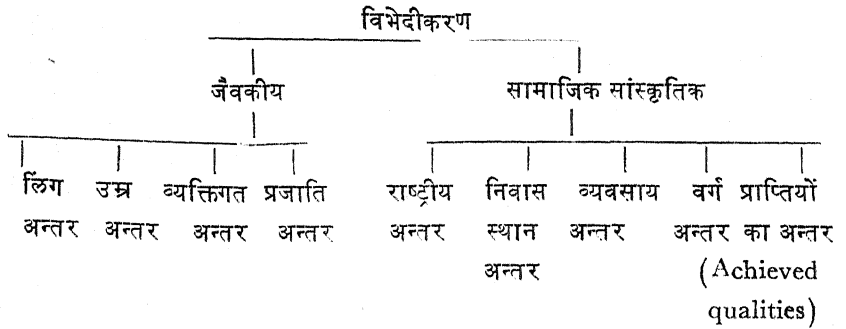
जैविकीय विभेद जन्मगत होता है। इन विभेदों को आसानी से मिटाया नहीं जा सकता। **लिंग भेद** के उदाहरण में हम स्त्री-पुरुष को देख सकते हैं। बहुधा देखा गया है कि समान परिस्थितियों एवं वातावरण में भी स्त्री जाति के लोगों का व्यवहार पुरुष जाति के लोगों से भिन्न होता है। लड़की गुड़िया या कोई इसी तरह का खेल खेलना अधिक पसंद करती है जब कि लड़का घोड़े पर चढ़ना या दौड़-धूप करना। दोनों को बराबर अधिकार दिए जाने के बावजूद भी इनकी विभन्नता इन्हें समाज में भिन्न-भिन्न स्थान पाने को मजबूर कर देती है। स्त्री की शरीर-सम्बन्धी असमर्थतायें उसे पुरुष के आसरे पर छोड़ देती हैं। परिणामस्वरूप, समाज में पुरुष की परिस्थिति स्त्री की परिस्थिति से भिन्न हो जाती है और उनके कार्यों (Role) में भी अन्तर आ जाता है। इनकी परिस्थितियों एवं भूमिकाओं के संरचनात्मक तथा प्रकार्यात्मक विभेदों के कारण समाज की व्यवस्था का रूप ही विभेदीकरण को बढ़ावा देता है। आप देखेंगे कि इस विभेदीकरण की भावना ने व्यक्ति के धार्मिक विश्वासों को भी प्रभावित किया है। राजनीति और आर्थिक व्यवस्थायें भी अछूती नहीं रही हैं। प्राचीन भारत की सारी सामाजिक व्यवस्था बराबरी के मूल्यों की व्यवस्था न होकर माता-पिता, बहन और भाई के मूल्यों की व्यवस्था थी। कोई भी स्त्री माँ या बहन के मूल्य का प्रतिनिधित्व करती थी जबकि पुरुष भाई या पिता के मूल्य का। सबका अर्थ यह है कि इस जैविक भेद ने समाज की संरचना तथा प्रकार्यात्मकता को पर्याप्त प्रभावित किया था।

आयु पर आधारित विभेदीकरण का सर्वोत्तम उदाहरण हिन्दू आश्रम व्यवस्था है। २५ वर्ष से नीचे का ब्रह्मचारी (शिशु, बालक, किशोर एवं युवक); ५० वर्ष तक गृहस्थ तथा ७५ वर्ष के नीचे वानप्रस्थ तथा शेष जीवन भर सन्यासी। यह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की विभेदीकृत भूमिका थी जो आयु पर आधारित थी। आयु की विभिन्नता से सामाजिक मूल्य कैसे बदलते हैं इसका एक और उदाहरण देखा जा सकता है। एक बालक जिसकी अवस्था ५ वर्ष है सबके हृदय में 'बेटे' का मूल्य

पैदा करेगा, २० वर्ष की अवस्था में भाई का मूल्य, ३० वर्ष में चाचा या पिता का और ६० वर्ष की उम्र में दादा का मूल्य पैदा करेगा। सम्पूर्ण समाज ही ऐसे मूल्यों से प्रभावित होता है। अतः स्पष्ट है कि अवस्था किस प्रकार विभेदीकरण को जन्म देती है। साधारणतया आयु पर आधारित विभेदीकरण संसार के समस्त समाजों में मिलता है। अधिक वृद्ध और कच्ची उम्र के बच्चों से समाज वह काम लेना उचित नहीं समझता जिसे प्रौढ़ उम्र के लोग नहीं कर सकते हैं। प्रत्येक कल्याण-कारी राज्यों वाले समाजों में आयु के आधार पर बच्चों एवं वृद्धों के काम और भोजन की व्यवस्था के लिए कानून तक बनाये जाते हैं। भारतवर्ष में उम्र के आधार पर विवाह, कार्य (नौकरी) और भोजन के लिए जो कानून बनाये गये हैं उनके आधार पर सामाजिक विभिन्नता को स्पष्टरूप से देखा जा सकता है। इसी प्रकार की भिन्नता के आधार पर १८ वर्ष से कम के लोगों को सरकार चुनने के लिए मत देने का अधिकार नहीं है।

व्यक्तिगत अन्तर से भी समाज की संरचना प्रभावित होती है। कम बुद्धि वाले चिड़चिड़े लोगों के व्यवहार के कारण विघटनकारी प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं क्योंकि वे सामाजिक स्तर का निर्वाह करने में सक्षम नहीं हो पाते। समाज अवस्था के आधार पर अपने सदस्यों से विभिन्न उत्तरदायित्वपूर्ण क्रिया करने की आशा रखता है। उचित समय पर बुद्धि फलाँक (I. Q.) की कमी के कारण बहुत से लोग समाज की यह आशा पूरी नहीं कर पाते हैं जिससे समाज में अव्यवस्था फैलने का डर बढ़ जाता है। बुद्धि फलांक ज्ञात करने के लिए समाज वैज्ञानिकों ने निम्न सूत्र का प्रयोग किया है :—

$$\frac{\text{मानसिक अवस्था}}{\text{जन्मकालिक अवस्था}} \times १०० \quad \left\{ \frac{\text{mental age}}{\text{chronological age}} \times 100 \right\}$$

निष्कर्ष यह है कि मानसिक योग्यता जैसे वैयक्तिक आधारों पर भी समाज में विभेदीकरण की प्रक्रिया का रूप देखा जा सकता है।

प्रजातीय* आधारों पर विभिन्नता का रूप प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है। देवासुर-संग्राम दो प्रजातियों का झगड़ा है। आज के अमरीका में साम्प्रदायिकता का मूल आधार नीग्रो और श्वेत दो प्रजातियाँ हैं। सारा इतिहास

---

* "प्रजातीय विभेद को पहचानने के लिये व्यक्तियों के बहुत से बाह्य गुणों का अध्ययन किया जाता है। चमड़े का रंग, आँखों का रंग, बालों का रंग तथा नाक की आकृति एवं सेफैलिक इन्डेक्स के आधार पर प्रजातियों को पहचानने का प्रयत्न किया जाता है।

$$\text{Cephalic Index} = \frac{\text{Breadth of Head}}{\text{Length of Head}} \times 100$$

आर्यों को अन्य प्रजातियों से भिन्न और श्रेष्ठ प्रजाति मानता है। हम देखकर ही एक चीनी, नेपाली, मंगोल, को साधारण काश्मीरी से अलग कर सकते हैं। जर्मनी ने द्वितीय विश्वयुद्ध इसलिये छेड़ा था कि वह अपने यहाँ के निवासियों को अन्य प्रजातियों से भिन्न शासक-प्रजाति मानता था। समाजशास्त्रियों ने प्रजाति की विभिन्नता के भावुक परिणामों से समाज को बचाने के लिए प्रजाति की धारणा का गहन अध्ययन किया और पता लगाया कि सचमुच समस्त विश्व के लोग एक प्रजाति—मानव प्रजाति की संतान हैं। इस आधार पर फैले हुये भ्रामक एवं विस्फ़ोटक प्रजातीय तनावों को समाप्त कर देना चाहिये, वरना प्रजातिक विभेदीकरण से उत्पन्न सामाजिक अन्तर विभिन्न साम्प्रदायिक झगड़ों के रूप में आकर सारे विश्व की शान्ति को निगल जायेगा।

सामाजिक-साँस्कृतिक विभेदीकरण—

विभेदीकरण का यह रूप प्राप्त किया जाता है। इसके ऊपर समाज की परिस्थितियों, संस्कृतियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यद्यपि यह सत्य है कि इनका प्रभाव जैविक विभिन्नता के कारण विभिन्न व्यक्तियों पर विभिन्न ढंग से पड़ता है इसलिये इनका पूर्णतया कोई स्वतंत्र रूप नहीं है, फिर भी सुविधा के लिए हम इनकी स्वतंत्र रूप से ही विवेचना करेंगे।

राष्ट्रीय विभेदीकरण—

विशेष भूभाग और राज्य सत्ता में रहने वाले लोग, आयु, लिंग तथा वैयक्तिक समानता के बावजूद भी राष्ट्रीय भावना के कारण विभिन्न भूभाग और राज-सत्ता में रहने वाले अन्य लोगों से भिन्न माने जाते हैं। इस प्रकार की विभेदीकरण की प्रक्रिया के कारण ही कोई अमेरिकन, कोई रूसी, कनाडियन, हिन्दुस्थानी तथा पाकिस्तानी बन जाता है। इस प्रकार के विभेदीकरण का कारण मात्र किसी राष्ट्र से रहने वाला औपचारिक सम्बन्ध है। इस प्रकार के लोगों का सांवेगिक लगाव, अपने राष्ट्रीय प्रतीकों, क्षेत्रफल और उसमें रहने वाले लोगों के लिये, पराये प्रतीकों में आस्था रखने वाले तथा अन्य क्षेत्रफल में रहने वालों से अधिक होता है। राष्ट्रवाद, आक्रमण और समाज का स्वार्थ भरा विखण्डन इसी प्रकार की प्रक्रिया के द्वारा होता है।

व्यावसायिक विभेदीकरण—

व्यावसायिक विभेदीकरण से हमारा तात्पर्य उन व्यक्तियों या समूहों से है जो भिन्न-भिन्न व्यवसायों में लगे रहने के कारण अपनी तरह की नौकरियों या व्यवसायों या व्यवसायों को करने वालों को अपने समान मानकर सामूहिक भावना का विकास

कर लेते हैं। ज्यों ज्यों समाज में अन्यान्य व्यवसायों की प्रकृति विकसित होने लगती है त्यों त्यों तत्सम्बन्धित समूह का निर्माण होने लगता है। व्यावसायिक विभिन्नता की प्रकृति के कारण एक तरह के व्यवसाय सम्बन्धित विभिन्न उप-समूह के लोग आपस में सामाजिक मेल-मिलाप (Social participation) बढ़ा लेते हैं जिससे नये स्तर पर प्रस्थितियों एवं भूमिकाओं का जाल सा बन जाता है। परिणामस्वरूप एक तरह की प्रस्थितियों में रहने वाले तथा सम्बन्धित भूमिका अदा करने वाले लोग अन्य प्रकार की प्रस्थितियों एवं भूमिकाओं से सम्बन्धित लोगों से आसानी से अलग किये जा सकते हैं।

आर्थिक-वर्गों के आधार पर विभेद--

प्रत्येक समाज में धन के आधार पर कुछ लोग अधिक सुविधाओं का उपयोग करते हैं तथा कुछ लोग कम। इस प्रकार धन और उपभोग के आधार पर समाज के कुछ लोग बहुत धनवान, कुछ लोग साधारण धनवान और कुछ लोग गरीब की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। भारतवर्ष, अमेरिका या अन्य पूंजीवादी देशों में इस प्रकार के स्पष्ट उदाहरण देखने को मिलते हैं। निरीक्षण करने से यह भी पता चलता है कि इस प्रकार के आर्थिक वर्गों से सम्बन्धित व्यक्तियों के व्यवहारों, तरीकों और मनोरंजनों में उल्लेखनीय भिन्नता मिलती है। एक ही वस्तु या उत्तेजना के प्रति उनके दृष्टिकोणों में अन्तर दिखलायी पड़ता है। प्रत्येक वर्ग अपने वर्ग की अपेक्षा दूसरे वर्ग को भिन्न मानता है और उसी के आधार पर व्यवहार की प्रणाली निश्चित करता है।

देहाती शहर के आधार पर हम हिन्दुस्तान की जनसंख्या को दो भिन्न भागों में बांट देते हैं। देहातियों में जहाँ सरलता, निष्कपटता, पारस्परिकता और रूढ़िवादिता है वहीं पर शहर के निवासियों में कृत्रिमता, व्यक्तिवादिता और परिवर्तनशीलता है। अपनी-अपनी जीवन-शैलियों के कारण ये दोनों ही सामाजिक विभेदीकरण को बढ़ावा देते हैं।

धार्मिक विभेदीकरण

जिस प्रकार व्यवसाय तथा आमदनी के आधार पर समाज में भिन्नता पाई जाती है उसी प्रकार धार्मिक मान्यताओं की दृष्टि से भी समाज को विभिन्न इकाइयों में देखा जा सकता है। अलग-अलग विश्वासों एवं मान्यताओं के कारण ही कोई वैदिक धर्मावलम्बी है तो कोई मुसलमान और ईसाई। इस प्रकार का उपविभाजन छोटे-छोटे धर्मावलम्बी समूहों में भी किया जा सकता है। जैसे हिन्दू धर्म में कुछ लोग शैवमत को मानने वाले हैं तो कुछ लोग राम और कृष्ण को। मुसलमानों में कुछ लोग शिया हैं तो कुछ लोग सुन्नी। ईसाइयों के दो रूप मिलते हैं: कैथोलिक और

प्रोटेस्टेन्ट। इस प्रकार के विभेदीकरण के साथ इसके प्रभावों का इतिहास जुड़ा हुआ है। औरंगजेब ने इसी विभेदीकरण की भावना के कारण रक्तपात किया, जज़िया कर लगाया, मुहम्मद गजनवी ने सोमनाथ के मन्दिर का कलश ध्वस्त किया, गैलीलियो को दण्ड दिया गया क्योंकि उसके द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक सत्य किसी विशेष धर्म की गलतफहमियों का पर्दाफाश करता था। ऐसे न जाने कितने काण्ड हुये, दुर्घटनायें हुई। तनाव और विघटन के वातावरण को तैयार करने में ऐसे अन्तरों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। आज विज्ञान के विकास के कारण सहिष्णुता में वृद्धि हुई है फिर भी विभिन्न धार्मिक विश्वासों वाले व्यक्ति विभिन्न धार्मिक समूहों का विकास करते हैं जिससे सामाजिक विभेदीकरण में वृद्धि हो रही है।

अन्य विभेदीकरण

विभेदीकरण के उपर्युक्त रूपों के अलावा अन्य रूप भी देखे जा सकते हैं। भाषा, शिक्षा, राजनीति के आधार पर भी विभेदीकरण होता है। एक प्रकार की भाषा बोलने वालों का समूह दूसरी प्रकार की भाषा बोलने वालों से भिन्न हो सकता है। उनके व्यवहारों में परिवर्तन भी हो सकते हैं। हिन्दीभाषियों के प्रति बहुत से अन्य भाषा बोलने वालों का वर्तमान रुख भाषायी विभेदीकरण के कारण ही है। राजनीति के आधार पर भी विभेदीकरण देखा जा सकता है। कोई रूसी और चीनी राजनीति का पक्ष लेने के कारण साम्यवादी है तो कोई अमेरिकी राजनीति को मानने के कारण पूंजीवादी। भारतीय राजनैतिक मंच पर जो कुछ भी विभिन्नता दिखाई देती है, उसके कारणों में राजनैतिक विभिन्नीकरण प्रमुख है। राजनैतिक विभेदीकरण का प्रभाव अच्छा और बुरा दोनों ही हो सकता है परन्तु जहाँ के लोग मूल्यहीनता (Normlessness) के शिकार हो चुके रहते हैं वहाँ इसका प्रभाव विशेषकर बुरा ही होता है। भारतवर्ष की राजनीति में ऐसे दुष्परिणामों को रोज देखा जा सकता है। बंगाल का रक्तपात, आसाम की अशाँति, देश की गुटबाजी सभी कुछ इसी प्रकार के विभेदीकरण के नकारात्मक परिणाम हैं।

सामाजिक विभेदीकरण के लाभ

प्रत्येक समाज में विभेदीकरण की प्रक्रिया मिलती है। इससे यह सिद्ध होता है कि समाज को इससे अवश्य ही कुछ लाभ है, वरना समाज इस पर कब की रोक लगा चुका होता। प्रत्येक समाज में विभिन्न उपसमाजों एवं उपसमूहों की आवश्यकतायें, परिस्थितियाँ, पर्यावरण आदि भिन्न होते हैं, फलस्वरूप विशेषीकरण (specialization) का विकास होता है। विशेषीकरण से समाज की उन्नति होती है। विशेषीकरण से नये स्थान या पद की उत्पत्ति होती है तथा विशेषीकरण उस स्थान के लिये उपयुक्त कर्ता (Actor) प्रदान करता है। विभेदीकरण के लाभों का निम्न प्रकार से उल्लेख किया जा सकता है।

श्रमविभाजन और कार्य-कुशलता में वृद्धि :—यह प्रक्रिया कुशल कार्यों के लिये कुशल व्यक्तियों का विकास करती है। समाज में ज्यों-ज्यों श्रमविभाजन होता है त्यों-त्यों विभिन्न कोटि के व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्नीकरण इस माँग को ध्यान में रखते हुये कार्य–कुशलता एवं दक्षता की वृद्धि करने में सहायक है।

योग्यता के आधार पर सामाजिक स्थिति का निर्धारण :— इस प्रक्रिया के द्वारा समाज में विभिन्न व्यक्तियों और समूहों को उचित स्थान मिलता रहता है। सुरक्षा, योग्यता और आवश्यकता के अनुसार सीमित-प्रतिस्पर्धा, सामञ्जस्य, सहयोग आदि प्रक्रियाओं के सहारे अयोग्य व्यक्तियों को योग्य बनाने या वंचित करने, योग्य व्यक्तियों की योग्यता में वृद्धि करने का कार्य सम्पन्न करती रहती हैं। इस प्रकार यह प्रक्रिया सामाजिक-स्थिति प्रदान करने के साथ ही अनावश्यक द्वन्द्व, संघर्ष जैसे प्रक्रियाओं से समाज को मुक्ति दिलाती है।

सामाजिक एकीकरण और संगठन :—जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, अनावश्यक संघर्ष और द्वन्द्व जैसी प्रक्रियाओं पर नियंत्रण रखने के कारण यह प्रक्रिया सामाजिक एकीकरण के द्वारा संगठन को मजबूत बनाती है। एकीकरण और प्रकार्यात्मक संगठन (Functional organization) विशेषीकरण के आधार पर बनी विविध इकाइयों की पृथकता, परस्पर सम्बद्धता और निर्भरता के आधार पर पुष्ट होता है।

विभेदीकरण और सामाजिक स्तरीकरण—(विशेषताओं के आधार पर)।

(१) सामाजिक स्तरीकरण और विभेदीकरण और दोनों ही प्रक्रियाओं द्वारा समाज विभिन्न इकाइयों में बट जाता है। परन्तु सामाजिक स्तरीकरण समाज को क्षैतिज रूप से विभाजित करता है। यदि हम समाज को एक तने की भाँति मान लें और उसको अनुदैर्घ्य (Longitudinal) रूप में काटें तो हमें उसमें विभिन्न पर्त (strata) दिखाई देंगी जो समाज के स्तरों का प्रतिनिधित्व करेंगी। इस व्यवस्था को हम स्तरीकरण कहते हैं। जब हम इसका अनुप्रस्थ (Transverse) कटाव देखेंगे तो हमें विभिन्न प्रकार के उपसमूह, एक विशेषता के कारण एक ही विभाग में दिखायी देंगे। इस व्यवस्था को हम विभेदीकरण मानते हैं।

(२) सामाजिक स्तरीकरण द्वारा किया गया विभाजन उच्चता, निम्नता या अधीनता जैसी सामाजिक मान्यता को साथ लेकर चलता है जबकि विभेदीकरण मात्र सामाजिक विभेद को दर्शाता है, न कि सामाजिक दूरी को। सामाजिक स्तरीकरण का नाम लेने से ही ऐसे भाव का जन्म होता है जिसमें कुछ लोगों के लिये विशेषाधिकार और कुछ लोगों के लिये निर्योग्यतायें स्पष्ट की गई होती हैं।

(३) यद्यपि स्तरीकरण और विभेदीकरण की प्रक्रियाओं में कौन आगे हुई यह कहना कठिन है फिर भी कार्यकारण के सम्बन्ध के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्तरीकरण विभेदीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है।

(४) स्तरीकरण तो तभी सम्भव है जब विभेदीकृत इकाइयों में स्थिरता आ जाय क्योंकि बिना स्थिरता के उच्च-निम्न स्थान का निर्धारण नहीं किया जा सकता। विभेदीकरण के लिये केवल विभेद चाहिये। स्थायी समूहों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है।

(५) स्तरीकरण के लिये यह आवश्यक है कि उसके उपसमूहों की स्थितियाँ उच्चता और निम्नता के क्रम से हो जबकि विभेदीकरण में कोई दो भिन्न समूह कहीं रखे जा सकते हैं।

---

१५ सामाजिक स्तरीकरण : गुलामी और जागीर
(Social Stratification : Slavery and Estates)

समाज का वर्गों या श्रेणियों (strata) में विभाजन, जो प्रतिष्ठा और शक्ति को श्रेणी-बद्ध करने (hierarchy) का काम करते हैं, सामाजिक ढाँचे की एक सार्वभौमिक विशेषता है और हमेशा ही दर्शनशास्त्रियों और सामाजिक विचारकों का ध्यान इस ओर आर्कषित रहा है। परन्तु आधुनिक सामाजिक विज्ञानों के विकास के बाद ही इसका आलोचात्मक अध्ययन और विश्लेषण शुरू हुआ। समाज-शास्त्रियों ने चार किस्म के सामाजिक स्तरण बताये हैं : गुलामी (slavery), जागीर (estates), जाति और सामाजिक वर्ग और प्रस्थिति (status)। हम इन चारों पर विचार करने से पहले सामाजिक संस्तरण के अर्थ समझाने का प्रयत्न करेंगे।

समाज के अन्दर न केवल भिन्न समूह होते हैं, बल्कि भिन्न स्तर (strata) भी होते हैं, जिसका अर्थ यह है कि कुछ समूह अन्य समूहों की अपेक्षा 'ऊँचे' या 'नीचे' होते हैं। समाज के अन्दर ही लोग एक दूसरे को श्रेणियों (categories) में रखते हैं और इन श्रेणियों को ऊँची अथवा नीची कहते हैं। इस प्रकार की श्रेणियों की परिभाषा करने और ऊँची या नीची कहने की प्रक्रिया को सामाजिक स्तरण (stratification) कहते हैं, और इन पदप्राप्त (ranked) श्रेणियों के सैट (set) को स्तरण-संरचना (srtatification-structure) कहते हैं।

स्तरण-संरचना की कठोर या ढीली होने की मात्रा एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न होती है। कुछ समाजों में, प्रत्येक सदस्य किसी श्रेणी में जन्म लेता है, वह आजन्म उसी श्रेणी में रहता है, उसी श्रेणी में उत्पन्न हुये व्यक्ति से विवाह करना उसके लिये अनिवार्य होता है, और उसकी श्रेणी-सदस्यता ही मुख्य रूप से यह निश्चित करेगी कि उसके पास कितनी सम्पत्ति होगी, वह कितनी शिक्षा प्राप्त करेगा, वह कौन सा व्यवसाय करेगा, और उसके सामाजिक जीवन से सम्बन्धित

अनेक बातें भी निश्चित करेगी ।* इस प्रकार के कठोर स्तरों को हम जातियाँ (castes) कहते हैं । दूसरी ओर, किसी समाज की स्तरण-संरचना अपेक्षाकृत अनिश्चित और परिवर्तनशील भी हो सकती हैं । ऐसी स्थिति में किसी क्लर्क का लड़का हाई स्कूल से नाम कटा सकता है, मोटर मिस्त्री बन सकता है, और किसी धनाढ्य व्यक्ति की कन्या से विवाह कर सकता है । इसके अतिरिक्त, समाज के सदस्यों में इस बात को लेकर मतभेद हो सकता है कि क्लर्क उच्च वर्ग या मध्यम वर्ग का सदस्य है, और मोटर मिस्त्री मध्यम या निम्न वर्ग का सदस्य है । इस प्रकार के वर्ग लगभग एक सी प्रतिष्ठा वाले पदों (statuses) का संग्रह (aggregates) होते हैं ।

अन्त में, ऐसी अनेक वन्य जातियाँ हैं जिनमें कोई भी वर्ग-संरचना नहीं होती । उन लोगों में आयु व योनि के आधार पर श्रम-विभाजन होता है जो शिकार खेलने, बच्चों के पालन-पोषण और अन्य कार्यों पर बल देता है, और केवल इस हद तक स्तरण होता है कि उनमें मुखिया या जादूगर (medicine man) होता है, विभिन्न श्रेणी के पदों का संग्रह उनमें नहीं होता । जितना ही अधिक गूढ़ (complex) श्रम-विभाजन हो जाता है उतनी ही अधिक संभावना वर्ग-संरचना के लिए हो जाती है; इस प्रकार एक ही स्थान पर स्थायी रूप से रहने वाले समुदायों में अधिक गूढ़-स्तरण-प्रणाली होती है, बनिस्बत खानाबदोश वन्यजातियों के, और नागरिक (urban) समाजों में अवश्य ही वर्ग-संरचना होती है ।

स्तरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप नाना प्रकार की अनेक वर्ग-संरचनायें विकसित होती हैं । किसी भी समाज की स्तरण-संरचना वहाँ की संस्कृति पर निर्भर करती है जो उन आधारों को निश्चित करती है जिन पर पद आश्रित होंगे : शक्ति, धन, धार्मिक विश्वास, आदि । वास्तव में, स्तरण संरचना कोई स्थिर, स्थायी वस्तु नहीं है । सामाजिक संगठन की अन्य विशेषताओं की तरह यह भी बदलती रहती है ।

प्रत्येक समाज में सामाजिक समूहों को विभिन्न भागों में विभाजित किया जाता है । इन भागों के अथवा उप-समूहों के अलग-अलग नाम और आधार होते हैं । वास्तव में सामाजिक जीवन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण वस्तु किसी व्यक्ति का पद (status) होता है—व्यक्ति का समाज में कितना आदर है और वह समाज की वस्तुओं का कितनी मात्रा में उपभोग करने में समर्थ है ।

'सामाजिक स्तरीकरण' भूगर्भविज्ञान के 'स्तरीकरण' शब्द का समानार्थक है । जिस प्रकार पृथ्वी की विभिन्न पर्तों (strata) का अध्ययन करके पृथ्वी की

* Young and Mack, *Sociology and Social Life*.

बनावट और प्रकृति के बारे में बहुत कुछ जाना जा सकता है उसी प्रकार समाज में विभिन्न स्तरों के कर्ताओं के पद (status) और उनकी भूमिकाओं (roles) का अध्ययन करके उस समाज के बारे में समझा जा सकता है, क्योंकि समाज-वैज्ञानिकों ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि समाज के विभिन्न स्तरों में व्यक्ति के स्थान (Location or identification) को जान लेने से उसके व्यवहार को समझने में सहायता मिलती है। ऐसा इसलिये सम्भव है क्योंकि व्यवहार के कुछ प्रतिमान, तरीके व्यक्ति के सामाजिक स्थान की मान्यताओं से सीधे-सीधे सम्बन्धित हैं और सामाजिक स्थान की मान्यताओं को निर्धारित करने में लोगों की अलग-अलग बुद्धि, विद्या, योग्यता, कार्यक्षमता तथा प्रतिभा का विशेष हाथ होता है जिनके द्वारा व्यवहारों का नियंत्रण होता है। बुद्धि, विद्या और कार्यक्षमता जैसे तत्वों की विभिन्नता के आधार पर बने हुये सामाजिक सम्बन्धों के जाल को नियन्त्रित करने के लिये कुछ सिद्धान्तों—नियामक सिद्धान्तों—(Regulatory principles) का विकास अनिवार्य हो जाता है। इन्हीं सिद्धान्तों की अनेकता के कारण समाज की व्यवस्था गुंथी हुई सी हो जाती है जिसमें अनेक उप-प्रतिमान (sub-patterns) बन जाते हैं। इन उपप्रतिमानों के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार संशोधित होते रहते हैं। इसीलिये एक एक उप-प्रतिमान से व्यवस्थित व्यक्तियों में किसी उत्तेजना (stimulus) के प्रति समान दृष्टिकोण मिलता है जो उसी उत्तेजना से सम्बन्धित दूसरे उप-प्रतिमान वाले व्यक्तिथों के दृष्टिकोण* से भिन्न होता है। कुछ समाजों में दृष्टिकोण की यह भिन्नता प्रतिमानों और उप-प्रतिमानों (patterns & sub patterns) के आनुवंशिक (Hereditary) होने के कारण जन्म† पर आधारित हो जाती है तथा कुछ समाजों में व्यक्तियों की कुशलता और योग्यता के आधार‡ पर इसमें परिवर्तन होता रहता है। पहली स्थिति के उदाहरण के लिये भारतीय जातिगत-स्तरण (Caste-stratification) और दूसरी स्थिति के उदाहरण के लिये अमेरिकी-वर्ग स्तरण (Class-stratification) का उल्लेख किया जा सकता है।

स्तरीकरण की कुछ विशेषतायें—

१. स्तरीकरण एक प्रक्रिया (process) है।

२. यह उच्च निम्न या आधीनता जैसी मान्यताओं से युक्त प्रक्रिया है।

३. यह प्रक्रिया सभी समाजों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है।

---

* क्योंकि व्यक्ति अपने स्थान और अपनी भूमिका के बारे में चेतन (conscious) होता है।

† Ascribed.

‡ Achieved.

४. इस प्रक्रिया के आधारभूत प्रतिमान जन्मजात या अर्जित* (Acquired) भी हो सकते हैं।

५. इस प्रक्रिया के दौरान बने हुए समूह सीढ़ी के डंडों की तरह एक दूसरे के उपर नीचे के क्रम (Hierarchical order) में स्थित होते हैं।

६. यह प्रक्रिया समाज के लिए हितकारी होती है।†

स्तरीकरण के आधार–

सामाजिक स्तरीकरण का मौलिक आधार व्तक्तियों का पद (status) है। चूँकि पद बिना सम्बन्धित भूमिका के अर्थहीन है इसलिए 'भूमिका' (roles) भी मौलिक आधार के रूप में गिनी जाती है। पदों और भूमिकाओं का निर्धारण कई प्रकार के सामाजिक आधारों द्वारा किया जाता है जिनमें से सर्वसाधारण सामाजिक आधार, आर्थिक आधार, राजनैतिक आधार, जैविक आधार (आयु लिंग) और धार्मिक आधार मुख्य हैं। मनोवैज्ञानिक और प्रजातीय आधारों का भी उल्लेख कर देना अनावश्यक नहीं होगा। स्तरण के स्वभाव के निर्धारण में निम्नलिखित कारक बहुत महत्वपूर्ण हैं :—

समाज का आकार; आस पास के समाजों से सम्बन्ध, आन्तरिक श्रम विभाजन, वर्ग सुदृढ़ता की परम्परायें और सामाजिक गतिशीलता के मानक (standard)।

सामाजिक स्तरण की परिभाषा

गिसबर्ट के अनुसार: "सामाजिक स्तरीकरण समाज का उन स्थायी समूहों अथवा श्रेणियों में विभाजन है जो कि आपस में श्रेष्ठता और अधीनता के सम्बन्धों द्वारा सम्बद्ध होते हैं।"‡

रेमण्ड मरे के शब्दो में "स्तरीकरण उच्चस्तर और निम्नस्तर सामाजिक इकाइयों में समाज का एक क्षैतिज (horizontal) विभाजन है।"**

फेयरचाइल्ड के अनुसार: "सामाजिक स्तरण सामाजिक तत्वों का समूहों में

---

* Ralph Linton—The study of man. 1. 115

† Davis and Moore.

‡ "Social stratification is the division of society in permanent groups or categories linked with each other by the relationships of superiority and subordination." —P. Gisbert.

** "Stratification is a horizontal division of society into bigger and lower social units." —Raymond Murray.

भिन्न क्षैतिज स्तरों पर, क्रम-विन्यास है।——यह भिन्न श्रेष्ठता और हीनता के अर्थ में प्रस्थिति की स्थापना है।"*

सामाजिक स्तरण की आवश्यकता
(The necessity of stratification)

प्रत्येक समाज अपने सदस्यों को अपने सामाजिक ढाँचे की विभिन्न स्थितियों में बाँटता है। ऐसा करने के दो उद्देश्य होते हैं। (१) उचित व्यक्तियों में कुछ विशेष पद प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न करना, और (२) जब वे इन पदों को एक बार प्राप्त कर लें, तो उससे सम्बन्धित कर्त्तव्यों का पालन करने की इच्छा को जन्म देना। प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न प्रतिभा, गुण वाले व्यक्ति होते हैं, इसलिए यह सम्भव नहीं होता कि सब पद एक समान हों। कुछ ऐसे पद होते हैं जिनके लिये विशेष योग्यता अथवा ट्रेनिंग की आवश्यकता होती है। सब व्यक्ति अपने पदों के अनुरूप कर्त्तव्यों का श्रमपूर्वक पालन करें इसलिए समाज अनेक प्रकार के पुरस्कार निश्चित करता है। इन पुरस्कारों का ही फल सामाजिक पद व प्रतिष्ठा है।

कोई भी व्यक्ति यह प्रश्न कर सकता है कि समाज के पास वे कौन से पुरस्कार हैं जो व्यक्तियों को आवश्यक सेवायें करने के लिए प्रेरणा देते हैं ? सबसे पहले समाज के पास ऐसी वस्तुयें हैं जो पोषण तथा आराम में सहायता देती हैं–आर्थिक प्रेरणायें। इसके अतिरिक्त समाज के पास ऐसी वस्तुयें हैं जो आत्म-सम्मान बढ़ाने में सहायक होती हैं जैसे उपाधियां, जिनको हम लाक्षणिक प्रेरणायें कहते हैं।

यदि समाज में विभिन्न पदों के अधिकार और लाभ और आराम असमान होना आवश्यक है तो समाज का स्तरण (stratification) होना भी अनिवार्य है क्योंकि यही स्तरण का अर्थ है। किंग्सले डेविस ने ठीक ही कहा है: "इस प्रकार सामाजिक असमानता अचेतन रूप से बनाई हुई एक विधि है जो इस बात को निश्चित करती है कि सबसे अधिक योग्य व्यक्ति ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण पदों पर आरूढ़ हों। इसलिए प्रत्येक समाज के लिए, चाहे जितना सरल अथवा जटिल वह क्यों न हो, यह अनिवार्य है वह प्रतिष्ठा और आदर के सम्बन्ध में व्यक्तियों में भेद करे।"

किंग्सले डेविस ने कहा है कि स्तरण का विकास तब होता है जब अन्य कार्यों की अपेक्षा कुछ कार्यों को समाज के हित के लिये अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। दूसरे शब्दों में, कुछ पदों को क्रियात्मक (functional) महत्ता होती है, दूसरों की नहीं। कुछ पदों की पूर्ति सरल होती है और कुछ की कठिन। कुछ पदों के लिए

---

* "Social stratification is the arrangement of social elements into groups on different horizontal levels...the establishment of status on terms of varying superiority and inferiority."

—Fairchild.

गुणों का विरल (rare) मिश्रण या महान् उपलब्धि (achievement) चाहिये, दूसरों के लिए दीर्घकाल तक शिक्षा या ट्रेनिंग। इस प्रकार की विभिन्न सम्भावनायें हो सकती हैं। लकड़ी काटना और पानी भरना महत्वपूर्ण होते हुए भी कठिन नहीं हैं, इसलिये इस प्रकार के कार्य करने वालों को ऊँचा पद नहीं दिया जाता है, दूसरी ओर, जादू टोना (witchcraft) के सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि उसमें कोई छुपा हुआ ज्ञान शामिल है और देवताओं को बुलाने की शक्ति रखता है, इसलिए उसे अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाता है। ७ फीट की ऊँचाई फांद जाना कठिन अवश्य है परन्तु हमारे समाज में उसका कोई क्रियात्मक महत्व नहीं है; इसलिए ऊँची कुदान के चैम्पियन को मामूली प्रतिष्ठा दी जाती है। दूसरी ओर जैसा कि डेविस ने कहा, आधुनिक औषधि-ज्ञान के लिए अधिकतर व्यक्तियों की मानसिक शक्ति ठीक है, परन्तु औषधि-ज्ञान सम्बन्धी शिक्षा इतनी कष्टप्रद और मँहगी है कि यदि डाक्टरों को अपने त्याग के अनुकूल सन्तोषजनक पुरस्कार (धन) न मिले तो कोई भी व्यक्ति शायद डॉक्टरी पास करना पसन्द न करेगा। निरोग करने की कला का जीवन से इतना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है कि सभ्य तथा असभ्य सभी समाजों में उसका क्रियात्मक महत्व अत्यधिक है, और इस कला में प्रवीण लोगों की सामाजिक प्रतिष्ठा भी ऊँची है।

यह आवश्यक नहीं है कि यह मूल्यांकन (evaluation) हमेशा तर्कपूर्ण ही हो। कुछ समाज कुछ ऐसी उपलब्धियों को बहुत अधिक महत्व और प्रतिष्ठा देते हैं, जिनके प्रति हमें उदासीनता और अरुचि ही हो। इसी प्रकार हमारे समाज में कुछ कार्यों को बहुत महत्वपूर्ण कहा जाता है जब कि आदिवासी समाज में उन्हें बिल्कुल बेकार समझा जाता है। इसका कारण विचारधाराओं (ideologies) में अन्तर होना है।

परन्तु पदों (statuses) का स्तरण स्वयं वर्ग-संरचना नहीं उत्पन्न करता। वर्ग के एक समूह-प्रमेय (phenomena) होने के कारण यह आवश्यक है कि व्यक्ति के पद की प्रतिष्ठा को उसके परिवार को भी प्रदान किया जाय; पत्नियों को पति के, और बच्चों को पिता के पद प्रदान किये जायें। बाद में यह पद आनुवंशिक (hereditary) हो जाते हैं और व्यवसाय-सम्बन्धी पद से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। इस प्रकार जाति या बन्द वर्गों का जन्म होता है।*

---

* "A man whom law and custom regard as the property of another. In extreme cases he is wholly without rights, a pure chattel; in another case he may be protected in certain respects, but so may an ox or an ass. --L.T. Hobhouse.

सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख प्रकार
(Major Types of Social Stratification)

हम पहले लिख चुके हैं कि सामाजिक स्तरण के चार प्रमुख प्रकार हैं : गुलामी, जागीर, वर्ग, और जाति । यहाँ हम संक्षेप में केवल दो की व्याख्या करेंगे । वर्ग और जाति पर एक अलग अध्याय आगे लिखा गया है ।

गुलामी (Slavery) : हॉबहॉउस ने गुलाम को एक ऐसा मनुष्य बताया है "जिसको क़ानून और प्रथा दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति मानते हैं । सबसे बुरे रूप में उसके कोई भी अधिकार नहीं होते, वह केवल अस्थावर सम्पत्ति होता है : कुछ मामलों में उसे संरक्षण भी प्राप्त हो सकता है परन्तु यह बैल या गधे को भी प्राप्त होता है ।" हॉबहॉउस के अनुसार, यदि गुलाम ने अपनी स्थिति से कुछ विशेष अधिकारों को प्राप्त कर लिया है, जैसे कि सम्पत्ति को वंशानुक्रम से प्राप्त करने का अधिकार तो वह गुलाम नहीं रह जाता बल्कि भूसक्तदास (serf) बन जाता है । इस प्रकार, गुलामी हद दर्जे की असमानता का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें व्यक्तियों के कुछ समूहों के पास कोई भी अधिकार नहीं होते ।

गुलामी की प्रथा अनेक कालों और स्थानों में रही है परन्तु इसके दो प्रमुख उदाहरण हमें प्राचीन काल के ग्रीस और रोम, और अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में मिलते हैं । ऐसी प्रणाली में गुलामों की सामाजिक दशाओं का वर्णन करते हुये नीबोयर (Nieboer) ने कहा है : सबसे पहले, प्रत्येक गुलाम का एक मालिक होता है जिसके आधीन वह रहता है और यह आधीनता एक खास किस्म की होती है । अपने गुलाम के ऊपर मालिक की अधिकार-शक्ति असीम होती है । वह अपने गुलाम के साथ सब कुछ कर सकता है । इसी कारण से गुलाम को मालिक की सम्पत्ति कहा जाता है । दूसरे, स्वाधीन पुरुषों की अपेक्षा, चाहे वे दरिद्र ही क्यों न हों, गुलाम की सामाजिक स्थिति नीची होती है । उसको राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होता और वह न अपनी सरकार को चुनता है और न पब्लिक काउन्सिल में शरीक होता है । समाज उससे घृणा करता है । तीसरे, गुलाम को अनिवार्य श्रम (labour) करना पड़ता है ।

गुलामी का आधार हमेशा ही आर्थिक होता है । जैसा कि नीबोयर ने कहा है, यह एक औद्योगिक प्रणाली है । गुलामी की प्रणाली के आविर्भाव के साथ ही कुलीनतंत्र (aristocracy) का भी उदय होता है जो गुलामों की मेहनत पर पनपता है । आधुनिक काल में अरब देशों को छोड़कर गुलामी प्रणाली कहीं नहीं मिलती । अन्य कारणों के अतिरिक्त गुलाम श्रमिक की अकुशलता भी इस प्रणाली के समाप्त होने का एक महत्वपूर्ण कारण है ।

जागीरें (Estates) : मध्ययुग की सामन्तवादी (feudal) जागीरों की तीन प्रमुख विशेषतायें थीं। पहले, वे कानूनी तौर पर परिभाषित थीं; प्रत्येक जागीर की अपनी प्रस्थिति (status) थी, अधिकार और कर्त्तव्यों, विशेषाधिकारों (privileges) और उत्तरदायित्वों का एक कुलक (set) था। बारहवीं शताब्दी में जब भूसक्त दासता (serfdom) वृद्धि पर थी, अंग्रेज वकील ग्लैनविल (Glanville) ने भूसक्तदासों की निम्नलिखित अयोग्यतायें बतायीं थीं : न्याय के लिये राजा से अपील करने की अयोग्यता, अपनी चल और अचल सम्पत्ति पर अधिकार का अभाव, जुर्माना देने को बाध्य होना। विभिन्न जागीरों के अन्तर इस बात से भी स्पष्ट हैं कि एक से अपराधों के लिये भिन्न प्रकार के दण्ड वहाँ दिये जाते थे।

दूसरे, जागीरें व्यापक श्रम-विभाजन का प्रतिनिधित्व करती थीं और उनके निश्चित प्रकार्य होते थे। अभिजातवर्ग (nobility) को आज्ञा थी कि वे सबकी रक्षा करें, पादरी सबके लिये प्रार्थना करें।

तीसरे, सामन्तवादी जागीरें राजनीतिक समूह थे। मनुष्यों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। इस अर्थ में भूसक्तदास (serfs) जागीर का भाग न थे। शास्त्रीय (classical) सामन्तवाद में दो ही जागीरें थीं, अभिजातवर्ग (nobility) और पुजारी (clergy)।

कुछ आधुनिक इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों ने योरप के सामन्तवादी समाजों और अन्य समाजों की समानताओं पर ग़ौर किया और उनको भी सामन्तवादी बताया। उदाहरण के लिये, मार्क़ ब्लोच और कोलबोर्न ने १२वीं सदी के जापान की सामाजिक प्रणाली को सामन्तवादी बताया। सामन्तवाद का भारत में अस्तित्व विवादास्पद है। सबसे पहले, हमें यह समझना है कि यदि भारतीय इतिहास के कुछ काल में सामन्तवादी सम्बन्ध रहे भी हैं तो वह जाति सम्बन्धों के साथ गुंथे रहे हैं। इसका यह अर्थ है कि कुछ शर्तों के जोड़ने पर ही इस सामाजिक प्रणाली को सामन्तवादी कहा जा सकता था। दूसरे, मौर्य गुप्त और मुगल साम्राज्यों का और उनकी अवनति के काल के सामन्त में योरोपियन सामन्तवाद की कुछ विशेषताओं की कमी थी। इस बात में सभी विद्वानों की सहमति है कि भारतीय सामन्तवाद का आधार ग्रामीण कृषि थी, न कि स्वामिभू पद्धति (manorial system) के. एस. शेलवन्कर ने अपनी Problem of India नामक पुस्तक में लिखा है : "भारतीय सामन्तवाद की प्रकृति राजकोषीय और सैनिकीय थी। वह स्वामिभू नहीं थी।"* अनेक लेखकों ने यह विचार प्रकट किया है कि भारत में शाही शक्ति की धारणा पश्चिमी देशों से इतनी भिन्न थी कि वह सामन्तदादी प्रणाली को जन्म ही

---

* "Indian feudalism remained fiscal and military in character. It was not manorial." —K. S Shelvanker

नहीं दे सकती थी। नज़मुल करीम ने लिखा है : "भारत में सैद्धान्तिक रूप से, वह स्वयं भूमि का सर्वोच्च मालिक नहीं था। वह मध्यस्थों को केवल जमीन का विशिष्ट और व्यक्तिगत अधिकार प्रदान करता था अर्थात् मालगुजारी इकट्ठा करने की शक्ति प्रदान करता था।"* इस मत को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता परन्तु इस बात पर पूरी सहमति है कि अक्सर सामन्तवादी सम्बन्ध उस समय मजबूती से विकसित होते थे जब कि साम्राज्य अवनति पर थे क्योंकि ऐसे समय में मालगुजारी इकट्ठा करने वाले भूमि पर सरलता से स्वामित्वाधिकार स्थापित कर सकते थे और राजनीतिक एवं न्यायसम्बन्धी प्रकार्य हथिया सकते थे।

---

* "In India, the king did not, in theory, create subordinate owners of land, because he himself was not, in theory the supreme owner of land. What he delegated to his intermediaries was only the specific and individual right of zamin, i. e., the revenue collecting power." —A. K. Nozmul Karim.

१६ सामाजिक स्तरण : वर्ग और जाति
(Social Stratification : Class and Caste)

पिछले अध्याय में हमने सामाजिक स्तरण के दो प्रकारों—गुलामी और जागीर—की व्याख्या की। इस अध्याय में हम दो अन्य प्रकारों, वर्ग और जाति, की व्याख्या करेंगे।

सामाजिक वर्ग (Social Class)

आज से १०० वर्ष पूर्व कार्ल मार्क्स (Karl Marx) और फ्रीडरिच एञ्जिल्स (Friedrich Engels) ने यह आवाज लगाई थी : 'आज के वर्तमान सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संग्राम का इतिहास है' (The history of all hitherto existing societies is the history of the class struggle)।* मार्क्स और एञ्जिल्स ने वर्गों को आर्थिक संघर्ष समूह (economic conflict groups) बतलाया है जो कि उत्पादन के साधनों के स्वामित्व (ownership) के आधार पर विभाजित हैं।

सामाजिक वर्ग, समुदाय (community) की भाँति, स्वतः जन्मित (spontaneous formation) समूह होते हैं जो कि सामाजिक मनोभाव (attitudes) को प्रकट करते हैं। किसी सामाजिक वर्ग से हमारा तात्पर्य मनुष्यों के किसी ऐसे समूह से होता है जिसका कि समाज में सामान्य सामाजिक पद (social status) होता है। साधारण बोलचाल में हम व्यक्तियों के किसी भी विशेष प्रकार के समूह—जैसे कि उपन्यास पढ़ने वाले, समाज सुधारक, कलाकार अथवा चिकित्सक—को एक सामाजिक वर्ग कह सकते हैं। परन्तु समाजशास्त्र के अनुसार यह गलत है क्योंकि यह एक दूसरे से सम्बद्ध (coherent) समूह नहीं होते हैं, सामाजिक ढाँचे में एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं होते हैं और न सामाजिक पद के आधार पर उत्पन्न किसी प्रकार के ऊँच-नीच के भाव के कारण उनके

* *The Communist Manifesto*, p. 12

सामाजिक सम्बन्ध सीमित होते हैं। जहाँ कहीं भी सामाजिक सम्बन्ध सामाजिक पद के आधार पर सीमित होते हैं, वहीं सामाजिक वर्ग पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक सामाजिक वर्ग का अपना अलग सामाजिक पद होता है; दूसरे वर्गों की अपेक्षा वह श्रेष्ठ (superior) अथवा हीन (inferior) होता है और इसके आधार पर एक वर्ग के सदस्यों का सामाजिक पद (status) समान होता है।

मानव समाज में वर्ग करीब-करीब एक सार्वभौमिक प्रमेय (phenomenon) है। यह एक ऐसा प्रमेय है जो केवल सबसे छोटे, सबसे सरल और सबसे अधिक आदिम समाजों में नहीं पाया जाता है। प्रत्येक समाज में, चाहे वे किसी भी प्रकार के क्यों न हों, वर्ग-ढाँचा पाया जाता है। यदि छोटे और आदिम समाजों में वर्ग ढाँचा नहीं है और यदि बड़े और सभ्य समाजों में है, तो हम आश्चर्य करते हैं कि कब और कैसे और क्यों यह प्रमेय उत्पन्न हुआ। बियरस्टैड का कथन है कि हमारे लिये यही उचित होगा कि हम यह कहें कि सामाजिक स्तरण (stratification) का दो कारकों से घनिष्ठ सम्बन्ध है—समाज का आकार और श्रम-विभाजन। क्योंकि स्वयं श्रम-विभाजन, आयु और लिंग के आधार के अलावा, समूह के आकार का फल है, इसलिये समाज का आकार ही विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जैसे-जैसे समाज बड़े होते हैं उनके अन्दर बड़े बड़े भिन्न-समूह बन जाते हैं। फिर व्यक्ति हर किसी दूसरे व्यक्ति के साथ अन्तःक्रिया नहीं करता, जैसे कि छोटी जन-जातियों या गाँवों में होता है, बल्कि अपने समाज के केवल कुछ सदस्यों ही के साथ अन्तःक्रिया करता है।

वर्ग का सम्बन्ध पद (status) से है, और समाज में विभिन्न पद तब उभरते हैं जब लोग भिन्न प्रकार के कार्य करते हैं, भिन्न वस्तुयें बनाते हैं, और भिन्न पेशों और व्यवसायों को अपनाते हैं। डेविस ने कहा है कि स्तरण उस समय होता है जब कुछ क्रियायें दूसरी क्रियाओं की अपेक्षा अधिक उपयोगी समझी और ठहराई जाती हैं।*

जिन समाजों में सामाजिक वर्ग पाये जाते हैं उनका सामाजिक ढाँचा (structure) एक तराशे हुए पिरामिड (truncated pyramid) की भाँति होता है जिसके सबसे नीचे के भाग में निम्नतम (lowest) सामाजिक वर्ग होते हैं

* "Social inequality is thus an unconsciously evolved device by which societies ensure that the most important positions are conscientiously filled by the most qualified persons. Hence every society, no matter how simple or complex, must differentiate persons in terms of both prestige and esteem."

—Kingsley Davis, *Human Society*, p. p. 367-68.

और उनके ऊपर क्रमशः अधिक ऊँचे पद वाले वर्ग एक श्रेणी क्रम (hierarchy) में होते हैं। एक सामाजिक वर्ग की मौलिक विशेषता दूसरे सामाजिक वर्गों की अपेक्षा उसकी श्रेष्ठ अथवा हीन सामाजिक स्थिति है।* इनका क्रम-विन्यास (arrangement) सेना (army) की ही भाँति है जिसमें आफीसर, नॉन कमीशण्ड (non-commissioned) आफीसर और प्राइवेट होते हैं।

सामाजिक वर्ग समतल (horizontal) सामाजिक समूह होते हैं जो कि सम्बन्धों की विस्तरण श्रेणी-क्रम (stratified hierarchy) में पाये जाते हैं। मोम्बर्ट ने ठीक ही कहा है : "वर्ग का तथ्य समूहों की सामाजिक भिन्नता से सम्बन्ध रखता है" (The concept of class is concerned with the social differentiation of groups)।† इस सामाजिक श्रेणी (hierarchy) के स्तर को देखते हुए मॉरिस गिन्सबर्ग ने वर्ग को ऐसे व्यक्तियों का समूह कहा है—

"जिनका सामान्य वंशक्रम, व्यवसाय, धन और शिक्षा की समानता के कारण जीवन-यापन का एक सामान्य ढंग होता है, विचारों, मनोभावों और व्यवहार के ढंगों का एक सामान्य संग्रह होता है और जो, इनमें से किसी एक या सभी आधारों पर, एक दूसरे से समानता के आधार पर मिलते हैं और अपने को एक ही समूह का सदस्य समझते हैं, यद्यपि इस बात की चेतना की मात्रा में उनमें अन्तर हो सकता है।"‡

इस परिभाषा में गिन्सबर्ग ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया है कि सामाजिक समूहों में भी श्रेणी—ऊँची और नीची—होती है। इसलिए यह परिभाषा हमें अपूर्ण मालूम देती है। इसको पूर्णता देने के लिए कुछ और शब्दों को इस परिभाषा में जोड़ना होगा।

---

* "The fundamental attribute of a social class is thus its social position of relative superiority or inferiority to other social classes."—Ogburn and Nimkoff, *A Handbook of Sociology*. p. 211.

† P. Mombert "Class" (*Encyclopedia of the Social Sciences*. Vol. 3 1930) p. 531.

‡ "......who, through common descents, similarity of occupation, wealth and education, have come to have a similar mode of life, a similar stock of ideas, feelings, attitudes, and who, on any or all of these grounds, meet one another on equal terms and regard themselves with varying degree of explicitness, are belonging to one group."—Morris Ginsberg, "Class Consciousness" *Encyclopedia of the Social Sciences*, p. 336.

"......और जो अपने समूह के बाहर के व्यक्तियों के प्रति इस प्रकार से व्यवहार करते हैं मानों वे ऐसे समूहों के सदस्य हैं जिनका पद (status) अधिक नीचा अथवा अधिक ऊँचा है।"

इसके बावजूद भी मॉरिस गिन्सबर्ग की परिभाषा हमें अपूर्ण मालूम पड़ती है क्योंकि इससे हम यह धारणा बनाते हैं कि वर्ग स्थाई समूह होते हैं जो कि उठते हुए (ascending) और गिरते हुए (descending) क्रम में बद्ध होते हैं। कुछ सीमा तक यह सत्य भी है, परन्तु इनमें अनेक व्यक्ति एक वर्ग से दूसरे वर्ग में प्रवेश करते हैं जब कि या तो उनका पद (status) गिर जाता है या ऊँचा हो जाता है। इस प्रकार, वे एक वर्ग से नीचे या ऊपर पहुँच जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ आलोचकों का कहना है कि इस परिभाषा से हमें इस बात का ज्ञान नहीं होता है कि सामाजिक स्तरण (stratification) का मुख्य आधार या कारक (factor) क्या है। इस समस्या को गिन्सबर्ग ने स्वयं हल कर दिया है जबकि वह कहते हैं :

"इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सामाजिक स्तरणों के प्राथमिक निर्णायक प्रकृति से आर्थिक होते हैं। आर्थिक दशायें किसी व्यक्ति के व्यवसाय को निश्चित करती हैं जो कि बदले में उसके जीवन-यापन के ढंग और शैक्षिक स्तर का चित्र है, जिससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि वे कौन से व्यक्ति होंगे जिनसे वह बराबरी के भाव से मिलेगा और जिनके बीच से वह अपने जीवन साथी को चुनेगा।"*

अन्य परिभाषायें

(१) "सामाजिक वर्ग एक समुदाय का कोई भी भाग है जो सामाजिक पद के आधार पर शेष भाग से अलग कर दिया गया है।"† मेकाइवर और पेज।

(२) "एक सामाजिक वर्ग उन व्यक्तियों का योग है जिसकी आवश्यक रूप से एक निश्चित समाज में एक समान सामाजिक स्थिति है।"—ऑगबर्न और निमकॉफ।‡

सामाजिक वर्ग की विशेषतायें (Characteristics of Social Class)

सामाजिक वर्ग की विशेषताओं को निम्नलिखित भाग में विभाजित करके हम पुनः उन पर विचार करेंगे।

* "Class consciousness consists in the realization of a similarity of attitude and behaviour."

† "A social class is any portion of a community marked off from the rest by social status." MacIver and Page, *Society*, p. 348.

‡ "A social class is the aggregate of persons having essentially the same social status in a given society."

—Ogburn and Nimkoff. p. 210.

(१) **श्रेणी (hierarchy)**—प्रत्येक समाज में वर्गों की एक श्रेणी होती है जिसमें सबसे ऊपर उच्चतम वर्ग और उनसे नीचे क्रम से निरन्तर और निम्नतम वर्ग होते हैं।

(२) **श्रेष्ठता अथवा हीनता की भावना और मनोवृत्ति (feelings and attitudes of superiority or inferiority)**—एक वर्ग के सदस्य दूसरे वर्गों के सदस्यों के प्रति श्रेष्ठता अथवा हीनता की भावना रखते और प्रदर्शित करते हैं।

(३) **वर्ग-चेतना (class consciousness)**—प्रत्येक वर्ग इस बात मे चेतन होता है कि उसका सामाजिक पद—प्रतिष्ठा व आदर—दूसरे वर्गों की अपेक्षा कम या अधिक है। मेकाइवर ने कहा है : "वर्ग चेतनता मनोवृत्ति और व्यवहार की समानता के अनुभव में अन्तर्निहित है।"

(४) **सामाजिक सम्बन्ध (social contact)**—एक वर्ग के सदस्य आपस में बराबरी का व्यवहार करते हैं और दूसरे वर्गों के सदस्य के साथ उनके सीमित सम्बन्ध होते हैं।

(५) **जीवन-यापन का ढंग (mode of life)**—प्रत्येक वर्ग के जीवन-यापन का ढंग दूसरे वर्गों से भिन्न होता है।

(६) **वर्ग-अन्तर्विवाह (class endogamy)**—प्रत्येक वर्ग के सदस्य अपने ही समूह के अन्दर साधारणतया विवाह करते हैं।

(७) **उतार-चढ़ाव (shifting)**—वर्गों की सदस्यता बदलने की भी संभावना रहती है। सामाजिक पद में अवनति अथवा उन्नति होने से कोई व्यक्ति अपने वर्ग से नीचे अथवा ऊँचे वर्ग में प्रवेश करता है। इनमें व्यक्ति के जन्म का महत्व नहीं होता।

(८) **आधार (basis)**—सामाजिक वर्ग का मुख्य आधार किसी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वर्ग-सदस्यता के दूसरे आधार नहीं हैं। वर्ग राजनैतिक शक्ति, बौद्धिक उन्नति आदि के आधार पर भी बनते हैं। सामाजिक वर्ग योनि (sex) और आयु के आधार की उपेक्षा (ignore) करते हैं।

(९) **उपवर्ग (sub-classes)**—प्रत्येक वर्ग के अन्दर अनेक उपवर्ग होते हैं। उदाहरण के लिए, धनी वर्ग में भी अनेक उपवर्ग होते हैं क्योंकि धनी व्यक्तियों की आय में भी परस्पर अन्तर होता है।

(१०) **जीवन-अवसर (life-chances)**—प्रत्येक वर्ग के सब सदस्यों की जीवन की अच्छी वस्तुओं को प्राप्त करने की सम्भावना एक सी होती है, जैसे स्वतन्त्रता, उच्च जीवन-स्तर (high standard of living), आराम, आदर या अन्य वस्तुयें जिनका समाज में महत्व है।

(११) **अन्य वर्गों की उपस्थिति अनिवार्य है (presence of other classes is essential)**—एक वर्ग दूसरे वर्गों के सम्बन्ध में ही जीवित रह सकता है। एक-वर्ग समाज वर्ग-हीन (classless) समाज है। यदि अन्य वर्ग नहीं होंगे तो किसके प्रति हीनता अथवा श्रेष्ठता का भाव प्रदर्शित किया जायेगा? इसलिये अन्य वर्ग या वर्गों की उपस्थिति किसी वर्ग के जीवन के लिए अनिवार्य है।

(१२) विभिन्न समुदायों के स्तर (strata) आवश्यक रूप से समान नहीं होते।

(१३) समुदाय के अधिक गतिशील सदस्य (जिनके वर्ग बराबर बदलते रहते हैं) अपने समुदाय के प्रति विशेष लगाव अनुभव नहीं करते परन्तु फिर भी समाज में वे महत्वपूर्ण और अधिक प्रतिष्ठा वाले पद ग्रहण किये रहते हैं।

(१४) विशाल समाज में वर्ग केवल प्रतिष्ठा-प्रमेय ही नहीं है बल्कि शक्ति प्रमेय (power-phenomenon) भी है। हमारे देश में पूँजीपति राजनीति में भी प्रभाव रखते हैं।

जिन आधारों पर सामाजिक वर्ग काम करते हैं वे वैषयिक (objective) तथा प्रातीतिक (subjective) दोनों होते हैं। आर्थिक निर्णायक (economic determinists) वैषयिक (objective) आधार पर बल देते हैं। उनके विचार में उत्पादन के साधन अर्थात् भूमि (land) और पूँजी (capital) का स्वामित्व या स्वामित्व का अभाव (non-ownership) ही सामाजिक वर्गों का मुख्य आधार है। इस प्रकार समाज में दो वर्ग हुए–(१) पूँजीपति और (२) गैर पूँजीपति। यह मार्क्स का वर्गीकरण है। मैक्स वैबर (Max Weber) ने भी वर्ग की परिभाषा में आर्थिक आधार को सम्मिलित किया है, परन्तु इसमें वाह्य जीवन-स्तर (external standard of living) और साँस्कृतिक और मनोरंजनात्मक अवसरों (opportunities) को भी जोड़ दिया है। अमेरिकन समाजशास्त्रियों ने प्रातीतिक (subjective) आधारों को प्रधानता दी है। "सामाजिक वर्ग जैसी कोई वस्तु नहीं है परन्तु सोचने से ही उसका जन्म होता है।" (There are no social classes but thinking makes them so)। इस प्रकार मेकाइवर ने कहा है "यह पद की भावना ही है जो आर्थिक, राजनीतिक अथवा गिरजाघर की शासन-सम्बन्धी शक्ति और जीवन-यापन के विशेष ढंग और उनसे सम्बन्धित साँस्कृतिक कार्यों से जीवित या थमी हुई है और जो कि एक वर्ग को दूसरे वर्ग से अलग करती है, एक दूसरे को सम्बद्ध करती है, और एक सम्पूर्ण समाज का स्तरण करती है।"*

---

* It is sense of status, sustained by economic, political, or ecclesiastical power and by distinctive modes of life and cultural expressions corresponding to them, which draws class apart from class, gives cohesion to each and stratifies a whole society."

—R. M. MacIver, *Society*, p. 78-79.

मार्टिनडेल और मोनेकसी के विचार में वर्ग- सदस्यता का एकमात्र मापदण्ड किसी व्यक्ति की आय है। उत्पादन या सेवा के साधनों का आधिपत्य, अथवा समाज में उत्पादित होने वाले पदार्थ अथवा सेवाओं से सम्बन्धित क्रियाओं पर किसी व्यक्ति का नियन्त्रण या अधिकार उसके पद को दूसरे व्यक्तियों के मुकाबले में निश्चित करता है। वस्त्र जो वह पहनता है, मकान जिसमें वह रहता है, मोटर जिसमें वह बैठता है, रेडियो जो वह रखता है, स्कूल जहाँ वह पढ़ता है, क्लब जिसका वह सदस्य है—यह सब बातें इस बात से निश्चित होती हैं कि समाज में उत्पादित पदार्थों व सेवाओं का कितना भाग उसके अधिकार में है अथवा उसकी आय क्या है। इसलिए मार्टिन्डेल और मोनेकसी ने कहा है : "वर्ग से हमारा तात्पर्य मनुष्य के एक समूह से है जो कि समाज में प्राप्त पदार्थों व सेवाओं के एक विशिष्ट भाग का नियन्त्रण करते हैं।"* दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं, वर्ग ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो एक दूसरे से इस आधार पर मिलते-जुलते (assemble) हैं कि वे उस धन का समान भाग प्राप्त करते हैं जो समाज उत्पन्न करता है क्योंकि आसानी से हम देख सकते हैं कि व्यक्तियों की सामाजिक क्रियाओं पर इन बातों का प्रभाव पड़ता है।

बियरस्टैड (Bierstedt) ने वर्ग के सात आधार बताये हैं (१) सम्पत्ति, धन, पूंजी या आय (२) परिवार का रक्त सम्बन्धी समूह (kinship); (३) निवास का स्थान; (४) निवास की अवधि; (५) व्यवसाय; (६) शिक्षा; (७) धर्म।

वर्ग-वर्गीकरण (Classification of Class)

आधुनिक समाज में वर्ग सदस्यता का सबसे सच्चा प्रमाण किसी व्यक्ति की आय है। किसी व्यक्ति के प्रयत्नों या सम्पत्ति से प्राप्त धन उसको वर्गीय ढाँचे (class structure) में स्थान देता है। इस प्रकार हमारे लिए यह सम्भव है कि हम एक औद्योगिक समाज में भेद चार मुख्य वर्गों में करें जो कि इस बात पर आधारित हैं कि प्रत्येक वर्ग के सदस्य किसी समय में उत्पादित कुल पदार्थों और सेवाओं का कितना भाग प्राप्त करते हैं।

(१) श्रेणी (hierarchy) के सबसे ऊँचे छोर पर वे लोग हैं जो कि उत्पादन (production) के साधनों—अर्थात् मशीनरी और प्राकृतिक साधन (natural resources) जिनके द्वारा पदार्थों को सर्वसाधारण के उपभोग (consumption) के लिए प्राप्त किया और बनाया जाता है—के स्वामी हैं : साधनों के

---

* "By the term 'class' we mean an aggregate of persons who control a specified share of the goods and services provided in the society"—Martindale and Monachesi, *Elements of Sociology*, p. 581.

नियंत्रण के द्वारा और कच्चे माल के प्रोसेसिंग (processing) के साधनों के स्वामित्व (ownership) के द्वारा, यह वर्ग पदार्थों और सेवाओं का सबसे अधिक भाग प्राप्त करता है।

(२) दूसरे वर्ग में, जो आर्थिक मूल्यों में अपनी देन (contribution) पर आधारित है, वे व्यक्ति हैं, जो कि प्रबन्धकीय (managerial) निपुणता प्रस्तुत करते हैं, जिससे कि मशीनों और साधनों के स्वामियों को अधिक से अधिक लाभ हो सके।

(३) तीसरे वर्ग में वे लोग हैं जो उन निपुणताओं (skills) और ज्ञान से युक्त हैं जिनको सम्पूर्ण समाज आवश्यक समझता है और जिस योग्यता का मूल्य देता है। इस समूह में हम डॉक्टरों, अर्टानियों (attorneys), शिक्षकों, मनोरंजन करने वालों, मिनिस्टरों, भविष्यवक्ताओं, वैज्ञानिकों, सैनिकों, फैशन बनाने वालों (designers), कलाकारों, उपन्यासकारों आदि को रखते हैं, जो कि समाज के अन्य वर्गों के सदस्यों के रोगों को दूर करने, झगड़ों को निपटाने, मनोरंजन करने, शिक्षा देने और मोक्ष (salvation) को निश्चित करने में व्यस्त रहते हैं। इन क्रियाओं को उन मूल्यों के अनुसार पुरस्कृत किया जाता है जो अन्य वर्ग उन्हें प्रदान करते हैं। इन सब उपरोक्त क्रियाओं में से किसी के लिए अधिक और किसी के लिए कम पुरस्कार होता है।

(४) चौथा बड़ा कमाऊ वर्ग आधुनिक औद्योगिक समाज में वह है जिसमें अनगिनती आदमी होते हैं, जो अपनी मजदूरी के बदले में पदार्थों और सेवाओं का एक भाग पाते हैं।

इन वर्गों का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर प्रत्येक वर्ग में हमें अनेक उपवर्ग मिलेंगे जिनके विभिन्न सदस्यों की आय में भी अन्तर है। वास्तव में यह अत्योक्ति नहीं होगी यदि हम कहें कि समाज में जितने आय-समूह (income groups) होते हैं उतने ही वर्ग होते है।

वर्ग की पहचान के चिह्न (Earmarks of Class)

विभिन्न वर्गों की पहचान करने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। (१) इसमें विशेष (distinctive) वेश-भूषा भी अभिव्यक्ति (identification) का एक साधन है: प्राचीन राजकुलों का बैंगनी जामा और चीनी अफसरों की भव्य और कसीदे कढ़ी हुई स्कर्ट इसका उदाहरण है। (२) विशेष-वेशभूषा के साथ ही सामाजिक पद के कुछ अन्य प्रतीक और चिह्न भी हैं। जंजीरें गुलामी का द्योतक थीं। राजमुकुट और राजदण्ड राजसत्ता के द्योतक हैं। (३) एक वर्ग के सदस्य अपने से श्रेष्ठ समझ जाने वालों के प्रति हीनता के मनोभाव, और अपने से ही हीन समझे जाने वालों के प्रति श्रेष्ठता के मनोभाव (attitudes)

प्रदर्शित करते हैं। उच्च वर्गों के प्रति आदर अर्थपूर्ण हावभावों (gestures) से भी प्रकट होता है, जैसे कि सलाम (salute), अभिवादन (obeisance) और दण्डवत प्रमाण (genuflection)। सामाजिक वर्ग एक दूसरे से अलग और भिन्न-भिन्न प्रकार से रहते हैं। इस एकान्तता और विलगता के कारण, जीवन के विभिन्न पहलुओं में, सामाजिक वर्ग कुछ और गुण और विशेषतायें विकसित कर लेते हैं जो उनको एक दूसरे से अलग करती हैं। उदाहरण के लिये, लन्दन के प्रोलेतेरियत लोगों की कॉकनी (Cockney) भाषा छोटे-छोटे स्थानों के—ग्रेट ब्रिटेन के—लोगों से उन्हें अलग करती है। वास्तव में प्रत्येक वर्ग की एक अलग संस्कृति बन जाती है।

खुली और बन्द वर्ग प्रणालियां (Open and closed class systems)

यह स्पष्ट है कि कठोरता (rigidity) की दृष्टि से वर्ग ढाँचे एक समाज से दूसरे समाज में, और एक काल से दूसरे काल में उसी समाज में, भिन्न होते हैं। खुली वर्ग प्रणाली में अर्ध्वाधर (vertical) सामाजिक गतिशीलता सम्भव होती है। इसका अर्थ यह है कि सामाजिक पद की दृष्टि से व्यक्ति के ऊँचे से नीचे और नीचे से ऊँचे वर्ग में पहुँचने में कोई प्रतिबन्ध नहीं होते, या मामूली प्रतिबन्ध होते हैं। बहुत सी घटनाओं में सामाजिक पद प्रदत्त न होकर अर्जित होते हैं। ऐसी स्थिति में अपने व्यक्तिगत गुणों से व्यक्ति ऊँचे या नीचे वर्ग को जा सकता है।

दूसरी ओर, बन्द वर्ग-प्रणाली में अर्ध्वाधर सामाजिक गतिशीलता की सम्भावना नहीं रहती। व्यक्ति का पद प्रदत्त (ascribed) होता है, न कि अर्जित (achieved)। उसका पद वही होगा जो उसके परिवार का है और उसे अपना जीवन-साथी अपने ही वर्ग में से चुनना होगा।

हम यह कह सकते हैं कि बन्दवर्ग-प्रणाली में परिवार का और खुली वर्ग-प्रणाली में व्यक्ति का महत्व अधिक होता है। सामान्यत: बन्द वर्ग प्रणाली को जाति-प्रणाली भी कहा जाता है।

क्या वर्ग कठोरता की ओर बढ़ रहे हैं ?
(Are classes heading towards rigidity ?)

उन समाजों में जहाँ वर्गों की प्रधानता है एक सवाल पूछा जा रहा है कि क्या वर्ग अपने खुलेपन के गुणों को छोड़ कर बन्द (closed) गुण या कठोरता को अपना रहे हैं ? इस प्रश्न का उत्तर अमेरिका के दो समाजशास्त्रियों—ऑगबर्न और निमकॉफ ने--कुछ शोध लेखों Middle Town in Transition by The Lynds (1937), American business leaders by Taussing and Joselyn (1932), Social mobility by Sorokin (1927), और Occupational mobility in an American Community by Davidson & Anderson

(1937), का अध्ययन करके दिया है। उनका कहना है कि अमेरिका के लोग आर्थिक स्थिति के आनुवंशिक हस्तान्तरण की ओर बढ़ रहे हैं (Gone are many of the social conditions that gave us open classes...American business leaders are being increasingly recruited from the upper classes ..(we are now witnessing) an increase in the hereditary transmission of economic status (15.p. 333)। हरीदास टी-मजूमदार ने The grammar of sociology में कई अध्ययनों और आधारों पर इसका प्रतिवाद किया है। स्वयं दोनों उपरोक्त समाजशास्त्रियों ने भी अपने कथन पर संदेह व्यक्त किया है परन्तु सत्य तो यह है कि वर्ग में 'बन्द' होने और आनुवंशिक होने का गुण बढ़ रहा है। हिन्दुस्तान में ही देखें तो ज्ञात होगा कि प्रायः अधिकतर उच्चतम आर्थिक वर्ग के लोग अपने उत्पादन संस्थानों के महत्वपूर्ण पदों पर, जिसकी आय व्यक्ति को उच्च वर्ग की प्रस्थिति दिला सकती है, अपने ही सम्बन्धियों या भावी सम्बन्धियों को रखते हैं। भविष्य में, यदि यही क्रम चलता रहा तो वर्ग आनुवंशिकता पर आधारित हो सकते हैं। यह कथन बिल्कुल निराधार और अप्रामाणित नहीं माना जाना चाहिये क्योंकि इतिहास साक्षी है भारतवर्ष की वर्ण-व्यवस्था जो कर्म* पर आधारित वर्ग व्यवस्था ही थी, कालान्तर में, किन्हीं ऐसे ही कारणोंवश जातियों के बन्द वर्ग में बदल गयी।

वर्गगत स्तरीकरण की वर्तमान विशेषतायें

१—वर्गगत स्तरीकरण व्यक्ति की सफलताओं (achievements) पर आधारित है। इसलिए यह खुले स्वभाव (open nature) का है।

२—इस प्रकार के स्तरीकरण में व्यक्ति की जन्मगत स्थिति का कोई विशेष महत्व नहीं होता है।

३—यह एक लोचदार और गतिशील (mobile) व्यवस्था है।

४—इस व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा और संघर्ष स्वाभाविक है।

५—आर्थिक आधार और योग्यताओं का महत्व होता है।

६—विभिन्न जातियों के व्यक्ति एक ही वर्ग में तथा एक ही जाति के व्यक्ति विभिन्न वर्गों में पाये जा सकते हैं।

राजनीतिगत स्तरीकरण

राजनीतिक सत्ता के आधार पर भी ऊँच-नीच का स्तरीकरण हमें प्रायः सभी

---

* चातुर्वर्णं मया कृत्वा गुण कर्म विभागशः—गीता

समाजों में देखने को मिलता है। शासक और शासित का संस्तरण हमेशा से हो रहा है। यह संस्तरण भी ऊँच नीच की मान्यता से प्रभावित है। उदाहरण के लिए हमारे देश में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, कैबिनेट के मन्त्री तथा राज्यमंत्री सभी इसी तरह के संस्तरण में आते हैं। शासक पार्टी का स्थान, प्रजातान्त्रिक युगों में, विरोधी पार्टियों से ऊँचा होता है।

प्राणिशास्त्रीय आधार (आयु, लिङ्ग)

आयु—मोटे तौर पर इस प्रकार के स्तरीकरण में चार सामान्य स्तर माने जाते हैं। यह अनुभव की बात है कि प्रायः समाजों में शिशु, किशोरों, युवकों की अपेक्षा वृद्धजनों को अधिक अनुभवशील माना जाता है और इसलिए उनका स्थान अन्यों की तुलना में विशिष्ट होता है।* अनेक जनजातियों में मुखिया को सलाह देने के लिये बड़े-बूढ़ों की एक परिषद (Council of the elders) होती है। आस्ट्रेलिया की जनजातियाँ 'वयस्कों के शासन' (The rule of elders or Gerontocracy) में विश्वास रखती हैं।

वृद्धजनों को सर्वोच्च स्थान देने के बाद क्रमशः युवा, किशोर तथा शिशु जनों को ऊँचे से नीचे की ओर स्थान दिया जाता है।

लिङ्ग—इस तरह का स्तरीकरण सबसे पुराना है। लिङ्ग के आधार पर भी पितृसत्तात्मक परिवार, जिसमें पुरुष की प्रधानता होती है और उनका स्थान स्त्रियों से उच्च होता है, और मातृसत्तात्मक परिवार, जिसमें स्त्रियों को प्रधान स्थान दिया जाता है, बने। परम्परागत हिन्दू-समाज में भी लिङ्ग के आधार पर हुये संस्तरण में ऊँच-नीच या आधीनता का भाव देखा जा सकता है जिसमें पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इस प्रकार के अन्यान्य बहुत से उदाहरण हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाज में लिङ्ग के आधार पर भी स्तरीकरण होता है।

धार्मिक स्तरीकरण

हिन्दू समाज और ईसाई समाज के धार्मिक संगठनों में इस प्रकार का स्तरीकरण देखने को मिलता है। धार्मिक पदों, ज्ञान आदि के कारण बहुत से सन्त महात्मा बहुत से अन्य महात्माओं से ऊँचे माने जाते हैं। धार्मिक-मंत्र देने की गुरू परम्परा इसी प्रकार की धार्मिक योग्यताओं के कारण ही विकसित हुई है। ईसाई धर्म ने भी अपनी धार्मिक व्यवस्था को सुचारु रूप में बनाये रखने के लिये अपने धार्मिक अधिकारियों में एक संस्तरण को विकसित किया है जिसके सर्वोच्च शिखर पर पोप का स्थान है।

प्रजातीय स्तरीकरण

अनेक समाजों में प्रजातीय आधार पर भी स्तरीकरण किया जाता है।

सफ़ेद प्रजाति को उच्चतम, सर्वश्रेष्ठ माना जाता है और काली प्रजाति को निम्नतम। दक्षिण अफ्रीका और रोडेसिया में काले लोगों को वे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक पद नहीं प्राप्त हैं जो गोरे लोगों को प्राप्त हैं। वहाँ गोरों और कालों के बीच विवाह निषिद्ध है, काले लोगों के रहने के मोहल्ले अलग कर दिये गये हैं, क्लब, खेलकूद की टीमों में दोनों का मिश्रण निषिद्ध है। अमेरिका के भी केवल कागज पर ही गोरों और कालों को समान अधिकार हैं। वैसे, वहाँ पर जनमत में इस सम्बन्ध में अब प्रगति हो रही है।

जाति (Caste)

हिन्दुओं में जाति प्रणाली एक अद्भुत सामाजिक संस्था है। 'caste' शब्द पुर्तगाली (portuguese) शब्द 'casta' से निकला है जिसका अर्थ प्रजाति (race) या नस्ल (breed) है, और यह लैटिन (Latin) शब्द 'castus' से भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है जिसका अर्थ अमिश्रित (pure) या प्रजाति है। इस प्रकार जाति का अर्थ एक विशेष आनुवंशिक (hereditary) सामाजिक समूह से लगाया जाता है जो कि विवाह और भोजन की जाति-प्रथाओं के पालन के ऊपर आधारित है। जाति प्रणाली को हिन्दू साधारणतया वर्णाश्रम धर्म कहते हैं। उनके विचार में मानव लोगों के बीच में यह एक अनन्त (eternal) सामाजिक संगठन है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, 'caste' शब्द पुर्तगाली शब्द 'casta' से निकला है जिसका अर्थ नस्ल, प्रजाति अथवा क़िस्म (kind) होता है; 'homen de boa casta' का अर्थ 'अच्छे परिवार का मनुष्य' है। शास्त्रकारों का कहना है कि जिस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है उस अर्थ में इसका सर्वप्रथम प्रयोग सम्भवतः सन् १४६३ में हुआ था जबकि गार्सिया डी ओर्टा (Garcia de Orta) ने लिखा "कोई अपने पिता के व्यवसाय को नहीं छोड़ता है और चमारों की जाति के सब लोग एक समान हैं" (No one changes from his fathers' trade and all of the same caste (casta) of shoe-makers are the same)।

भारतवर्ष में जाति को एक रूप (homegeneous) अन्तर्विवाह वाला और विशेष अनुष्ठानों (distinctive rituals) वाला सामाजिक नियन्त्रण का संगठन कहते हैं। योरोप में भी इस शब्द का प्रयोग अल्पसंख्यक (minority) लोगों के लिये किया जाता है जिनका एक अलग और भिन्न सामुदायिक जीवन होता है जैसे कि जिप्सी, यहूदी। संयुक्त राज्य अमेरिका में इस शब्द का प्रयोग गोरी प्रजाति और हब्शियों (negroes) के लिये किया जाता है, जो सामाजिक जीवन में एक दूसरे से अलग रहते हैं और जिनके अलग-अलग अनुष्ठान (rituals) होते हैं। प्रजाति का ढीले तौर से प्रयोग किया गया है, जैसे कि बाइज़ैनटाइन साम्राज्य

(Byzantine Empire) के आनुवंशिक व्यवसायों का वर्णन करने के लिये इनका प्रयोग किया गया है।

भारत में जाति के सम्बन्ध में दो विचार प्रचलित हैं। पहले को हम पाश्चात्य या इतिहासकार का मत कहते हैं। दूसरे को पूर्वीय या ब्राह्मण मत कहा जाता है। पाश्चात्य मत के अनुसार आर्यों ने बाहर से आक्रमण किया और यहाँ के निवासियों को हराकर उन्हें गुलाम बना लिया जिससे विभिन्न प्रजाति समूह यहाँ उत्पन्न हुए। ब्राह्मण मत जाति को एक दैवी संस्था बनाता है। दोनों ही मत वेदों और वैदिक काल के बाद साहित्य में दिये गये प्रमाणों पर आधारित हैं।

ब्राह्मण मत जाति की उत्पत्ति को पुरुषसूक्त पर आधारित करता है जिसकी व्याख्या मनु-स्मृति में दी गई है। इतिहासकारों की व्याख्या ऋग्वेद के कुछ स्तोत्रों (hymns) पर आधारित हैं जिसमें कहा गया है कि दस्यु या दास वन्यजातियों और उनके मुखियाओं को हराने में देवताओं ने आर्यों को सहायता दी। इन स्तोत्रों (hymns) में आर्यों को आक्रमणकारी आर्य और दस्युओं को भारत के आदिवासी समझा गया है। यद्यपि इन स्तोत्रों (hymns) में यह कहीं भी संकेत नहीं किया गया है कि यह आर्य विदेशी व्यक्ति थे, फिर भी पाश्चात्य विद्वानों ने ही पहली बार उनके विदेशी होने पर बल दिया जिसको बाद में सत्य माना गया।

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर वर्गों की उत्पत्ति की चर्चा है। पुरुषसूक्त के एक स्तोत्र (hymn) में कहा गया है कि ब्राह्मण वर्ग ब्रह्मा (Universal Man) के मुख से, राजन्य उसकी भुजाओं से, वैश्य जाँघों से, और शूद्र उसके पैरों से निकले। ज़िमर तथा अनेक लेखकों का कथन है कि पुरुषसूक्त को बाद में जोड़ा गया है और वर्ण वैदिक काल की संस्था नहीं है, बल्कि बाद के काल की है।

पाणिकर का कथन है कि समाज का चार भागों में यह विभाजन केवल विचारधारा सम्बन्धी (ideological) है और सामाजिक प्रणाली की यथार्थता से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार की वर्ण व्यवस्था समाजशास्त्री अपने समाज में चाहते थे जो वास्तविक प्रयोग में कभी भी नहीं आई।

यह चार भागों में विभाजन सचमुच में कभी भी नहीं रहा, यह बात ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित की जा सकती है। पाणिकर के विचार में, धर्म के संस्कार-वाद (ritualism) का विकास होने पर ब्राह्मणों ने अन्य लोगों से अपने को अलग कर लिया और उन्हीं को हिन्दू समाज में एक एकीकरण-प्राप्त (integrated) जाति कहा जा सकता है। ब्राह्मणों को एक जाति के रूप में सभी स्वीकार करते हैं। उनकी सामान्य धार्मिक रीतियाँ होती हैं और जीवन के प्रति एक सामान्य मनोवृत्ति होती है। पाणिकर के अनुसार यह बात अन्य जातियों के बारे में नहीं कही जा

सकती। उदाहरण के लिये, ऐतिहासिक काल में क्षत्रिय जैसी कोई भी जाति नहीं थी। ईसा से कम से कम ४०० वर्ष पहले महापद्मनन्द के काल से प्रत्येक प्रसिद्ध राजपरिवार गैर-क्षत्रिय जाति का था। मौर्य शूद्र थे। गुप्ता (Imperial Guptas) वैश्य थे। उदयपुर के सिसोदिया ब्राह्मण थे। महाराणा कुम्भा ने अपने शिलालेखों में अपने को विप्र कहा है।

जहाँ तक वैश्यों का सम्बन्ध है, जिन समुदायों ने वाणिज्य और व्यवसाय को पुश्तैनी पेशा बना लिया वे वैश्य कहलाने लगे। परन्तु एकीकरण-प्राप्त जाति के रूप में यह कभी नहीं रही।

शूद्रों के विषय में यह कहा जा सकता है कि वे एक मिले-जुले समूह रहे हैं और इनमें यज्ञोपवीत या जनेऊ का संचार नहीं पाया गया।

यहाँ शूद्रों के विषय में दो बातें कह देना आवश्यक है। गोदावरी नदी के दक्षिण के क्षेत्र में अनेक विशाल और शक्तिशाली समुदाय थे जिनकी सबसे अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा थी। आन्ध्र के रेड्डी, तामिलनाड के वलाला, मलाबार के नायरों ने कभी चार भागों वाला विभाजन नहीं माना और यद्यपि ब्राह्मणों ने उन्हें शूद्र कहा है उनकी शक्ति उत्तर के क्षत्रियों से कम नहीं थी।

दूसरी महत्वपूर्ण बात शूद्रों के सम्बन्ध में यह है कि उन्होंने बाद में विशाल संख्या में राजपरिवार उत्पन्न किये। बंगाल के पाल और मराठा राजघराने शूद्र जाति के थे।*

पाणिकर का मत है कि जाति का यह चार भागों में विभाजन केवल एक समाजशास्त्रीय परिकल्पना (Sociological fiction) है, यद्यपि यह हिन्दू जीवन को प्रभावित करता है।

अर्थ—जाति एक सामाजिक समूह है जिसकी सदस्यता जैवकीय उत्तराधिकार (biological inheritance) से निश्चित होती है। दूसरे शब्दों में, जन्म जाति की सदस्यता निश्चित करता है। शास्त्रीय (classical) अर्थ में जाति पर आनुवंशिक विषय ही नहीं है, जाति की सदस्यता व्यक्ति के सामाजिक व्यवहारों पर प्रतिबन्ध भी लगाती है। जाति द्वारा व्यक्ति के ऊपर लगाये जाने वाले प्रतिबन्धों में विवाह, शिक्षा, धर्म, व्यवसाय, राजनीतिक, सामाजिक संसर्ग सम्बन्धी प्रतिबन्ध मुख्य हैं। उस जाति के अनुसार, जिसमें वह जन्म लेता है व्यक्ति के ऊपर अपना जीवन साथी चुनने, व्यवसाय ढूँढ़ने, पदार्थों और सेवाओं के उपभोग की मात्रा, राजनैतिक कार्यों में भाग लेने की सीमा, किसके साथ वह खा सकता है,

---

* K. M. Panniker, *Hindu Society at Cross Roads*.

बात कर सकता है, खेल सकता है आदि विषयों पर प्रतिबन्ध रहते हैं। जाति-प्रथा में अनुशासन रखने वाले उन नियमों का व्यक्ति के कार्यक्षेत्र में समावेश कराया जाता है जिनके पीछे धार्मिक बल (religious sanction) होता है। जातीय नियमों के उल्लंघन के लिए प्रायश्चित करना अनिवार्य होता है और उसके लिये धार्मिक कार्य करने पड़ते हैं।

परिभाषायें—(१) चार्ल्स कूले : "जब एक वर्ग पूर्णतया आनुवंशिक होता है तो हम उसे एक जाति कह सकते हैं।"*

(२) हेबल : अन्तर्विवाह और वंशानुसंक्रमण द्वारा प्रदत्त पद की सहायता से सामाजिक वर्गों को जमा देना ही जाति है।†

(३) मार्टिन्डेल तथा मोनेकसी : "जाति व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिनके कार्य तथा विशेषाधिकारों का भाग जन्म से निश्चित होता है, जिनको जादू-टोनों का समर्थन तथा अनुमोदन प्राप्त होता है।"‡

(४) रिजले : "यह परिवारों या परिवारों के समूहों का संग्रह है जिनका एक सामान्य नाम होता है; जो अपने को किसी काल्पनिक पूर्वज, मानव अथवा दिव्य के वंशज बतलाते हैं; जो एक से आनुवंशिक व्यवसाय करने का दावा करते हैं, जो उन लोगों के द्वारा, जो अपना मत प्रदर्शित करने के योग्य हैं, एक ही समरूप समुदाय समझे जाते हैं।"

जाति की विशेषतायें (Characteristics of a Caste)

(१) जाति का निर्णय जन्म से होता है।

(२) एक जाति को छोड़ कर दूसरी जाति में प्रवेश पाना सम्भव नहीं है।

(३) एक जाति के सदस्य अपनी जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते हैं।

(४) कुछ जातियों के निश्चित पेशे होते हैं—अनेक जातियां कुछ व्यवसायों को अपना आनुवंशिक व्यवसाय समझती हैं। उदाहरण के लिए चमार जूते बनाना और मेहतर मैला साफ करना आनुवंशिक व्यवसाय समझते हैं।

---

* "When a class is somewhat strictly hereditary we may call it a caste." —Charles Cooley, *Social Organization*, p.11

† "It is the freezing of social classes by means of endogamy and hereditarily ascribed status."

—Hoebel, *Man in the Primitive World*. p.395

‡ "A caste is an aggregate of persons whose share of obligations and privileges is fixed by birth, sanctioned and supported by magic and religion."

—Martindale and Monachesi, *Elements of Sociology* pp.5-9.

(५) **खाने पीने पर प्रतिबन्ध**—इस बात के लिये सूक्ष्म नियम है कि किस प्रकार का भोजन या पेय दूसरी जातियों में खाया पिया जा सकता है। भारतवर्ष में जातियों को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है—पहली, द्विज (twice born); दूसरी, वे जातियाँ जिनके हाथ का खाना द्विज नहीं खा सकते हैं; तीसरी, वे जातियाँ जिनके हाथ का खाना द्विज नहीं खा सकते हैं परन्तु पानी पी सकते हैं, चौथी, वे जातियाँ जो अछूत नहीं हैं परन्तु फिर भी उनके हाथ का जल द्विज इस्तेमाल नहीं कर सकते; अन्त में वे सब जातियाँ जिनका स्पर्श केवल ब्राह्मणों को ही नहीं बल्कि किसी भी कट्टर-हिन्दू को अपवित्र कर सकता है।

(६) जातियों में श्रेणी-प्रणाली (hierarchy) होती है। उदाहरण के लिये, भारतवर्ष में ब्राह्मण जाति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है, फिर क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आते हैं।

(७) जाति के नियम भंग करने वाले को जाति के बाहर कर दिया जाता है, फिर से जाति में लौटने के लिए उसका प्रायश्चित आवश्यक होता है।

(८) उच्च और मध्यम जाति के लोग नीच जाति के सदस्यों के साथ किसी प्रकार का व्यवहार नहीं रख सकते।

(९) कुछ जातियों के सदस्य नीच जातियों के सदस्यों द्वारा कलुषित (polluted) हो सकते हैं। अनेक जातियों के सदस्यों की छाया मात्र से ही कलुष लग सकता है, भोजन पर छाया पड़ने से वह अखाद्य हो सकता है। मालाबार में अनेक जातियाँ न केवल अछूत (untouchable) ही हैं बल्कि अप्रवेश्य (un-approachable) तथा अदर्शनीय (unseeable) भी हैं।

(१०) अनेक जातियों के नागरिक व धार्मिक विशेषाधिकार तथा असुविधायें (Civil and religious privileges and disabilities of different sections)-देश के अनेक भागों में विशेषकर दक्षिण में, शूद्रों को गाँव के सीमा-प्रान्त (outskirts) पर रहने को बाध्य किया जाता है जबकि अन्य जाति के लोग गांव में रहते हैं। महाराष्ट्र, मद्रास आदि में ऐसी घटनायें साधारण समझी जाती हैं। शूद्रों को मन्दिरों में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। यद्यपि सरकार की ओर से इसके विरुद्ध कानून बन गया है फिर भी अनेक स्थानों में शूद्रों को अनेक अधिकार नहीं प्राप्त हैं।

(११) प्रत्येक जाति में अनेक उपजातियाँ होती हैं :—यद्यपि कि देश में मुख्य जातियाँ चार ही बतलाई जाती हैं फिर भी जातियों की संख्या बड़ी विशाल है। प्रत्येक जाति के अन्दर अनेक उपजातियाँ (sub castes) होती हैं जिनमें भी परस्पर अन्तर्विवाह को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता है। हटन (Hutton) ने

अपनी : 'Caste in India' नामक पुस्तक में लिखा है कि यहाँ लगभग ३ हजार जातियाँ हैं।

(१२) सम्पूर्ण जाति-प्रणाली ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर आधारित और केन्द्रित है।

(१३) जाति के सदस्य अपनी जाति के नाम और अद्भुत प्रणाली के कारण जाति-चेतन (caste conscious) रहते हैं और दूसरी जातियों के सदस्यों के समक्ष अपने को श्रेष्ठ अथवा हीन समझते हैं। इस प्रकार जाति चेतनता (caste consciousness) इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

जाति के कार्य (Functions of Caste)

जाति-प्रणाली प्रत्येक जाति के सदस्यों के लिए जन्म के बाद ही से एक निश्चित सामाजिक घेरा प्रस्तुत करती है जिससे न सम्पत्ति, न दरिद्रता, न सफलता, न आपदा ही उसको हटा सकती है। यह केवल तभी सम्भव है जब कि वह जाति के द्वारा निश्चित व्यवहार-स्तर के विरुद्ध इस प्रकार कार्य करते हैं कि वह उन व्यक्तियों को स्थायी या अस्थाई रूप से बहिष्कृत कर देती है। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य को साथियों और समितियों का एक स्थायी समूह प्रदान किया जाता है जो उसके सभी व्यवहारों और सम्बन्धों को नियंत्रित करता है। व्यक्ति की जाति उसके विवाह में प्रतिबन्ध लगाती है, उसकी ट्रेड यूनियन, मैत्रीपूर्ण समाज, स्टेट क्लब और अनाथालय का कार्य करती है, और यदि आवश्यकता पड़े, दाह-संस्कार के अवसर पर सहायता करती है। अक्सर यह व्यक्ति के व्यवसाय को भी निश्चित करती है।

जाति का नियम प्रत्येक सदस्य को यह बतलाता है कि भोजन के सम्बन्ध में किन प्रथाओं (customs) का पालन होगा, विशेष अवसरों पर कौन सी धार्मिक क्रियाओं का पालन होगा, और वह किसी विधवा से विवाह कर सकता है या नहीं। जाति उन धार्मिक क्रियाओं को भी निश्चित करती है जिनका पालन जन्म, दीक्षा, विवाह तथा मृत्यु के समय होगा।

जाति दूसरी जातियों के मुकाबले में प्रत्येक जाति का सामाजिक पद निश्चित करती है। जाति प्रथा जाति को मिलकर कार्य करने योग्य और अपने सदस्यों के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखने योग्य बनाती है। हटन के शब्दों में "जाति कुछ घटनाओं में समुदायों के लिए सामाजिक स्तर पर चढ़ने के लिये एक सीढ़ी का भी कार्य करती है।"* मैकाइवर ने कहा है : "किसी व्यक्ति की जाति जीवन में

* "Caste may in some cases serve communities as a ladder for rising in the social scale." —Hutton.

उसके कार्यों को नियत करती है। वह केवल यही निश्चित नहीं करती है कि वह क्या कार्य करेगा, किस समूह में विवाह करेगा, बल्कि उसकी दैनिक चर्या को भी निश्चित करती है।"

(१) **सामाजिक सुरक्षा का कार्य**—जाति अपने सदस्यों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है। यदि कोई किसी विपत्ति में फँस जाता है तो जाति उसकी सहायता करती है। विवाह और दाह-संस्कार के समय में विशेष कर जाति का कार्य हमें प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ता है। किसी व्यक्ति की नौकरी का प्रबन्ध भी जाति करती है।

(२) **मानसिक सुरक्षा का कार्य**—जाति प्रत्येक व्यक्ति का स्थान व उसके कार्य को निश्चित करके सदस्यों को मानसिक सुरक्षा प्रदान करती है। प्रत्येक व्यक्ति पहले से ही यह जानता है कि किस समूह में उसे विवाह करना है, उसे कौन सा व्यवसाय करना है, किन प्रकार के सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक कार्यों में भाग लेना है।

(३) जाति यान्त्रिक तथा औद्योगिक रहस्य रखने में सहायक है। जाति पीढ़ी दर पीढ़ी उस निपुणता (skill), ज्ञान और व्यवहार को हस्तांतरित करती जाती है जिसको हम संस्कृति कहते हैं। व्यावसायिक जातियाँ कारीगरी के रहस्यों की रक्षा और विकास करती हैं।

(४) जाति एक ट्रेड यूनियन का भी कार्य करती है। मैरेडिथ टाउनसेन्ड* ने जाति को आनुवांशिक व्यवसायों की ट्रेड यूनियन का सबसे प्रबल स्वरूप बतलाया है।

(५) **निर्वाचन (election) में जाति का कार्य**—भारतवर्ष में निर्वाचन के अधिकार का अर्थ यह है कि उम्मीदवारों को उनकी जाति के आधार पर वोट दिया जाता है। चुनावों के दिनों में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे अवसरों पर जाति का प्रभाव शहरों में अधिक दिखाई पड़ता है जहाँ होस्टल, क्लब आदि जाति के आधार पर संचालित होते हैं। इस प्रकार, जाति अपने सदस्यों के निर्वाचन में सहायता करती है।

(६) जाति का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य भारतीय समाज को संगठित (integrate) करना, विभिन्न स्पर्धापूर्ण समूहों को एक समुदाय में परिवर्तन कर देना रहा है : समय-समय पर विभिन्न विदेशियों ने हिन्दू धर्म पर आक्रमण किया। मुसलमान और ईसाई इसके उदाहरण हैं। जाति ने अपने कठोर नियमों के द्वारा

* "Caste is the strongest form of trade union of hereditary occupations." —Meredith Townsend

धार्मिक स्थिरता को बनाये रक्खा, धर्म परिवर्तन करने से अपने सदस्यों को रोका। गिलबर्ट ने कहा है कि भारतवर्ष ने सामाजिक सामंजस्य की योजना के रूप में जाति प्रणाली विकसित की है जिसकी तुलना योरोप की प्रादेशिक राष्ट्रीयता की प्रणाली से की जा सकती है।* यह राजनैतिक स्थिरता बनाये रखने में विशेष रूप से सहायक रही है क्योंकि इससे शासित व्यक्तियों में अपनी स्थिति बदलने का कोई उद्देश्य नहीं रहता। ऐबे डुबाय (Abbe Dubois) ने जाति को हिन्दुओं का "उनके अधिनियम का सबसे अधिक सुखमय प्रयास" (the happiest effort of their legislation) बतलाया है।

(७) सिजविक (Sidgwick) ने कहा है कि भारतीय जाति-प्रथा अंतर्जातीय विवाह तथा बहिर्गोत्र विवाह के द्वारा सुप्रजनन विद्या की शुद्ध रेखा (pure line of genetics) को बनाये रखने की अति उत्तम पद्धति है। अन्तर्विवाह के कारण बाहर के आनुवांशिक गुण नहीं आने पाते और गोत्र-बहिर्विवाह रक्त सम्बन्धी निकटता को दूर रखता है। वास्तव में हमारे लिए सिजविक से सहमत होना कठिन होगा क्योंकि विवाह के समय केवल इस बात पर बल दिया जाता है कि वर और कन्या एक ही उपजाति के हों और इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता है कि वर और कन्या के क्या गुण हैं, वे रोगों से मुक्त हैं या नहीं, वे विवाह के लिए हर प्रकार से ठीक हैं या नहीं, वे स्वस्थ सन्तति उत्पन्न कर सकते हैं या नहीं।

(८) जाति अपने सदस्यों में सहयोग की भावना जागृत करती है।

(९) जाति सामाजिक जीवन के लिए भिन्न प्रकार के आवश्यक कार्यों की व्यवस्था करती है। यह व्यवस्था कर्म में विश्वास दिलाकर की जाती है और इनमें शिक्षा से लेकर मेहतर का कार्य, सरकारी ओहदे से लेकर भिन्न श्रेणी के घरेलू कार्य सम्मिलित हैं।

(१०) जाति का विवाह-सम्बन्धी कार्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जाति इस बात का निषेध करती है कि व्यक्ति किसी समूह में विवाह कर सकता है, वह किसी विधवा से विवाह कर सकता है या नहीं।

(११) **जाति और शैक्षिक जीवन**—जाति व्यक्ति की शिक्षा के प्रति मनोवृत्ति को भी निश्चित करती है, और यहाँ तक कि इस बात को भी निश्चित करती है कि कौन व्यक्ति किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करेगा। अधिकतर ब्राह्मणों की सन्तानें जाति परम्परा के कारण शिक्षा प्राप्त करती हैं। उनकी शिक्षा साधारणतया

* "India has developed a system of caste which, as a scheme of social adjustment, compares rather favourably with the European system of warring territorial nationalities."

धार्मिक शिक्षा होती है। वैश्य सन्तानों को धर्म-निरपेक्ष शिक्षा दी जाती है और दलित वर्ग (depressed class) के शिशु के लिए शिक्षा प्राप्त करने की ही संभावना कम होती है।

(१२) जाति और धार्मिक जीवन—व्यक्ति के धार्मिक जीवन पर जाति का प्रभाव हमें स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। प्रत्येक जाति की अपनी धार्मिक विधियाँ होती हैं और बहुधा भिन्न-भिन्न जातियों के भिन्न देवी और देवता भी होते हैं।

जाति और वर्ण

वेदों में आर्य दस्युओं के युद्ध का हमें उल्लेख मिलता है। यह रंग के लिये प्रयोग किया गया है और गोरे आर्यों और काले दस्युओं में भेद करता है। गीता में श्रीकृष्ण जी ने कहा है "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्ट गुणकर्मविभागशः" अर्थात् गुण और कर्म के अन्तर के आधार पर श्रीकृष्ण जी ने चार वर्णों को रचा था। परन्तु वर्ण और जाति एक ही तथ्य नहीं हैं। वर्ण प्रणाली के अन्दर समाज गुण और कर्म के आधार पर विभाजित है; जाति प्रणाली के अदर जन्म व्यक्ति के पद को निश्चित करता है। वर्ग प्रणाली दूसरे प्राचीन समुदाय में भी मिलती है; उदाहरण के लिए प्लेटो ने अपनी 'Republic' में ऐसे विभाजन का वर्णन किया है।

वास्तव में समाज के हित को देखते हुए वर्ण विभाजन—गुण और कर्म के आधार पर—ही श्रेष्ठ है क्योंकि इससे किसी व्यक्ति को आत्म-विकास की प्रेरणा मिल सकती है और निम्न कोटि के कार्य करने वाले को समाज में निम्न पद प्राप्त होगा। जाति-व्यवस्था में निम्न कोटि के कार्य करने वाला परन्तु जन्म से ब्राह्मण भी अपने को दूसरे के मुकाबले में श्रेष्ठ समझता है। ठीक ही कहा गया है : "श्वपचोपि महीपालः विष्णुभक्तों द्विजाधिकविष्णु भक्तिविहीनस्तु यतिश्चश्वहचाधम" अर्थात् यदि तुम विष्णु के प्रति भक्ति भाव रखते हो, चाहे कोई भी जाति तुम्हारी क्यों न हो, तुम ब्राह्मणों में भी सबसे श्रेष्ठ हो। यदि तुम्हें भगवान में विश्वास नहीं है, तुम अपनी इच्छानुसार कैसे भी वस्त्र क्यों न पहन लो, अपने को यति कहो, परन्तु तुम एक श्वपच अधम हो—कुत्ते का मांस खाने वाले से भी गिरे हुए हो।

पूर्ण जाति-प्रणाली असम्भव है
(The Impossibility of an Absolute Caste System)

यद्यपि उसका रूप समय-समय पर बदलता रहा है, जाति-प्रणाली लगभग तीस शताब्दियों से चली आ रही है। यह सबसे उच्च शिखर पर लगभग उस समय पहुँची थी जब कि योरोपियन सामन्त प्रणाली (feudal system) अपनी चरम-सीमा पर थी। मुसलमानों और अंग्रेजों के आक्रमणों ने इस प्रणाली के कार्यक्रम

में काफी बाधा पहुँचाई लेकिन यह पूर्णरूप से छिन्न-भिन्न न हो पाई। मुसलमानों और अंग्रेजों के आने से पहले ही कुछ ऐसी बातें यहाँ थीं जो इस प्रणाली के विरुद्ध कार्य करती थीं। यह ऐसी बातें थीं जो किसी भी समाज की पूर्ण जाति प्रणाली के विरुद्ध कार्य करतीं।

सबसे पहले, स्तरण (stratification) की किसी भी प्रणाली के अन्दर श्रेष्ठता के कुछ स्तर होने चाहिये। सामाजिक स्तर मूल्यों के स्तर पर आधारित होता है। हिन्दू संस्कृति के भी ऐसे मूल्य हैं। उदाहरण के लिए, वह स्त्रियों की एकान्तता, विधवाओं का एकाकीपन, भोजन की पवित्रता, व्यवसाय की पवित्रता, भूमि-स्वामित्व, शारीरिक श्रम से मुक्ति और पवित्र साहित्य के ज्ञान को ऊँचा मूल्य देती है। इस प्रकार जो भी समूह इन स्तरों के अनुकूल अपने को उठाता है, वह अपने सामाजिक पद में भी सुधार करता है। इस कारण अनेक समूह जो ऊँचे सामाजिक पद की कामना करते हैं, अपने कार्यों द्वारा, अपना सामाजिक पद सुधारने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार स्थाई रूप से जन्म के आधार पर सामाजिक पद निश्चित करने का जाति का प्रयास विफल हो जाता है।

ब्लंट (Blunt) ने इस बात के अनेक उदाहरण दिये हैं कि व्यवसाय बदलने से सामाजिक पद भी सुधारा जा सकता है।* पासी जाति शिकार करने और चिड़ियाँ पकड़ने का कार्य करती हैं। उनमें से अनेक लोगों ने खेती करने और फल बेचने का कार्य—जो अपेक्षाकृत अधिक गौरवपूर्ण है—शुरू करके एक नयी जाति बना ली है और अपने को फन्सिया कहते हैं जो अन्य पासियों से ऊँची समझी जाती है।

भारतीय समाज में जाति-प्रणाली अनेक सामाजिक और नैतिक नियमों के पालन पर बल देती हैं। जो जातियाँ इन नियमों के पालन में ढील देती हैं वे अपना सामाजिक पद खो देती हैं और जो जातियाँ इन नियमों का सख्ती से पालन करती हैं वे और ऊँचा सामाजिक पद प्राप्त करती हैं। बियाहुत कलारों की एक शाखा है। वे विधवा-विवाह का निषेध करते हैं क्योंकि उनके विचार में जीवन में एक ही बार विवाह होता है। इसलिए वे उन कलारों से ऊँचे गिने जाते हैं जो विधवा-विवाह की आज्ञा देते हैं। इस प्रकार एक जाति के ही सब सदस्यों का सामाजिक पद समान नहीं होता।

अनेक नियमों का पालन करने के लिये काफी धन की आवश्यकता होती है। इसलिये वे जातियाँ जो अधिक समृद्धिशाली हैं अपना सामाजिक पद बढ़ा सकती हैं। आर्थिक स्पर्धा को रोकना सम्भव नहीं। इसलिये निम्न जातियाँ भी धन के प्रभाव से ऊँचा पद प्राप्त कर लेती हैं।

---

* E. A. H. Blunt, *The Caste System of Northern India*, p. 222.

आधुनिक औद्योगीकरण और उसके फलस्वरूप फैलने वाली बेकारी ने भी जाति-प्रणाली को भीषण धक्का लगाया है। अब व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह अपने पूर्वजों के ही व्यवसाय को अपनाये। इसके अतिरिक्त जाति के अन्तर्समूह विवाह के नियम का भी अब कठोरता से पालन नहीं हो सकता। आर्थिक विषमता, दहेज की बाधा, स्त्रियों की नौकरी, और सहशिक्षा के प्रभाव और पश्चिम सभ्यता के प्रभाव के कारण अपनी ही जाति में विवाह करना अनिवार्य नहीं रह गया है।

हिन्दू समाज के बाहर जाति-प्रणाली

मुसलमान और ईसाई हमेशा से इस बात पर गर्व करते आये हैं कि वे जाति से मुक्त हैं। परन्तु जब से स्वराज्य सरकार ने दलितवर्ग और पिछड़े हुये वर्गों को विशेष अधिकार देने शुरू किए तब से मुसलमान और ईसाई इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न करते रहे हैं कि जाति और अस्पृश्यता उन लोगों के बीच भी विद्यमान है और उच्च जाति के ईसाई हरिजन ईसाइयों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और जीवनकाल में तथा मृत्यु के बाद भी अपने से दूर रखते हैं। हरिजन ईसाइयों को बहुत समय तक चर्च में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं मिली। फिर, उनको चर्च में एक दूसरी ही ओर एक पंक्ति में बैठने की आज्ञा मिली। आज भी भारतवर्ष के कुछ भागों में अछूत ईसाइयों को अलग कब्रिस्तान बनाने के लिये बाध्य किया जाता है। इसका अर्थ है कि ईसाइयों में मृत-व्यक्ति भी जाति और अस्पृश्यता का पालन करता है, उसे अलग दफनाया जाता है।

आचार्य काकासाहब कालेलकर ने गोआ में देखा कि ब्राह्मण ईसाई गैर-ब्राह्मण ईसाइयों से अपने को श्रेष्ठ समझते हैं। उन्होंने अनेक ईसाई परिवारों को विवाह तय करते समय जाति ही नहीं बल्कि गोत्र भी पूछते हुए देखा। पंडिता रमाबाई ने जो ब्राह्मण से ईसाई हो गई थीं, यह स्वीकार किया कि ईसाइयों में अन्तर्जातीय विवाह के कारण पारिवारिक झगड़े, दुःख और गृह-विभाजन की घटनायें बढ़ती थीं।

मुसलमानों ने बतलाया है कि वे उच्च जाति के मुसलमानों और फर्राश मुसलमान या मुसलमान कसाइयों के बीच विवाह बर्दाश्त नहीं करते हैं। शिया, सुन्नी, खोजा, मेमन और आगाखाना लोग जाति का इस अर्थ में पालन करते हैं कि वे अपने ही समूह में विवाह करते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में, विशेषकर दक्षिण में, समाज जाति के आधार पर संगठित है। वहाँ का मौलिक नियम यह है कि नीग्रो और गोरों को समानता प्राप्त नहीं है। वहाँ नीग्रो और गोरों में अन्तर्विवाह तो विशेष रूप से निषिद्ध है। जहाँ तक व्यक्तिगत सम्बन्ध का प्रश्न है, दक्षिण गोरे लड़के को यह सिखाया जाता है कि वह किसी नीग्रो स्त्री को मैडम न कहे, उसको हैट उतार कर अभिवादन न करे,

फुटपाथ पर सामने से आती हुई स्त्री को मार्ग न दे। यही नहीं, उनमें छूत की भावना भी पाई जाती है। किसी नीग्रो के पास बैठना, उसका हाथ छूना या उसी कप से पीना उसी प्रकार बुरा समझा जाता है जिस प्रकार कि हमारे देश में किसी उच्च जाति के व्यक्ति का अछूतों के साथ ऐसे सम्बन्धों को रखना बुरा समझा जाता है। योरोप में अल्पसंख्यक (minority) समूहों के लिये, जैसे जिप्सी और यहूदी, जाति शब्द का प्रयोग किया जाता है।

वर्ग और जाति
(Class and Caste)

जाति और वर्ग दोनों ही श्रेष्ठता और हीनता के आधार पर बने हैं। जाति में जन्म किसी व्यक्ति की सदस्यता को निश्चित करता है परन्तु वर्ग में दूसरी बातें, मुख्यतः धन, किसी व्यक्ति की सदस्यता को निश्चित करती हैं। इसका दूसरा अन्तर यह है कि जाति की सदस्यता स्थायी होती है परन्तु वर्ग-सदस्यता स्थायी नहीं होती, पद में वृद्धि अथवा अवनति होने से एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाना पड़ता है। इसका तीसरा अन्तर विवाह सम्बन्धी है। जाति में अपने ही समूह में विवाह करना अनिवार्य हैं, परन्तु वर्ग में अन्तर्समूह और वाह्यसमूह विवाह दोनों ही चलते हैं।

(१) जाति अन्तर्विवाही है, वर्ग नहीं—जाति की विशेषतायें बताते समय यह लिखा जा चुका है कि जाति के सदस्य अपनी जाति के अन्दर ही विवाह करते हैं। वर्ग में क्योंकि सामान्य संस्कार आदि की कोई बात नहीं होती इसलिये विभिन्न वर्गों में आपस में विवाह होते हैं। कुछ महीने पहले कैनाडा के प्रधान मन्त्री ट्रूडों ने एक साधारण वर्ग की लड़की से विवाह किया है। कुछ वर्ष पूर्व इंगलैण्ड की साम्राज्ञी एलिजावेथ की बहिन मार्गरेट का एक फोटोग्राफर से विवाह हुआ था। बड़े-बड़े शहरों में यद्यपि अन्तर्जाति विवाह भी होने लगे हैं परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है और गाँव में तो यह अविचारणीय है।

(२) जाति में व्यवसाय पर प्रतिबन्ध है, वर्ग में नहीं—भारतीय जाति संस्तरण में कुछ जातियों के व्यवसाय आनुवांशिक रूप से हमेशा ही निश्चित रहे हैं और अब भी हैं। उदाहरण के लिये, मेहतर और मोची आज भी वही काम करते हैं जो हमेशा से उनके बाप-दादे करते आये हैं। वर्ग में ऐसा नहीं है। इसमें लोग अपनी रुचि, योग्यता और अवसर के अनुसार व्यवसाय का चुनाव करते हैं।

(३) जाति में खान-पान पर प्रतिबन्ध है, वर्ग में नहीं—अपनी जाति को अन्य जातियों से श्रेष्ठ बनाये रखने के लिये कठोर धार्मिक संस्कारों का पालन करने के साथ ही ब्राह्मणों ने खान-पान पर प्रतिबन्ध लगाये। अनेक जातियों के लोगों के साथ बैठकर खाना तो दूर रहा, उनका छुआ खाना खाना या पानी पीना भी निषिद्ध

रहा है। आज भी अपने को बहुत प्रगतिशील कहने वाले पढ़े लिखे शहरी लोग मेहतर के हाथ का पानी पीने को तैयार नहीं होते। यह बात विभिन्न वर्गों में नहीं पायी जाती।

(४) जाति का आधार जन्म है, वर्ग का नहीं—सबसे महत्वपूर्ण अन्तर दोनों में यह है कि जहाँ जाति जन्म पर आधारित है, वर्ग नहीं। एक बार किसी जाति के सदस्य के घर जन्म लेने के बाद व्यक्ति अपनी जाति जीवन पर्यन्त नहीं बदल सकता और न उससे प्राप्त ऊँचा या नीचा सामाजिक पद ही बदल सकता है। दूसरी ओर, वर्ग जन्म पर आधारित नहीं है बल्कि धन, ओहदे, व्यवसाय, बौद्धिक क्षमता आदि पर आधारित है। इन बातों में परिवर्तन होने के साथ ही व्यक्ति का वर्ग, सामाजिक प्रतिष्ठा भी बदलती रहती है।

(५) जाति एक बन्द प्रणाली है, वर्ग खुली प्रणाली—क्योंकि कोई व्यक्ति जीवन पर्यन्त उसी जाति में रहता है जिसमें उसने जन्म लिया है, उसको बदला नहीं जा सकता इसलिए उसे बन्द प्रणाली कहा जाता है। दूसरी ओर, धन, व्यवसाय, आय आदि में परिवर्तन होने पर सम्बन्धित व्यक्ति का वर्ग भी बदल जाता है। व्यक्ति अमीर से गरीब, गरीब से अमीर हो सकता है। इस पर आधारित उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा ऊँची या नीची हो सकती है। इसलिये, इसे खुली प्रणाली कहते हैं।

जातिवाद और प्रजातन्त्रवाद (Casteism and Democracy)

जातिवाद और प्रजातन्त्रवाद एक दूसरे के विपरीत शब्द हैं। जिस समाज में जातीयता पर बल दिया जाता है वहाँ प्रजातन्त्रवाद अपने पूर्ण और स्वस्थ रूप में कभी भी नहीं पनप सकता है। इसका मुख्य कारण यह है कि दोनों के आवश्यक तत्व एक दूसरे के ठीक विपरीत हैं। प्रजातन्त्रवाद में हमें समानता (Equality), बंधुत्व (Fraternity), और स्वतन्त्रता (Liberty) जैसे तत्व मिलते हैं तो दूसरी ओर जातिवाद में असमानता, ऊँच-नीच और शोषण (exploitation) जैसे तत्व होते हैं। जब तक जन्म का भेद दूर कर सबको अपनी योग्यतानुसार उन्नति करने का अवसर नहीं मिलता तब तक प्रजातन्त्रवाद एक झूठा ही तथ्य कहा जायेगा।

इस देश में जातीयता से सबसे अधिक त्रस्त निम्न जाति के लोग–जिनको अछूत आदि नामों से पुकारा जाता है—रहे हैं। महात्मा गाँधी ने जातिवाद को हिन्दू धर्म का 'अदंकु अंग' अर्थात् शरीर का अपैन्डिक्स (appendix) कहा था। जब तक वह स्वस्थ दशा में है तब तक अपैन्डिक्स हानि नहीं करता परन्तु जब वह रोगी हो जाता है तब उसे हटा देना आवश्यक होता है। वह तो सम्पूर्ण संगठन के जीवन को खतरे में डाल सकता है। यही हानि जातिवाद हिन्दू समाज की कर रहा है। महात्मा गाँधी ने कहा कि इसका उपाय यह है कि सब हिन्दुओं को अपना

भंगी बन जाना चाहिये और उन लोगों को अपना भाई समझना चाहिये जो अनेक पीढ़ियों से भंगी कहे जा रहे हैं। महात्मा गाँधी ने इस बात पर जोर दिया कि यदि हिन्दू अपने नाई और शोफर हो सकते है तो उसका कोई कारण नहीं है कि वे अपने भंगी क्यों नहीं हो सकते।

युद्ध की भांति जातिवाद मनुष्यों के मस्तिष्क में पैदा हुआ है और उसको केवल अधिनियम (legislation) के द्वारा जड़ से नहीं उखाड़ा जा सकता है। हमारे सम्मुख प्रश्न इस बात का है कि सबके दिलों में, न कि व्यवहारों में, वास्तविक परिवर्तन किया जाये। हमें अपने दृष्टिकोण को बदलना होगा।

जाति का सिद्धान्त हमारे सामाजिक और राजनैतिक जीवन में इतना अधिक प्रवेश कर गया है कि प्रत्येक व्यक्ति ने यहाँ तक कि नेताओं ने भी, यह मौन रूप से स्वीकार कर लिया है कि प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल में प्रत्येक प्रमुख जाति का एक मिनिस्टर होना चाहिये। यह सिद्धान्त हमारी प्रान्तीय राजधानियों से ग्राम पंचायतों तक फिर वापस पहुँच गया है जहाँ आजकल प्रत्येक जाति का, यहाँ तक कि हरिजनों का भी एक प्रतिनिधि पंचायत में होता है। मैसूर राज्य के प्रथम लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल में जिसके मुखिया श्री के० सी० रेड्डी (K. C. Reddy) थे, केवल मन्त्री ही जाति पर नहीं चुने गये थे, बल्कि प्रत्येक मिनिस्टर के सेक्रेटरी भी उसी की उपजाति के होते थे। डा० एम० एन० श्रीनिवास (M. N. Sriniwas) ने कहा है कि आज भी मैसूर राज्य में इस सिद्धान्त का पालन न केवल नियुक्ति के सम्बन्ध में ही किया जाता है बल्कि स्कूलों और कालेजों में सीटों का बँटवारा भी इसी आधार पर होता है। मैसूर पर अब पौराणिक दैत्य महिषासुर राज्य नहीं करता है, बल्कि अत्यन्त सच्चा दैत्य वर्णासुर राज्य करता है।

डा० राधाकृष्णन ने कहा है कि किसी सभ्यता की परीक्षा इस बात से की जा सकती है कि वहाँ कमजोर सदस्यों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाता है। जिस देश में प्रत्येक चुनाव में जाति के आधार पर वोट पड़ते है वहाँ प्रजातन्त्रवाद केवल एक कल्पना ही है।

जातिगत स्तरण परिवर्तन की ओर

अँग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कुछ ही काल बाद भारत में राज्यगत, पेशागत और बुद्धिगत (territorially, occupationally and intellectually) उत्कर्ष के बीज जमने लगे। सस्कृत के ग्रंथों से सम्बन्धित अँग्रेजों के शोध कार्यों ने भारतीयों में स्वाभिमान की भावना पैदा की और उनमें राष्ट्रीयता की लहर कौंधने लगी। वैज्ञानिक तकनीकों की विकसित अवैयक्तिक तर्क प्रणाली (The impersonal logic of technology) ने भारतीयों की बहुत सारी रूढ़िगत प्रणालियों के साथ जाति-भाव पर भी आघात पहुँचाया। ईसाई मिशनरियों ने ऐसी घड़ी में उत्प्रेरक

का काम किया और लोगों ने जाति प्रथा की प्रतिवादिता पर विचार करना आरम्भ कर दिया ।

विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों के साथ-साथ परिवर्ती काल में उठाये गये स्वतन्त्रता आन्दोलनों से भी भाई-चारा और एकता के मूल्यों का प्रसार हुआ। राजा राममोहन राय के प्रयत्न से लेकर महात्मा गांधी द्वारा तक चलाये गये अछूतोद्धार के आन्दोलनों ने जाति-प्रथा की संरचना में ढील पैदा कर दी। वैधानिक प्रयत्नों ने (विशेष विवाह अधिनियम १९५४; हिन्दू-विवाह तथा विच्छेदन नियम १९५५; हिन्दू-उत्तराधिकार अधिनियम १९५६; दहेज निरोधक अधिनियम १९६१ तथा अस्पृश्यता अपराध अधिनियम १९५५ ने) हिन्दू धर्म के एक बड़े और जिम्मेदार वर्ग को रूढ़िगत जाति प्रथा की वैधता पर फिर से विचार करने को बाध्य कर दिया ।

उपरोक्त वर्णित कारणों के मिश्रित प्रभाव के कारण भारतीय जाति प्रथा की संरचना में उल्लेखनीय परिवर्तन हुये; फिर भी यह एक खुले वर्ग के रूप में परिवर्तित न हो सकेगी। भारत की ऐतिहासिक परिस्थितियों और परिणामों को देखते हुये यह नहीं कहा जा सकता कि कभी भी भारतीय जातियां पूर्णतया वर्ग में परिणित हो सकेंगी। यद्यपि विश्व का सबसे विकसित भारत का वैदिक और पौराणिक-समाजशास्त्र, जो भविष्यवाणी करने में पूर्णतया समर्थ था, ने यह सन्देह व्यक्त किया है कि भारत की वर्ण व्यवस्था रूढ़िरूपी रोग के कारण वर्णसंकर व्यवस्था (जाति-पाँति-आदर्श और मानव-धर्म रहित) में टूट कर बिखर जायेगी। जो भी हो, वर्तमान काल में भी जाति-प्रथा के बहुत से मूल्य कार्यकारी (function) रूप में जीवित हैं किन्तु युग-परिणाम और धर्म के कारण इसमें निम्नलिखित परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं ।

(१) ब्राह्मण-जाति की प्रस्थिति, प्रतिष्ठा, और शक्ति में ह्रास हुआ है ।
(२) कानूनन, सभी को धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक अधिकारों को दे दिये जाने के कारण शूद्र जाति का लोप हो रहा है ।
(३) धन, तकनीकी जानकारी, योग्यता और आर्थिक आवश्यकता की माँग के कारण परम्परात्मक-व्यावसायिक-प्रतिबन्ध हट गये हैं ।
(४) नगरीकरण, औद्योगीकरण और यातायात तथा होटलों के विकास और प्रसार के कारण भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी धड़ल्ले से टूट रहा है ।
(५) 'रोटी और बेटी' पर लगे प्रतिबन्धों में ढील आने के कारण जाति की पंचायतों का सामाजिक मूल्य नगण्य हो गया है ।
(६) राजनीतिक चुनावों में जाति के आधार पर मत मिलने के कारण जाति एक राजनीतिक वर्ग में परिवर्तित हो रही है ।

१७ सामाजिक स्तरीकरण : सॉरोकिन द्वारा वर्गीकरण (Social Stratification : Sorokin's Classification)

सॉरोकिन ने सामाजिक स्तरण का अर्थ बताते हुये लिखा है : "सामाजिक स्तरण से तात्पर्य किसी जनसंख्या-विशेष का श्रेणीबद्ध क्रम में एक दूसरे पर लादे हुये वर्गों में विभेदीकरण है। इसकी अभिव्यक्ति उच्चतर और निम्नतर सामाजिक पर्त के अस्तित्व में होती है। उसका आधार और सार किसी समाज के सदस्यों के बीच अधिकारों और विशेषाधिकारों, कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों, सामाजिक शक्ति और प्रभावों के असमान वितरण में पाया जाता है।*

सॉरोकिन ने सामाजिक स्तरण के तीन प्रमुख स्वरूप बताये : आर्थिक, राजनैतिक और व्यावसायिक। इन तीनों प्रकार के स्तरीकरण एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। सॉरोकिन के विचार में सामान्यतः यह सत्य है कि यदि किसी व्यक्ति की एक क्षेत्र में स्थिति या पद ऊँचा है तो दूसरे क्षेत्र में भी उसको उच्च पद प्राप्त होने की सम्भावना अधिक है। इसी प्रकार यदि एक क्षेत्र में किसी व्यक्ति की स्थिति नीची है तो दूसरे क्षेत्र में भी उसकी स्थिति नीची होना स्वाभाविक है। इसका कारण यही है कि सभी प्रकार के संस्तरण एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। इसमें कुछ अपवाद (exception) भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, हमेशा यह आवश्यक नहीं होता कि धनी व्यक्तियों के हाथ में राजनीतिक शक्ति भी हो, या राजनीतिक नेता धनी भी हो।

* "Social stratification means the differentiation of a given population into hierarchically superposed classes. It is manifested in the existence of upper and lower social layer. Its basis and very essence consist in an unequal distribution of rights and privileges, duties and responsibilities, social values and privations, social power and influences among the members of a society." —P. A. Sorokin, *Social and Cultural Mobility*.

(१) **आर्थिक स्तरीकरण** (**Economic stratification**)—आर्थिक स्तरण के सम्बन्ध में सॉरोकिन ने लिखा है : यदि किसी समाज के सदस्यों की आर्थिक प्रस्थिति असमान होती है, यदि उनमें धनी और निर्धन दोनों लोग होते हैं, उस समाज में आर्थिक स्तरण है चाहे उसका संगठन साम्यवादी या पूंजीवादी हो, चाहे अपने संविधान में वह 'बराबर के व्यक्तियों का समाज' कहा जाता हो या नहीं। आमदनी, आर्थिक स्तरों के अन्तरों और निर्धन श्रेणी के अस्तित्व में प्रकट होने वाली आर्थिक असमानता की वास्तविकता लेबलों, साइनबोर्ड और "भाषा सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं" द्वारा न बदली और न मिटाई जा सकती है।* आर्थिक क्षेत्र में जो स्तरीकरण पाया जाता है वह आमदनी, जायदाद पर अधिकार तथा व्यवसाय पर आधारित हो सकता है। इन सभी आधारों के परिवर्तनशील होने के कारण आर्थिक स्तरीकरण में भी उतार-चढ़ाव की सम्भावना रहती है। सॉरोकिन के विचार में समाज में आर्थिक प्रस्थिति में उतार-चढ़ाव दो प्रकार का होता है : १. सम्पूर्ण समूह की आर्थिक प्रस्थिति में उतार-चढ़ाव। (अ) आर्थिक समृद्धि में वृद्धि; (ब) उसमें गिरावट। २. समाज के अन्दर आर्थिक स्तरण की ऊँचाई और स्वरूप में उतार-चढ़ाव : (अ) आर्थिक पिरामिड की ऊँचाई का बढ़ना अर्थात् नये आर्थिक वर्गों का जन्म जो यह प्रकट करता है कि विभिन्न आर्थिक वर्गों के बीच आमदनी और सम्पत्ति का अन्तर बढ़ रहा है; (ब) आर्थिक पिरामिड का सपाट होना अर्थात् आमदनी और सम्पत्ति के अन्तरों का नाश होना।†

अपनी Social and Cultural Mobility नामक पुस्तक में समाज के आर्थिक चढ़ाव के बारे में सॉरोकिन ने कुछ बातें बतायी हैं : (१) औसत आय

---

* "If the economic status of the members of society is unequal, if among them are both wealthy and poor, the society is economically stratified, regardless of whether its organization is communistic or capitalistic, whether in its constitution it is styled 'the society of equal individuals' or not. Labels, signboards and 'speech reactions' cannot change or obliterate the real fact of the economic inequality manifested in the differences of incomes, economic standards, and in the existence of the rich and poor strata." —Sorokin

† "There are the following two kinds of fluctuation of the economic status in a society : 1. Fluctuation of the economic status of a group as a whole : (a) increase of economic prosperity; (b) its decrease. 2. Fluctuation of the height and the profile of economic stratification within the society : (a) heightening of the economic pyramid, (b) its flattening." —Sorokin

और सम्पत्ति भिन्न-भिन्न समाज और समूह में भिन्न होती है; (२) औसत आय और सम्पत्ति एक ही समाज या समूह में भिन्न-भिन्न काल में भिन्न होती है; (३) आर्थिक समृद्धि या अवनति का कोई स्थायी नियम या प्रवृत्ति नहीं होती। इसका अर्थ है कि आर्थिक स्थिति किसी एक कारण का फल न होकर अनेक कारकों या परिस्थितियों का फल है और दूसरी ओर, आर्थिक समृद्धि या अवनति किसी समाज की स्थायी विशेषता नहीं होती; (४) समाज में केवल व्यापार-चक्र ही नहीं चलते बल्कि अन्य आर्थिक क्षेत्रों में भी उत्कर्ष और अपकर्ष के चक्र चलते हैं; (५) अन्तहीन आर्थिक उन्नति का सिद्धान्त निराधार है क्योंकि समाज या समूह के जीवन में आर्थिक पतन भी उतना ही स्वाभाविक या सामान्य बात है जैसे कि आर्थिक उन्नति।

(२) **राजनीतिक स्तरीकरण (Political Stratification)**—सॉरोकिन ने राजनीतिक स्तरीकरण की व्याख्या करते हुये कहा है : "यदि अपनी अधिकार-शक्ति और प्रतिष्ठा, अपने सम्मान और पदवियों के मामले में समूह के अन्दर सामाजिक श्रेणियां ऊँची और क्रमशः नीची के क्रम से संवारी हुई हैं; यदि वहाँ शासक और शासित हैं, तब चाहे जो कुछ भी उनके नाम क्यों न हों (राजा, प्रबन्धकर्ता, मालिक, अफ़सर), इन बातों का यही अर्थ है कि उस समूह में राजनीतिक स्तरण है, चाहे उसके संविधान में कुछ भी क्यों न लिखा हो या उसकी घोषणाओं में कहा जाता हो।*

सॉरोकिन ने कहा कि राजनैतिक स्तरण में कोई स्थाई बात नहीं है। परिस्थितियों के बदलने के साथ व्यक्तियों और दलों की स्थिति में उतार-चढ़ाव हो सकता है। अपने ही राजनीतिक दल में समय के साथ-साथ व्यक्ति की स्थिति बदलती रहती है। इसी प्रकार, किसी राजनीतिक दल को कभी शासक वर्ग में रखा जाता है, तो कभी विरोधी दल। सॉरोकिन ने यह भी कहा कि राजनैतिक स्तरीकरण बहुत सामाजिक संगठन के स्वरूप पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिये आदिम और सरल समाजों में राजनीतिक ढाँचा और संगठन भी अत्यन्त सरल होते हैं। वहाँ वंशानुगत राजा या मुखिया पाये जाते हैं। जैसे-जैसे समाज जटिल

---

* "If the social ranks within group are hierarchically surperposed with respect to their authority and prestige, their honours and titles; if there are the rulers and the ruled, then whatever are their names (monarchs, executives, masters, bosses), these things mean that the group is politically stratified, regardless of what is written in its constitution or proclaimed in its declarations."

—Sorokin

होता जाता है वहाँ का राजनीतिक संगठन भी जटिल होता जाता है। पहले राजा और उसके थोड़े मंत्री सम्पूर्ण शासन-भार संभालते थे। आज बड़े-बड़े प्रजातंत्रीय देशों में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उप-प्रधान मंत्री, केबिनेट मिनिस्टर, स्टेट मिनिस्टर उप-मंत्री आदि भारी संख्या में होते हैं। पूरे समाज का ढाँचा बदल चुका है। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को भी दृष्टि में रखना पड़ता है और अन्य देशों में घटित होने वाली घटनाओं का भी अपने देश की राजनीति और राजनीतिक ढाँचे पर प्रभाव पड़ता है। इन सब बातों को दृष्टि में रखकर सॉरोकिन ने राजनीतिक स्तरण के बारे में कुछ विशेष बातें बतायीं : (१) जब किसी राजनीतिक संगठन के सदस्यों की संख्या में वृद्धि होती है तो राजनीतिक स्तरण भी बढ़ता हैं। दूसरी ओर सदस्यों की संख्या में कमी आने से स्तरीकरण भी हल्का हो जाता है; (२) जब राजनीतिक सदस्यों के बीच मतभेद बढ़ता या घटता है तो उसी के अनुसार राजनीतिक स्तरण भी फैलता या सिकुड़ता है; (३) जब पहले और दूसरे दोनों ही कारक घटते या बढ़ते हैं तो राजनैतिक स्तरीकरण में उसके अनुसार घटती या बढ़ती होने की सम्भावना भी बढ़ जाती है; (४) जब ऊपर कहे दोनों कारकों में अचानक तेजी आती है जैसे कि सैनिक विजय, विद्रोह या क्रान्ति द्वारा सरकार को बदल देना, ऐसी स्थिति में राजनीतिक स्तरण में भी गम्भीर परिवर्तन हो सकते हैं; (५) जब उपरोक्त कारकों में समान गति में वृद्धि या अवनति नहीं होती अर्थात् जब एक कारक बढ़ता और दूसरा कारक घटता है तो वे एक दूसरे के प्रभाव को रोक लेते हैं।

(३) व्यावसायिक स्तरीकरण (Occupational Stratification)—सॉरोकिन ने व्यावसायिक स्तरीकरण की व्याख्या करते हुये लिखा है : "यदि किसी समाज के सदस्यों का विभिन्न व्यवसाओं में विभेदीकरण किया जाता है, और कुछ व्यवसायों को अन्य व्यवसायों की अपेक्षा अधिक सम्मानजनक समझा जाता है, यदि किसी व्यावसायिक समूह के सदस्यों का विभिन्न अधिकार शक्ति वाले अफसरों और उनके आधीन रहने वाले सदस्यों में विभाजन किया जाता है, तो उस समूह में व्यावसायिक स्तरीकरण पाया जाता हैं, चाहे अफ़सर चुने गये हैं या नियुक्त हुये हैं, चाहे उनकी स्थिति सामाजिक वंशानुक्रम से प्राप्त हुई है या वैयक्तिक उपलब्धि है।"*

---

* "If the members of a society are differentiated into various occupational groups, and some of the occupations are regarded as more honourable than others, if the members of an occupational group are divided into bosses of different authority and into members who are subordinated to the bosses, the group is occupationally stratified, independently of the fact whether the

सॉरोकिन ने व्यावसायिक स्तरीकरण को दो भागों में विभाजित किया है : विभिन्न व्यवसायों के बीच स्तरीकरण और एक ही व्यवसाय के भीतर स्तरीकरण।

(i) **विभिन्न व्यवसायों के बीच स्तरीकरण** (**inter-occupational stratification**) : इस प्रकार के स्तरीकरण का तात्पर्य यह है कि किसी समाज में विभिन्न व्यवसायों को एक दूसरे के मुकाबले में श्रेष्ठ या हीन समझा जाता है। समाज में व्यवसायों का एक श्रेणीक्रम होता है जिसके सबसे ऊँचे भाग पर एक-आध व्यवसाय होते हैं जिनको करने के लिये विशेष योग्यता और बुद्धि या धन या दोनों की आवश्यकता होती है। उसके बाद क्रम से अनेक अन्य व्यवसाय होते हैं जिनके लिये क्रमशः कम बुद्धि, योग्यता और धन की आवश्यकता होती है। सबसे नीचे वह व्यवसाय होता है जिसे करने के लिये न विशेष बुद्धि, योग्यता और धन की आवश्यकता है, बल्कि जिसे घृणित समझा जाता है। उदाहरण के लिये, हमारे समाज में डोम और मेहतर के व्यवसाय को सबसे निकृष्ट समझा जाता है।

रॉस ने कहा है कि विभिन्न व्यवसायों के बीच स्तरीकरण के दो प्रमुख आधार हैं : (अ) सम्पूर्ण समूह के अस्तित्व व जीवन के लिये किसी व्यवसाय को सफलतापूर्वक ढंग से करने के लिये आवश्यक बुद्धि की मात्रा। उदाहरण के लिये, क्योंकि समूह के अस्तित्व के लिये मिलिट्री, पुलिस, नगर प्रशासक और डॉक्टर आवश्यक हैं; इसलिये इन धन्धों में लगे हुये लोगों, विशेषकर उच्च श्रेणी के लोगों, को समाज में अधिक आदर और सम्मान प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये, जिला न्यायाधीश का पद एक वकील के पद से कहीं ऊँचा समझा जाता है चाहे वकील की आमदनी जज से कितनी ही अधिक क्यों न हो। अधिक सफ़ल होने के लिये राजनीतिज्ञ, डॉक्टर, उद्योगपति, वकील, प्रोफेसर आदि को अधिक बुद्धि की आवश्यकता होती है जिस कारण इन व्यवसायों में लगे हुये लोगों की मुंशी, क्लर्क, टाइपिस्ट आदि से प्रतिष्ठा अधिक होती है। इस सम्बन्ध में सॉरोकिन ने कहा है : "किसी समाज में, जितना अधिक व्यावसायिक कार्य सामाजिक संगठन और नियंत्रण बनाये रखने से सम्बन्धित होगा, और जितनी अधिक मात्रा में बुद्धि इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिये आवश्यक होगी, उतने ही विशेष अधिकार उस समूह को प्राप्त होंगे और उतना ही ऊँचा पद वह अन्तःव्यावसायिक श्रेणी-क्रम में प्राप्त करेगा।*

---

bosses are elected or appointed, whether their position is acquired by social inheritance or personal achievement."—Sorokin.

* In any given society, the more occupational work consists in the performance of the functions of social organization and control, and the higher the degree of intelligence necessary for its succe-

इससे स्पष्ट है कि क्योंकि मिलिट्री के अफसर, मैजिस्ट्रेट, पुलिस अफसर, मिनिस्टर सामाजिक संगठन और नियंत्रण बनाये रखने में विशेष योगदान देते हैं और इसके लिए अधिक बुद्धि की भी आवश्यकता होती है इसलिये अन्त: व्यावसायिक श्रेणी-क्रम में उन्हें उच्च पद प्राप्त है।

(i) **एक ही व्यवसाय के भीतर स्तरीकरण (intra-occupational stratification)** : ऊपर हमने देखा कि समाज के अन्दर अनेक व्यवसाय होते हैं और इन विभिन्न व्यवसायों को एक दूसरे से अधिक श्रेष्ठ या हीन समझा जाता है। अब हम देखेंगे कि प्रत्येक व्यवसाय के भीतर भी एक अलग श्रेणी-क्रम (hierarchy) होता है। सॉरोकिन ने कहा है कि किसी भी व्यावसायिक समूह के सदस्यों को तीन भाँगों में बाँटा जा सकता है : पहले, संस्थापक, उद्योगपति या मालिक जो आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होते हैं और व्यवसाय को चलाने के ढंग, कर्मचारियों की नियुक्ति और नियंत्रण के मामले में स्वयं सबसे ऊँचे अफसर होते हैं; दूसरे, उच्च श्रेणी के अफसर या कर्मचारी, जैसे डायरेक्टर, मैनेजर, टैक्निकल मैनेजर आदि जो अपनी विशिष्ट सेवाओं के लिये उच्च वेतन पाते हैं और जिनकी सेवायें व्यावसायिक संगठन के लिये महत्वपूर्ण समझी जाती हैं; तीसरे,कम तन्ख्वाह पाने वाले निम्न श्रेणी के कर्मचारी, क्लर्क, चपरासी आदि जिनका कार्य कम महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि उसको करने के लिये विशेष बुद्धि और योग्यता की आवश्यकता नहीं होती।

---

ssful performance, the more privileged is that group and the higher rank does it occupy in inter-occupational hierarchy, and vice versa."

—Sorokin.

१८ वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण (Heredity and Environment)

मनुष्य के विकास में दो कारक हैं—(१) वंशानुसंक्रमण और (२) पर्यावरण। व्यक्तित्व के विकास में दोनों कारकों का प्रभाव सम्यक् रूप से दिखाई पड़ता है किन्तु प्राचीनकाल से इस सम्बन्ध में एक विवाद उठ खड़ा हुआ। जीव-विज्ञान के विद्यार्थियों ने वंशानुसंक्रमण (heredity) को प्राथमिकता दी और इस बात पर जोर दिया कि मनुष्य का विकास अधिकतर वंशासंनुक्रमण पर ही निर्भर है। पर्यावरण (environment) केवल पूरक का ही कार्य करता है; वस्तुतः मूलभूत परिवर्तन करके एक नवीन व्यक्तित्व का निर्माण करने की शक्ति पर्यावरण में नहीं है। इसके विपरीत, अन्य विचारकों ने वंशानुसंक्रमण के प्रभाव को गौण (secondary) बताया और पर्यावरण को ही मानव विकास का मुख्य कारक निश्चित किया। एक तीसरी श्रेणी के विचारकों ने मनुष्य के व्यक्तित्व का विश्लेषण करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कुछ गुण जैसे कि स्वास्थ्य, बुद्धि आदि वंशानुसंक्रमण पर निर्भर करते हैं तथा अन्य, मुख्यतः सामाजिक गुण, पर्यावरण पर। समाजशास्त्र के विद्यार्थी के नाते यह आवश्यक है कि इस प्रश्न का वैज्ञानिक विश्लेषण करके वस्तु-स्थिति को समझा जाये।

वंशानुसंक्रमण तथा पर्यावरण सम्बन्धी इस विवाद का जन्म १८६९ में फ्रांसिस गाल्टन (Francis Galton) द्वारा हुआ जिसने अपनी पुस्तक 'Hereditary Genius' में यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मेधावी माता-पिता द्वारा ही मेधावी (intelligent) बच्चों का जन्म संभव है। कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) ने इस विवाद को अधिक वैज्ञानिक रूप देने का प्रयत्न किया। उसने अपने कुछ प्रयोगों के आधार पर यह निर्णय दिया कि एक ही प्रजाति के अन्तर्गत वंशानुसंक्रमण का प्रभाव पर्यावरण के प्रभाव की अपेक्षा सात गुना अधिक होता है। उसके मतानुसार

वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। पियर्सन के अतिरिक्त, अन्य विचारकों ने भी समाज के विभिन्न वर्गों का अध्ययन करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि किसी विशेष वर्ग में अन्य वर्गों की अपेक्षा मेधावी सन्तानें पैदा करने की अधिक शक्ति होती है।

वुड्स (F. A. Woods) ने भी इसी बात पर जोर देते हुए कहा कि राजघरानों (royal families) में ही अधिक मेधावी तथा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति पैदा हुए हैं। अमेरिका में पादरियों के परिवार में ही धार्मिक प्रतिभा-सम्पन्न संतानों का जन्म हुआ है। अमेरिका के अधिकाँश वैज्ञानिक व्यावसायिक वर्ग (professional class) में ही पैदा हुए हैं, कृषक परिवारों में नहीं। प्रजाति (race) एवं राष्ट्रीयता को वर्गीकरण का आधार मानकर भी अनेक परीक्षण किये गये। अमेरिकन सेना में देशान्तर से आये हुए (immigrant) सैनिकों के विभिन्न वर्गों में किए गए परीक्षण भी इसी विवाद को शक्ति प्रदान करते रहे। विभिन्न परिवार-समूहों को लेकर भी परीक्षण हुए जिनमें से सम्पन्न एवं मेधावी एडवर्ड परिवार तथा दरिद्र ज्यूक तथा कालिकस (Jukes and Kallikas) परिवार प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार के परीक्षणों द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गए, वे वंशानुसंक्रमण तथा पर्यावरण की गुत्थी सुलझाने में पूर्णतया सफल नहीं हुए। उपर्युक्त निर्देशित समस्त परीक्षणों से केवल यह निष्कर्ष निकाला गया कि सम्पन्न एवं मेधावी माता-पिता द्वारा ही मेधावी बच्चों का जन्म सम्भव है। उदाहरण के लिए उपर्युक्त निर्देशित एक प्रयोग द्वारा (जिसका आधार Who's Who in America 1922-1923 था) यह बताया गया कि अकुशल श्रमिकों के परिवार में मेधावी बालक के जन्म की सम्भावना अत्यन्त कम है—४८००० व्यक्तियों के बीच एक मेधावी बालक की सम्भावना है; जबकि अन्य वर्गों में अधिक है, जैसे कुशल श्रमिकों में ३०, कृषकों में ७०, व्यापारी वर्ग में ६००, अन्य वर्गों में १०३५, पादरी वर्ग में २४००।

इस प्रकार की गवेषणाओं में जो तथ्य (facts) एकत्र किये गये वे ठीक हैं किन्तु प्रश्न तो यह है कि इन तथ्यों के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले गये वे कहाँ तक ठीक हैं। हमने देखा कि उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि बुद्धिमान एवं मेधावी माता-पिता द्वारा ही मेधावी सन्तानों की उत्पत्ति सम्भव है जब कि परीक्षण के समय कारकों—पर्यावरण और वंशानुक्रमण—पर दृष्टि नहीं केन्द्रित थी। इन्हीं तथ्यों के आधार पर ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चूँकि राजघरानों, पादरी परिवारों तथा अन्य व्यापारी वर्ग के परिवारों का सामाजिक पर्यावरण अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ तथा सम्पन्न होता है इसलिये ऐसे परिवारों में उत्पन्न सन्तानों के विकास की संभावना बहुत अधिक होती है, अपेक्षाकृत निम्न श्रेणी के परिवारों के। उपर्युक्त परीक्षणों में यह त्रुटि है कि पर्यावरण के

प्रभाव की बिल्कुल ही अवहेलना कर दी गई और इस प्रकार जो निष्कर्ष निकाला गया वह केवल पूर्वकल्पित (preconceived) विचारों को लिए हुए था जो सर्वथा अवैज्ञानिक है।

दूसरी ओर, वुडवर्थ और अन्य मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने इस बात पर बल दिया है कि वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। वंशानुसंक्रमण (heredity) का प्रभाव वर्णसंकरों (hybrids) में स्पष्ट दिखलाई पड़ता है; यद्यपि कि खच्चर (mule) और घोड़ा (colt) दोनों ही जन्म के पूर्व एक से पर्यावरण (same parental environment) में विकसित होते हैं, उनमें भिन्न विशेषतायें होती हैं जिसका कारण केवल उनकी जनन-सम्बन्धी (genetic) भिन्न रचना (constitution) ही है। दूसरी ओर, विकसित होते हुए गर्भ (embryo) के पर्यावरण में अन्तर आने से उन विशेषताओं में महान् अन्तर आ सकता है जो सामान्यतः वंशानुसंक्रमण (heredity) के नियंत्रण में रहती हैं। उदाहरण के लिए, उस तरल पदार्थ (fluid) के रासायनिक तत्व (chemical content) में परिवर्तन कर देने से जिसमें मछली के बच्चे विकसित हो रहे हैं उनकी दोनों आँखें एक दूसरे के बिल्कुल पास बन सकती हैं, और कुछ घटनाओं में तो दोनों इतनी अधिक पास आ जाती हैं कि मिल कर बीच में एक ही बड़ी सी आँख बन जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण दोनों का ही फल है। यह कहना गलत होगा कि व्यक्ति इतना वंशानुसंक्रमण का फल है और इतना पर्यावरण का फल। सत्य तो यह है कि कोई भी अलग विशेषता (characteristic) एकमात्र (exclusively) इस या उस वस्तु का ही फल नहीं है। उदाहरण के लिए, कद (stature) को वंशानुसंक्रमण का ही फल बतलाया जाता है, और फिर भी हम यह जानते हैं कि जीवन की दशाओं में परिवर्तन करके इस सम्बन्ध में भी अन्तर लाया जा सकता है। शपीरो (Shapiro) ने अपने अध्ययन द्वारा यह दिखलाया है कि हवाई (Hawaii) द्वीप में पैदा हुआ जापानी जापान में पैदा हुए अपने सम्बन्धियों से अधिक लम्बा होता है।* वनस्पतिशास्त्र (botany) तो इस प्रकार के उदाहरणों से भरी पड़ी है कि भूमि, रोशनी और नमी में अन्तर कर देने से वही पौधा भिन्न बाहरी विशेषतायें प्रदर्शित करता है।

वंशानुक्रमण (Heredity)

पर्यावरण और वंशानुसंक्रमण के इस विवाद को वैज्ञानिक रीति से समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम पहले यह जान लें कि वंशानुक्रमण जो कि एक जैव-

---

* A. L. Shapiro, *Migration and Environment*, 1939.

कीय तथ्य (biological concept) है, जनन-विद्या (Genetics) के किन सिद्धान्तों पर आधारित है।

थॉमसन के अनुसार : "वंशानुक्रमण क्रमबद्ध पीढ़ियों के बीच उत्पत्ति सम्बन्धी सम्बन्ध के लिए एक सुविधाजनक शब्द है।"* वंशानुसंक्रमण का अर्थ प्राय: माता-पिता और उनकी सन्तानों के बीच के जनन-सम्बन्धी (genetics) सम्बन्ध से लगाया जाता है अर्थात् बच्चों में उनके माता-पिता की ही विशेषतायें प्रकट होती हैं।

प्रत्येक समाज में यह धारणा सदैव से चली आई है कि सन्तानों की रगों में माता-पिता का रक्त प्रवाहित होता है। बच्चे के जन्म से ही उसके शारीरिक लक्षणों की समानता की खोज माँ, बाप या परिवार के अन्य सदस्यों में की जाती है। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि बच्चे के शारीरिक लक्षण माता-पिता के शारीरिक लक्षणों से बिल्कुल भिन्न होते हैं, ऐसी दशा में यह सोचना कि अमुक सन्तान अपने माता-पिता की नहीं है सर्वथा भ्राँतिमूलक है। सत्य तो यह है कि रक्त द्वारा बच्चों में पैतृक गुण नहीं आते। पैतृक गुण तो उन अपरिवर्तनशील लघुतम अणुओं द्वारा एक पीढ़ी में आते हैं जिन्हें वाहकाणु (gene) कहते हैं।

इस मानव शरीर की प्रारम्भिक इकाई एक कोष्ठ के रूप में होती है जिसके दो भाग होते हैं—केन्द्र (nucleus) और कोशारस (cytoplasm)। कोष्ठ के केन्द्र में पित्र्य सूत्र (chromosomes) होते हैं। इन पित्र्य सूत्रों में वाहकाणुओं (genes) की एक श्रृंखला होती है। पिता तथा माता के २३, २३ पित्र्य सूत्रों से शरीर कोष्ठों (body cell) की नींव पड़ती है और इन्हीं ४६ पित्र्य सूत्रों में केन्द्रित वाहकाणुओं द्वारा शरीर रचना का कार्य प्रारम्भ होता है। बच्चे के शरीर-लक्षणों का निर्धारण तथा अन्य गुणों का निर्धारण इन्हीं वाहकाणुओं द्वारा होता है। मैन्डल (Mendel) ने आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि मनुष्यों के शरीर में रहने वाले वाहकाणु दो प्रकार के होते हैं—प्रबल (dominant) और गौण (recessive)। प्रबल वाहकाणु वे होते हैं जो कि मनुष्यों के शारीरिक लक्षणों पर अपना प्रभाव दिखलाते हैं। गौण (recessive) वाहकाणु वे होते हैं जो मनुष्य के शरीर में रहते हुए भी अपना प्रभाव नहीं दिखा पाते। यदि पिता के शारीरिक लक्षण का अनुरूप बच्चे में न हो तो स्पष्ट रूप से यह समझना चाहिये कि उन गुणों वाले वाहकाणु गौण थे।

बच्चा न तो माँ के ही सब पित्र्य सूत्रों (chromosomes) को प्राप्त करता है और न पिता के सब पित्र्य सूत्रों को, बल्कि कुछ पित्र्य सूत्र माँ से और कुछ पिता

* "Heredity is a convenient term for the genetic relation between successive generations," —Thomson.

से वह प्राप्त करता है। इस प्रकार बच्चा कुछ वंशानुसंक्रमण पिता से और कुछ माँ से प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया (process) में लाखों संसर्ग (combinations) सम्भव हैं। एक ही माता-पिता के दो बच्चों को शायद ही कभी एक सा वंशानुसंक्रमण (heredity) प्राप्त होता है यद्यपि कि असम्बन्धित बच्चों की अपेक्षा अधिक उनमें वाहकाणु (genes) एक से होते हैं।

आनुवंशिकता की विस्तारपूर्वक व्याख्या : (Heredity) आनुवंशिकता का अर्थ है माता-पिता व उनकी सन्तान की समानता। यही समानता दूसरे जन्तुओं में भी पाई जाती है जैसे बिल्ली के बच्चे बिल्ली के समान, मछली के बच्चे मछली के समान होंगे तथा आम के बीज से आम का पेड़, व नीम के बीज से नीम का पेड़ ही उगेगा। यह समानता साधारणतया शरीर की बनावट तथा व्यवहार से सम्बन्धित है। यह सच है कि एक परिवार की सब संतानें पूर्ण समरूप (identical) नहीं होतीं। उनमें कुछ असमानता भी होती है जिससे वे एक दूसरे से पहिचाने जा सकते हैं। किसी भी परिवार की सन्तानों में कुछ गुण, चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक, पिता के गुणों के समान होंगे। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि सन्तानों में किसी एक सदस्य में ऐसा गुण, शारीरिक या मानसिक, उत्पन्न हो जाता है जो न पिता का है न माता का। यदि इस वंश के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि यह नया गुण उस वंश के किसी पूर्वज में था। इस प्रकार से माता-पिता के शारीरिक तथा मानसिक गुणों का उनकी सन्तानों में वितरित होने की क्रिया को आनुवंशिकता (Heredity) कहते हैं।

आनुवंशिकता की क्रिया विधि
(Mechanism of Heredity)

आस्ट्रिया निवासी ग्रीगोर जान मेन्डिल (Gregor Johann Mendel १८२२-१८८४) सबसे पहिला व्यक्ति था जिसने अपने प्रयोगों द्वारा आनुवंशिकता के मूल सिद्धान्तों का सूत्रण किया। मेन्डिल ने ही सबसे पहिले शरीर पर दिखाई देने वाले बाहरी गुणों में तथा उस स्रोत या पदार्थ में जिसके कारण बाहरी गुण उत्पन्न होते हैं अन्तर बतलाया। उसका कहना था कि जनन कोशिकाओं (Germ cell) में, जिनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति होती है, गुण अपने विकसित रूप में नहीं पाये जाते वरन् इन गुणों के उत्पन्न करने वाले पदार्थ इन प्रजनन कोशिकाओं में पाये जाये हैं। इन पदार्थों को जीन (Gene) या कारक (Factor) कहते हैं। जीन(Gene) वंशगति (Inheritance) की इकाई है जो कि प्रजनन (Reproduction) द्वारा जनन कोशिकाओं (Germ cells) में जाकर सम्बन्धित गुणों को उत्पन्न करती है। यह निम्न प्रकार से होता है।

मनुष्य में दो प्रकार के प्रजनन अंग होते हैं : (१) नर (male) में वृषण (Testis) तथा (२) मादा में अंडाशय (Ovary) होते हैं। वृषण में शुक्राणु (Sperms) तथा अंडाशय में अंडाणु (Ova) उत्पन्न होते हैं। प्राणियों का शरीर छोटी-छोटी कोशिकाओं (cells) का बना होता है जिन्हें हम शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी (Microscope) यंत्रों द्वारा देख सकते हैं। प्रत्येक कोशिका में एक केन्द्रक (nucleus) होता है जो कोशिका द्रव्य (cytoplasm) से घिरा होता है। कोशिका द्रव्य के चारों ओर एक पतली झिल्ली होती है जिसे कोशिका या कला या कोशिकाझिल्ली (Cell membrane) कहते हैं। प्रत्येक केन्द्रक (Nucleus) में पतले डोरे होते हैं जिनको गुण सूत्र (Chromosome) कहते हैं। इनकी संख्या प्रत्येक जन्तु में निर्धारित होती है। मनुष्य में इनकी संख्या ४६ होती है। गुणसूत्र दो प्रकार के होते हैं (१) अलिंग सूत्र (Autosomes) और (२) लिंग सूत्र (Sex Chromosome)। अलिंग सूत्र की संख्या ४४ तथा लिंग सूत्र की संख्या २ होती है। लिंग सूत्रों में एक X मादा लिंग सूत्र (Female sex chromosome) तथा Y नर लिंग सूत्र (Male sex chromosome) कहलाता है।

प्रजनन क्रिया, जिसके द्वारा सन्तान उत्पन्न होती है, निम्न प्रकार से होती है :—

नर में (पुरुषो में)—(१) वृषण (Testis) की जनन कोशिकाओं में खण्डन क्रिया (Mitosis) द्वारा पहले संख्या में वृद्धि होती है, फिर इन कोशिकाओं में एक विशेष प्रकार के खण्डन द्वारा जिसे अर्ध सूत्रण (Meiosis) कहते हैं सूत्रों की संख्या आधी हो जाती है। अन्त में वृषण के अन्दर शुक्राणुनलिकाओं (Sperm-tubules) में शुक्राणु (sperms) बनते हैं। प्रत्येक शुक्राणु (sperm) के केन्द्रक में २२ अलिंग सूत्र या तो X होगा या Y T इस प्रकार वृषण में X तथा शेष आधे में Y लिंग सूत्र होंगे।

मादा में (स्त्री में)— अंडाशय (Ovary) की जनन कोशिकाओं में भी खण्डन क्रिया (Mitosis) द्वारा पहले संख्या में वृद्धि होती है फिर एक विशेष प्रकार के खण्डन द्वारा जिसे अर्ध सूत्रण (Meiosis) कहते हैं सूत्रों की संख्या आधी हो जाती है। अन्त में अण्डाशय में अंडाणु बनते हैं जिनके केन्द्रक में सूत्रों की संख्या केवल २३ होती है इसमें से २२ अलिंग सूत्र तथा एक लिंग सूत्र होता है। सम्पूर्ण अंडाणुओं में केवल X सूत्र ही होता है। सम्पूर्ण युग्मकजनन (Gametogenesis) का सारांश निम्न प्रकार है :—

जनन (Parent)			युग्मक (Gamet)		
नर	४४ + XY	२२ + X	—	५० %	शुक्राणु
		२२ + Y	—	५० %	(Sperm)
मादा	४४ + XX	२२ + X		१०० %	अंडाणु (Ova)

प्रजनन क्रिया के फलस्वरूप एक अंडाणु (ovum) में एक शुक्राणु (sperm) प्रविष्ट होता है और दोनों के मिलने से युग्मनज (Zygote) बनता है। इस युग्मनज से केन्द्रक में आधे सूत्र नर के तथा आधे मादा के होते हैं। जैसे :–

(१) शुक्राणु (२२ + X) + अंडाणु (२२ + X)
= युग्मनज (Zygote) (४४ + XX)

(२) शुक्राणु (२२ + Y) + अंडाणु (२२ + X)
= युग्मनज (Zygote) ४४ + XY

इस प्रकार प्रजनन द्वारा दो प्रकार के युग्मनज (Zygotes) बनने की सम्भावना है। एक में अलिंग सूत्रों की संख्या ४४ तथा दो X लिंग सूत्र होंगे और दूसरे में ४४ अलिंग सूत्र तथा एक X लिंग सूत्र तथा एक Y लिंग सूत्र होगा। जिस युग्मनज में XY लिंग सूत्र है उससे नर तथा जिसमें XX लिंग सूत्र है उससे मादा शिशु उत्पन्न होगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि बिना किसी प्रकार के वातावरण (Environment) के प्रभाव के नर या मादा शिशु की उत्पत्ति का पूरा उत्तरदायित्व पुरुष पर ही है।

इस प्रकार माता-पिता के शारीरिक तथा मानसिक गुण जीन (Gene) के रूप में दोनों प्रकार के सूत्रों (अलिंग सूत्र Autosome और लिंग सूत्र Sex chromosome) द्वारा पहिले जनन कोशिकाओं (Gametes) में जाते हैं फिर इन नर तथा मादा जनन कोशिकाओं (Sperm + Ovum) के मिलने से युग्मनज (Zygote) में जाते हैं जिससे प्राणी की उत्पत्ति होती है।

गुण भी दो प्रकार के होते हैं। एक वे गुण जिनके जीन (Gene) अलिंग सूत्रों में लगे होते हैं और दूसरे वे गुण जिनके जीन (Gene) लिंग सूत्रों में लगे होते हैं। जो गुण लिंग सूत्रों (Sex chromosome) में लगे होते हैं उन्हें लिंग सहलग्न गुण (Sex-linked character) कहते हैं।

उदाहरण—वर्णान्धता (Colour blindness) एक ऐसा रोग है जिससे मनुष्य लाल तथा हरे रंग में अन्तर नहीं कर पाता। वर्णान्धता का जीन X सूत्र में लगा होता है। नर में यह रोग केवल एक जीन द्वारा हो जाता है परन्तु मादा में यह रोग दो जीन के द्वारा होता है। यदि मादा में इस रोग का एक ही जीन है तो उसे यह रोग तो नहीं होगा परन्तु अपनी संतान को यह रोग दे सकती है। जैसे यदि पिता में न होकर केवल एक जीन केवल माता में हो तो उसकी संतान निम्न प्रकार की होगी :—

Father (Frce) Mother (Career)
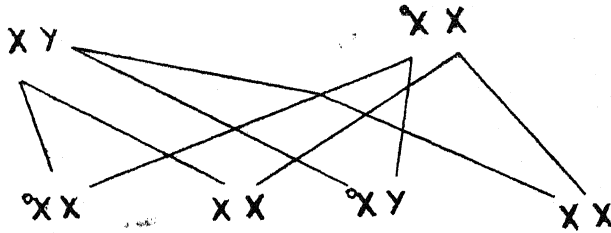
Female Female Male Female

Out of 4 children in first generation

One female will be career,

One male will be sufferer,

Two females will be free.

यह रोग केवल आनुवंशिकता (Heredity) पर ही निर्भर है और इस पर वातावरण का कोई प्रभाव नहीं होगा।

सामान्य

इस प्रकार हमने देखा कि मनुष्य के शारीरिक लक्षणों तथा अन्य विशेषताओं के बीज माता-पिता द्वारा प्राप्त होते हैं। किन्तु इनका प्रस्फुटन या विकास गर्भ में ही नहीं होता। जन्म के कई वर्ष बाद तक विकास का क्रम शनैः शनैः अबाधगति से चलता रहता है। जन्म के अनन्तर बच्चे को नये संसार में रहना पड़ता है जिसको 'पर्यावरण' कहते हैं। इस नवीन संसार में, जिसे हम 'पर्यावरण' कहते हैं, बच्चे के उन मूलभूत गुणों का विकास होता है जिनको कि उसने वाहकाणुओं द्वारा अपने माता-पिता से प्राप्त किया था।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि उन मूलभूत गुणों के विकास में तथा पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण में, पर्यावरण का भी प्रभाव होता है या नहीं। इस विषय में दो विरोधी मत हैं। एक वंशानुसंक्रमण को ही व्यक्तित्व निर्माण का कारण समझता है, दूसरा पर्यावरण को। इन्हीं विवादों का संकेत हमने आरम्भ में किया था और देखा था किस प्रकार अवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया कि वंशानुसंक्रमण ही व्यक्तित्व निर्माण का प्रमुख कारक है।

इन परीक्षाओं में हमने यह भी देखा था कि प्रतिभा तथा सफलता का माप किन्हीं विशेष सामाजिक वर्गों में किया गया था जैसे कृषक वर्ग, कुशल श्रमिक वर्ग, अकुशल श्रमिक वर्ग। किन्तु सामाजिक वर्गों (social classes), प्रजाति विभेदों (race distinction) तथा राष्ट्रीय एकता (national unity) तथा अन्य ऐसे ही सामाजिक विषयों पर विचार करते समय अक्सर भयानक भूलें हो जाती हैं जिनका मुख्य कारण है : वंशानुसंक्रमण तथा पर्यावरण के सम्बन्ध में हमारी गलत धारणायें। इसलिये, हम प्रमाण के रूप में उन्हीं उदाहरणों की विवेचना करेंगे, जो अक्सर सभी पक्षों द्वारा उद्धृत किये जाते हैं, और इस विषय की आवश्यकता पर बल देंगे कि ऐसे परीक्षणों को प्रमाण में रखने से पहले यह नितान्त आवश्यक है कि उनका पूर्णरूपेण वैज्ञानिक विश्लेषण कर लिया जाये। इनमें सबसे पहले हम नीग्रो तथा अमरीकनों के बुद्धि अंकों (scores) वाले तुलनात्मक परीक्षण को लेंगे।

बौद्धिक स्तर

प्रथम महायुद्ध के सैनिकों पर किये गये मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा यह पता लगाया गया कि अमेरिकन सैनिकों की औसत बौद्धिक आयु १३·१ वर्ष तथा नीग्रो सैनिकों की १०·४ वर्ष है। इसके पश्चात् भी दो एक परीक्षणों के आधार पर यह निर्णय दिया गया कि नीग्रो सैनिकों की अपेक्षा अमेरिकन सैनिकों की बौद्धिक आयु अधिक है। इस विषय में यह भी उल्लेखनीय है कि लॉस एञ्जिलस (Los Angeles) तथा न्यूयार्क (New York) में किए गये दो परीक्षणों द्वारा उपर्युक्त कथन की पुष्टि नहीं हो सकी।

अब इन परीक्षणों के सम्बन्ध में जिनके आधार पर यह निर्णय दिया गया कि नीग्रो सैनिकों की अपेक्षा अमेरिकन सैनिकों की औसत बौद्धिक आयु अधिक है दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं जिन पर भी विचार करना आवश्यक है। प्रथम तो यह कि दो विभिन्न प्रजाति समूह के विभिन्न वर्गों पर किए गये प्रयोगों के आधार पर उन दो प्रजातियों के बौद्धिक स्तर का निर्णय कर देना कहां तक तर्क-संगत है? साथ ही साथ, बौद्धिक स्तर मापने वाले प्रयोग कहाँ तक उचित (valid) हैं। स्टाडर्ड (G. D. Stoddard) के मतानुसार बौद्धिक आयु पता लगाने के परीक्षण व्यक्तियों की बौद्धिक गहराई के मापक नहीं हैं। वस्तुतः इन परीक्षणों के आधार पर केवल बौद्धिक रुचि (scholastic aptitude) का पता लगाया जा सकता है। इसके साथ ही दूसरी समस्या है सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (cultural background) की।

उपर्युक्त परीक्षणों में दो प्रजाति समूहों के दोनों वर्गों की साँस्कृतिक पृष्ठभूमि समान नहीं थी। साथ ही परीक्षण में इस कारण को बिल्कुल ही नजर-अन्दाज (neglect) कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में अभी

इतनी निष्पक्षता (impartiality) नहीं सम्भव है कि दो विभिन्न प्रजातियों के विभिन्न वर्गों के बौद्धिक स्तर का बिल्कुल ठीक पता लग सके।

यदि हम यह मान भी लें कि इन मुश्किलों को हल कर लिया गया तब दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि दोनों वर्गों के असमान पर्यावरण (differential environment) के प्रभाव को कैसे अलग किया जाय। कैसा भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण क्यों न हो, शिक्षा, अनुभव, पारिवारिक वातावरण, सामाजिक सुविधायें तथा ऐसे ही असमान कारकों के प्रभाव को कैसे अलग किया जायेगा। नीग्रो यदि परीक्षण में नीचे रहता है तो क्या यह सच नहीं है कि सामाजिक सुविधाओं की प्राप्ति में, शिक्षा के क्षेत्र में तथा जीवन के अनेक क्षेत्रों में जन्म से उसे नीची दृष्टि से देखा जाता है और जीवन की तमाम सुविधाओं में उसे पीछे रहना पड़ता है? क्या नीग्रो बच्चों को भी वही सब सुविधायें प्राप्त हैं जो अमेरिकन बच्चों को उपलब्ध हैं ? यदि नहीं, तो क्या इस असमान पर्यावरण का, जो कि केवल उसी के जीवन को नहीं बल्कि उसके पूर्वजों के जीवन को भी प्रभावित कर रहा है, उसके बौद्धिक विकास में हाथ नहीं है ?

इस असमान पर्यावरण का प्रभाव बहुत अधिक है जिसको नापने के लिए इन परीक्षणों में कोई व्यवस्था नहीं है। जहाँ पर पर्यावरण की यह असमानता कम है वहां पर नीग्रो बच्चों की बौद्धिक आयु भी अधिक पाई गई है। यह देखा गया है कि उत्तरी अमेरिका के नीग्रो बच्चों का I. Q. दक्षिण के नीग्रो बच्चों की अपेक्षा अधिक होता है। इसका कारण केवल यही है कि उत्तर में पर्यावरण की यह असमानता दक्षिण की अपेक्षा कम है। प्रोफेसर ऑटो क्लाइनबर्ग (Otto Klineberg) का कथन है कि प्रजाति-भेद के परीक्षण उसी आदर्श स्थिति में सफल होते हैं जबकि अवसर तथा भेदभाव जैसी असमानतायें न हों; अन्यथा ऐसे परीक्षणों के आधार पर प्रजातिगत विभिन्नताओं (racial differences) का ठीक पता नहीं लगाया जा सकता। उचित अवसर के अभाव में बौद्धिक परीक्षायें प्राप्ति (accomplishments) के नाप हैं, न कि मानसिक योग्यता के सम्बन्ध में जन्मजात प्रजातीय अन्तरों के।

हमारे जीवन में भूतकालीन पर्यावरण की तथा वर्तमान पर्यावरण की अमिट छाप है। क्या यह सम्भव है कि इस पर्यावरण के प्रभाव की गहराई को ठीक से नापा जा सके और इस प्रकार पर्यावरण तथा वंशानुसंक्रमण के प्रभाव की मात्रा को अलग-अलग जाना जा सके ? कुछ विद्वानों का कहना है कि यह नाप सम्भव है। अब हमें इस तथ्य पर विचार करना है। बौद्धिक परीक्षणों के विषय में तो हमने देखा कि केवल वंशानुसंक्रमण के प्रभाव का पता लगाने में वे असफल सिद्ध हुए। ऐसे परीक्षणों द्वारा किसी भी मानव समूह की वर्तमान बौद्धिक स्थिति का ही पता चलता है जिस पर कि वंशानुसंक्रमण तथा पर्यावरण दोनों का सम्मिलित प्रभाव होता है।

शारीरिक लक्षणों की नाप

चूंकि शारीरिक लक्षण मूर्त (concrete) होते हैं अतएव इनकी नाप बौद्धिक गुणों की नाप की अपेक्षा अधिक सुगम है। उदाहरण के लिए, जापानी सैनिकों के क़द के अध्ययन के फलस्वरूप यह कहा गया है कि जापानी सैनिकों की लम्बाई ५६ इन्च से ६९ इन्च और अमेरिकन सैनिकों की लम्बाई ६१ इन्च से ७५ इन्च तक होती है। इस प्रकार औसतन जापानी सैनिकों का क़द ६३·२ इन्च तथा अमेरिकन सैनिकों का क़द ६७·५१ इन्च होता है। इस प्रकार के अध्ययन से दो विभिन्न प्रजाति समूहों की वंशानुसंक्रमण सम्बन्धी भिन्नता का पता चलता है किन्तु यहाँ पर भी पर्यावरण के प्रभाव को दृष्टि में नहीं रखा गया जबकि यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य का शारीरिक विकास बहुत कुछ शारीरिक पोषण, भोजन, जलवायु तथा सामाजिक वातावरण पर निर्भर है।

यह तो एक सर्वमान्य सत्य है कि बच्चों को जब प्रतिकूल जलवायु में रहना पड़ता है या युद्ध, दुर्भिक्ष तथा अन्य आकस्मिक घटनाओं के कारण भोजन व्यवस्था में त्रुटि आ जाती है, तब इसका प्रभाव उनके शारीरिक विकास पर अवश्य पड़ता है जैसे वजन, क़द आदि। इसके विपरीत फ्रैन्ज बोआस (Franz Boas) के वैज्ञानिक परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि अमेरिका में पैदा हुए विदेशी प्रजाति के बच्चों के न केवल वज़न तथा क़द में ही वृद्धि हुई बल्कि सर की आकृति में भी अन्तर दृष्टिगत होते हैं। इसका एकमात्र कारण पर्यावरण का प्रभाव है। इसी प्रकार, शपीरो (Shapiro) ने यह दिखलाया कि हवाई (Hawaii) द्वीप में पैदा हुए जापानी जापान में उत्पन्न हुए अपने ही सम्बन्धियों की अपेक्षा लम्बे थे। ऐसे ही अन्य तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है कि प्रजातिगत तथा राष्ट्रगत भेद केवल वंशानुसंक्रमण पर ही निर्भर नहीं है, वरन् उस पर पर्यावरण का भी काफी प्रभाव होता है।

उपर्युक्त वर्णन से यह नहीं समझना चाहिए कि हम 'पर्यावरण' के पक्ष में बहस कर रहे हैं। यह निश्चित ही सत्य है कि वंशानुसंक्रमण के द्वारा विभिन्न वर्गों के शारीरिक लक्षण सम्बन्धी भेदों को समझा जा सकता है किन्तु यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि शारीरिक लक्षण सम्बन्धी विशेषतायें केवल एक ही कारक के द्वारा होती हैं। शीनफेल्ड (A. Sheinfeld) का कहना है कि गर्भाधान से लेकर युवावस्था तक न जाने कितने प्रकार के कारकों का प्रभाव 'क़द वाले वाहकाणु' (stature gene) पर पड़ता है; उदाहरण के लिए, माँ का स्वास्थ्य, ग्रन्थि सम्बन्धी खराबी (gland-disorders), खाने-पीने की आदतें, पेशा, व्यायाम, रहन-सहन का स्तर आदि। इस प्रकार के तमाम कारकों के प्रभाव की सच्ची माप इतनी सरल नहीं है।

दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मैण्डल (Mendel) के सिद्धान्त के अनुसार हम वंशानुसंक्रमण को पिछली कई पीढ़ियों (generations) से सम्बन्धित करते हैं जबकि पर्यावरण के अर्थ केवल 'वर्तमान पर्यावरण' के ही अर्थ में लेते हैं। वस्तुत: पर्यावरण के अर्थ केवल वर्तमान पर्यावरण के नहीं हैं वरन् उस पर्यावरण से हैं जो अनेक पीढ़ियों से निरन्तर हमारे प्रपितामह, पितामह तथा मित्रों को प्रभावित करता रहा है और हमें भी कर रहा है। इस बात के प्रमाण भी हैं कि अमेरिका के कालेज के छात्रों की लम्बाई तथा वजन ३०-४० वर्ष पहले के छात्रों की अपेक्षा अधिक है अथवा बढ़ गया है। अतएव हम पर्यावरण के प्रभाव की भी उपेक्षा नहीं कर सकते।

जब शारीरिक लक्षणों के निर्धारण में पर्यावरण तथा वंशानुसंक्रमण का प्रभाव इतना स्पष्ट है तो बौद्धिक तथा अन्य गुणों के सम्बन्ध में भी दोनों कारकों का संयुक्त प्रभाव निर्विवाद रूप से सत्य है।

प्रसिद्ध और नष्टधर्मी वंशों का अध्ययन

एडवर्ड (Edward) और जूक (Juke) परिवारों की, जिनका संकेत शुरू में किया जा चुका है, विवेचना करने पर यह और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा कि इस प्रकार के परीक्षणों का आधार या नींव ही गलत थी। अच्छे या बुरे वंशानुसंक्रमण के यह प्रमाण आज के समाजशास्त्रियों के लिए तथ्यहीन हैं। जूक परिवार का ही उदाहरण लीजिए। सन् १८७७ में एक जूक परिवार में १२०० सन्तानें थीं। इस 'जूक' का जन्म न्यूयार्क में १७२० में हुआ था जिसके १२०० वंशज थे। इनमें से ४४० बीमार या अपाहिज थे, ३१० अत्यन्त भिखारी थे तथा ३०० बाल्यकाल में ही मर गये थे। १३० व्यक्तियों में जिन्हें विभिन्न अपराधों में सजायें मिल चुकी थीं, ७ हत्यारे थे और औरतों में आधे से अधिक वेश्यायें थीं या ऐसे ही अनैतिक आचरण वाली थीं। १९१५ में इस परिवार की पुन: जाँच हुई। उस समय इस परिवार के सदस्यों की संख्या २७२० थी जिसमें से ६०० व्यक्ति जो जीवित थे बौद्धिक विकारों (mental defects) से पीड़ित थे। इसके विपरीत एडवर्ड परिवार का चित्र है जिसके सदस्यों की संख्या १९०० में १३९४ थी। उनमें से २९५ कालेज के स्नातक (graduates) थे, अन्य बहुत से व्यक्ति व्यापार तथा दूसरे पेशों में प्रतिभाशाली थे। इसी परिवार में १३ व्यक्ति विभिन्न विद्यालयों के प्रधान थे तथा एक व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका का उप-राष्ट्रपति भी था। इस परिवार के किसी भी व्यक्ति को किसी भी अपराध में सजा नहीं मिली थी।

इस प्रकार के विरोधी परिवारों के चित्र महत्वपूर्ण हैं अवश्य, किन्तु इसके आधार पर वंशानुसंक्रमण अथवा पर्यावरण के प्रभाव का निर्णय करना सर्वथा अनुचित है। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो यह है कि जूक और एडवर्ड परिवार वस्तुत: आठ-दस पीढ़ी पहले वाले परिवार नहीं रह गये थे। न जाने कितने प्रकार के 'रक्त-

समूह' (Blood groups) बाद में आकर इनमें मिले। परिवार को पुरानी पीढ़ी के किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के नाम से सम्बोधित करना एक दूसरी बात है और यह बहुत सम्भव है कि सात पीढ़ी पहले इस परिवार के व्यक्तियों में जो वाहकाणु (genes) हों वे इस परिवार के आज के व्यक्तियों में बिल्कुल ही न रह गए हों। इसके अतिरिक्त, किसी भी व्यक्ति की उत्पत्ति के समय माता और पिता दोनों के आधे-आधे पित्र्यसूत्र (chromosomes) नष्ट हो जाते हैं, और बाद में दूसरी सन्तान की उत्पत्ति में यह सम्भव नहीं कि पित्र्यसूत्रों (chromosomes) का वही समूह काम में आये। अस्तु, यह भी हो सकता है कि माता, पिता के सर्वश्रेष्ठ गुणों के वाहकाणु (genes) सन्तानों को न प्राप्त हो सकें और वे बिल्कुल ही निकम्मी तथा बुद्धिहीन हों।* एक ही परिवार के दो व्यक्तियों को लीजिये और उनके बीच भी भिन्नता का अध्ययन कीजिए, तब यह स्पष्ट होगा कि नये पर्यावरण के प्रभाव विभिन्नताओं की समस्या को और भी जटिल बना देते हैं। यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी भी परिवार के दो व्यक्ति बिल्कुल एक समान नहीं हो सकते। तब फिर जूक एवं एडवर्ड परिवार के सदस्य अपने सम्बन्धियों के समान थे, ऐसा कैसे माना जा सकता है।

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वंशानुसंक्रमण के प्रभाव की हम उपेक्षा कर रहे हैं। इस विवेचना का तात्पर्य केवल इतना है कि किसी एक कारक के प्रभावों का विश्लेषण करते समय हम दूसरे कारक के प्रभावों को भी दृष्टि में रखें। उपर्युक्त निर्देशित जूक एवं एडवर्ड परिवारों के सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात तो यह है कि वाहकाणुओं (genes) द्वारा प्राप्त किये गये मूल-भूत गुणों के अतिरिक्त पर्यावरण की वसीयत, जो उन्हें पुरानी पीढ़ियों से मिली, वह भी तो भिन्न थी। समृद्धि एवं सुविधा के सामाजिक वातावरण वाले एडवर्ड परिवार के समक्ष दरिद्रता एवं अभाव में पड़ने वाले जूक परिवार की मौलिक (fundamental) भिन्नता को भी तो दृष्टि में रखना चाहिए। पूर्व निश्चित धारणाओं के आधार पर हम जूक परिवार की सन्तानों की खोज पागलखाने में करते रहें और एडवर्ड परिवार की सन्तानों की राजघरानों में? यह पूर्व-निश्चित धारणा ही इस खोज को अवैज्ञानिक बना देती है।

जुड़वाँ बच्चों का अध्ययन

उपरोक्त वर्णित अनियन्त्रित परीक्षणों (uncontrolled experiments) के

* "Consequently the best traits may appear in parents and be lost in their offspring; genius in one ancestor may be replaced by incompetence, imbecility, or insanity in a descendant."
—E. G. Gonklin, Heredity and Environment (1923), 3 p. 2.

अतिरिक्त कुछ नियन्त्रित (controlled) परीक्षण भी किये गये हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है।

नियंत्रित परीक्षणों के लिये जुड़वाँ बच्चों को चुना गया और उन पर समान तथा भिन्न पर्यावरण का प्रभाव देखा गया। इस प्रकार के अध्ययन का श्रीगणेश गाल्टन द्वारा हुआ। पिछले पचास वर्षों में मनोवैज्ञानिकों, जीव वैज्ञानिकों तथा अन्य समाजशास्त्रियों ने जुड़वाँ बच्चों पर अनेक प्रयोग किये। जुड़वाँ बच्चों के सम्बन्ध में भी यह निर्णय किया गया कि एक ही योनि के जुड़वाँ बच्चों में अधिक समानता होती है, अपेक्षाकृत विपरीति योनि के जुड़वाँ बच्चों के। इसके अतिरिक्त यह भी पता चला कि जुड़वाँ बच्चों में चाहे वह विपरीति योनि के क्यों न हों, अन्य रक्त-सम्बन्धियों (siblings) से अधिक समानता होती है। दो जुड़वाँ बच्चों का पालन-पोषण एक समान वातावरण में करने पर, उन दोनों के शारीरिक तथा अन्य गुणों की समानता के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला गया कि पर्यावरण का प्रभाव नहीं के बराबर होता है। परन्तु निकट भूत (past) में जो मनोवैज्ञानिक परीक्षण हुये हैं उनके आधार पर इस प्रकार के एकांगी निर्णय नहीं दिये गये, अपितु जुड़वाँ बच्चों के समान पर्यावरण में पालन-पोषण होने के बावजूद भी समानता के साथ ही साथ जो विभिन्नता होती है उसका विश्लेषण किया गया। इसका यह निष्कर्ष निकला कि एक ही गर्भ से पैदा हुए दो जुड़वाँ बच्चों की समानता के साथ-साथ भिन्नता भी होती है और यदि दोनों को विभिन्न वातावरण में रखा जाय तब तो शारीरिक लक्षणों से लेकर बौद्धिक तथा अन्य वैयक्तिक गुणों में काफी भिन्नता होती है।

हाल ही में न्यूमैन (H.H. Newman), फ्रीमैन (F.N Freeman) तथा हॉलज़िजर (K.J. Holzinger) ने जुड़वाँ बच्चों के १९ जोड़ों को जन्म के बाद से ही विभिन्न पर्यावरण में रखा और उनका पालन-पोषण किया। उनके शारीरिक लक्षणों, बौद्धिक गुणों तथा व्यक्तित्व-सम्बन्धी भिन्नताओं का पर्यावरण के प्रभाव को दृष्टि में रखते हुये, विश्लेषण किया और ५० अन्य जुड़वाँ बच्चों के जोड़ों से, जो समान पर्यावरण में रखे गये थे, तुलनात्मक अध्ययन किया। फिर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि उन जुड़वाँ बच्चों में, जो भिन्न पर्यावरण में पाले गये थे, काफी असमानता थी, फिर भी देखा गया कि शारीरिक लक्षणों में पर्यावरण का प्रभाव कम था जब कि व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों तथा बौद्धिक क्षमता को पर्यावरण ने बहुत प्रभावित किया था। जुड़वाँ बच्चों के १९ जोड़ों की, जो अलग-अलग पाले गये थे, बौद्धिक क्षमता समान ही थी, पर ५ बच्चे जिनके पर्यावरण बिल्कुल ही भिन्न थे, उनकी बौद्धिक क्षमता में काफी भिन्नता थी। इन विचारकों ने इस परीक्षण के आधार पर

यह निष्कर्ष निकाला कि "वंशानुसंक्रमण में नवीन व्यक्तित्व की रचना की जो क्षमता है वह पर्यावरण में भी है।"*

समान पर्यावरण में पले माता-पिता की सन्तानों का अध्ययन

इसके अतिरिक्त विभिन्न वंशानुसंक्रमण के बच्चों का समान पर्यावरण में पालन करने के भी परीक्षण किये गये। फिर भी, यह स्पष्ट कर देना उचित है कि दो व्यक्तियों का पर्यावरण सब मानों में एक सा होना असम्भव है। बहुत कुछ बिल्कुल एक से पर्यावरण के उदाहरण हमें उन घटनाओं में मिलते हैं जिन में भिन्न वंशानुसंक्रमण के बच्चे बाल्यकाल के प्रारम्भ से ही धात्रेय घरों (foster homes) में पाले गये हैं।

मिस बर्क्स (Miss B.S. Burks) ने कुछ वर्ष पूर्व असली माता-पिता तथा धात्रे-माता पिता (foster parents) के बच्चों पर किये गये परीक्षण के आधार पर यह निर्णय दिया कि वंशानुसंक्रमण का प्रभाव ८० प्रतिशत तथा पर्यावरण का प्रभाव १७ प्रतिशत से लेकर २० प्रतिशत होता है। इस परीक्षण में सबसे महत्वपूर्ण कमी यह थी कि वंशानुसंक्रमण के प्रभाव को निश्चित तथा माप के योग्य (definite and measurable) मान कर पर्यावरण का प्रभाव निकाला गया था। पर्यावरण की जटिलता की ओर ध्यान न देते हुये उसने यह बताया कि पर्यावरण के अच्छा या बुरा होने से बौद्धिक क्षमता में लगभग २० प्रतिशत का अन्तर हो सकता है। फ्रीमैन (F. N. Freeman) ने भी इसी प्रकार परीक्षण के आधार पर यह बताया कि अच्छे परिवार में पोषित बच्चों की बौद्धिक तथा अन्य गुणों की क्षमता उनके असली माता पिता की बौद्धिक क्षमता से अधिक होती है। आयोवा (Iowa) विश्वविद्यालय (अमेरिका) द्वारा १५० बच्चों पर किये गये परीक्षण के आधार पर भी यह प्रमाणित हुआ है कि बच्चों की बौद्धिक क्षमता तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्य गुणों के विकास पर पारिवारिक तथा अन्य सामाजिक वातावरण का काफी प्रभाव होता है। उदाहरण के तौर पर इनमें से १६ बच्चों का बुद्धि-अंक (I. Q.) दो वर्ष के अन्दर ही ११६ हो गया जब कि इन बच्चों की माताओं का औसत बुद्धि-अंक (I. Q.) १७ था और उन्हें 'अस्वस्थ मस्तिष्क' करार दे दिया गया था।

इस दिशा में, भारतवर्ष में बालक रामू का उदाहरण नई गति प्रदान करता है। रामू जब छोटा था (लगभग दो वर्ष का), तभी एक दिन एक भेड़िया उसे उठा ले गया था। भाग्यवश उसने उसे अपना आहार बनाने के बजाय अपनी माँद में रख लिया और उसका पोषण भी करने लगा। लगभग १५ वर्ष बाद किसी प्रकार जब भेड़ियों के झुण्ड में उसे देखा गया तब उसकी आकृति तो मनुष्य की सी थी किन्तु

* "We feel in sympathy with Professor H. S. Jennings' dictum that what heredity can do environment can also do." Newman, Freeman, Holzinger, Twins : A Study of Heredity and Environment.

वह हाथ और पैर दोनों के सहारे पशुओं की भाँति चलता था। उसको पकड़कर अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ कि वह न कुछ बोल सकता था, न कुछ समझ ही सकता था। इन १५ वर्षों में उसने भेड़ियों की भाँति गुर्राना तथा दाँत दिखाना ही सीखा था। वह पूर्ण रूप से माँस भक्षी था। मनुष्य जाति के प्रति उसे उतनी ही उपेक्षा थी जितनी कि किसी भेड़िये को होती है।

भेड़िया बालक (wolfboy) रामू का उदाहरण हमारी पहेली काफी सरल बना देता है। उसका शारीरिक विकास निस्संदेह मनुष्य की ही भाँति हुआ था किन्तु अपने व्यवहार में, जो कि उसने मानव समाज से अलग भेड़ियों के समाज में रह कर सीखा था, सभी मानवोचित गुणों का अभाव था। बौद्धिक क्षमता में भी वह औसत पशुवर्ग से अधिक न था।

उपरोक्त परीक्षणों तथा रामू के उदाहरण को ध्यान में रखते हुए वंशानुसंक्रमण तथा पर्यावरण के व्यक्तित्व-विकास सम्बन्धी प्रभावों के विषय में एकांगी निर्णय देना सर्वथा असत्य एवं अवैधानिक है। सत्य तो यह है कि वंशानुसंक्रमण तथा पर्यावरण की मूलभूत जटिलता वैज्ञानिक परीक्षणों में इतनी बाधक है कि उसकी सांख्यिक (statistical) माप सम्भव नहीं है। किन्तु यदि हम पूर्व-निश्चित धारणाओं को अलग रखकर इस दिशा में किये गये समस्त परीक्षणों का विश्लेषण करें तो यही निष्कर्ष निकलता है कि दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं और एक की मूलभूत सत्ता के लिये दूसरा कारक वाँछनीय ही नहीं, आवश्यक है।

वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते

यह हमारे लिए अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कार्य होगा यदि हम यह प्रश्न करें कि वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण में से कौन अधिक महत्वपूर्ण है। हमारे जीवन की प्रत्येक बात (phenomenon) दोनों का ही फल है। दोनों ही प्रत्येक फल (result) के लिए आवश्यक हैं। इनमें से न तो कोई बिल्कुल ही निकाला जा सकता है और न कोई दूसरे से अलग किया जा सकता है। दोनों ही प्रत्येक स्थिति में अत्यन्त जटिल हैं। दोनों ही आदिकाल से प्रत्येक विशिष्ट स्थिति को उत्पन्न करने के लिए क्रियाशील रहे हैं। इसीलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि किन्हीं दो स्थितियों में पर्यावरण और वंशानुसंक्रमण का बिल्कुल ही एक सा योग है। इस अर्थ में प्रत्येक स्थिति उसी प्रकार अपूर्व (unique) है जैसे कि प्रत्येक मानव चेहरा हर दूसरे चेहरे से किसी न किसी माने में भिन्न है। जहाँ किसी फल (result) के लिये दो या अधिक कारक समान रूप से आवश्यक होते हैं, यह पूछना बिल्कुल निरर्थक है कि दोनों में से कौन अधिक महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में मैकाइवर और पेज प्रश्न करते हैं : "जिन्दगी के लिए भोजन अधिक आवश्यक है या स्वयं मनुष्य?

स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए अधिकारों की अपेक्षा प्रतिरोध अधिक आवश्यक है या कम ?"* जिस प्रकार इन प्रश्नों का उत्तर देना संभव नहीं है, उसी प्रकार यह पता लगाना भी असम्भव है कि वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण में कौन अधिक महत्वपूर्ण है ।

मैकाइवर और पेज ने कहा है कि "वंशानुसंक्रमण के अन्दर जीवन की सब सम्भव्यतायें अन्तर्निहित हैं, परन्तु उसकी सब यथार्थतायें पर्यावरण की दशाओं के अन्दर और अधीन ही जागृत होती हैं ।"†

यह सभी लोग भली भाँति जानते हैं कि आर्थिक दशा, जीवनयापन के ढंग, नये व्यवसायों आदि का प्रथाओं और मनोवृत्तियों पर कितना भीषण प्रभाव होता है । जब कोई व्यक्ति निर्धनता से ऐश्वर्य को प्राप्त होता है तब उसकी मनोवृत्तियों आदि पर विशेष प्रभाव पड़ता है । पश्चिमी सभ्यता में अनेक पिछड़े हुए देशों के सम्पूर्ण जीवन में भयंकर परिवर्तन हुआ है । इसी प्रकार के उदाहरणों से पर्यावरण और जीवन का सम्बन्ध समझा जा सकता है ।

इन परिवर्तनों के अध्ययन से हमें यह पता नहीं चल सकता कि वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण में से कौन अधिक महत्वपूर्ण है, परन्तु हम यह अवश्य जान सकते हैं कि क्यों यह दोनों महत्वपूर्ण हैं और इनका महत्व किस प्रकार प्रकट होता है । जब किसी स्थिति में एक नया तत्व शामिल कर लिया जाता है और उससे महान् परिवर्तन होता है, तो इस परिवर्तन का एकमात्र कारण यह नया तत्व नहीं होता है । किसी रासायनिक फॉरमूला (chemical formula) में जरा सा परिवर्तन करने से ही भोजन विष हो सकता है, परन्तु यह विभिन्न तत्वों का योग विषैला है, न कि यह तत्व अपने आप में । इसी प्रकार पर्यावरण और वंशानुसंक्रमण की घनिष्ठ एकता में जरा सा भी परिवर्तन कर देने से एक बिल्कुल ही नई स्थिति उत्पन्न हो जाती है, परन्तु इससे हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि पर्यावरण अधिक महत्वपूर्ण है । औद्योगिक युग में आविष्कार करने वाली योग्यता की सामाजिक माँग बढ़ने पर उन लोगों को प्रसिद्धि प्राप्त हो गई जिनको पहले जमाने में कोई भी न पूछता । सामाजिक मूल्य में अन्तर होने के ही कारण तो पूँजीवादी पद्धति के कारण

* "Is food more necessary than air for the sustenance of life ? Are the relations between men more essential than men themselves for the creation of society ? Are restraints more or less important than rights in the maintenance of what we call liberty ?"

—MacIver and Page, Society : An Introductory Analysis, p.95

† "Heredity—the germ cells—contains all the potentialities of life, but all its actualities are evoked within and under the conditions of environmnet."

ही छोटे-छोटे निर्धन परिवारों में जन्मे व्यक्ति अगाध सम्पत्ति जोड़ सकें; कार्नेगी और फोर्ड इसके उदाहरण हैं। यदि उनको यह अवसर ही न मिलता तो उनकी योग्यता बेकार ही रहती।

मैकाइवर और पेज ने ठीक ही कहा है "एक नयी सामाजिक स्थिति या सुअवसर किसी अपूर्व बुद्धि वाले व्यक्ति को अपनी शक्ति दिखाने का अवसर दे सकती है, परन्तु कितना भी अनुकूल संयोग किसी मूर्ख को अपूर्व बुद्धिवाला नहीं बना सकता।" दूसरी ओर, हमें यह भी सोचना चाहिए, जैसा कि वंशानुसंक्रमण के कुछ समर्थक सोचते हैं, कि पर्यावरण के कैसे भी प्रतिरोध के बावजूद भी अलौकिक बुद्धि वाला आगे बढ़ ही जायेगा।* यदि कुछ बुद्धिमान व्यक्ति अपने प्रतिकूल पर्यावरण के बावजूद भी जीवन में सफल हुए हैं, उन्होंने अपने पर्यावरण पर विजय प्राप्त की है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि असाधारण प्रतिभा वाला (genius) प्रत्येक व्यक्ति अपने पर्यावरण पर विजय प्राप्त कर ही लेगा।

अंत में हम यही कह सकते हैं कि वंशानुसंक्रमण वह गुण है जो कि किसी पर्यावरण में यथार्थता प्राप्त करता है। जीवन के सभी गुण वंशानुसंक्रमण में हैं, तथा गुणों का प्रकट होना पर्यावरण पर निर्भर है।† इस सिद्धान्त से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि जितने अधिक जन्मजात गुण किसी व्यक्ति में होते हैं, उतना ही अधिक अच्छा पर्यावरण उसे मिलना चाहिये, तभी अपने वास्तविक गुणों को प्रकट करने का अच्छा अवसर पायेगा।

---

* "A new social situation or a happy chance may give a genius the opportunity to reveal his power, but no amount of favourable conjuncture will turn a person of mediocre mentality into a genius. On the other hand, we must not assume, with some protagonists of heredity, that genius will make its way no matter what the environmental impediments may be."

MacIver and Page, op. cit , p. 96

† "Heredity is potentiality made actual within an environment. All the qualities of life are in the heredity, all the evocation of qualities depends on the environment" —MacIver and Page.

१६ सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण (Socio-cultural Environment)

मनुष्य दो प्रकार के पर्यावरण में रहता है—प्राकृतिक और सामाजिक-साँस्कृतिक। प्राकृतिक पर्यावरण में हम ऐसी वस्तुओं को शामिल करते हैं जैसे वायु, सूर्य, चन्द्रमा, वर्षा, नदी, पहाड़, आर्द्रता, मिट्टी, जलवायु जो मनुष्य के कार्यों से अप्रभावित हैं और बाहर से हम पर प्रभाव डालती हैं। दूसरी ओर एक ऐसा पर्यावरण हमें घेरे रहता और प्रभावित करता है जो स्वयं मनुष्यों द्वारा बनाया गया है। इसमें एक ओर तो वे सब भौतिक वस्तुयें हैं जिन्हें मनुष्य ने अपने उपभोग के लिये बनाया है—मेज, कुर्सी, पंखा, औजार, टेबिल लैम्प, रेडियो, रेलगाड़ी आदि। दूसरी ओर मनुष्य द्वारा बनाई गई अनेक अभौतिक वस्तुयें हैं जैसे भाषा, धर्म, रीति-रिवाज, कानून, ज्ञान, प्राद्योगिकी। यह सब मनुष्य-निर्मित भौतिक और अभौतिक वस्तुयें एक नकली पर्यावरण का निर्माण करती हैं जिन्हें हम संस्कृति कहते हैं। यह संस्कृति ही व्यक्ति का सामाजिक पर्यावरण है। मनुष्य पर सामाजिक पर्यावरण के प्रभाव को दिखाने से पहले हम पर्यावरण का अर्थ समझायेंगे।

पर्यावरण की परिभाषा (Definition of Environment)

रॉस ने कहा है : "पर्यावरण कोई भी बाहरी शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है।"* अर्थात् पर्यावरण वह समस्त वस्तुयें हैं, प्राकृतिक, मनुष्य द्वारा निर्मित भौतिक व अभौतिक वस्तुयें, जो एक प्राणी को चारों ओर से घेरे हुये हैं और अनेक प्रकार से प्रभावित करती हैं। एक प्राणी के रूप में आप अपनी कल्पना कीजिये। आपका जीवन असंख्य वस्तुओं से घिरा हुआ है और इन सबसे आपका जीवन प्रभावित है। वायु, धूप, वर्षा, पेड़, पौधे, मिट्टी, मेज, कुर्सी, धर्म, भाषा, प्रथा,

---

* "Environment is any external force which influences us."
—*E.J. Ross.*

बाजार, कॉलेज, किताबें, माता, पिता, घर, पड़ोस आदि अनगिनती प्राकृतिक और उत्प्राकृतिक, भौतिक और अभौतिक वस्तुयें बाहर से हमारे जीवन को प्रभावित करती हैं। यह सब व्यक्ति का पर्यावरण हैं।

सम्पूर्ण पर्यावरण का वर्गीकरण
(Classification of the total environment)

मैकाइवर और पेज ने कहा है कि पर्यावरण मनुष्य के अनुभव में एक जटिल सम्पूर्णता है (a complex totality in man's experience)। इसमें भौगोलिक पर्यावरण को एकदम सामाजिक पर्यावरण से अलग नहीं किया जा सकता। जिन खेतों या मैदानों को हम भौगोलिक पर्यावरण कहते हैं वह मनुष्य के लिये सम्पत्ति हैं, मकान उसके लिये घर हैं–सामाजिक और भौतिक पहलू एक दूसरे से गुथे हुये हैं। इसी प्रकार, संस्थायें और संगठन जिन्हें हम अन्दरूनी पर्यावरण कहते हैं बाहरी चीजों में भी दिखाई देते हैं। चर्च एक इमारत के रूप में दिखाई देती है परन्तु वह एक संस्था भी है; विवाह के भी भौतिक लक्षण हैं: अंगूठी, सिन्दूर, बिछुये आदि।

अपने अध्ययन के लिये हम सम्पूर्ण पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं में भेद अवश्य करते हैं, परन्तु वे हमारे अनुभव में एक साथ घुले मिले हैं। जब मनुष्य एक भौगोलिक क्षेत्र को एक देश का रूप दे देता है या भूमि के एक टुकड़े को अपना घर बताता है, जंगलों को साफ करता है और जोतता है, नदियों पर बाँध बाँधता है, सड़कें बनाता है, तो यह बताना मुश्किल हो जाता है कि कहां से प्राकृतिक पर्यावरण का अन्त हुआ। भौतिक वस्तुयें सामाजिक बातों का प्रतीक बन जाती हैं। उनमें मानव यादगारें, मानव परम्परायें, मानव मू ल्य जुड़ जाते हैं। वे सामाजिक संस्थाओं का बाहरी पहलू बन जाती हैं।

व्यक्ति और समूह के सम्पूर्ण पर्यावरण में केवल एक अन्तर है। जो कुछ भी वस्तुयें समूह का पर्यावरण हैं वह व्यक्ति का भी पर्यावरण हैं क्योंकि व्यक्ति समूह का सदस्य होता है। इसके अतिरिक्त स्वयं समूह भी व्यक्ति का पर्यावरण होता है। इसलिए, व्यक्ति और समूह को ध्यान में रखते हुये मैकाइवर और पेज ने पर्यावरण का निम्नलिखित ढंग से सामान्यीकरण (generalize) किया है।

(अ) भौगोलिक दशायें किसी समुदाय या अन्य सामाजिक समूहों और उनके दोनों सदस्यों दोनों के लिये पर्यावरण हैं।

(ब) संस्कृति या सामाजिक विरासत (heritage) किसी समुदाय या अन्य सामाजिक समूह और उसके सदस्यों के लिये पर्यावरण हैं।

(स) समुदाय या सामाजिक समूह अपने सदस्यों के लिए पर्यावरण हैं।

(द) समुदाय या विशाल समूह छोटे समूह के लिए पर्यावरण हैं।

इस प्रकार, यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण पर्यावरण के अन्दर हम भौगोलिक दशाओं, संस्कृति और समूहों या समुदायों को शामिल करते हैं।

लैण्डिस (Landis) ने सम्पूर्ण पर्यावरण को तीन भागों में बाँटा है :

(१) **सामाजिक पर्यावरण (Social Environment)**—यह मनुष्यों के सामाजिक सम्बन्धों का और मनुष्यों का पर्यावरण है जो मनुष्य को जन्म से मृत्यु तक घेरे रहता है।

(२) **साँस्कृतिक पर्यावरण (Cultural Environment)** — यह सामाजिक नियमों, रीतियों, संस्थाओं और यन्त्र आदि का पर्यावरण है जिससे मनुष्य अपने को स्वयं सदा घेरे रहता है, अर्थात् मनुष्य के व्यवहारों को सदैव प्रभावित एवं नियन्त्रित करते हैं।

(३) **प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment)**—भूमण्डल की सभी प्राकृतिक शक्तियाँ, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, नदी, वर्षा, भूचाल, बाढ़, वृक्ष आदि जिनके आधार पर सामाजिक नाटक की रूप रेखा बनती है।

हमारे लिए यही उचित होगा यदि हम केवल दो भागों में ही सम्पूर्ण पर्यावरण को विभाजित करें : भौगोलिक या प्राकृतिक, और सामाजिक पर्यावरण। गिलिन और गिलिन तथा अन्य समाजशास्त्रियों ने सामाजिक पर्यावरण को सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण के नाम से ही कहना अधिक उचित समझा है।

सामाजिक पर्यावरण
(Social Environment)

हम यह जानते हैं कि मनुष्य हमेशा समूहों में, अपने साथी मनुष्यों के साथ रहता हुआ पाया जाता है। इसलिये इन मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को नियमित करने के लिये कुछ नियमों की आवश्यकता होती है। मनुष्यों के लिये इन नियमों का सीखना और पालन करना आवश्यक होता है। दूसरे शब्दों में, समूहों के रहने के कारण मनुष्य ने एक 'नकली' (artificial) पर्यावरण का निर्माण किया है जिसमें व्यक्ति जन्म लेता है और जिसके साथ उसे सामंजस्य करना पड़ता है। यह सामंजस्य की प्रक्रिया, जो जन्म के साथ शुरू होती है और व्यक्ति के जीवन में काफी समय तक चलती रहती है, सामाजीकरण कहलाती है।

उपरोक्त नियमों के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्व भी होते हैं—संचय किया हुआ ज्ञान और कार्य करने की विधियाँ, भौतिक और अभौतिक वस्तुयें जिन्हें मनुष्य ने बनाया है, जिन्हें समूह के सदस्यों ने एक दूसरे को हस्तान्तरित किया और संचय किया है। इन सब वस्तुओं का योग सामाजिक पर्यावरण बनाता है जिसे संस्कृति भी कहते हैं।

संस्कृति मनुष्य का सामाजिक पर्यावरण है
(Culture as Man's Social Environment)

समाजशास्त्रियों ने संस्कृति को ही मनुष्य का सामाजिक पर्यावरण कहा है। आगे चल कर हम 'संस्कृति' की परिभाषा और व्याख्या करेंगे, और व्यक्ति और समूह पर उसके प्रभाव को दिखायेंगे।

कोई भी मानव समाज सभी बातों में एकरूप (homogeneous) नहीं होते। समूह का निर्माण करने वाले व्यक्तियों में आयु, योनि, निवास स्थान, व्यक्तित्व, रूप रंग, स्वभाव और स्वास्थ्य के आधार पर अन्तर होता है। इन अन्तरों के कारण स्वार्थों में अन्तर उत्पन्न होते हैं और स्वार्थों में संघर्ष की सम्भावना उत्पन्न होती है। यह अन्तर संघर्ष को जन्म देते हैं जो आगे चल कर व्यक्ति, समूह और मानव जाति को नष्ट कर सकते हैं यदि इन व्यक्तियों के बीच पारस्परिक सामंजस्य की प्रवृत्ति न पैदा की जाये। यह संस्कृति के द्वारा सम्भव होता है। क्योंकि मानव जीवन के लिये सामाजिक जीवन आवश्यक होता है, प्रत्येक समूह ने समूह के अन्दर शान्ति बनाये रखने के लिये नियमों, प्रथाओं या व्यवहार-प्रतिमानों का एक कुलक (set) बनाया है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने साथियों के साथ व्यवहार करने के लिये प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार, हमारे समाज में बूढ़े व्यक्तियों का आदर किया जाता है, रिश्तेदारों के साथ कुछ खास किस्म की घनिष्ठता दिखाई जाती है जो गैर-रिश्तेदारों के साथ नहीं दिखाई जाती; मित्रों को अनेक बातों की छूट होती है जो अपरिचितों को नहीं होती। इसके अतिरिक्त, कुछ ऐसी प्रथाओं और रूढ़ियों का समाज में उद्विकास होता है जो न केवल उसी समाज के भीतर सम्बन्धों को नियमित करती हैं बल्कि विदेशी समाजों के साथ सम्बन्धों को भी नियमित करती हैं।

प्रत्येक समाज अपने लिये एक सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण करता है। इस सम्बन्ध में प्रकृति का नियंत्रण करने के लिये किसी समूह द्वारा निर्मित मूर्त वस्तुओं को हम ले सकते हैं। उदाहरण के लिये मकानों के मामले में किसी समाज के लोग साल भर या कुछ महीनों के लिये नकली जलवायु का निर्माण कर सकते हैं; नकली जलवायु चकवी वन्यजाति के जाड़े के मकान के धुंयें से भरे अत्यन्त गर्म अन्दर के भाग से लेकर आधुनिक सभ्य समाजों के वातानुकूलित दफ्तर या मकान तक की भिन्न किस्म की जलवायु हो सकती है। कोई समाज पालतू पशुओं और पौधों से जंगलों का नकली वातावरण उत्पन्न कर सकता है जैसे कि जिन्दा अजायबघर (zoo) में होता है। भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव से बचने के लिये मनुष्य अनेक मशीनें और मकान बनाता है। जिन समूहों के पास हथियार,औजार, सैनिटरी

विधियाँ और दवाइयाँ हैं वे ऐसे अन्य समूहों से स्पर्धा में मज़े में रहते हैं जिनके पास यह वस्तुयें नहीं हैं। यह सब नकली दशायें जिनको मनुष्य ने बनाया है, प्रथाओं और परम्पराओं के साथ मिल कर सामाजिक-साँस्कृतिक पर्यावरण बनाती हैं। इस पर्यावरण के साथ व्यक्ति और समूह के व्यवहार का सामंजस्य होना आवश्यक होता है।

मानव सामंजस्य में साँस्कृतिक पर्यावरण के एक अतिरिक्त पहलू का भी विशेष महत्व है। यह अलौकिक (supernatural) पर्यावरण है। अलौकिक के बारे में जो भी विचार, धारणायें और भावनायें किसी मानव समूह की होती हैं वह सांस्कृतिक होती हैं और एक समूह से दूसरे समूह में भिन्न होती हैं। यह सीखने के द्वारा प्राप्त होती हैं। समाजशास्त्र अलौकिक शक्तियों की सच्ची प्रकृति को बताने में या वैज्ञानिक ढंग से यह कहने को कि वह होती भी है या नहीं, असमर्थ हैं परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सभी समाजों में अनेक मानव व्यवहार "अलौकिक शक्तियों में विश्वास" से प्रभावित होते हैं।

संस्कृति (Culture)

संस्कृति अंग्रेजी शब्द 'culture' का हिन्दी रूपान्तर है जो लैटिन भाषा के 'cultura' शब्द से निकला है। जर्मन शब्द 'Kultur' का जो कि लैटिन 'cultura' से निकला है, अक्सर वही अर्थ लगाया जाता है जो कि हम संस्कृति शब्द से समझते हैं।

संस्कृति की छाया-मात्र पशु-समाज में भी पायी जा सकती है। परन्तु क्योंकि किसी पशु-समूह के पास जुबानी भाषा (verbal language) नहीं होती, जो कि संस्कृति के विस्तार और हस्तान्तरण के लिए आवश्यक है, उनकी संस्कृति, यदि होती भी है, अविचारणीय है।* मानव गुण के रूप में संस्कृति की उत्पत्ति का भेद यह है कि मनुष्य के पास अनुभव से सीखने और अपनी सीखी हुई बातों को प्रतीकों (symbols) के द्वारा, जिनमें भाषा मुख्य है, दूसरों को बतलाने की योग्यता अधिक है। खोज और आविष्कार मनुष्य की सीख (learning) के अंग हैं और शिक्षा और सीख के द्वारा इन वस्तुओं के एकत्रीकरण और हस्तान्तरण से ही प्रत्येक मानव समूह की एक अलग संस्कृति बनती है। †

मनुष्य के सीखे हुए व्यवहार (learned behaviour) को हम संस्कृति कहते हैं। हम सब भली-भाँति यह जानते हैं कि मनुष्य कुछ सेन्द्रिय (organic)

---

* Charles A. Ellwood, Dictionary of Sociology, edited by Fairchild, p. 80.

† Ibid.

आवश्यकताओं—जैसे भोजन, वस्त्र, यौन और निवास—को लिये हुये जन्म लेता है। इन सेन्द्रिय (organic) या मौलिक (fundamental) आवश्यकताओं के फलस्वरूप मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक अतिसेन्द्रिय (superorganic) ढाँचा बनाया है जिसको कि हम संस्कृति कहते हैं।

मनुष्य दो प्रकार के पर्यावरण में रहता है और पैतृक गुण (inheritance) से प्राप्त करने के उसके पास दो साधन हैं। यह दोनों सत्य मनुष्य को अन्य पशुओं से अलग करते हैं और सामाजिक प्राणी की भाँति रहने योग्य बनाते हैं। जहाँ तक पर्यावरणों का सम्बन्ध है मनुष्य अपने को प्राकृतिक पर्यावरण के अनुकूल बनाता है। मनुष्य उन साधनों और गुणों को कुलक्रम से प्राप्त (inherit) करता है जिनके द्वारा वह दो प्रकार के पर्यावरणों में दो प्रकार से रहने योग्य बनता है। यह जीवाणुओं (germ plasm) और उस सामाजिक समूह के द्वारा ही सम्भव है जिसमें वह जन्म लेता है। जीवाणुओं (germ plasm) के द्वारा वह उन शारीरिक गुणों को कुलक्रम से प्राप्त करता है जिनके द्वारा सामंजस्य में वह सफल अथवा असफल रहता है। इन शारीरिक गुणों के अतिरिक्त वह उपकरण (tools), विधियाँ, प्रथायें विचार, मूल्य—जो जीवन में आवश्यक हैं—उन मनुष्यों से प्राप्त करता है जो उससे पहले रहते थे। इसलिये इन गुणों के समन्वय (combination) को सामाजिक विरासत (social heritage) भी कहते हैं। यह भौतिक पदार्थ तथा विचार एक अप्राकृतिक पर्यावरण (artificial environment) हैं जिसको मनुष्य ने अपने लिये बनाया है और जिसके अनुकूल मनुष्यों को अपने को बनाना उतना ही आवश्यक है जितना प्राकृतिक पर्यावरण के अनुकूल। मनुष्य द्वारा बनाये गये इस पर्यावरण को ही सामाजिक वैज्ञानिक 'संस्कृति' कहते हैं।

संस्कृति और प्रकृति, अथवा अप्राकृतिक और प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर की कोई स्पष्ट रेखा नहीं है।* इसके विपरीत वे दोनों एक दूसरे से मिल जाते हैं। किसी वृक्ष को प्राकृतिक पर्यावरण का ही एक भाग कहा जाता है; परन्तु यदि उस वृक्ष की भिन्नता को मनुष्य खाद आदि देकर समाप्त कर देता है अथवा उसकी वास्तविक जगह से दूर उसको लगाया जाता है अथवा यदि उसमें कोई रहस्यमय गुण लगा दिया जाता है जैसे कि उसे किसी प्रेतात्मा का निवास स्थान बताया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक प्राकृतिक वस्तु नहीं है बल्कि एक मनुष्य निर्मित वस्तु है।† इसी प्रकार से जंगल में पड़ा हुआ कोई पत्थर प्रकृति का एक भाग है, परन्तु उसी को उठाने और हथियार की तरह प्रयोग करने से वह एक उपकरण

---

* An Introduction to Sociology, Groves and Moore p. 118

† Ibid, p. 819.

(tool) बन जाता है जिससे मनुष्य अनेक उद्देश्यों की पूर्ति करता है। इस प्रकर हम दो प्रकार की संस्कृति से परिचित होते हैं—भौतिक तथा अभौतिक। अभौतिक संस्कृति में हमारे विचार, रीति-रिवाज़ आदि आते है।

संस्कृति, चाहे वह भौतिक अथवा अभौतिक हो, मानव अनुभवों की परिचायक होती है। यह मानव अन्त:क्रियाओं का ही फल है और हर जगह पायी जाती है जहाँ कि सामाजिक समूह पाये जाते हैं। जहाँ कभी भी मनुष्य मिलते हैं और उनमें अन्त:क्रियायें होती हैं वे अपने अनुभव से विचार, भावनाएँ, आविष्कार, संगठन एकत्रित करते हैं जो कि वे अपने पड़ोसियों को भी देते हैं और जिनका वे अपने सामाजिक जीवन में प्रयोग करते हैं। यह प्रक्रिया तब से चली आ रही है जब से कि मनुष्य एक दूसरे के पास रहे हैं और इसका फल यह हुआ है कि हमारे पास एक बड़ी भारी संस्कृति एकत्रित हो गई है जिसको एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जाता है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि संस्कृति से तात्पर्य रहन-सहन का ढंग, विचार, भावनाएँ, दर्शनशास्त्र, उद्योग के भौतिक पदार्थ से है—समूह द्वारा इस्तेमाल होने वाली प्रत्येक वस्तु से है चाहे वह उस समूह द्वारा ही उत्पन्न की गई हो या दूसरे समूहों से प्राप्त की गई हो। दूसरे शब्दों में संस्कृति एक ऐसी वस्तु है जिसके अन्दर वह सब कुछ सम्मिलित है जो हम समाज के सदस्यों के रूप में सोचते, करते और रखते हैं।

अनेक आधुनिक समाजशास्त्रियों ने संस्कृति की परिभाषा देते हुए भौतिक तत्वों को संस्कृति में सम्मिलित करने से इन्कार कर दिया है। वे टाइलर द्वारा दी गई परिभाषा को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं जिन्होंने कहा था कि संस्कृति वह गूढ़ पूर्णता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नीति, कानून, प्रथा और अन्य योग्यतायें (capabilities) शामिल हैं जो समाज के सदस्य के रूप में व्यक्ति प्राप्त करता है।* इस प्रकार, संस्कृति से तात्पर्य जीवित रहने और मरने के, भाववाचक (abstract) प्रतिमानों से है।† यह भाववाचक प्रतिमान सांस्कृतिक इस हद तक हैं कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में वे सामाजिक अन्त:क्रिया में सीखे जाते हैं और इस हद तक कि वे दो या अधिक व्यक्तियों के सामान्य विचार-विनिमय का एक भाग हैं।

संस्कृति इस अर्थ में भाववाचक (abstract) है कि यह व्यवहार और व्यवहार के फल में प्रकट होती है, परन्तु न तो यह स्वयं व्यवहार है, न उसके

* "That complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, laws, custom and other capabilities of man as a member of society."—Tylor.

† Culture consists of abstract patterns of and for living and dying.

भौतिक फल ।* इस प्रकार, काफी हद तक मानव व्यवहार साँस्कृतिक है, परन्तु वह स्वयं संस्कृति नहीं है । वह रासायनिक (chemical), शारीरिक, उत्पत्ति सम्बन्धी (genetic), और शरीर शास्त्रीय (physiological) भी है अर्थात् इन बातों से भी प्रभावित होता है, न कि सिर्फ संस्कृति से ।

क्या मानव व्यवहार के फल संस्कृति हैं ? नहीं । अनेक समाज-शास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने भौतिक संस्कृति और अभौतिक संस्कृति में भेद करने की चेष्टा की है । इन लेखकों के विचार में, भौतिक संस्कृति उन स्पर्शनीय (tangible) वस्तुओं का योग है जो कुछ हद तक मानव द्वारा निर्मित हुई हैं—ऐसी वस्तुयें, जिनको artifact या साँस्कृतिक वस्तुयें कहते हैं जैसे कि मकान, मकान का फर्नीचर, उपकरण और कला कृतियां । यह सत्य नहीं है । व्यवहार की भाँति ही यह भौतिक वस्तुयें भी वास्तव में सांस्कृतिक हैं, संस्कृति से प्रभावित हैं; परन्तु ठोस पदार्थ के रूप में संस्कृति का अंग नहीं हैं ।

भौतिक वस्तुओं को संस्कृति में शामिल न करने के अनेक कारण दिए गए हैं । पहला तो यह है कि स्वयं किसी भौतिक वस्तु को सीखा नहीं जा सकता । उस वस्तु के बारे में, या उसमें प्रकट होने वाली कुछ बातों को सीखा जा सकता है परन्तु स्वयं उस पदार्थ को नहीं सीखा जा सकता । एक मोटर गाड़ी एक साँस्कृतिक पदार्थ है । उसका साँस्कृतिक पहलू मानव मस्तिष्क में पाया जाता है–ज्ञान के रूप में–और छुआ नहीं जा सकता । इस साँस्कृतिक पहलू में इस बात का ज्ञान शामिल है कि उसे कैसे बनाया जाय, किस प्रकार चलाया जाय और किस उद्देश्य से चलाया जाय । ज्ञान अभौतिक है । एक भौतिक पदार्थ के रूप में मोटर गाड़ी का साँस्कृतिक अर्थ जंगली लोगों के लिये कुछ भी न होगा यदि वह उनके बीच में छोड़ दी जाए, जिन्होंने पहले उसे कभी भी नहीं देखा है ।

दूसरी बात इस सम्बन्ध में यह है कि यदि मनुष्य के द्वारा ढाली गई (moulded) प्रत्येक वस्तु या संस्कृति का रूप प्रकट करने वाली हर वस्तु स्वयं भी संस्कृति का भाग है तो हमें मनुष्य को भी संस्कृति का अंग मानना पड़ेगा क्योंकि काफी हद तक वह भी अन्य मनुष्यों द्वारा ढाला जाता है, उसे सिखा पढ़ाकर बदला जाता है ।

भौतिक वस्तुओं को संस्कृति का भाग न मानने का तीसरा कारण यह है कि यद्यपि इन वस्तुओं को सामाजिक ढंग से हस्तांतरित किया जा सकता है–उदाहरण के लिए, भेंट, अदला-बदली, छीन लेना, जबरदस्ती या वसीयतनामा के द्वारा; फिर

---

* Culture is abstract in the sense that it is manifested in behaviour and in the results of behaviour but is neither the behaviour itself nor the tangible results.

भी उसके वास्तविक (original) मालिक को नुकसान पहुँचाये बगैर यह सम्भव नहीं है। यदि हम अपनी मेज किसी अन्य व्यक्ति को भेंट में दे दें तो स्वयं उससे वंचित हो जायेंगे। यदि अपना ज्ञान, रीति-रिवाज, नीति आदि किसी को देते हैं तो हम स्वयं उससे वंचित नहीं होते। वह हमारे पास भी रह जाती है। यह सभी अभौतिक वस्तुओं के लिये सत्य है।

इसके अतिरिक्त, भौतिक वस्तु को बाँटे (divide) बगैर सभी सदस्यों का समान रूप से उसका भागीदार होना (share) सम्भव नहीं है। समाज के सभी सदस्य, उदाहरण के लिये, कानून या किसी गीत का समान रूप से पालन या प्रयोग कर सकते हैं परन्तु किसी एक भौतिक वस्तु के बारे में यह बात लागू नहीं होती है।

उपर्युक्त कारणों से अनेक आधुनिक समाजशास्त्री भौतिक पदार्थों को संस्कृति का भाग मानने के पक्ष में नहीं हैं।

संस्कृति की सबसे छोटी और सबसे सुन्दर परिभाषा बियरस्टैड ने दी है : "संस्कृति उन वस्तुओं का जटिल संग्रह है जो समाज के सदस्यों के रूप में हम सोचते, करते और रखते हैं।" *इस परिभाषा में संस्कृति के भौतिक और अभौतिक दोनों ही पहलुओं पर विचार किया गया है और इसके अन्दर उपकरण, कला, विश्वास, रीति-रिवाज, प्रविधियाँ (techniques) आदि सभी वस्तुयें आ जाती हैं।

संस्कृति की परिभाषाओं के आधार पर हम संस्कृति के सम्बन्ध में अपनी धारणा बना लेते हैं। इस प्रकार, संस्कृति : (i) सामाजिक अन्तःक्रिया की मानव उपज (human product) है; (ii) जैविकीय और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज-स्वीकृत व्यवहार आदर्श प्रस्तुत करती है; (iii) यह धीरे-धीरे संचित होती है, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाती है; (iv) अपने लाक्षणिक गुण (symbolic quality) के कारण मनुष्यों के लिये अर्थपूर्ण है; (v) किसी विशेष समाज में अपने विकास-काल में प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा सीखी जाती है; (vi) इसलिये व्यक्तित्व के निर्माण में मौलिक है; और (vii) इसके अन्दर भौतिक (उपकरण, उपकरणों से बनी सभी वस्तुओं) और अभौतिक (विचार, विश्वास, प्रविधियाँ, रीति-रिवाज, व्यवहार-आदर्श) दोनों ही प्रकार के तत्व पाये जाते हैं।

संस्कृति के तत्व

साधारण तौर पर हम संस्कृति को भौतिक और अभौतिक, दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। भौतिक संस्कृति के अन्दर उपकरण, मोटरगाड़ी, जूते, पेन्सिल, डेस्क, रेडियो, मकान, रेलगाड़ी, बम जैसी सभी वस्तुयें आ जाती हैं।

* "Culture is the complex whole that consists of every thing we think and do and have as members of society." —The Social Order, 1957, p, 196.

अभौतिक संस्कृति में हमारे विश्वास, रीति-रिवाज, व्यवहार-आदर्श, विधियाँ, कानून, मनोवृत्तियाँ, क्षमतायें (skills), ज्ञान (bodies of knowledge) आदि आ जाते हैं। परन्तु यह विभाजन संतोषजनक नहीं है क्योंकि इसका अर्थ यह हो सकता है कि विचार और व्यवहार-आदर्शों के बिना भी भौतिक पदार्थ अर्थ-पूर्ण और उपयोगी हैं। वास्तव में, जैसे कि किम्बल यंग (Kimball Young) ने कहा है, संस्कृति का निचोड़ (essence) मनोवैज्ञानिक है। उसका स्थायी रहना और कार्य करना मानव विचार और क्रिया पर निर्भर करता है न कि केवल किसी उपकरण या मशीन के होने पर।

लिंटन ने संस्कृति को तीन भागों में विभाजित किया है—मौलिक सर्वमान्य तत्व (universals), वैकल्पिक तत्व (alternatives) और विशिष्ट (specialities)।* मौलिक सार्वमान्य तत्व से लिंटन का अर्थ संस्कृति के उन गुणों या विशेषताओं से है जिनको सामान्य रूप से सर्वसाधारण स्वीकार करते हैं और जो समाज में आवश्यक हैं जैसे कि राज्य के नियम या कार्यप्रणालियाँ, आर्थिक और वैज्ञानिक पद्धतियाँ। वैकल्पिक तत्व (alternatives) वे क्रियायें हैं जिनमें व्यक्तियों को चुनाव का अधिकार है। उदाहरण के लिये, वैकल्पिक तत्व एक ही समाज के अन्दर विभिन्न वर्गों की आवश्यकताओं पर आश्रित रहते हैं। संस्कृति के तीसरे पक्ष में उसके विशिष्ट तत्व (specialities) आते हैं। यह कुछ कार्यों या व्यवसायों की विशिष्ट विशेषतायें है। चिकित्सक (physician) के पास एक विशेष ज्ञान और कार्य-क्षमता ही नहीं होती बल्कि एक व्यावसायिक भाषा (professional vocabulary) और मूल्य-पद्धति (value system) भी होती है, जिसके आधार पर वह मिनिस्टर, वकील और इन्जीनियर से अलग किया जा सकता है।

बीयरस्टैड (Bierstedt) ने संस्कृति के तीन भाग बतलाये हैं। विचार (ideas), व्यवहार आदर्श (norms), और भौतिक पदार्थ (material)। इनमें से विचार और व्यवहार-आदर्श दोनों ही अभौतिक संस्कृति के अंग हैं परन्तु इन दोनों में हम इसलिये भेद करते हैं क्योंकि यह अलग-अलग कार्य करते और भिन्न प्रकार से क्रियान्वित होते हैं।

(i) **विचार (ideas)**—यदि किसी समाज के लोगों के भौतिक पदार्थों को गिनना असम्भव है, तो उसी प्रकार उनके विचारों को गिनना भी असम्भव है। मनुष्यों और समाजों के पास सही और मिथ्या दोनों प्रकार के विचार होते हैं और जो विचार एक समाज में सही मालूम पड़ता है, वही दूसरे समाज में मिथ्या भी हो सकता है। समाजशास्त्री विचारों की सत्यता अथवा असत्यता में रुचि नहीं

* Linton : The Study of Man (1936), Chap. 16.

रखता है परन्तु इस सत्य में कि कुछ विचार प्रत्येक समाज में प्रचलित अवश्य होते हैं जो कि वहाँ के लोगों के रहन-सहन के विशिष्ट ढंगों को निश्चित करते हैं।

ग्रीक लोग दोनों लिंगों के अनेक देवताओं में विश्वास करते थे जो कि माऊँट ओलिम्पस में रहते थे और मनुष्यों की भाँति प्रेम करते और हंसते थे। मैसाचूसेट्स में जिन तीर्थ यात्रियों ने पहली अंग्रेजी कालोनी स्थापित की वे एक पुरुष देवता में विश्वास करते थे जो कि आनन्द मंगल के विरुद्ध था और जो कि विशेषकर लोगों को समय अथवा धन अपव्यय करते हुए नहीं देख सकता था। ऐस्किमो अनेक देवताओं में विश्वास करते हैं, परन्तु उनमें से मुख्य एक देवी है जिसको वे सेदना के नाम से पुकारते हैं, जो समुद्र के मार्ग में अपने पिता के साथ रहती है और जब अपने भक्तों से प्रसन्न होती है तो देखती है कि उन्हें भोजन का अभाव न हो। रूस निवासी किसी देवता में विश्वास नहीं करते हैं।

इसी प्रकार हम भिन्न-भिन्न प्रकार के राजनैतिक विचारों का संग्रह पाते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि उनके मुखियाओं या राजाओं को देवताओं ने उन पर शासन करने भेजा है। कुछ लोगों का विश्वास है कि सबसे अधिक शक्तिशाली अथवा सबसे अधिक धनी, अथवा कपटी, अथवा बुद्धिमान व्यक्ति को ही शासक होना चाहिए। कुछ लोग किसी छोटे से समूह को पसंद करते हैं जो कि शक्ति प्राप्त कर लेता है, कुछ बहुमत का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार में विश्वास करते हैं। कुछ वंशानुसंक्रमणीय (hereditary) सिद्धान्त को भी स्वीकार किये जाते हैं और राज-परिवार को भी महत्व देते हैं।

कुछ समाजों के लोग यही नहीं जानते कि यौन-सम्बन्ध और संतानोत्पत्ति में भी कोई सम्बन्ध है। कुछ लोग समझते हैं कि जुड़वाँ बच्चों की उत्पत्ति मां के व्यभिचार का द्योतक है। इसी प्रकार अनेक समाजों में लोग जादू टोने, झाड़-फूंक में विश्वास करते हैं।

इसी प्रकार, प्रत्येक समाज के सदस्यों के अलग-अलग और अनगिनती विचार और विश्वास हुआ करते हैं जिनके आधार पर एक समाज को हम अन्य समाजों से अलग कर सकते हैं।

(ii) **व्यवहार-आदर्श (norms)**—यहाँ हमारा तात्पर्य सोचने के ढंग से नहीं, करने के ढंग से है। बहुत सी चीजें जो हम समाज के सदस्य के रूप में करते हैं और बहुत सी चीजें जो हम करने से इन्कार करते हैं, साँस्कृतिक होती हैं। हमारे व्यवहार कुछ स्तरों (standards) के अनुकूल होते हैं, उन स्तरों के अनुकूल जो उस समाज के द्वारा उचित ठहराये जाते हैं जिनमें हम रहते हैं। व्यवहार-आदर्शों के बिना सामाजिक जीवन असम्भव हो जायेगा और समाज में शान्ति और संगठन का नाश हो जायेगा। व्यवहार-आदर्शों की अनुपस्थिति में हम यह नहीं जान सकते

कि किसी नये परिचित से हाथ मिलाना चाहिए, या उससे नाक रगड़ना चाहिए, या उसकी अवज्ञा करनी चाहिए, या उसे धराशायी कर देना चाहिए।* समाज स्वयं एक प्रकार का संगठन है, जो कि व्यवहार-आदर्शों की उपस्थिति के कारण सम्भव है, और व्यवहार-आदर्श ही सामाजिक संगठन का निचोड़ है।†

उदाहरण के लिये, सिनेमा देखने के लिये लोग टिकट के दाम देते हैं, कुछ दरवाजों से अन्दर जाते हैं, और दूसरे दरवाजों से बाहर निकलते हैं। पुरुष न कि स्त्रियाँ, टिकट खरीदते हैं। टिकट भी टिकट बेचने वालों के द्वारा ही बेचे जाते हैं, न कि पुलिस वालों या मिठाई वालों के द्वारा।

इसी प्रकार समाज में सभी स्थितियों में कुछ नियमों का पालन किया जाता है और यह नियम ही समाज के व्यवहार-आदर्श (norms) हैं। व्यवहार आदर्शों के अन्दर तीन बातें आती हैं–नियम (rules), आशायें (expectations) और समाज स्वीकृत कार्य-पद्धतियाँ (standardized procedures)। संक्षेप में, उन सभी स्थितियों के कार्य करने की विधियाँ जिनका हम सामना करते हैं और जिनमें हम भाग लेते हैं।

अब हम एक दूसरे व्यवहार-आदर्श (norms) पर विचार करेंगे, जो कि एक कार्यपद्धति (procedure) है न कि एक नियम। मान लीजिये उदाहरण के लिये कि हमें किसी ऐसे व्यक्ति को संदेश भेजना है जो कि पास में है लेकिन हमारी आवाज और दृष्टि से परे है। इस कार्य को करने के अनेक ढंग हो सकते हैं। हम बाहर जा सकते हैं और इस व्यक्ति का पता लगा कर जबानी उसे संदेश दे सकते हैं। हम आग लगाकर कुछ धूम्र–संकेत (smoke singals) भेज सकते हैं। हम नगाड़ा बजा सकते हैं यदि यह ढंग पहले से निश्चित हो चुका है। हम एक लड़का किराये पर लेकर संदेश भेजने के काम में लगा सकते हैं। हमारे किसी जटिल समाजों (complex societies) में शायद ऐसा कहीं भी नहीं किया जायेगा। इस बात की सम्भावना अधिक है कि हम टेलीफोन करदें या पत्र लिख दें। टेलीफोन करना, पत्र लिखना, इस प्रकार, हमारे समाज में संदेशवाहन (communication) के व्यवहार-आदर्श (norms) हैं। इन चीजों को हम बिना सोच-विचार के स्वीकार करते हैं क्योंकि यह स्वीकृत कार्य-पद्धतियाँ (standardized procedures) हैं।

इसी प्रकार कार्य करने के अन्य व्यवहार-आदर्श (norms) भी हैं। उदाहरण के लिये जब हम कोई पत्र लिखते हैं तो सबसे पहले तारीख और अपना

---

* Bierstedt, The Social Order. 1957, p, 1941.

† "Society itself is a kind of order, which is made possible by the presencc of norms and norms constitute the essence of social organization." Robert Bierstedt, The Social Order, p. 141

स्थान लिखते हैं। पत्र शुरू करने के पहले प्रिय या dear शब्द का प्रयोग करते हैं। यह 'प्रिय' या dear शब्द घनिष्ठता या स्नेह के सूचक नहीं हैं। जिनको हम पहले से नहीं जानते हैं या जिन्हें हम नापसन्द करते हैं, उनके लिये भी इन शब्दों का हम प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार, स्वागत करने, खाने-पीने, एक समय में एक ही पत्नी से विवाह करने, भाषा बोलने, बाएँ से दाएँ तरफ लिखने, परीक्षाओं में बैठने, कपड़े पहनने आदि के व्यवहार-आदर्श (norms) होते हैं।

यह स्पष्ट हो जाता है कि एक समाज में व्यवहार आदर्श दूसरे समाज के व्यवहार-आदर्शों से भिन्न होते हैं। जब हम किसी व्यक्ति का अपने समाज में स्वागत करते हैं तो हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं या हाथ मिलाते हैं, परन्तु आपस में नाक नहीं रगड़ते हैं। कुछ लोग साँप, बिच्छू, घोंघा खाते हैं; दूसरे सब्जी आदि खाते हैं। कुछ लोग पीने के लिए जल का प्रयोग करते हैं; दूसरे सिर्फ धोने के लिये। कुछ लोग अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं; दूसरे उड़िया का। कुछ लोग गोमांस खाते हैं; कुछ लोग गाय को पवित्र वस्तु समझते हैं और उसके किसी भी पदार्थ को धर्म के विचार से अखाद्य समझते हैं।

(iii) **भौतिक पदार्थ (material)**—प्रत्येक समाज में नियमों के साथ-साथ कुछ भौतिक पदार्थ भी होते हैं। इन भौतिक पदार्थों में मकान, मशीन, सड़कें, पुल, गाड़ियाँ, बर्तन, हथियार, औजार, दवाइयाँ आदि होती हैं।

संस्कृति*

विचार (Ideas)	व्यवहार-आदर्श (Norms)	भौतिक पदार्थ (Material)
वैज्ञानिक सत्य (Scientific truths)	कानून (Laws)	मशीन (Machines)
धार्मिक विश्वास (Religious beliefs)	स्टैट्यूट्स (Statutes)	उपकरण (Tools)
पुराण कथा (Myths)	नियम (Rules)	बर्तन (Utensils)
उपाख्यान (Legends)	रेगुलेशन (Regulation)	इमारतें (Building)
साहित्य (Literature)	प्रथायें (Customs)	सड़कें (Roads)

* Robert Bierstedt, The Social Order, p. 148, 178,

अन्ध-विश्वास
(Superstitions)
सूत्र
(Aphorisms)
लोकोक्ति
(Proverbs)
लोक-कथायें
(Folklore)

लोकरीतियाँ
(Folkways)
रूढ़ियाँ
(Mores)
निषेध
(Taboos)
फैशन
(Fashion)
धार्मिक रीतियाँ
(Rites)
अनुष्ठान
(Rituals)
संस्कार
(Ceremonies)
लोकरीति
(Conventions)
सदाचार
(Etiquette)

पुल
(Bridges)
हथियार
(Weapons)
कला की पुस्तकें
(Objects d'art)
वस्त्र
(Clothing)
गाड़ियाँ
(Vehicles)
फर्नीचर
(Furniture)
खाद्य-सामग्री
(Foodstuffs)
दवाइयाँ
(Medicines)

विचार और भौतिक पदार्थ, दोनों ही की सूची बढ़ाई जा सकती है। व्यवहार-आदर्श की सूची वास्तव में संतोषजनक नहीं है क्योंकि इनमें से कुछ शब्द लगभग पर्यायवाची (synonymous) हैं। दुर्भाग्यवश, समाजशास्त्र की पुस्तकों में व्यवहार-आदर्शों का कोई एक सा स्टैन्डर्ड नहीं है और प्रत्येक समाजशास्त्री ने कुछ भिन्न सूची प्रस्तुत की है। शाब्दिक वक्रोक्ति (verbal quibbles) बचाने के लिए हमारे लिये यही उचित होगा कि हम व्यवहार आदर्शों (norms) को तीन भागों में ही विभाजित करें—लोकरीतियाँ (folkways), रूढ़ियाँ (mores) और कानून (laws)।

प्रत्येक समाज की अपनी अलग संस्कृति होती है और क्योंकि व्यक्ति समाज के सदस्य होते हैं उनकी संस्कृति अन्य समाज के व्यक्तियों से भिन्न होती है, उनका व्यवहार दूसरे समाज के सदस्यों के व्यवहार से भिन्न होता है। प्रत्येक संस्कृति में दो पहलुओं को देखा जाता हैं जो आपस में सम्बन्धित हैं। प्रत्येक समाज अपने प्राकृतिक पर्यावरण से भिन्न पदार्थों को अपने ढंग से मनुष्य-निर्मित पर्यावरण बनाने के लिये चुनता है। इस मनुष्य-निर्मित पर्यावरण में निवास-स्थान,भोजन,वस्त्र, संस्कारों में प्रयोग होने वाली वस्तुयें और अस्त्र और अनेक औजार सम्मिलित हैं। प्राकृतिक पर्यावरण का यह उपभोग हमेशा संस्कृति के दूसरे पहलू पर निर्भर है जिसे हम अपने साथ

लिये फिरते हैं : विचारों, आकांक्षाओं और व्यवहार के प्रतिमान जिन्हें हम अपने पूर्वजों से प्राप्त करते हैं।

मनुष्य की जन्मजात क्षमताओं में से संस्कृति कुछ को विकसित करने और कुछ को दबाने के लिते चुनती है। प्रत्येक संस्कृति इनको अपने ढंग से शोधित, प्रवाहित, विकसित, नियंत्रित और प्रशिक्षित करती है। उदाहरण के लिये, लड़ने की क्षमता, एस्किमो लोगों में लड़ाई जैसी चीज बिल्कुल अज्ञात है। इसके अतिरिक्त, संस्कृति हमारे कार्यों और भावनाओं की सीमा को नियंत्रित करती है। यह कार्यों और वस्तुओं के सम्बन्ध में हमारी पसन्द और नापसन्द को प्रभावित करती है।

संस्कृति हमारी दृष्टि (perceptiveness) को परिमित (circumscribe) करती है। यह हमारी सूक्ष्म-चेतना (sensitivity) को कुछ दिशाओं में तेज करती है और कुछ दिशाओं में सुस्त। अन्य व्यक्ति हमें काले और गोरे, या स्त्री और पुरुष, या अमीर और गरीब के रूप में दिखाई पड़ते हैं। यह समाज से प्रभावित हमारे ध्यान-केन्द्र पर निर्भर करता है। संस्कृति इस बात को बेहद प्रभावित करती है कि जिस वस्तु को हम देखते हैं उसका मूल्यांकन किस प्रकार से करते हैं। हम काले रंग से रंगे दाँतों को सुन्दर मानेंगे या सफ़ेद दाँतों को; अन्य व्यक्तियों के प्रति हमारा आदर आयु, रंग, लिङ्ग, धन, शिक्षा, मनोरंजन करने की क्षमता, शारीरिक शक्ति, या वैयक्तिक चरित्र में से किस पर निर्भर करेगा; आदर्श स्त्री दुबली, पतली या मोटी होती है—यह हमारे समाज द्वारा प्रभावित सौंदर्य-सम्बन्धी, नैतिक और यौन-सम्बन्धी आदर्शों पर निर्भर करता है।

सामाजिक आदर्श शरीर की वास्तविक बनावट को प्रभावित करते हैं। यह केवल होठों को रंगने से, सर मुड़ाने आदि से ही नहीं होता है बल्कि खास तरह के लोगों के साथ यौन सम्बन्ध करके और सन्तान को वैसा ही बनाने से होता है। उदाहरण के लिये, हजारों वर्षों से चीनी, बर्मी और अन्य व्यक्ति सपाट छातियों वाली स्त्रियों से यौन सम्बन्ध करना पसन्द करते हैं जिसके फलस्वरूप वहाँ की स्त्रियाँ अपनी छातियों को वैसा ही बनाने की कोशिश करती हैं।

सीखे हुये व्यवहार के रूप में संस्कृति हमारी ऐसी भावनाओं के प्रकटन या दमन को प्रभावित करती हैं जैसे आदर, घृणा, या प्रेम। या इस बात को भी निश्चित करती हैं कि यदि वह भावनायें प्रकट की जायँ तो किस प्रकार से प्रकट की जायें, किन अवसरों पर प्रकट की जायें, और किस हद तक प्रकट की जायें।

संस्कृति और व्यक्ति के सम्बन्ध में जॉन गिलिन ने तीन मुख्य बातें बताई हैं।* पहली, संस्कृति खोजने की दशाओं को प्रस्तुत करती है। जन्म के बाद मानव

---

* John Gillin, The Ways of Men, p. 248.

शिशु एक मानव-निर्मित पर्यावरण में प्रवेश करता है। वह अनेक प्रकार के भौतिक पदार्थों से घिरा रहता है जिनकी संख्या, प्रयोग और आकार उस संस्कृति की विशेषता है। दूसरी, संस्कृति एक निश्चित ढंग से व्यक्ति को प्रतिक्रियायें करने को प्रेरित करती है। यद्यपि व्यक्ति के कुछ व्यवहार ट्रायल और एरर (trial and error) से सीखे गये हैं, प्रत्येक समाज इस बात के लिये विशेष प्रयत्न करता है कि व्यक्ति कुछ स्थितियों में ऐसी प्रतिक्रियायें करे जो समाज उचित समझता है। छोटे बच्चे की उंगली उसके मुँह से निकाल ली जाती है; शौच के लिये बच्चे को ठीक स्थान पर बैठाया जाता है; खाने पीने के बर्तन जैसे काँटे, छुरी, को उसके हाथ में पकड़ा कर उनका सही इस्तेमाल बताया जाता है। भाषा विकसित होने पर उसका उचित प्रयोग भी बच्चों और वयस्कों को बताया जाता है। तीसरी, संस्कृति दण्ड और पुरस्कार के द्वारा सीखने की प्रक्रिया और बुरी आदतों को छोड़ने में तेज़ी लाती है।

लिंटन ने कहा है कि व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति के प्रभाव दो प्रकार के होते हैं। एक ओर तो वे प्रभाव हैं जो संस्कृति द्वारा निश्चित ढंग से होने वाले बच्चे के प्रति वयस्कों के व्यवहार से निकले हैं। दूसरी ओर वे प्रभाव हैं जो समाज के सामान्य व्यवहार-प्रतिमानों को व्यक्ति द्वारा स्वयं देखे जाने का फल हैं। यह सत्य है कि यह दोनों प्रकार के प्रभाव एक दूसरे से अलग नहीं हैं बल्कि एक दूसरे में अक्सर प्रवेश (overlapping) कर जाते हैं। उदाहरण के लिये, बच्चे के प्रति वयस्कों का व्यवहार उस समय आदर्श के रूप में प्रयोग होता है जब वही बच्चा वयस्क होकर अपने बच्चों के पालन पोषण की समस्या का सामना करता है। उदाहरण के लिये हम अपने बच्चों को स्कूलों में इसलिये भेजते हैं क्योंकि हम स्वयं अपने माता-पिताओं द्वारा स्कूलों को भेजे गये हैं।

बाल्यावस्था

हम अपने बच्चों के प्रति वयस्कों के व्यवहार पर विचार करेंगे जो संस्कृति द्वारा प्रभावित होते हैं। ऐसे अनेक समाज हैं जिनमें स्त्रियाँ चलते हुए या खड़े होकर बच्चों को स्तनपान कराती हैं जिनकी वजह से बच्चों को पूरा सन्तोष नहीं मिलता। उदाहरण के लिये, भीलों में ऐसा होता है। उनके बच्चे अपनी माँ के स्तन से लगे रहने के लिये हाथ पैर चलाते हैं। अनेक मानवशास्त्रियों का विश्वास है कि यह बच्चे हिंसक और झगड़ालू प्रवृत्ति के निकलते हैं। कुछ समाजों में बच्चों की हर वक्त देखभाल नहीं की जाती बल्कि थोड़ी-थोड़ी देर बाद उनकी ओर ध्यान दिया जाता है, वह भी माँ के द्वारा नहीं बल्कि किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा। मनोविश्लेषणकर्त्ताओं (psychoanalysts) के अनुसार यह थोड़ी-थोड़ी देर बाद दिये जाने वाला ध्यान और माँ के साथ उद्वेगात्मक संसर्ग की कमी बच्चे को चिन्तित, संदेही, और अविश्वासी बनाती है। इसी प्रकार, जिन समाजों में बण्डल बना

कर बच्चों को पीठ पर लेकर चलने की प्रथा है वहाँ बच्चों को हाथ पैर चलाने की स्वतन्त्रता न रहने से बच्चे एक दबायी हुई हिंसा अनुभव करते हैं। कुछ समाज-शास्त्रियों का कथन है कि जिन समाजों में बिस्तर पर पेशाब करने के कारण बच्चों को मारा जाता है वहाँ बच्चों में अविश्वास, घबराहट, और चिन्ता विकसित होती है। बच्चों को कम उम्र में मारने का बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे बच्चे की सुरक्षा की भावना को ठेस लगती है। कुछ समाजों में काफी उम्र तक बच्चे अपने वयस्कों की गोद में चलते हैं जब कि योरोपीय समाज में बहुत जल्द ही बच्चे को खड़ा होना और चलना सिखाया जाता है जिसके फलस्वरूप वह होशियारी और दक्षता का मूल्य समझने लगता है।

जिन समाजों में संस्कृति पुरस्कार पाने के लिए बच्चे से माता-पिता के प्रति पूरी आज्ञापालन की माँग करती हैं, वहाँ के वयस्क सामान्यत: नम्र, पर-निर्भर और उत्साहहीन, और किसी बात में आगे रहने के प्रति उदासीन रहते हैं। कभी भी नयी स्थिति आ जाने पर वह अपने माता-पिता या अन्य महत्वपूर्ण वयस्कों की ओर सहायता और सलाह के लिए देखेंगे। इस सम्बन्ध में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि अनेक समाजों में कुछ चुने हुये व्यक्तियों को नेतागिरी में ट्रेनिग देने की कुछ विशेष प्रविधियों को विकसित किया गया है। उदाहरण के लिए, मैडागास्कर के टनाला लोगों में ज्येष्ठ पुत्रों (eldest sons) की जन्म के बाद से ही भिन्न प्रकार की देख भाल की जाती है जिनमें अगुआ बनने (initiative लेने) और जिम्मेदारी लेने की इच्छा विकसित हो, जब कि अन्य बच्चों को नियमपूर्वक अनुशासन में रखा जाता है और नेता बनने की उनकी इच्छाओं का दमन किया जाता है। लिंटन का कहना है कि जिन समाजों में छोटे परिवार होते हैं वहां व्यक्ति परिवार के सदस्यों के प्रति स्नेह और लगाव अनुभव करता है जब कि विस्तृत (extended) परिवार में किसी विशेष व्यक्ति के साथ अत्यधिक लगाव की सम्भावना कम होती है।

सभ्य समाजों की अपेक्षा आदिवासी बच्चों को बहुत कम आयु से ही जिम्मेदारियाँ दे दी जाती हैं और उन्हें स्वयं अपनी देखभाल करनी पड़ती है। मारगरेट मीड का कहना है कि प्रत्येक आदिवासी समाज में बच्चों को दूसरे समाज से भिन्न प्रकार की ट्रेनिंग दी जाती है। न्यूगिनी की मनु जाति में शारीरिक कौशल और स्वास्थ्य पर विशेष बल दिया जाता है। शुरू से मिलने वाली शिक्षा बच्चे को आत्म-निर्भर और शारीरिक मेहनत करने का आदी बना देती है। वह आगे चल कर एक ऐसा वयस्क बन जाता है जो शारीरिक दृष्टि से प्रशंसनीय होता है, प्रवीण, चुस्त, निर्भय, अचानक संकट पड़ने पर और परेशानियों से न घबराने वाला। दूसरी ओर, सामाजिक अनुशासन बहुत ढीला होता है, और बच्चे काफी हद तक बिगाड़ दिये जाते हैं। वे सब कुछ अपनी इच्छा से ही करते हैं और अपने माता-पिता की इच्छाओं

के प्रति आज्ञापालन और आदर नहीं दिखाते। यदि बच्चा शारीरिक दृष्टि से कुशल है और दूसरों की सम्पत्ति का आदर करता है, उस पर कोई दूसरी माँग नहीं रखी जाती।

इसके ठीक विपरीत कई प्रकार की ट्रेनिंग अफ्रीकन क़ाफिर (Kaffir's) समाज में दी जाती है, और सबसे पहली शिक्षा उन्हें नम्र होने और दूसरों का ध्यान रखने की दी जाती है। समाज में सबसे मिलने-जुलने की भावना उनमें विशेष रूप से विकसित की जाती है। उन्हें किसी भी उत्सव में अलग नहीं रखा जाता है। इससे उनमें व्यक्तिगत सुरक्षा की भावना मजबूत होती है।

मारगरेट मीड ने सभ्य समाजों और समोआ निवासियों के बच्चों की तुलना करते हुए कहा है कि वहाँ बच्चों को बहुत कम उम्र में जिम्मेदारियाँ सम्भालनी पड़ती हैं और सबसे बड़ी गलती यदि कोई बच्चा कभी करता है तो वह अपनी आयु के हिसाब से अधिक बढ़कर बोलना या अपने समवयस्कों से आगे बढ़ने की कोशिश करना है। बच्चों को बहुत तेजी से उन्नति करने से रोका जाता है और माता-पिता उस समय लज्जा अनुभव करते हैं जब उनके बच्चे अपने समवयस्कों से किसी बात में आगे निकल जाते हैं।

लिंग

भिन्न लिङ्गों के व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से भी संस्कृति का महत्व समझना आवश्यक है। कुछ समाजों में लड़कियों का जन्म कोई खुशी की बात नहीं समझी जाती, वह एक आर्थिक बोझ समझी जाती है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि योरोपीय समाजों की लड़कियों की अपेक्षा वे मनोवैज्ञानिक असुविधा (handicap) में पलती हैं। इसके अतिरिक्त, आधुनिक मानवशास्त्रियों ने इस बात को भी प्रमाणित किया है कि स्त्रियाँ जैवकीय दृष्टिकोण से पुरुषों से किसी भी प्रकार हीन नहीं हैं। उनका हिंसात्मक या शान्त होना संस्कृति के उपर निर्भर करता है। रूथ बेनेडिक्ट ने बताया है कि ऐसे अनेक समाज हैं जहाँ पुरुष नम्र, दबीले, आज्ञाकारी, सहन-शील होते हैं, न कि स्त्रियाँ। इन समाजों में पुरुषों को अपनी स्त्रियों को खुश रखना पड़ता है, खाना पकाना, सफाई करना और बच्चों की देख-रेख करना पड़ता है जब उनकी स्त्रियाँ अपने मित्रों के घर मिलने गई होती हैं।

किशोरावस्था

किशोरावस्था के सम्बन्ध में भी संस्कृति का कार्य महत्वपूर्ण है। सभ्य समाजों में किशोरावस्था (adolescence) उद्वेगात्मक तनावों और परेशानियों का काल समझा जाता है, जब लड़के और लड़कियों के शरीरों में विशेष परिवर्तन होता है और उनमें नयी इच्छायें जागृत होती हैं। मारगरेट स्मिथ ने समोआ की लड़कियों के सम्बन्ध में कहा है कि किशोरावस्था में उन्हें किसी प्रकार के उद्वेगात्मक तनाव का सामना नहीं करना पड़ता। किशोर लड़कियों को समुदाय में अपने पद या

यौन सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। उनका पद (status) समाज के नियमों द्वारा निश्चित होता है जो भिन्न आयु समूहों के सदस्यों को निश्चित अधिकार प्रदान करते हैं, जिनके कारण कोई व्यक्ति अपनी आयु के अन्य व्यक्तियों से किसी बात में आगे नहीं बढ़ सकता। उच्च पद की उन्हें कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। जहाँ तक यौन इच्छा का सम्बन्ध है, किशोरावस्था के बाद प्रत्येक लड़की समुदाय के लड़कों के साथ मुक्त रूप से यौन सम्बन्ध करती है, माता-पिता जानते हुए भी किसी प्रकार की रोक थाम नहीं करते जिससे लड़कियों और लड़कों में यौन सम्बन्धी तनाव विकसित नहीं हो पाते।

वृद्धावस्था

हमारे समाजों में वृद्ध होना विपत्ति का सूचक समझा जाता है क्योंकि आर्थिक असुरक्षा (insecurity) का उन्हें भय रहता है। आस्ट्रेलियन वन्यजातियों में, इसके विपरीत, वृद्धावस्था गौरव और विशेषाधिकार प्रदान करती है। आस्ट्रेलियन वन्यजातियों की सरकारें वृद्धजनों द्वारा संचालित होती हैं जिन्हें राजनीतिक शक्ति और विशेष अधिकार मिलते हैं। वृद्ध होने के साथ ही पद और प्रतिष्ठा, और बाकी सब सदस्यों की आर्थिक सेवा, की गारन्टी हो जाती है।

आर्थिक व्यवस्था

हमारी संस्कृति में आर्थिक कारकों का व्यक्तित्व पर बहुत प्रभाव पड़ता है। बेकारी के प्रभावों के अध्ययनों से पता लगता है कि ऐसी स्थिति में व्यक्तित्व छिन्न-भिन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में आत्म-सम्मान, समाज में मिलना जुलना, अपनी आकृति (appearance) ठीक रखने में, और यहाँ तक कि अपने भविष्य और पर्यावरण में रुचि में, कमी आ जाती है।

समाजशास्त्रियों ने बताया है कि आर्थिक वर्ग काफी हद तक व्यक्तित्व-अन्तरों के लिए उत्तरदायी हैं। किसी व्यावसायिक समूह की सदस्यता, सामाजिक पद और सम्बन्ध, आय, शिक्षा, क्लब और समाजों में सदस्यता, यह व्यक्तित्व के रूप को प्रभावित करते हैं। यद्यपि एक वर्ग से दूसरे वर्ग में व्यक्ति प्रवेश करता रहता है, परन्तु वर्ग सदस्यता फिर भी महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, वृद्धावस्था किसी मजदूर के लिए विपत्तिकाल हो सकती है परन्तु व्यापार में लगे हुए व्यक्ति के लिए नहीं।

संस्कृति और सामाजिक जीवन के सम्बन्ध के कुछ उदाहरण

इस बात को सभी समाजशास्त्रियों ने स्वीकार किया है कि सामाजिक जीवन पर संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रभाव रहता है। भाषा के सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जाता है कि इसका सीखना पूर्ण रूप से संस्कृति पर निर्भर करता है। इस बात को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि सामान्य नवजात शिशु वही भाषा सीखेगा जो उस परिवार में बोली जाती है जहाँ वह पलता है चाहे उस परिवार के सदस्यों की

प्रजाति से उसकी प्रजाति कितनी ही भिन्न क्यों न हो और चाहे सीखने की प्रक्रिया उस स्थान से लाखों मील दूर ही क्यों न शुरू हो जहाँ वह पहली बार विकसित हुई। शिष्टाचार के कुछ किस्म (जैसे कि अभिवादन के ढंग), विशेष ढंग के वस्त्रों का पहनना और भोजन सम्बन्धी आदतें भी सामान्यतः संस्कृति द्वारा निश्चित कही जाती हैं, परन्तु वस्त्र और भोजन सम्बन्धी आदतों पर पर्यावरण और जैवकीय कारकों का भी, कम से कम कुछ घटनाओं में, प्रभाव होता है। इसलिए हम यही कहेंगे कि व्यक्तित्व संस्कृति से प्रभावित होता है, न कि निश्चित।

आन्तरिक प्राणिशास्त्रीय व्यवहार—सहनशीलता सांस्कृतिक समूहों में इतनी अधिक भिन्न है कि यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह संस्कृति से प्रभावित होती है। हेनरी का विचार है कि भूख (appetite) संस्कृति से प्रभावित होती है। मतली (nausea) उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ भी भिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग हैं। कुछ संस्कृतियों में वमन करना एक त्रासजनक व्यवहार है। कहा जाता है कि किसी सुन्दर स्त्री को देख कर फीजी निवासियों के मुँह से लार टपकने लगती है।* इस बात के भी कुछ मानवशास्त्रीय प्रमाण हैं कि कुछ संस्कृतियों के लोग उन वस्तुओं की अवहेलना करके भी जीवित रहते हैं जिन्हें पश्चिमी वैज्ञानिक सामान्य आवश्यकतायें कहते हैं। कुछ वन्य जातियां नमक का बिल्कुल भी सेवन नहीं करतीं। कैनन (Cannon) ने कहा है कि किसी व्यक्ति का यह विश्वास कि वह किसी के जादू टोने का शिकार है उसकी शरीरशास्त्रीय (anatomical) क्रिया इतना अधिक बिगाड़ सकता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाये।

यौन व्यवहार—मरडाक (Murdock) ने यौन चुनाव का एक सामाजिक नियम बनाया है और यह दिखाया है कि किस प्रकार यौन व्यवहार संस्कृति द्वारा प्रभावित होता है। न्यूगिनी के केराकी ऐसे व्यक्ति को असामान्य (abnormal) समझते हैं जो विवाह से पूर्व समलिंगी(homosexual)सम्बन्धों में भाग नहीं लेता। सिरिओनो या ट्रोब्रियण्ड स्त्री व पुरुषों में यौन उत्तेजना का सम्बन्ध नोचे और काटे जाने के अनुभव से है। फोर्ड और बीच ने यह बताया है कि नामर्दी सांस्कृतिक ट्रेनिंग और साँस्कृतिक मनोवृत्तियों से प्रभावित होती है। हेनरी कहता है कि नामर्द उन समूहों में नहीं के बराबर हैं जो बाल्यावस्था के यौन व्यवहारों के प्रति सहनशील हैं और जो यौन को जीवन की एक अच्छी वस्तु बताते हैं।

यौन व्यवहार भिन्न संस्कृतियों में भिन्न ही नहीं होता बल्कि एक से कार्यों का भिन्न प्रभाव होता है। यह कहा जाता है कि वेशभूषा, शरीर के भिन्न अंगों की नग्नता भिन्न संस्कृतियों में वयस्कों में भिन्न ढंग से काम उत्तेजित करती हैं।

---

* A Handbook of Social Psychology by Linzey.

ग्लैडविन और सैरासन ने बताया कि विवाहित ट्रूकी लोगों को केवल अपनी पत्नी को छोड़ कर अन्य स्त्रियों के साथ सम्भोग करने में वास्तविक आनन्द आता है। यहाँ तक कि जब प्रेमी-प्रेमिका विवाह करते हैं, उनका यौन-जीवन विवाह के बाद नीरस हो जाता है। तलाक की दर भिन्न संस्कृतियों में भिन्न हैं और उनके प्रातीतिक (subjective) अर्थ भी अलग-अलग हैं।

बोध (cognition)—संस्कृति व्यक्ति के विचारों पर और दृष्टि (perception) पर भी प्रभाव डालती है। ट्रूकी लोग समुद्र के पानी और ताजे पानी को बिल्कुल भिन्न वस्तु (substance) समझते हैं। अंग्रेजी भाषा में झुण्ड व्यवहार के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे कि schools of fish, herds of cattle, flocks of sheep, prides of lions, । यही बात दृष्टि को भी लागू होती है। कुछ अमेरिकन बच्चे काफी दूर से ही मोटर गाड़ी की हेड लाइट देख कर बता सकते हैं कि वह कौन सी गाड़ी है परन्तु चलती हुई नावों या ऊँटों को देखकर उनकी किस्म नहीं बता सकते।

प्रभाव (affect)—उद्वेगों का प्रकटन और विशेष उद्वेगों को उत्तेजित करने वाली परिस्थितियाँ भिन्न संस्कृतियों में भिन्न होती हैं। ला बार (La Barre) ने इसके उदाहरण दिये हैं :

जापान में फूत्कार (hissing) सामाजिक रूप से श्रेष्ठ व्यक्तियों के प्रति आदर दिखाने का एक नम्र ढंग है; बसूटो फूत्कार द्वारा सराहना करते हैं; परन्तु इंगलैण्ड में यह अत्यन्त अभद्र व्यवहार है और किसी अभिनेता या वक्ता के प्रति असम्मान प्रकट करने का ढंग है। संसार के अधिकतर भागों में किसी व्यक्ति पर थूकना घृणा का चिन्ह है : परन्तु फिर भी अफ्रीका के मसाई लोगों में यह स्नेह और भलाई का चिन्ह है, जबकि अमेरिकन इण्डियन-चिकित्सक का रोगी पर थूकना इलाज का एक विशेष ढंग है। योरोप में अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति की उपस्थिति में खड़ा हुआ जाता है; फीजी और टोंगा लोग बैठ जाते हैं।

असामान्य व्यवहार (abnormal behaviour)—ग्लैडविन और सैरासन कहते हैं कि ट्रूकी लोगों में स्त्रियों का ऐसे सम्बन्धियों के सामने अपना वक्षस्थल अनावृत्त करना निषिद्ध है जिन्हें वे 'पिता या भाई कहती हैं, परन्तु रात में यह बात लागू नहीं होती। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में अपराध करने के ढंग और अपराध की दर और कारण भिन्न हैं। कुछ संस्कृतियों में, जैसे माओरी लोगों में, बच्चों का अंगूठा चूसना नहीं के बराबर (rare) है। जानसन का कहना है कि कुछ संस्कृतियों के लोग अधिक हकलाते हैं और कुछ कम और बिल्कुल नहीं जिससे यह प्रतीत होता है कि यह भी संस्कृति से प्रभावित होता है।* मानसिक विकार के कुछ प्रकार के

---

* **Ibid.**

चिन्ह भी, यह कहा जाता है, संस्कृति से प्रभावित होते हैं। लाटाह (latah), अमक (amok) और आर्कटिक हिस्टीरिया (arctic hysteria) इसके पुराने उदाहरण हैं। अबले कहता है कि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि लाटाह का होना या न होना संस्कृति से प्रभावित है या नहीं, परन्तु इसकी दर संस्कृति द्वारा ही प्रभावित होती है।*

घड़ियाँ और समय-पालन—घड़ी के आविष्कार ने समय की पाबन्दी की आदत डलवायी है। आदिवासी जिनके पास घड़ियाँ नहीं हैं समय की पाबन्दी का कोई ख्याल नहीं करते हैं, जबकि हमारे समाज में मनुष्यों को, जो किसी बड़े शहर में काम करने जाते हैं, समय का सूक्ष्म ध्यान रहता है। आधुनिक संस्कृति में रेडियो, रेलवे आदि जैसी अनेक वस्तुयें हैं जिनके प्रयोग के लिए समय की पाबन्दी आवश्यक हैं। जहाँ तक समय की पाबन्दी का सम्बन्ध है एक आदिवासी और एक शहर के निवासी के व्यक्तित्व में अन्तर होता है और यह अन्तर दोनों की संस्कृतियों के कारण हैं।

नल और सफाई—दूसरा उदाहरण हमें नल और सफाई के सम्बन्ध में मिलता है। सफाई व्यक्तित्व की एक विशेषता है जिसे हमारी संस्कृति में विशेष महत्व दिया जाता है। यह एक ऐसी विशेषता है जो कि नल की यन्त्रकला और हमारी संस्कृति के अन्य आविष्कारों के द्वारा प्रोत्साहित हुई है।

भाषा और व्यक्तित्व—व्यक्तित्व के ऊपर प्रभाव डालने वाली वस्तुओं में से भाषा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इनके अनेक कारण हैं। मनुष्य और पशु का मुख्य अन्तर यह है कि केवल मनुष्य के पास ही भाषा है। इसके अतिरिक्त, भाषा केवल उन लोगों की संगति से सीखी जा सकती है जिनके पास भाषा है। जंगली आदमी जो अपने साथियों से अलग पाले जाते हैं जैसे कभी बच्चों को भेड़िया चुरा ले जाते हैं और पालते हैं उनके पास कोई भाषा नहीं होती। व्यक्तित्व के विकास के लिये भाषा मुख्य गाड़ी है, क्योंकि इसी के द्वारा व्यक्ति अपनी सूचना और मनोवृत्तियों को प्राप्त करता है।

सांस्कृतिक प्रतिमान और व्यवहार प्रतिमान—साँस्कृतिक विशेषताओं और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हमें कुछ छूटों का भी पालन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, जहाँ तक घड़ियों और समय की पाबन्दी का सम्बन्ध है, देखा जाता है कि केवल घड़ी पास होने से ही यह निश्चित नहीं हो जाता कि व्यक्ति ठीक समय पर दूसरे व्यक्ति के घर पहुँच जायेगा। लैटिन अमेरिकन लोगों के पास भी उत्तरी अमेरिकन लोगों की भाँति घड़ियाँ हैं परन्तु वे उत्तरी अमेरिकन लोगों की तरह हमेशा समय

---

* Ibid.

के पाबन्द नहीं होते हैं। लैटिन अमेरिकन लोगों के लिए आतिथ्य सत्कार, शिष्टता और मित्रता का अधिक महत्व है, बनिस्बत नियत समय पर किसी से मिलने के।

ग्रामीण संस्कृति और आतिथ्य सत्कार—उदारता तथा कृपणता भी व्यक्तित्व विशेषता है जो सफाई अथवा समय की पाबन्दी की अपेक्षा अधिक प्राकृतिक मालूम पड़ती है, परन्तु वास्तव में संस्कृति के साथ इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए शहरों में रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा गाँव में रहने वाले व्यक्ति अधिक उदार और आतिथ्य सत्कार करने वाले होते हैं।

स्त्रियों के व्यवसाय और आज्ञापालन—व्यक्ति पर संस्कृति के प्रभाव का एक उदाहरण हमें पुरुषों और स्त्रियों के सम्बन्ध में मिलता है। औद्योगीकरण से पहले खेती ही मुख्य धन्धा था। घर के बाहर स्त्रियों के लिए कोई धन्धा न था इसलिए, वे अपने पिता और पति पर निर्भर रहती थीं। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप आज्ञापालन स्वाभाविक ही था। आजकल स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता होने के कारण घर के बाहर नौकरी-धन्धा करके धन कमाने के कारण आज्ञापालन की अपेक्षा वे आत्म-प्रकटन और राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्रों में भाग लेने को अधिक महत्व देती हैं। स्त्रियों और पुरुषों की सामाजिक स्थिति समान है। गाँवों में अब भी आज्ञापालन स्त्रियों की विशेषता है।

विचार और संस्कृति—व्यक्ति के विचारों पर भी संस्कृति का प्रत्यक्ष प्रभाव है। हिन्दू लोग दोनों लिंगों के अनेक देवताओं में विश्वास करते हैं जो कि स्वर्ग में रहते हैं और मनुष्यों की भाँति ही प्रेम करते और हँसते हैं। रूस निवासी किसी भी देवता में विश्वास नहीं करते।

पक्षपात और संस्कृति—हम अनेक प्रकार के राजनैतिक, देशभक्ति सम्बन्धी, वर्गीय, प्रजातीय और आध्यात्मिक पक्षपातों (prejudices) से परिचित हैं। इस सम्बन्ध में व्यक्ति की प्रकृति भी एक महत्वपूर्ण कारक है, पर संस्कृति उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। ऐस्किमो ह्वेल मछली की चर्बी पसन्द करते हैं जब कि हम लोग नहीं; अमेरिकन गोरे काले चमड़ी वाले व्यक्तियों से किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखना चाहते परन्तु हम लोगों में ऐसा नहीं है।

सौम्यता के स्तर और संस्कृति—बच्चे में लज्जा की कोई भावना नहीं होती। यह तो केवल संस्कृति के प्रभाव से जन्मती है। जापानी स्त्रियाँ चिलचिलाती हुई धूप में मीलों तक एक के ऊपर दूसरे अनेक 'किमानो' पहने हुए पैदल चली जायेंगी और सौम्यता के विचार से एक भी किमानो हटाने से इन्कार करेंगी, यद्यपि नहाने के घाट पर पहुँच कर वे निरवस्त्र भी हो सकती हैं। बुर्के में मुसलमान स्त्री, पंखा या मैन्टिला लिये हुए कोई स्पैनिश स्त्री उसी प्रकार किसी की दृष्टि में अभद्र हो सकती है जैसे कि सूखी घास का पैटीकोट पहने हुए कोई जंगली स्त्री। यह देखने वाले व्यक्ति की संस्कृति पर निर्भर करता है।

नैतिकता के स्तर और संस्कृति—मनुष्य के लिए वह सब नैतिक है जो रूढ़ियों के अनुकूल है। भारत में सती-प्रथा, देवदासी प्रथा नैतिक थी। तिब्बत वासियों में बहुपति विवाह नैतिक है; फ्राँस में व्यभिचार नैतिक है। कहीं शिशु-हत्या नैतिक है, तो कहीं मनुष्य का माँस खाना भी नैतिक है। वास्तव में संस्कृति ही यह निश्चित करती है कि क्या नैतिक है और क्या अनैतिक है।

अन्य उदाहरण

हम यह विश्वास करते हैं कि **देखना** केवल शरीरशास्त्रीय क्रिया है, जो हम देखते हैं इस बात पर निर्भर करता है कि आंख खोलने पर हमारे सामने क्या चीज होती है। वास्तव में, जो कुछ हम देखते हैं वह हमारी संस्कृति पर निर्भर करता है। हमें देखना सीखना पड़ता है, और जो कुछ देखना हम सीखते हैं वह हमारे समाज पर निर्भर करता है। एक अन्धा व्यक्ति जिसकी अचानक नेत्र-ज्योति ठीक हो जाती है वह यह नहीं बता सकता कि उसके सामने रखी हुई वस्तु आम है या अमरूद। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि अपने पिता की तस्वीर के दिखाये जाने पर कुछ बच्चों ने यह मानने से इन्कार कर दिया कि वह उनके पिता की तस्वीर थी। वह यह विश्वास न कर सके कि इतना लम्बा चौड़ा आदमी इतनी छोटी सी जगह में कैसे चित्रित किया जा सकता है। जो चश्मा हम पहनते हैं वह संसार का रूप हमारी कमजोर आँखों के सामने बदल देता है। चश्मा संस्कृति का एक अङ्ग है जिसके बारे में अनेक समाजों में कोई भी जानकारी नहीं है।

इससे अधिक नाटकीय बात हमको यह लगती है कि यद्यपि संसार भर के सभी व्यक्ति एक ही चन्द्रमा देखते हैं, परन्तु उसके अन्दर उन्हें भिन्न वस्तुयें दिखाई देती हैं। अमेरिकन लोगों को चन्द्रमा में एक आदमी और अक्सर एक आदमी के कन्धे पर से झाँकता हुआ दूसरा आदमी दिखाई देता है : समोआ के आदिवासियों को चन्द्रमा में एक औरत दिखाई देती है जो उस वस्तु को कात रही है जिससे बादल बनते हैं। उत्तर-पश्चिम अमेरिकन आदिवासियों को चन्द्रमा में पर फैलाये हुये बाज, हंसक, और सींगदार मेंढक दिखाई पड़ते हैं। भारतवासियों को सफेद खरगोश जिसके लम्बे कान और फैले हुए पंजे होते हैं, चन्द्रमा में बैठा हुआ दिखाई देता है। आयरिश लोगों का विश्वास है कि सफेद शराब और गुलाब जल पीने के बाद यदि कोई जवान लड़की रेशमी रूमाल की आड़ से चन्द्रमा की ओर देखे तो उसे अपने भावी पति का चेहरा दिखाई देगा।

इसी प्रकार, **वस्त्रों का पहनना**, यदि हम पहनते हैं, संस्कृति पर निर्भर करता है। नग्नता कुछ समाजों में अनैतिक है, दूसरों में नहीं। जो लोग वस्त्र भी पहनते हैं, वे सब समान अंगों को ही नहीं ढकते या खुला नहीं छोड़ते हैं। वस्त्रों के आधार पर हम बंगाली, मद्रासी, पठान, जापानी-चीनी, बर्मी, सीलोनी आदि

लोगों की पहचान कर सकते हैं। हम क्या पहनते हैं और किस प्रकार पहनते हैं यह संस्कृति के ऊपर निर्भर करता है।

कुछ लोग गोल घेरेदार **मकानों** में रहते हैं। हम आयताकार (rectangular) मकानों में रहते हैं। उत्तरी ध्रुवरेखा के पास रहने वाले एस्किमो बर्फ के मकान बनाते हैं, नवाहो मिट्टी के, होपी मोरंग के, आधुनिक भारतीय अनेक पदार्थों को मिला कर जैसे लकड़ी, ईंटा, कंकरीट और पत्थर। एक ही समाज के अन्दर हम मकानों की बनावट में अन्तर पाते हैं।

भोजन के प्रति पक्षपात और पसन्दगी संस्कृति के ऊपर निर्भर करती है। कुछ लोग मछली खाकर जीवित रहते हैं, दूसरे फल और जड़ों पर। कुछ लोग दूध पीते हैं, कुछ इस बात को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यूरोपियन लोगों को यह जानकर आश्चर्य होता है कि भारतीय और अमेरिकन लोग वयस्क हो जाने पर भी गाय का दूध पीते हैं। फ्राँसीसी लोग पानी का केवल धोने के लिए प्रयोग करते हैं। विभिन्न लोगों की खाद्य सामग्री में हम साँप, बिच्छू, पंख, कीड़े, बन्दर, मेढक, छिपकली, बर्र, शहद की मक्खी, घोंघा, गोमांस, सुअर का मांस और यहाँ तक कि चिकनी मिट्टी और सड़ी लकड़ी पाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि जो वस्तु एक समाज की संस्कृति के अनुसार माँस है, वह दूसरी के अनुसार ज़हर।

इसी प्रकार आधुनिक समाजों में भी हम खान-पान सम्बन्धी पक्षपात पाते हैं। अमेरिकन मद्य-निषेधवादी नैतिक आधार पर शराब का पीना आपत्तिजनक बताता है, परन्तु अपने बच्चों को कोकाकोला देने में संकोच नहीं करता। इसके विपरीत, फ्राँसीसी लोग छोटे से छोटे बच्चों को सोडा मिलाकर शराब देने में संकोच नहीं करते परन्तु कोकाकोला पीना अनैतिक बताते हैं। भारतीय समाज में हिन्दुओं और मुसलमानों में गोमांस और सुअर के मांस के प्रति इसी प्रकार के पक्षपात पाये जाते हैं।

इस प्रकार मकान, जिसमें हम रहते हैं, वस्त्र को पहनते हैं, खाना जो हम खाते हैं, और पेय जिनका हम सेवन करते हैं उनकी हम आश्रय, गर्मी, भोजन, और पीने की जैवकीय आवश्यकताओं के रूप में व्याख्या नहीं कर सकते बल्कि सिर्फ सस्कृति के संदर्भ में व्याख्या कर कर सकते हैं। हम खाते हैं यह बात तो शरीरशास्त्र से निश्चित होती है परन्तु हम क्या खाते और पीते हैं केवल संस्कृति के संदर्भ में समझी जा सकती हैं।

अन्य उद्वेगों के प्रकटन की भाँति **आँसू बहाना** एक शरीरशास्त्रीय प्रक्रिया कही जा सकती है जिसके कारण को हम अश्रु-ग्रन्थियों (gland) में पाते हैं। परन्तु क्या कारण है कि जिन स्थितियों में कुछ समाजों में लोग आँसू बहाते हैं, उन्हीं स्थितियों में दूसरे समाज के लोग आँसू नहीं बहाते। उदाहरण के लिए,

विवाह के बाद कन्या की विदा के समय हिन्दू माता-पिता आँसू बहाते हैं, परन्तु ऐसी स्थिति में योरोपवादी हर्ष प्रकट करते हैं। यह संस्कृति के अन्तर के ही कारण हैं। सभ्य समाजों में निकट सम्बन्धी के निधन के अतिरिक्त शायद ही किसी अन्य अवसर पर आँसू बहाना उचित समझा जाता है। दांत विशेषज्ञ के चिकित्सालय में दांत उखड़वाते हुए लोग दर्द से अनेक प्रकार की भाव भंगिमा बनाते हैं, यद्यपि आँसू नहीं बहाते परन्तु अनेक आदिवासी जलते हुए अंगारों पर नंगे पाँव चलते हैं और उनके माथे पर एक शिकन भी नहीं आती। यह बात भी केवल संस्कृति के ही संदर्भ में समझी जा सकती है।

सामाजिक जीवन पर संस्कृति के प्रभाव के अन्य उदाहरण के रूप में हम कुछ समाज के लोगों के अधिक हिंसात्मक, युद्धप्रिय, झगड़ालू होने को ले सकते हैं। इस सम्बन्ध में हम चीनी, स्विस और स्वीडन निवासियों की स्पार्टावासी और ऐस्किमो लोगों से तुलना कर सकते हैं। उनके हिंसात्मक होने को स्वभाव सम्बन्धी या शरीरशास्त्रीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि ऐसा होता तो इतिहास के हर काल में उन्हें ऐसा ही बना रहना चाहिये था, न कि कभी अचानक इन प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करना। कुछ समाजों में युद्ध होते हैं, कुछ में नहीं। साथ ही, जिन समाजों में होते हैं वहाँ यह एक निरन्तर प्रमेय नहीं है। यह बात संस्कृति के ही संदर्भ में समझी जा सकती है। इसी प्रकार मनुष्य लाभ और राजनीतिक शक्ति और सम्पत्ति की प्राप्ति का प्रयत्न पूँजीवाद, तानाशाही और अपराध जैवकीय प्रकृति पर निर्भर न होकर संस्कृति पर निर्भर करते हैं।

इसी प्रकार, कुछ कार्यों को करने से कुछ समाजों में लोग महात्मा समझे जाते हैं, अन्य समाजों में उन्हें जेल में बन्द कर दिया जाता है। या इतिहास के कुछ काल में जिन बातों के लिए उन्हें सूली पर चढ़ा दिया जाता है, बाद में उसी के लिए उनकी पूजा की जाती है। भारतीय समाज में वन में रहने वाले ऋषियों को महान् आत्मा समझा जाता है, योरप में इस प्रकार की बात को अजीब समझा जाता है।

हिन्दी और अंग्रेजी पढ़ने वालों को यह स्वाभाविक मालूम पड़ता है कि बायें से दाहिने की ओर लिखो, जबकि हेब्रू और उर्दू दाहिने से बायें और चीनी और जापानी ऊपर से नीचे लिखी जाती हैं। भाषा संस्कृति का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

इसी प्रकार, हमारे चिन्तन या विचार शीलता पर संस्कृति का विशेष महत्व है। हम शब्दों के बग़ैर नहीं सोच सकते, और शब्द संस्कृति के अंग हैं। हम मात्रा, गुण, सम्बन्ध, द्रव्य पदार्थ और कारण जैसी दर्शनशास्त्रीय समस्याओं पर कैसे विचार कर सकते थे यदि यह शब्द हमारी भाषा में नहीं होते ? इसीलिये, एक भाषाशास्त्री ने कहा था कि यदि अरस्तू ग्रीक भाषा के स्थान में केवल कोई

आदिवासी भाषा, जो कि बहुत कम विकसित होती है, बोलता होता तो पाश्चात्य दर्शनशास्त्र का सम्पूर्ण इतिहास ही बदल गया होता।

जिस प्रकार कि जो हम सोचते और कहते हैं संस्कृति के कार्य हैं, उसी प्रकार जो कुछ हम सीखते हैं वह संस्कृति पर निर्भर करता है। बंगाल में संगीत सीखना एक सामान्य बात है, योरोप और अमेरिका में लड़के लड़कियों के लिये नृत्य सीखना आवश्यक है जबकि हमारे समाज में नहीं। खेलकूद आदि में भी इसी प्रकार के अन्तर होते हैं। भारतीय स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थी अंकगणित, ज्यामिति, भूगोल, समाजशास्त्र आदि सम्बन्धी ज्ञान सीखते हैं जब कि आदिवासी समाज में ऐसा नहीं है।

---

२० प्राकृतिक या भौगोलिक पर्यावरण और समाज (Natural or Geographic Environment and Social Order)

भौगोलिक पर्यावरण से तात्पर्य उन सभी वस्तुओं से है जो हमको चारों ओर से घेरे हुये हैं, जो कि मानव कार्यों से स्वतन्त्र हैं, जो मनुष्यों द्वारा उत्पन्न नहीं की गयी हैं, जो केवल अपनी ही इच्छा से बदलती हैं।* दूसरे शब्दों में यदि हम मनुष्य के अथवा किसी समाज के संपूर्ण पर्यावरण को लें, और उनमें से उन सब वस्तुओं को हटा दें जो मनुष्य की क्रियाओं से उत्पन्न या परिवर्तित की गई हैं, तो अवशेष भाग को हम भौगोलिक पर्यावरण कह सकेंगे। जलवायु, तापक्रम, मौसम, सूर्य का प्रकाश, वर्षा, बाढ़, सूखा (Drought), मिट्टी, खनिज पदार्थ, भूचाल, पशु और फल आदि—जब तक मनुष्य की उपस्थिति और कार्यों से अप्रभावित रहते हैं—भौगोलिक शक्तियों के उदाहरण हैं।

मैकाइवर और पेज के अनुसार "भौगोलिक पर्यावरण उन दशाओं से मिल कर बनता है जिन्हें प्रकृति ने मनुष्य को प्रदान किया है। पृथ्वी का धरातल और उसकी सम्पूर्ण प्राकृतिक दशायें और प्राकृतिक साधन, भूमि और जल, पर्वत और मैदान, खनिज पदार्थ, पौधे, पशु और जलवायु का वितरण तथा इस पृथ्वी की सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियाँ जैसी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति और विकरणीय शक्तियाँ जो कि पृथ्वी पर विद्यमान हैं और मानव जीवन को प्रभावित करती हैं, इसके अन्तर्गत आती हैं।"†

---

* "Geographical environment means all cosmic conditions and the phenomena which exist independent of man's activity which are not created by man, and which change and vary through their own spontaneity independent of man's existence and activity." — Sorokin.

† "The geographical environment consists of those conditions that nature provides for man, it includes the earth's surface with all

भौगोलिक पर्यावरण का महत्व

अरस्तू के समय से लेकर अभी तक इस विषय में बड़ा वाद-विवाद रहा है कि भौगोलिक पर्यावरण का हमारे सामाजिक जीवन पर और हमारे शारीरिक और मानसिक गुणों पर क्या प्रभाव पड़ता है। उत्तरी ध्रुव-रेखा के समीप के स्थानों और गर्म देशों पर समान जीवन सम्भव नहीं है ; ढुलकती हुई बालू से भरे रेगिस्तान का जीवन घास से भरे हुये उन मैदानों से भिन्न होता है जो कि खानाबदोश चरवाहों और उनके पशुओं के प्राकृतिक घर होते हैं, मछलियों और वाणिज्य से भरे हुये समुद्र तट का जीवन उस जीवन से सर्वथा भिन्न है जो हम को जंगलों और खदानों से भरे हुये पहाड़ों पर मिलता है। जो स्थान मच्छर आदि कीटाणुओं से भरे हुये हैं वहाँ सभ्यता की आशा नहीं की जा सकती। अभी तक जितने भी शास्त्रियों ने भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव पर प्रकाश डाला है उनमें रैज़ेल, हन्टिंगटन, ब्रुन्स, मान्टेस्की, लाप्ले और बकल मुख्य हैं।

मनुष्य भौगोलिक या प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण दोनों ही में रहता है। भौगोलिक पर्यावरण के अनेक स्पष्ट पहलू होते हैं। इसका भौतिक-रासायनिक (physico-chemical) पहलू होता है जिसमें वायु, रोशनी, गर्मी, और अभ्याकर्षण (gravitation) शामिल हैं और जिसके साथ मनुष्य स्वतः सामंजस्य करता है। दूसरा पहलू जैवकीय है जिसमें पशुओं और पौधों का संसार शामिल है। मनुष्य को हमेशा से पशुओं और पौधों के साथ स्पर्धा करनी पड़ी है। भूमि का क्षेत्र और खाद्य सामग्री की मात्रा सीमित होती है जब कि सभी जीवित प्राणियों की संतानोत्पत्ति की शक्ति असीमित होती है। इसलिये यदि सभी पशुओं को जीवित रहने दिया जाये तो व्यक्ति को स्वयं अपने को जीवित बनाये रखना कठिन हो जायेगा। इसलिये उनके बीच में जीवन-मरण का संघर्ष चलता रहता है।

यह स्थिति मनुष्य को पशुओं और पौधों से संघर्ष करने को बाध्य करती है अन्यथा मनुष्य की हार हो जावे। उसे अपनी फसल और स्वयं के स्वास्थ्य को धमकी देने वाले नाशक कीटाणुओं को नष्ट करना पड़ता है। आश्चर्य की बात है कि सबसे छोटे पशु अणु-जीव (micro-organism) उसके लिए सबसे बड़ा खतरा है, और उनके साथ संघर्ष का अभी अन्त नहीं हुआ है। हर प्रकार के वनस्पति (vegetation) उसके मैदानों और बगीचे में उगकर उसको कष्ट देते हैं और उसे इनसे भी संघर्ष करना पड़ता है।

---

its physical features and natural resources-the distribution of land and water, mountains and plains, minerals, plants, and animals, the climate forces, gravitational, electric, radiational, that play upon the earth and affect the life of man."

MacIver and Page, *Society* p.98.

इसके अतिरिक्त भौगोलिक पर्यावरण के अन्य पहलुओं जैसे जलवायु, भूतलरूप (topography), और प्राकृतिक साधनों का प्रभाव रहता है। अपने को जीवित बनाये रखने के लिए मनुष्य को इनसे भी सामञ्जस्य करना पड़ता है। परन्तु निम्न श्रेणी के पशुओं की भाँति मनुष्य केवल भौगोलिक पर्यावरण के ही अनुसार नहीं रहता; वह अपने जीवन को अधिक आराम देह बनाने के लिये इस पर्यावरण में परिवर्तन लाता है या उस पर नियंत्रण करता है। उस पर जिस हद तक परिवर्तन मनुष्य कर सकेगा वह इस बात पर निर्भर करेगा कि उस समाज का कहाँ तक विकास हुआ है। परन्तु मानव सभ्यता के प्रत्येक स्तर पर, यहां तक कि अत्यन्त आदिम समाज में भी, मनुष्य ने प्राकृतिक शक्तियों पर कुछ न कुछ नियंत्रण अवश्य किया है। यह मनुष्य और पशु समाज के बीच का एक प्रमुख अन्तर है।

इससे हमें यह नहीं समझना चाहिए कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी बनने में सफल हो गया है। वास्तव में वह उसको नियंत्रित करने की अपेक्षा उससे बचने में अधिक समर्थ हुआ है। वह आने वाले तूफान या बाढ़ को आने से रोक नहीं सकता परन्तु उसके आने की दिशा और समय की भविष्यवाणी करके उसके मार्ग से हट सकता है या उसके खतरे को कम कर सकता है।

इसके यह भी अर्थ नहीं है कि मनुष्य ने अद्भुत निष्पत्ति (achievements) नहीं की है। विशेषकर पिछली शताब्दी में मनुष्य ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। परन्तु यह भी सत्य है कि मनुष्य को प्राकृतिक दशाओं के साथ सामंजस्य करना पड़ता है। उसे सही ढंग के मकान बनाकर और उचित वस्त्र पहनकर जलवायु के साथ सामंजस्य करना पड़ता है। उसे भूमि के अनुरूप ही फसल बोनी पड़ती है यद्यपि उसने उपज बढ़ाने में आश्चर्यजनक प्रगति की है। मनुष्य अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है, और बहुत ही खराब प्राकृतिक दशाओं वाले स्थानों के अलावा भूमितल के हर स्थान पर रहता है। फिर भी, अधिकतर लोग औसत तापक्रम वाले स्थानों में रहते हैं।

वर्तमान काल में यद्यपि विद्वान इस बात से सहमत हैं कि भौगोलिक पर्यावरण संस्कृति को प्रभावित करता है, बहुत थोड़े ही लोग इस प्रभाव को अन्तिम या एकमात्र महत्वपूर्ण मानते हैं। गोल्डनवाइजर ने ऐसे अनेक उदाहरण दिये हैं जो इस सिद्धान्त का खण्डन करते हैं कि भौगोलिक पर्यावरण ही सबसे महत्वपूर्ण कारक है। उनके अनुसार, कैलिफ़ोर्निया के आदिवासी ऐसे क्षेत्र में रहते थे जहाँ हर प्रकार की वस्तुओं को बनाने योग्य लकड़ी बहुतायत में पायी जाती थी। लकड़ी के काम में उनके दक्ष होने की आशा की जा सकती थी। परन्तु यथार्थता तो यह है कि इन आदिवासियों ने लकड़ी के उद्योग का कभी भी विकास न किया, बल्कि डलिया बनाने की कला को विकसित किया। इसी प्रकार, यद्यपि मिट्टी के बर्तन बनाने योग्य मिट्टी

उत्तरी अमरीका के लगभग सभी क्षेत्रों में पायी जाती है, परन्तु बर्तन बनाने का कार्य केवल थोड़ी सी ही वन्यजातियाँ करती हैं।

अरस्तू के समय से यह विचार फैला कि मनुष्य और उसकी संस्कृति पर प्राकृतिक पर्यावरण का निर्णायक और अन्तिम प्रभाव होता है। अरस्तू के विचार में ग्रीक लोगों की महानता का कारण यह था कि वे अत्यन्त अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण में रहते थे। आधुनिक काल में, माण्टेस्की ने सबसे पहले इस बात पर बल दिया कि भूगोल ही मनुष्य के शारीरिक और मानसिक गुणों को विकसित करता है। माण्टेस्की ने कहा कि ठण्डे देशों में रहने वाले स्वभाव से सुस्त, धैर्यवान, दर्द को अधिक सहन करने वाले, यौन उत्तेजना में कम, परन्तु शरीर से अधिक मजबूत, कठोर, शक्तिशाली और बहादुर होते हैं, और गर्म देशों में रहने वाले सामान्यतः गर्म-मिजाज, भावुक, कामी, कमजोर, कायर, और सन्तोषी होते हैं। इसी प्रकार इंगलिश इतिहासकार थामस बकल ने संस्कृति के ऊपर भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव पर बल दिया। रैज़ेल ने कहा कि किसी देश के राजनीतिक संगठन और वहाँ के भौगोलिक पर्यावरण में निश्चित सम्बन्ध है।

अमेरिकन भूगोलशास्त्री हन्टिंगटन ने भी व्यक्तियों के कार्यों पर जलवायु के प्रभाव को अंतिम माना। उसके अनुसार तापक्रम का अत्यधिक गर्म या ठण्डा होना और बारम्बार बदलना कार्यकुशलता में कमी लाता है। उसके अनुसार औसत तापक्रम वाले क्षेत्रों में ही महान् सभ्यताओं का जन्म और विकास हुआ। प्रश्न उठता है कि यदि ऐसी ही बात है, तो ऐसा क्यों है, उदाहरण के लिये, कि अमेरिका में पूर्व-कोलम्बियन सभ्यता जिसकी अनेक मानों में प्राचीन मिश्र की सभ्यता से तुलना की जा सकती थी गर्म जलवायु वाले केन्द्रीय अमेरिका के माया के आदिवासियों में विकसित हुई, न कि उत्तर के आदिवासियों में? क्या कारण है कि आदर्श जलवायु में रहने वाले कैलिफोर्नियन आदिवासियों ने अन्य अमेरिकन आदिवासियों की अपेक्षा सबसे कम प्रगति की?

हम इस बात के अन्य उदाहरण भी दे सकते हैं कि एक से पर्यावरण के साथ भिन्न प्रकार का सामंजस्य किया जा सकता है। इसके उदाहरण के लिए हम ऐस्किमो, चकची, और कोरयाक लोगों को लेते हैं। बरफ से सदा घिरे रहने के कारण ऐस्किमो लोग बर्फ के मकान बनाते हैं। जहाँ कहीं भी वे होते हैं थोड़े ही समय में वे बर्फ के मकान बनाकर तूफान और ठण्ड से अपनी रक्षा करते हैं। परन्तु चकची और कोरयाक लोग, जो हूबहू ऐसे पर्यावरण में रहते हैं, बर्फ के मकान के बारे में कोई जानकारी नहीं रखते। यह लोग चमड़े के तम्बू बनाकर रहते हैं। वे ऐसा ही हमेशा करते हैं यद्यपि स्थानांतरण करने पर उन्हें इन तम्बुओं को लादकर ले जाना पड़ता है। इन लोगों के बीच पाया जाने वाला दूसरा अन्तर यह है कि अपने पर्यावरण में समान

रूप से पाये जाने वाले वाहमृग (reindeer) का यह फर्क ढंग से इस्तेमाल करते हैं। ऐस्किमो जिन्होंने कभी भी जानवरों को पालना नहीं सीखा इनको मांस-भोजन के लिये प्रयोग करते हैं और सामान ढोने के लिये कुत्तों का प्रयोग करते हैं। दूसरी ओर, चकची और कोरयाक गाड़ी में जोतने के लिए वाहमृग का प्रयोग करते हैं जो कुत्ते की अपेक्षा इस कार्य के लिये अधिक उपयुक्त हैं।

इस प्रकार, जैसा कि गोल्डनवाइजर का कथन है, भौगोलिक पर्यावरण केवल इस बात पर सीमा बाँधता है कि मनुष्य किसी प्रकार की सभ्यता का विकास करेगा यद्यपि वह उसके स्वरूप और दिशा को निश्चित नहीं करता। उदाहरण के लिये, चिकनी मिट्टी के न होने पर मकान बनाने के लिये मनुष्य उसका प्रयोग नहीं करेगा, यद्यपि विदेश से वह मँगा सकता है। परन्तु इस वस्तु का होना ही यह निश्चय नहीं करेगा कि उसका इस या उस कार्य के लिए प्रयोग होगा ही जब तक कि उसके गुणों का पता नहीं लग जाता और उसकी कद्र नहीं की जाती। दूसरे शब्दों में, उस वस्तु का क्या प्रयोग होगा वह समाज में स्थित सभ्यता के स्तर पर निर्भर करेगा।

यहाँ यह लिख देना आवश्यक है कि जैवकीय और मनोवैज्ञानिक कारकों की भाँति ही भौगोलिक कारक मनुष्य के कार्यों पर सीमा जरूर लगाते हैं परन्तु उनको पूर्ण रूप से निश्चित नहीं करते। मनुष्य के व्यवहार पर अन्तिम प्रभाव सामाजिक कारकों का होता है।

भौगोलिक पर्यावरण और जनसंख्या

इस बात का हमें काफी प्रमाण मिलता है कि वे भौगोलिक क्षेत्र जो कि पानी, मिट्टी, जलवायु, खनिज पदार्थ आदि के कारण मनुष्य के रहने के लिए आरामदेह हैं और जहाँ उनकी प्रारम्भिक आवश्यकतायें सरलता से पूरी हो सकती हैं वहाँ हमें घनी जनसंख्या मिलती है। संसार के केवल १/५ भू-भाग पर ही सभी महान ऐतिहासिक सभ्यतायें उत्पन्न हुईं। यहाँ भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी और समुद्र और नदियों के कारण जल की सुविधा थी। शुरू में सभ्यता वहीं फैली जहाँ प्रकृति की ओर से खाद्य सामग्री का आधिक्य था। इन्हीं कारणों से नील, यूफ्रेट्स और गंगा की घाटियों को सभ्यता का झूला (cradle of civilization) कहा जाता है।

शहर और गाँव के जीवन का अन्तर इस बात पर प्रकाश डालता है कि जनसंख्या का घनत्व कितना महत्वपूर्ण होता है। पहले जमाने में 'व्यवसाय का बँटवारा' (division of occupation) केवल ऐसे ही स्थानों पर सम्भव था जहाँ जनसंख्या अधिक थी। जहाँ जनसंख्या अधिक होगी वहाँ आविष्कार फैलेंगे और लुप्त न होंगे। किसी भी सभ्यता का हमेशा स्थायी रहना उस स्थान की सैनिक

शक्ति पर निर्भर करता है जो कि स्वयं वहाँ की जनसंख्या पर निर्भर करता है। गर्म और उपजाऊ भूमि पर जहाँ भोजन सरलता से मिलता है वहाँ आगे चल कर रहन-सहन का दर्जा गिर जाता है। इसी प्रकार साइबेरिया व सहारा रेगिस्तान हमेशा से जनशून्य रहे हैं। भारतवर्ष में गंगा, सिन्ध और दूसरी नदियों के किनारे बड़े शहर बसे और बड़ी संख्या में लोग रहते रहे हैं।

आलोचना :—वास्तव में यह पता लगाना मुश्किल है कि कौन सी भौगोलिक दशायें सुविधाजनक हैं। इसके अतिरिक्त वे दशायें जो किसी जनजातीय समाज के लिए सुविधाजनक हैं वे ही किसी औद्योगिक समाज के लिए अनुपयुक्त हो सकती हैं। एक स्थान के भौगोलिक पर्यावरण की कोई एक दशा जैसे कि जलवायु उपयुक्त होने पर किसी अन्य बात में जैसे खनिज पदार्थ, मिट्टी में अनुपयुक्त हो सकती है।

भौगोलिक पर्यावरण में कोई विशेष अन्तर न होने पर भी वहुत से ऐसे स्थान आबाद हो गये हैं जो पहले जनशून्य थे और ऐसे स्थान जनशून्य हो गये जो पहले आबाद थे। इसका मुख्य कारक सामाजिक रहा है।

भौगोलिक पर्यावरण और आर्थिक व्यवसाय

भौगोलिक पर्यावरण किसी भी स्थान की मांग और पूर्ति को प्रभावित करता है। ठंडे देशों में जिन वस्तुओं की मांग होती है सम्भव है गर्म देशों में उनकी माँग न हो। इन वस्तुओं की पूर्ति (supply) और व्यवसायों का रूप उस स्थान में प्राप्त कच्चे माल और दूसरे प्राकृतिक साधनों पर निर्भर करता है। कहीं पर मछलियों का पाया जाना और कहीं खेती के लिये अच्छे भौगोलिक पर्यावरण का होना उस स्थान की संस्कृति के ढांचे को बनाता है। इसलिए कहीं पर हमें मछुए और नाविक और कहीं पर खान में काम करने वाले मिलते हैं। इसी प्रकार किसी स्थान का व्यापार वहाँ प्राप्त होने वाले कोयले और लोहे पर निर्भर करता है; कहीं पर जलशक्ति पर और कहीं पर मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए प्राप्त पत्थर अथवा मिट्टी पर।

जिस तरह मनुष्य अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं वह उनके घरेलू संगठन को भी प्रभावित करता है। तिब्बत के बहुपति विवाह का कारण भौगोलिक पर्यावरण से प्रभावित उनके आर्थिक संगठन का होना है। समुद्र तट पर रहने वाले मछुओं में जहाँ पुरुष अधिकतर घर से दूर रहते हैं और घर का सारा प्रबन्ध स्त्रियों के हाथ में रहता है वहाँ स्त्रियों के अधिकार और प्रभाव असीम होते हैं: घास के मैदान पर के चरवाहों में पितृसत्ता और बहुपत्नी-विवाह पाया जाता है।

(अ) भौगोलिक दशायें और सम्पत्ति :—अनेक लेखकों ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि समाज में उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति और समाज के पास जो कुछ भी सम्पत्ति होती है वह पूरी तौर पर भौगोलिक दशाओं पर निर्भर करती है।

सामाजिक जीवन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में यह बात विशेष रूप से सत्य थी। बकल ने कहा कि जलवायु, खाद्य सामग्री और मिट्टी द्वारा किसी देश के लोगों को प्राप्त वस्तुओं में सम्पत्ति-संचय सबसे प्रथम रहा है और अपनी प्रारम्भिक अवस्था में सम्पत्ति का इतिहास पूरी तौर पर मिट्टी और जलवायु पर निर्भर करता था।

आलोचना :—यद्यपि यह सत्य है कि जलवायु और मिट्टी किसी समाज की सम्पत्ति में महत्वपूर्ण होते हैं परन्तु यह एकमात्र कारण नहीं हैं। प्रथम, सम्पत्ति की धारणा बदलती रहती है। भौगोलिक पर्यावरण से प्राप्त कौन सी वस्तुयें आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होंगी यह समाज पर भी निर्भर करता है। तेल, कोयला, लोहा आदि की बहुतायत ऐसे समाज में होना आर्थिक दृष्टि से बेकार है जहाँ के लोग उनका उपयोग करना नहीं जानते।

दूसरे, यह सोचना गलत है कि पहले जमाने की सभी धनी सभ्यतायें अनुकूल प्राकृतिक पर्यावरण में ही पनपीं। स्पार्टा, एथेन्स और प्राचीन मिश्र की प्राकृतिक दशायें केवल कुछ ही अर्थ में अनुकूल थीं, बाकी से वहाँ के लोगों ने अनुकूलन किया। दूसरी ओर, अमेरिका के प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता के बावजूद वहाँ के आदिवासियों ने संपत्ति संचय नहीं कर पायी।

तीसरे, यह कहना गलत होगा कि एक से भौगोलिक पर्यावरण में रहने वाली सभी वन्य जातियाँ समान रूप से धनी हैं।

चौथे, समकालीन समाजों के प्रत्येक व्यक्ति की औसत सम्पत्ति के अन्तर को भौगोलिक दशाओं के संदर्भ में ही नहीं समझा जा सकता। एक से भौगोलिक पर्यावरण में रहने वाली जनसंख्या की निर्धनता और समृद्धि में उतार-चढ़ाव होता रहता है। युद्ध, हड़तालें, निर्यात (export) में कमी आदि अनेक सामाजिक और राजनीतिक कारक इसके लिये उत्तरदायी हो सकते हैं।

(ब) भौगोलिक दशायें और समाज के उद्योगों की प्रकृति :—यह स्पष्ट है कि जिस समाज के क्षेत्र में कोयला या अन्य मूल्यवान खनिज पदार्थ और धातुयें नहीं होतीं वहाँ पर खदानों (mining) का उद्योग विकसित नहीं हो सकता। जिस क्षेत्र की मिट्टी उपजाऊ नहीं होती वहाँ ऐसे समाज का विकास नहीं हो सकता जिसका मुख्य उद्योग कृषि हो।

आलोचना :—यद्यपि कुछ समाजों के सम्बन्ध में यह बात खरी उतरती है परन्तु दूसरे समाजों के उदाहरण से गलत साबित होती है। पहले, किसी क्षेत्र की भौगोलिक दशाओं के ज्ञान के आधार पर यह भविष्यवाणी करना आसान नहीं है कि वहाँ कौन से उद्योग होंगे। स्विट्जरलैंड और तिब्बत के पहाड़ों के निवासी एक सी भौगोलिक दशाओं में रहते हैं परन्तु जिन उद्योगों की सहायता से उनका जीवन-यापन होता है वह दोनों स्थानों में भिन्न है। बुशमैन और हरेरो एक से

रेगिस्तानों में रहते हैं परन्तु जबकि पहले का मुख्य उद्योग शिकार खेलना है, दूसरे का पशु पालन।

भौगोलिक दशायें और प्रजाति

अनेक लेखकों ने इस बात पर बल दिया है कि मनुष्य की अनेक शारीरिक विशेषतायें भौगोलिक पर्यावरण के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव का फल हैं। उदाहरण के लिये, कद, शरीर का रंग, चमड़ी की मोटाई, बालों की बनावट, छाती का आकार आदि के अन्तर की भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव के रूप में व्याख्या दी गई।

आलोचना :—वास्तव में प्रजातीय विशेषतायें वंशानुक्रमण से प्राप्त (inherit) की जाती हैं। यह सोचना कि यह विशेषतायें भौगोलिक पर्यावरण के द्वारा बदली जा सकती हैं और बदले जाने पर वंशानुगत (hereditary) बिशेषतायें बन जाती हैं यह मान लेना है कि अर्जित गुण (acquired traits) भी वंशानुत्रम से प्राप्त किये जा सकते हैं। इस बात को अधिकतर जीवशास्त्री (biologists) अस्वीकार करते हैं।

दूसरे, जो लेखक यह कहते हैं कि भौगोलिक पर्यावरण के द्वारा प्रजातीय विशेषतायें बदली जा सकती हैं वे यह भी मानते हैं कि इसमें विशेष परिवर्तन के लिए सैकड़ों और हजारों वर्ष लग जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव इतना धीमा होता है कि इधर दो या तीन वर्षों के किसी जनसंख्या के इतिहास में हुए प्रजातीय परिवर्तनों की व्याख्या के रूप में भौगोलिक पर्यावरण महत्वहीन है।

भौगोलिक पर्यावरण और स्वास्थ्य

यह बहुत पुराना विचार है कि जलवायु स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। अत्यधिक गर्म और अत्यधिक ठंडे जलवायु का मनुष्य के स्वास्थ्य और शारीरिक शक्ति पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इस विचार के समर्थकों के अनुसार मृत्युदर और जन्मदर का ऊँचा या नीचा होना जलवायु के अनुकूल या प्रतिकूल होने पर निर्भर करता है।

आलोचना :—इस सिद्धान्त के समर्थक निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हैं; क्या जलवायु परिवर्तन के द्वारा या किसी तत्व के द्वारा या आर्द्रता (humidity) के द्वारा या इनमें परिवर्तन के द्वारा या किसी अन्य तत्व के द्वारा प्रभावित करती है? सभी मानों में सबसे अच्छे मानव स्वास्थ्य के लिए जलवायु का अनुकूलतम (optimum) बिन्दु क्या है? क्या यही अनुकूलतम बिन्दु सभी मनुष्यों के लिए समान है या एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के लिए, और एक समूह से दूसरे समूह के लिए, बदलता रहता है?

दूसरे, यद्यपि मृत्यु दर का काम होना स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण आधार है परन्तु पूरी तौर पर विश्वसनीय नहीं है। उदाहरण से लिए, जिन देशों में जन्म दर

ऊँची है वहाँ मृत्यु दर भी ऊँची है और जहाँ जन्म दर नीची है वहाँ मृत्यु दर भी नीची है। वास्तव में उच्च जन्मदर किसी देश के निवासियों की शारीरिक शक्ति का लक्षण है।

भौगोलिक स्थिति और उन्नति व निश्चलता

सामाजिक उन्नति की पहली शर्त विभिन्न देशों और राज्यों का पारस्परिक सन्देश (inter-communication) देना है। जो राज्य पहाड़ों, दलदल, जंगल और रेगिस्तान से घिरे होते हैं उनकी उन्नति में बाधा पहुँचती है। दूसरी ओर नदियाँ, अच्छे बन्दरगाह, पहाड़ी दर्रे और सफर के दूसरे प्राकृतिक मार्गों की उपस्थिति किसी स्थान की सामाजिक उन्नति में सहायक होते हैं। इस दृष्टि से बम्बई, कलकत्ता और मद्रास अधिक उन्नतिशील हैं। जलमार्ग की सुविधा होने से विदेशी यात्री भी आते जाते रहते हैं और संस्कृति का विकास होता रहता है।

दूसरी ओर, किसी देश का उन्नतिशील देशों से दूर रहना उसकी उन्नति में बाधक होता है। उदाहरण के लिए जिस समय मिश्र, रोम और ग्रीस उन्नति के शिखर पर पहुँच चुके थे उस समय अमेरिका में बर्बरता ही पायी जाती थी। आज बर्बरों का भी उतना ही प्राचीन इतिहास है जितना कि हमारा, लेकिन अन्य सभ्यताओं से सामाजिक सम्बन्ध न होने के कारण वे अब तक बर्बर बने हैं। बाहरी सामाजिक सम्बन्धों से रीति-रिवाज में भी परिवर्तन होता है और विदेशी विचार और रहन-सहन के सम्मुख अपनी अच्छाइयों व बुराइयों का पता लगता है और आविष्कारों को फैलने का अवसर मिलता है।

भौगोलिक स्थिति और कानून की स्थापना

कानून की अनुपस्थिति (lawlessness) वास्तव में प्राकृतिक साधनों की कमी और भौगोलिक दुर्गमता (inaccessibility) का फल है। यह दो कारणों से सत्य है। पहला यह कि किसी निर्धन और दुर्गम स्थान के लोगों को बाहरी लुटेरों के आक्रमण का भय नहीं रहता और इसलिए अपने ऊपर सख्त निगरानी उन्हें सहन नहीं है; दूसरे दुर्गम स्थानों पर अपराधी आसानी से पकड़े नहीं जा सकते। दूसरी ओर खुले और उपजाऊ मैदानों में शासन आसानी से स्थापित किया जा सकता है क्योंकि एक तो वहाँ के लोग आसानी से कानून की पकड़ में आ सकते हैं और दूसरे धनवान किसान होने के कारण उनकी स्वयं यह इच्छा होती है कि कानून सख्त हो जिससे लुटेरों से उनकी रक्षा की जा सके। इन्हीं कारणों से डकैती, पारस्परिक रक्तपात और व्यक्तिगत प्रतिशोध की घटनायें पहाड़ी स्थानों पर अधिक होती हैं।

भौगोलिक पर्यावरण और मानव कार्य-कुशलता

२००० वर्ष पूर्व अरस्तू ने कहा था कि उत्तरी योरोप के निवासी शीत के

कारण उत्साहपूर्ण हैं परन्तु बुद्धिमत्ता और कुशलता से हीन हैं। वे स्वयं स्वतन्त्र रह सकते हैं परन्तु दूसरों पर शासन करने के अयोग्य हैं। दूसरी ओर एशिया के निवासी बुद्धिमान और आविष्कारक हैं परन्तु उत्साहहीन होने के कारण गुलाम हैं। ग्रीस के निवासी जो इन दोनों के बीच रहते हैं उत्साहपूर्ण और बुद्धिमान दोनों हैं; इसलिए संसार में शासन करने में समर्थ हैं। अठारहवीं शताब्दी में मॉन्टेस्की ने यह विचार प्रकट किया कि गर्म जलवायु दुर्बलता (effiminacy) उत्पन्न करती है और इसलिए गुलामी का कारण है, और ठण्डे जलवायु के लोग बहादुर और स्वतन्त्र होते हैं। अधिक गर्मी साहस को कम करती है जबकि ठण्डक मन और शरीर को शक्ति प्रदान करती है। हण्टिंगटन के अनुसार उच्च तापक्रम में कार्य करने की इच्छा नहीं होती और उसके परिणाम स्वरूप संसार की मुख्य सभ्यतायें ऐसे स्थानों में जन्मी जहाँ का तापक्रम औसत होता था। मिश्र और सिन्धुघाटी जैसे गर्म स्थानों की सभ्यता के विषय में उनका कहना है कि वर्ष में कम-से-कम छः महीने वहाँ का तापक्रम ऐसा रहता था जो सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था में सहायक था।

आलोचना:—एक ही मौसम का भिन्न आयु, लिंग, शहरी और ग्रामीण लोगों आदि पर भिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है। अमेरिका में हुए अनेक अध्ययनों से पता लगता है कि ४० वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों की कार्य-कुशलता बसन्त ऋतु में घटती है। जबकि ४० वर्ष से ऊपर आयु के लोगों की कार्य-कुशलता बढ़ती है। इसी प्रकार से स्त्री और पुरुष कारीगरों, प्रशिक्षित और गैर प्रशिक्षित, विवाहित और अविवाहित, नागरिक और ग्रामीण कारीगरों पर बसन्त ऋतु का भिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है। जो बात बसन्त ऋतु के लिये सत्य ही है वही अन्य ऋतुओं के लिए भी सत्य है।

जलवायु और मानसिक कुशलता

हण्टिंगटन के विचार में जलवायु का मानसिक कुशलता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यद्यपि मानसिक कार्य शारीरिक कार्य से मिलता जुलता है फिर भी दोनों में विशेष अन्तर भी है। मानसिक कार्य के लिये बाहरी अनुकूलतम (optimum) तापक्रम ३९° F है न कि ६४° F। दूसरे, जब तापक्रम में गिरावट आती है, शारीरिक कार्य की अपेक्षा मानसिक कार्य को अधिक हानि होती है। वायु के थोड़ा गर्म होने पर प्रेरणा प्राप्त होती है परन्तु तेजी से वायु के गर्म होने से बुरा प्रभाव पड़ता है।

आलोचना :—अपने अध्ययनों से यह प्रमाणित हुआ है कि भिन्न प्रकार के मानसिक कार्यों के लिए भिन्न प्रकार की भौगोलिक दशायें अनुकूल होती हैं।

दूसरे, प्रत्येक दो व्यक्तियों के लिए, जिनका अध्ययन किया गया, अनुकूलतम तापक्रम भिन्न था।

जलवायु और आत्महत्या

वैगनर, डैक्सटर, बोडियो, वॉन मेयर जैसे लेखकों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कुछ योरोपियन और कुछ ग़ैर-योरोपियन देशों में आत्महत्या में 'मौसमी' उतार चढ़ाव होता है। सभी योरोपियन देशों में सबसे अधिक आत्महत्यायें गर्मियों में होती हैं। सबसे अधिक जून या मई में, फिर बसंत ऋतु में और सबसे कम जाड़ों में। इन लेखकों के अध्ययनों से यह भी पता लगा कि आत्महत्या की दर में साप्ताहिक और दैनिक अन्तर भी होते हैं। इस प्रकार, इन लेखकों ने जलवायु, तापक्रम, सूर्य का प्रकाश और हवा के दबाव में उतार-चढ़ाव को आत्महत्या की दर के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बताया।

आलोचना :—डरखम, क्रोज और जैकार्ट आदि लेखकों ने उपरोक्त सिद्धान्त का खण्डन किया और कहा कि यदि आत्महत्या के ऊपर जलवायु का कोई प्रभाव पड़ता भी है तो वह अप्रत्यक्ष और महत्वहीन होता है। इससे इस बात का पता नहीं लगता कि विभिन्न समाजों और देशों में, नगरों और गाँवों में, विवाहित और अविवाहित, और तलाक प्राप्त लोगों में आत्महत्या की दर भिन्न क्यों होती है। डरखम के विचार में आत्महत्या के लिये जलवायु जिम्मेवार नहीं है, बल्कि इसका कारण समाज के सदस्यों का समाज से दूर-दूर या अलग रहना है।

जलवायु और प्रतिभा और सभ्यता का उद्‌विकास

हण्टिंगटन ने जलवायु और प्रतिभा (genius) और सभ्यताओं के विकास और पतन के बीच सम्बन्ध दिखाने का प्रयास किया है। यह सम्बन्ध उसकी तीन बातों पर आधारित है, जलवायु का स्वास्थ्य पर महान प्रभाव पड़ता है, यह शारीरिक और मानसिक कुशलता निश्चित करता है, और समय के साथ-साथ जलवायु निरन्तर बदलता रहता है। क्योंकि सभ्यता जनसंख्या की शक्ति, कुशलता, बुद्धि और प्रतिभा पर निर्भर करती है और यह गुण जलवायु द्वारा निश्चित होते हैं इसलिये इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सभ्यता के उतार-चढ़ाव में प्रमुख कारक जलवायु ही है।

आलोचना:—यह हमने अन्यत्र दिखाया है कि शारीरिक और मानसिक कुशलता आदि भौगोलिक कारकों द्वारा ही निश्चित नहीं होते। जहाँ सभ्यता की उन्नति और पतन दोनों हुये हैं वहाँ के ऋतु विभागीय अभिलेखनों (meteorological records) से यह पता लगता है कि ऐतिहासिक काल में वहाँ की जलवायु में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

हम सब यह जानते हैं कि एक ही जलवायु में रहने वाले विभिन्न वर्ग प्रतिभाशाली व्यक्तियों को भिन्न संख्या में उत्पन्न करते हैं। हम यह भी जानते हैं कि उसी

देश में एक दशाब्दी से दूसरी दशाब्दी में, एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी में और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रतिभावान व्यक्तियों की संख्या भिन्न रहती है ।

भौगोलिक पर्यावरण और संस्कृति एवं मनुष्यों का फैलना

भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव देशान्तर (migration), युद्ध और वाणिज्य पर पड़ता है जो फिर जनसंख्या, वस्तुओं और रीति-रिवाजों को प्रभावित करते हैं। जिन मार्गों से यह वस्तुयें गुजरीं वे दो बातों पर नियन्त्रित होते हैं—(१) प्राकृतिक मार्ग जो कि पहाड़ी दर्रे, नदियों तथा बन्दरगाहों पर निर्भर है । यदि मार्ग अच्छा नहीं है तो एक राज्य के लोग दूसरे राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते; (२) दूसरे प्राकृतिक साधनों का स्थान । अफ्रीका में योरोप निवासियों ने तभी जाना शुरू किया जब वहाँ के हाथी दाँत ने उनका ध्यान आकर्षित किया । आस्ट्रेलिया और कैली-फोर्निया में होने वाली सोने की खोज के कारण वहाँ असंख्यों विदेशियों का प्रवेश हुआ । यह उदाहरण यह प्रमाणित करते हैं कि प्राकृतिक साधन और मार्ग सामाजिक वितरण को प्रभावित करते हैं । इसी प्रकार विचार भी सफर करते हैं और अक्सर ऐसे स्थानों पर पहुँच सकते हैं जहाँ मनुष्य भी नहीं पहुँच सकते । भौगोलिक पर्यावरण इस बात को निश्चित करता है कि कौन-सा विचार कहाँ तक फैलेगा । मक्के की संस्कृति ऐसे स्थानों में फैली जहाँ मक्का उत्पन्न हो सकता था और घोड़े की संस्कृति मैदानों में फैली, न कि घने जंगलों में ।

भौगोलिक पर्यावरण और खाना-पीना और वस्त्र

भौगोलिक पर्यावरण हमारी खाने-पीने और पहनने की रुचि पर प्रभाव डालता है । जो भोजन जिस स्थान पर उपलब्ध है वह इस बात को निश्चित करता है कि वहाँ के लोग कैसा भोजन करेंगे । समुद्र तट पर रहने वाले अधिकतर मछली खाते हैं और जहाँ फल अधिक उत्पन्न होते हैं वहाँ फल अधिक खाये जाते हैं । एस्किमो सील मछली पर निर्भर रहते हैं । मालाबार और बम्बई के निवासी कच्चे नारियल का प्रयोग करते हैं क्योंकि यह वहाँ प्रचुर मात्रा में होता है । मद्रास, बिहार व बंगाल में चावल इसलिये अधिक खाया जाता है । ठंडे देशों में मद्यपान आवश्यक हो जाता है । इसी प्रकार ठंडे देशों और मौसमों में मोटे और गर्म वस्त्र पहने जाते हैं और गर्म देशों में हल्के और ठण्डे वस्त्र । लम्बे और ढीले वस्त्र गर्म देशों में पहने जाते हैं और चुस्त वस्त्रों का जन्म उत्तर में हुआ । यह दैनिक जीवन के प्रयोगात्मक अन्तर (practical difference) इस बात को भी निश्चित करते हैं कि खाने, पीने और पहनने में क्या सुन्दर है ।

भौगोलिक पर्यावरण और सड़क व मकान

सड़क की दिशा उस स्थान की भूमि पर निर्भर करती है । पहाड़ी स्थान पर-

जैसे देहरादून से मंसूरी-सड़क चक्करदार और ऊँची–नीची बनायी जाती है जबकि मैदानों में सीधी सड़कें बनती हैं। जहाँ पत्थर अधिक मिलते हैं वहाँ पत्थर के मकान, उदाहरण के लिये राजस्थान में और जहाँ लकड़ी अधिक होती है वहाँ लकड़ी के मकान बनाये जाते हैं। ऐस्किमो अपने मकान बर्फ से बनाते हैं। जापान में भूचाल अधिक आते हैं इसलिये वहाँ लकड़ी के मकान बनते हैं।

भौगोलिक पर्यावरण और धर्म

समाज में किन दैवी शक्तियों पर विश्वास किया जायेगा यह वहाँ के भौगोलिक पर्यावरण पर निर्भर करता है। खुले मैदान पर रहने वाले सूर्य और चन्द्रमा की पूजा करना सीखते हैं; पहाड़ों पर पहाड़ और तूफान के देवता की; समुद्र के किनारे समुद्र देव की; और नदी के किनारे नदी के देवता की पूजा करते हैं। मनुष्य ऐसी शक्तियों की पूजा करते हैं जो कि इनके पर्यावरण के प्राकृतिक कार्यों को नियन्त्रित करती हैं। इसलिये कहीं पर फसल के देवता की और कहीं पर व्यापार के देवता की पूजा की जाती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है इसलिये यहाँ सूर्य, वरुण और इंद्र आदि देवताओं की पूजा की जाती है जो कि यहाँ के निवासियों के विश्वास में कृषि से सम्बन्धित थे।

भौगोलिक पर्यावरण और कला व साहित्य

साहित्य में भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अरेबियन नाइट्स, इलियड तथा महाभारत में जो वृक्षों, पशुओं और प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है वह एक दूसरे से भिन्न है। इसका कारण यह है कि उनके रचयिता विभिन्न भौगोलिक पर्यावरण में रहने वाले थे। प्रकृति हमारे सजाने की रुचि को भी निश्चित करती है, उदाहरण के लिए कमल का फूल, शेर या मगर का सर। चित्रकार भी भौगोलिक पर्यावरण से प्रेरणा लेते हैं। सौन्दर्य की वस्तुओं की धातु किसी स्थान में प्राप्त धातुओं पर निर्भर रहती है। ग्रीस में मन्दिरों और मूर्तियों के लिये संगमरमर आवश्यक था क्योंकि माउन्ट पैण्टिलिकस पर ऐसे पत्थरों का बाहुल्य था।

पशुपालन, पौधों का उत्पादन और भौगोलिक पर्यावरण

यह भौगोलिक पर्यावरण पर निर्भर करता है कि किस स्थान में किस प्रकार के पशुओं का पालन हो सकेगा। उदाहरण के लिये, मछली पानी में, ऊँट रेगिस्तान में, बनैले पशु जंगलों में, गाय-भैंस मैदान में पलते हैं।

इसी प्रकार, जहाँ तक गेहूँ, चावल, चाय, आम, अंगूर, सेब आदि के पौधों का प्रश्न है वे अनुकूल भौगोलिक क्षेत्रों में ही हो सकते हैं। अत्यधिक गर्मी में चावल, अत्यधिक ठंड में गेहूँ, आम आदि होना सम्भव नहीं है। वास्तव में, विज्ञान की

सहायता से नकली वातावरण उत्पन्न करके ऐसा किया जा सकता है परन्तु ऐसा करना अत्यन्त मँहगा होगा।

सम्पत्ति और भौगोलिक पर्यावरण

अनेक भौगोलिकवादियों ने इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि राष्ट्रीय सम्पत्ति देश के भौगोलिक पर्यावरण पर पूर्ण रूप से निर्भर करती है। आज अमेरिका के सबसे धनी देश होने का कारण यह है कि यहाँ खनिज पदार्थों की बहुतायत है। कोयला, तेल, लोहा आदि अमेरिका में विशाल मात्रा में पाये जाते हैं। कच्चे माल और निर्मित वस्तुओं के निर्यात के द्वारा अमेरिका की समृद्धि बढ़ी है। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि खनिज पदार्थों की बहुतायत किसी देश की समृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारक अवश्य है, परन्तु एकमात्र कारण नहीं है। कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज से पहले भी वहाँ खनिज पदार्थों की बहुतायत थी परन्तु वह पिछड़ा हुआ देश था। अंग्रेज और अन्य योरोपियन लोगों के वहाँ पहुँचने, बसने और अपनी प्राद्योगिकी के द्वारा उसका उपयोग करने से ही वह समृद्ध हो सका।

राजनैतिक संगठन और भौगोलिक पर्यावरण

भौगोलिकवादियों का कहना है कि राजनैतिक संगठन ऐसे ही स्थानों में पाये जाते हैं जहाँ अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण के कारण लोगों का आर्थिक जीवन सुखी होता है और उसको व्यवस्थित बनाये रखने के लिये वे राजनीतिक संगठन बनाते हैं।

इसी प्रकार जिन क्षेत्रों में व्यापार अधिक होता है वहाँ व्यापार की अनिश्चितता के कारणऔर निर्धन से धनी, और धनी से निर्धन बनने की सम्भावना बराबर रहने से ऊँच-नीच की भावना पनप नहीं पाती और वहाँ प्रजातन्त्र पाया जाता है। दूसरी ओर, खेतिहर समाज में भूमि-स्वामी और साधारण किसानों की स्थिति के स्थायी रहने के कारण वहाँ कुलीन तन्त्र पाया जाता है। सत्यता तो यह है कि आज भौगोलिक पर्यावरण के भिन्न होने के बावजूद भी संसार के अधिकतर देशों में प्रजातन्त्र की स्थापना हो चुकी है।

भौगोलिक पर्यावरण का महत्व और सीमा

जिन स्थानों पर भौगोलिक पर्यावरण बहुत ही कठोर और दरिद्र होता है वहाँ प्रत्यक्ष प्रभाव हमें दिखता है। ऐसे स्थानों में मानव चुनाव सीमित रहता है। ऐस्किमो बर्फ के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से मकान, जानवरों की खाल के अतिरिक्त वस्त्र और मछली के अतिरिक्त भोजन किस वस्तु से तैयार कर सकते थे ? इसी प्रकार रेगिस्तानों में भी होकर वहाँ के निवासियों को भौगोलिक पर्यावरण के अनुसार अपना जीवन बनाना पड़ता है। यह भी सत्य है कि ऐसे स्थानों में कभी भी

महान् सभ्यताएँ नहीं जन्मी जिसका कारण यह भी है कि अपनी जीविका कमाने के बाद मानव शक्ति इतनी नहीं बच पाती कि वे उन्नति करें।

किसी स्थान में प्राकृतिक साधनों का होना किन्हीं विशेष विकासों में सहायक होता है। प्राचीन सभ्यतायें ऐसे स्थानों में बढ़ीं जहाँ समुद्र अथवा नदी के कारण यातायात और आवागमन की सुविधा थी। आज भी किसी राष्ट्र की सैनिक शक्ति वहाँ पर प्राप्त लोहे और तेल पर निर्भर करती है। जहाँ इन वस्तुओं का अभाव है उन देशों को बड़ी कीमत पर इनको दूसरे देशों से मँगाना पड़ता है जो कि कभी भी उनके जहाजों को अपने देश में प्रवेश करने से रोक सकते हैं। दूसरी ओर केवल अच्छे भौगोलिक पर्यावरण का होना ही किसी सभ्यता का जन्मदाता नहीं होता। अमेरिकन इण्डियन के पास सदा से लोहा, कोयला, तेल और बहुत घने जंगल थे लेकिन उनके पास यान्त्रिक ज्ञान (technical knowledge), सामाजिक मूल्य (social value), और उनके सदुपयोग की सामाजिक प्रेरणा (social drives) के न होने से अमेरिका ने पहले उन्नति न की थी।

जहाँ जटिल सभ्यतायें उत्पन्न हुई हैं वहाँ लैस्टर वार्ड का कथन — पर्यावरण पशु को बदल देता है जबकि मनुष्य पर्यावरण को बदलता है (Environment transforms the animal while man transforms the environment)—सत्य मालूम पड़ता है। पश्चिम में कहीं भी रहने की इच्छा होने पर मनुष्य रह सकता है। वह ठंडे जलवायु में भी गर्म रह सकता है और अपने को सख्त गर्मी से बचाने के लिए अपने मकानों को अप्राकृतिक ढंग से ठण्डा कर सकता है। वह समुद्र के अन्दर गोता लगाता है और आकाश में उड़ता है—जो क्षमता दैव-प्रदत्त नहीं है। वह रसायनों के द्वारा अनाज को ऐसे स्थान में उत्पन्न कर सकता है जहाँ वे नहीं होते थे और रेडियो की सहायता से उसने स्थान-समय की सीमा को पार कर लिया है।

फिर भी कुछ सीमायें बाकी हैं। किसी कठोर भौगोलिक पर्यावरण पर विजय पाना बहुत ही मँहगा होगा। मनुष्य यदि चाहे तो सहारा रेगिस्तान के मध्य में एक बड़ा शहर बना सकता है जहाँ काँच के बन्द किसी गुम्बज (glass-enclosed dome) के अन्दर अप्राकृतिक ढंग से नियंत्रित जलवायु हो, और खाद्य सामग्री, पानी और आवश्यकता की अन्य वस्तुओं को दूर से मँगा सकता है परन्तु इसमें खर्च असीम और बाधक होगा। इसलिये यह सत्य है कि जहाँ मनुष्य का यान्त्रिक ज्ञान उसके भौगोलिक पर्यावरण को जीतने में समर्थ है वहाँ मनुष्य की आर्थिक व्यवस्था (economy) ऐसे साहसपूर्ण कार्य में उसको सहायता नहीं दे सकती।

निष्कर्ष
(Conclusion)

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि कुछ हद तक भौगोलिक दशायें मानव

व्यवहार, सामाजिक संगठन और सामाजिक प्रक्रियाओं को निश्चित करती हैं। पर इस 'निश्चित करने' की प्रकृति क्या है ? यह प्रत्यक्ष है या अप्रत्यक्ष ? यह कठोर (rigid) है या लचीला (flexible)? क्या हमारे लिए यह सम्भव है कि हम सामाजिक प्रमेयों (phenomena) के साथ भौगोलिक दशाओं के निश्चित और सामान्य सम्बन्धों की अवधारणा बना सकें ? हम अपने अध्ययनों के द्वारा निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं।

(१) भौगोलिक दशाओं का प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों हो सकता है। यह प्रत्यक्ष तब है जब वे स्वयं सीधे किन्हीं सामाजिक प्रमेयों को प्रभावित करते हैं। यह अप्रत्यक्ष तब है जब यह उन प्रमेयों को प्रभावित करते हैं जो बदले में किन्हीं सामाजिक प्रमेयों को प्रभावित करते हैं।

(२) इसके अनुसार विभिन्न प्रकार के सामाजिक प्रमेयों के ऊपर भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव समान रूप से कठोर और प्रत्यक्ष नहीं होता। वे मानव क्रियायें और उनसे सम्बन्धित सामाजिक प्रमेय जिनका सम्बन्ध मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति से है जैसे भोजन, सोने के लिए आश्रय (shelter), वस्त्र आदि वे भौगोलिक दशाओं से अधिक प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हैं बनिस्बत उन मानव क्रियाओं और सामाजिक प्रमेयों के जो दूसरे किस्म के हैं। इस प्रकार सामाजिक प्रमेयों की ६ श्रेणियों पर भौगोलिक दशाओं का अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव है। मानव निवास (रहायशी क्षेत्र, मकानों और उनके बनावट की प्रकृति), सड़कों की दिशा और प्रकृति, पौधों की खेती और पशुपालन, खनिज पदार्थों का उपयोग और पौधों और पशुओं के जीवन का उद्ध्वंस या उजड़ना। इन छः सामाजिक तथ्यों के अलावा अन्य सब सामाजिक प्रमेय जैसे कि परिवार, राजनीतिक और सामाजिक सगठनों के स्वरूप, धर्म, कानून, साहित्य, विज्ञान आदि की प्रकृति भौगोलिक दशाओं से यदि प्रभावित हैं तो साधारण तौर पर।

(३) जहाँ कहीं भी किसी सामाजिक प्रमेय के साथ भौगोलिक दशाओं का सम्बन्ध हमें दिखलाई देता है वह लचीला होता है। यह बात हम कई प्रकार से समझ सकते हैं। पहले, यद्यपि अनेक मामलों में भौगोलिक कारक यह निश्चित करते हैं कि कोई विशेष प्रकार का सामाजिक प्रमेय (उदाहरण के लिए खदान उद्योग या किसी निश्चित क्षेत्र में मनुष्यों का बसना) किसी स्थान विशेष में घटित होगा या नहीं, परन्तु इस भौगोलिक सम्भावना का यह अर्थ नहीं है कि वह प्रमेय वास्तव में उस स्थान में घटित होता है। उदाहरण के लिये, किसी स्थान के प्रबल प्राकृतिक साधनों के बावजूद वहाँ खदान उद्योग नहीं भी विकसित हो सकता है यदि प्राकृतिक साधनों के सदुपयोग करने के लिए आवश्यक ज्ञान वहाँ के निवासियों के पास नहीं है। यही बात उस स्थिति में भी लागू हो सकती है जब भौगोलिक दशाओं को देखते

हुये यह लगता है कि एक विशेष प्रकार का प्रमेय वहाँ नहीं घटित हो सकता, उदाहरण के लिये रेगिस्तान या किसी अत्यन्त सूखे क्षेत्र में पौधों की खेती। फिर भी हम जानते हैं कि अप्राकृतिक (artificial) सिंचाई के द्वारा ऐसी बात आज सम्भव है। इन उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि भौगोलिक प्रभाव कठोर या गैर लचीला नहीं होता।

(४) जितनी ही जटिल कोई सभ्यता होती है, उतना ही कम स्पष्ट और कम निश्चित सम्बन्ध भौगोलिक दशाओं और सामाजिक प्रमेयों के बीच होता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसे समाजों में भौगोलिक कारक कार्य करना ही बन्द कर देते हैं, बल्कि यह है कि उनके प्रभाव को अन्य सामाजिक साधनों के द्वारा बेकार कर दिया जाता है।

भौगोलिक सम्प्रदाय
(Geographical School)

भौगोलिक सम्प्रदाय वह सम्प्रदाय है जो मानव क्रियाओं, सामाजिक जीवन और सामाजिक प्रमेयों के लिये केवल भौगोलिक दशाओं को ही पूरी तौर पर उत्तरदायी मानता है। वह सम्प्रदाय मनुष्य के सामाजित जीवन की व्याख्या करने में सामाजिक तथा अन्य कारकों को महत्वपूर्ण समझता है। हिपोक्रेटीज ने सबसे पहले भौगोलिक कारकों के महत्व की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। अरस्तू, मॉण्टेस्की, बकल, हण्टिंगटन, लेप्ले, रैजेल, ब्रून्स, बोडिन, आदि इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक माने जाते हैं। इन लेखकों के विचार में प्रत्येक समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और साँस्कृतिक जीवन का प्रत्येक पहलू भौगोलिक पर्यावरण द्वारा ही निर्धारित होता है।

बोडिन के विचार (Bodin's view's)—इनके अनुसार किसी स्थान की जलवायु वहाँ के निवासियों की प्रकृति को निश्चित करती है। ठण्डी जलवायु में हिंसात्मक प्रवृत्ति जन्मती है, गर्म जलवायु अन्धविश्वासों को जन्म देती है। दूसरी ओर शीतोष्ण (temperate बहुत सर्द न बहुत गर्म) जलवायु विचार शक्ति को विकसित करती है। इसी कारण शीतोष्ण कटिबन्ध में ही अधिकतर राजनैतिक नेता और अन्य विद्वान होते हैं।

मॉण्टेस्की के विचार (**Montesquieu's view's**)— मॉण्टेस्की ने ठण्डी जलवायु को सभ्यता के विकास में सबसे महत्वपूर्ण कारक माना। उसके विचार में ठंडी जलवायु में रहने वाले लोग अधिक शक्तिशाली होते हैं क्योंकि ठंडी जलवायु फेफड़ों और रक्त शिराओं के ठीक से काम करने के लिये आवश्यक है। ऐसे जलवायु में रहने वाले लोग उत्साही, हिम्मती और प्रभुत्व की कामना रखने वाले होते हैं। यह लोग कम कुटिल और कम शक्की सुभाव के होते हैं। व्यापार और वाणिज्य भी ऐसे ही जलवायु में पनपता है। यदि यह जलवायु भूमि के भी अनुकूल होती है और वहाँ खूब खेती होती है तो वहाँ की जनसंख्या भी बढ़ती है।

बकल का सिद्धान्त (**Theory of Henry Buckle**)—मानव जीवन के ऊपर इन्होंने भौगोलिक पर्यावरण की चार बातों के प्रभाव को निश्चायक माना है। यह है : जलवायु, भूमि, भोजन और प्रकृति के सामान्य पक्ष। अनुकूल जलवायु, भूमि और भोजन के होने पर धन को संचय करना सरल होता है। ऐसा होने पर अनेक लोग जीविका कमाने की परेशानी से बच जाते हैं और अपना समय और शक्ति ज्ञानोपार्जन में लगाते हैं जिससे सभ्यता का विकास सम्भव होता है। अच्छी जलवायु के होने पर कठिन परिश्रम करना सरल होता है और जमीन अच्छी होने पर फसल अच्छी होती है। इन्हीं आधारों पर प्राचीन सभ्यताओं का विकास हुआ है।

प्रकृति के सामान्य पक्ष के सम्बन्ध में बकल ने कहा कि प्राकृतिक अवस्था के ही अनुसार मनुष्य की कल्पना शक्ति और बुद्धि का विकास सम्भव है। जहाँ प्रकृति के भयानक रूप जैसे भूकम्प, अकाल, बाढ़ आदि अधिक देखने को मिलते हैं वहाँ मनुष्य प्रकृति की शक्ति के सामने अपने को झुका देता है जिससे उस देश में विज्ञान के स्थान में कविता और धर्म अधिक विकसित होते हैं। इसके विपरीत जहाँ प्रकृति शान्त है वहाँ विज्ञान की उन्नति होती है।

हण्टिंगटन का सिद्धान्त (**Theory of Huntington**)—इन्होंने कहा कि सभ्यता के विकास का प्रमुख कारक भौगोलिक पर्यावरण है। जहाँ जलवायु अनुकूल होती है वहीं उच्च सभ्यता विकसित हो पाती है। हिण्टिंगटन के विचार में जिन देशों में बौद्धिक विकास हुआ है उनकी जलवायु में काफी समानता है। श्रमिकों का अध्ययन करके वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बसन्त ऋतु में ही सबसे अधिक उत्तम मानसिक और शारीरिक कार्य हो सकते हैं जब कि ग्रीष्म ऋतु और शीतकाल के मध्य में सबसे कम। इन्होंने यह भी कहा कि यदि ऋतुयें न होतीं तो शायद मनुष्य जाति कभी भी सभ्य न होती।।

हण्टिंगटन के विचार में तापक्रम (temperature) के घटने-बढ़ने के साथ ही मनुष्य की कार्य करने की क्षमता घटती-बढ़ती है। तापमान में अधिक गिरावट आने से शारीरिक कार्य की अपेक्षा मानसिक कार्य में अधिक गिरावट आती है। हण्टिंगटन ने स्वास्थ्य, शारीरिक और मानसिक कुशलता के लिए जलवायु को ही उत्तरदायी बताया और कहा कि जहाँ अनुकूल जलवायु है वहीं पर उच्च सभ्यताओं का विकास हुआ और वहीं संसार के प्रमुख प्रतिभाशाली व्यक्तियों का जन्म भी।

आलोचना :

(१) यह कहना गलत है कि केवल बसन्त ऋतु में ही व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक कार्य क्षमता बढ़ती है। वास्तव में भिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक कार्यों के लिए भिन्न प्रकार की दशायें अनुकूल होती हैं।

(२) जहाँ तक तापक्रम का प्रश्न है, प्रत्येक दो व्यक्तियों के लिए अनुकूल-तम (optimum) तापक्रम भिन्न होता है।

(३) मनुष्य की शारीरिक और मानसिक कुशलता केवल भौगोलिक दशाओं पर ही निर्भर नहीं करती। पौष्टिक भोजन, हवादार अच्छे मकान, कार्य करने की उचित अवस्थायें भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण हैं। एक ही समाज में विभिन्न वर्गों के लोगों को प्राप्त यह सुविधायें भिन्न होती हैं।

(४) यह कहना गलत है कि केवल शीतोष्ण जलवायु में ही सभ्यता का जन्म होता है। अमेरिका की प्राग् ऐतिहासिक (prehistorical) माया सभ्यता का विकास गर्म जलवायु में हुआ था।

(५) यदि जलवायु ही सभ्यताओं के विकास और विनाश के लिये उत्तर-दायी है तो क्या वजह है कि दो तीन सौ साल के ऐतिहासिक काल में बिना जलवायु में कोई परिवर्तन हुये अनेक सभ्यतायें जन्मीं और नष्ट हुईं।

(६) यह कहना भी गलत है कि सामाजिक नेताओं और प्रतिभाशाली व्यक्तियों का जन्म भी जलवायु पर निर्भर करता है। वास्तव में एक ही जलवायु में रहने वाले विभिन्न सामाजिक वर्ग विभिन्न संख्या में प्रतिभाशाली व्यक्तियों को जन्म देते हैं।

(७) मनुष्य अन्य प्राणियों की तरह भौगोलिक पर्यावरण का दास नहीं है। उसने रेगिस्तान में भी अप्राकृतिक साधनों की सहायता से खेती की है, बाढ़ के जल को बाँधा है। विज्ञान की सहायता से असम्भव को सम्भव बना दिया है।

(८) किसी भी सामाजिक प्रमेय का कोई एक कारक नहीं होता। एक ही प्रमेय भिन्न समाजों में, एक ही समाज में भिन्न कालों में भिन्न कारणों से उत्पन्न और नष्ट होता है।

सामाजिक और भौगोलिक कारकों का पारस्परिक प्रभाव

हम अन्त में यह एक बार फिर से कहना चाहेंगे कि समाजों पर भौगोलिक कारक का प्रभाव एक-मार्गी नहीं होता। वैसे यह सत्य है कि आदिकाल से मनुष्य ने धीरे-धीरे और क्रमानुसार प्रकृति के रूप को बदला है। जहाँ अनेक प्रकार के भौगोलिक कारक मानव समाजों को प्रभावित करते हैं, वहाँ, मानव समाज भी, बदले में, इन भौगोलिक कारकों को प्रभावित करते हैं। जलवायु संस्कृति को निश्चित करती है, परन्तु संस्कृति भी जलवायु को संयत करती है।

मनुष्य भूमि के रासायनिक पदार्थ को या जल की मात्रा को या मौसमों की अवधि को या समुद्र के नमकीनपन को या पत्थर-शिला के ढाँचे को या दोपहर के सूर्य की गर्मी को नियन्त्रित नहीं कर सकता। इन सब और इसी प्रकार की अन्य बातों के साथ उसे सामंजस्य करना पड़ता है और उसी के अनुरूप अपना जीवन

बनाना पड़ता है। वह मिट्टी में खेती करता है और इस प्रकार उसकी बनावट को बदलता है। वह वस्तुतः पहाड़ों को हटा सकता है। यदि वह वातावरण के तापक्रम और आर्द्रता को निश्चित नहीं कर सकता, वह इन तत्वों से बचने के लिये मकान बना सकता है और अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने कमरे को ठंडा या गर्म कर सकता है। वह मौसम को नियन्त्रित नहीं कर सकता, परन्तु बादलों पर सूखी बर्फ और चाँदी का जाम्बेय (silver Iodide) से आक्रमण कर उन्हें पानी बरसाने के लिए बाध्य कर सकता है। वह रेगिस्तान में भी खेती कर सकता है। आज का सभ्य आदमी अपने साँस्कृतिक उपकरणों की सहायता से भूमि के उन क्षेत्रों में रह सकता है जिसमें आदिवासी इन उपकरणों के बिना जीवित नहीं रह सकते थे।

मनुष्य न तो कुत्ते की भाँति तेज दौड़ सकता है, न शार्क मछली की भांति तेजी से तैर सकता है, न भाण्डोक पक्षी (swallow) की भाँति तेजी से उड़ सकता है, परन्तु वह ऐसी मशीनें बना सकता है जो इन सब को पछाड़ दें। वह हवा का बहना नहीं रोक सकता परन्तु पाल तान कर उसको थाम सकता है। यदि वह नदी के बहाव को नहीं रोक सकता तो बाँध बनाकर उसके बहाव को मोड़ देता है और उससे बिजली उत्पन्न करता है। तूफान, बाढ़ और सूखा उसको भयभीत कर सकता है और उसकी जीवन अवधि को कम कर सकते हैं, परन्तु वह उनसे रक्षा करने के साधन बनाता है और उनसे बच निकलता है। वह पहाड़ की ढाल पर रास्ता और वन में हवाई जहाज के लिए मैदान बना सकता है, वह नदी और नहरों के ऊपर पुल बना सकता है। परन्तु फिर भी उसे ऐसी प्राकृतिक दशाओं के साथ सामंजस्य करना पड़ता है, जो उसके नियंत्रण से परे हैं यद्यपि सामंजस्य करने में वह उसका रूप बदल देता है।

सभ्यता की प्रक्रिया को हम लगातार ऐसे उपकरणों के एकत्रित करने की प्रक्रिया समझ सकते हैं जो मनुष्य और उसके समाज को प्राकृतिक शक्तियों से बचाते हैं। भौगोलिक कारक अत्यधिक आदिवासी समाजों पर प्रत्यक्ष और तत्कालिक प्रभाव डालते हैं। जब मनुष्य ने संस्कृति का विकास करना शुरू किया उस समय से लेकर जब अपने नंगेपन को छुपाने के लिए वह मृगछाला पहनता था, अब तक जब मनुष्य गर्मियों में अपने कमरे को वातानुकूलित करके ठंडा बना लेता है, वह प्रकृति के ऊपर अधिक से अधिक नियन्त्रण करता जाता है। तूफान जंगली शिकारी को घर से बाहर निकलने से रोक सकता है परन्तु सभ्य समाजों का डाकिया डाक बाँटता फिरता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि समाज भौगोलिक कारकों के प्रभाव से पूरी तरह से मुक्त नहीं हो सके हैं तो भौगोलिक कारक भी सामाजिक और साँस्कृतिक कारकों से अछूते नहीं हैं। मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य करता है, परन्तु ऐसा करने में वह प्रकृति का रूप बदल देता है।

२१ सामाजीकरण (Socialization)

वह सामाजिक प्रक्रिया जिसके द्वारा एक नवजात शिशु एक सामाजिक प्राणी के रूप में गढ़ा जाता है, समाजीकरण कहलाती है। गढ़ने की इस प्रक्रिया के बिना समाज एक पीढ़ी से अधिक नहीं चल सकता था और न ही संस्कृति का कोई अस्तित्व हो सकता था। समाजीकरण की इस प्रक्रिया के द्वारा ही संस्कृति की भावनायें और विचार प्राणी की आवश्यकताओं और क्षमताओं से जोड़ दिये जाते हैं।

इस प्रक्रिया को अभी तक कोई ठीक-ठीक नहीं समझ सका है। फिर भी यह उन तमाम विज्ञानों का, जो मनुष्य का विवेचन करते हैं, संगम स्थल है क्योंकि समाजीकरण की प्रक्रिया पर आकर जीवविज्ञान और समाजशास्त्र, मन-चिकित्सा और मानव-शास्त्र सब साथ हो जाते हैं। अगर कोई विज्ञान मनुष्य में जरा भी दिलचस्पी रखता है तो इस बात में जरूर दिलचस्पी रखता है कि किस प्रकार एक मानव प्राणी एक सामाजिक प्राणी में बदल जाता है।

ब्रूम और सैल्जनिक के अनुसार "व्यक्ति में समूहगत मूल्यों की रचना की प्रक्रिया को समाजीकरण कहते हैं।"* उसके विचार में "समाज की दृष्टि से समाजीकरण वह तरीका है जिसके द्वारा संस्कृति का सम्प्रेषण (transmission) होता है और व्यक्ति को जीवन की एक संगठित परम्परा में फिट किया जाता है।"†

जॉनसन का कहना है : "समाजीकरण वह शिक्षा है जो सीखने वाले को सामाजिक भूमिकायें निभाने में सक्षम बनाती है।"‡ समाजीकरण एक जैविक प्राणी का मानवीकरण करता है और उसे एक अहमन्यता में बदल देता है जिसमें अपनेपन का बोध होता है, अपने आचरण को संयोजित और अनुशासन में रखने की क्षमता आती है।

---

* "The process of building group values in the individual is called socialization." —Broom and Selznick, *Sociology*.

† "From the point of view of society, socialization is the way culture is transmitted and the individual is fitted into an organized way of life."

‡ "Socialization is learning that enables the learner to perform social roles." —Johnson, *Sociology*.

समाजीकरण का जैविक आधार
(Biological basis of Socialization)

मनुष्य का जैविक स्वरूप समाजीकरण को सम्भव और आवश्यक बनाता है। उदाहरण के लिए, यदि मनुष्य में सीखने की और भाषा प्रयुक्त करने की जन्मजात क्षमता न होती तो समाजीकरण नहीं हो सकता था। साथ ही, यह भी सच है कि समाजीकरण के बिना सीखने और भाषा प्रयुक्त करने की यह सम्भावनायें मुखरित नहीं की जा सकती थीं। मानव प्राणी की कुछ जैविक आवश्यकतायें, जिन पर समाजीकरण आधारित है, निम्नलिखित हैं।

मूल प्रवृत्तियों का न होना—सही अर्थों में मनुष्य में मूल प्रवृत्तियाँ नहीं पायी जाती हैं। हाँ, उसमें अनेक प्रतिक्षेप (reflexes) जरूर पाये जाते हैं, जैसे नवजात शिशु के होठों का स्वतः चलना या पलकों का झपकना। इसीलिए, मनुष्य का आचरण उसकी जैविक संरचना से बहुत कड़ाई के साथ बँधा हुआ नहीं है। तमाम खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि मूल प्रवृत्तियों से नियत आचरण में परिवर्तन न के बराबर सम्भव होता है, उसमें जो कुछ जन्मजात रूप से मौजूद है उसके अतिरिक्त और कुछ सीखने की गुंजायश कम होती है और चूंकि बिना सीखे समाजीकरण सम्भव नहीं, इसलिए मनुष्य में मूलप्रवृत्तियों का अभाव उसके समाजीकरण के पक्ष में एक महत्वपूर्ण कारक है।

मानव आचरण मूलप्रवृत्तियों के बजाय अन्तश्चालनाओं (drives) द्वारा संचालित है। अन्तश्चालना शरीर में किसी कमी के कारण, जैसे खून में शक्कर की कमी के कारण उत्पन्न तनाव है जो मन में बेचैनी पैदा करता है किन्तु आचरण को किसी लक्ष्य विशेष की ओर निर्देशित नहीं करता। यह बात कि मनुष्य अंतश्चालनाओं द्वारा क्रियाशील होता है, न कि जैविक रूप से नियत आचरण-विन्यास द्वारा, उसकी आवश्यकताओं को सामाजिक दशाओं के अनुरूप बनाती है।

शैशवकालीन निर्भरता (Childhood dependence)—शारीरिक रूप से दूसरों पर आश्रित रहने का समय मनुष्य का लम्बा होता है, जो सामाजिक और तकनीकी (technical) कार्यकुशलताओं को सीखने की आवश्यकता के कारण और भी लम्बा हो जाता है। बच्चे की जैविक आवश्यकता और उसकी सामाजिक अकुशलता के कारण यह जरूरी हो जाता है कि बच्चे की देख-भाल और प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व नियत कर दिया जाय। स्त्री-गमन पर सामाजिक नियन्त्रण होने के कारण यह कार्य परिवार करता है।

शारीरिक निर्भरता का लम्बा समय संवेगात्मक निर्भरता को बढ़ावा देता है और बच्चे और उसकी देखभाल करने वालों में भाव-बन्धनों का विकास होता है, चाहे वे उसके सगे माता-पिता हों या कोई और।

सीखने की क्षमता (Learning Capacity)–शैशवकालीन निर्भरता से कोई

फायदा न होता यदि बच्चे में सीखने की क्षमता न होती। मनुष्य की बुद्धि का ऊँचा स्तर उसका अत्यन्त महत्वपूर्ण जैविक सम्भाव्य (potentiality) है। इसीलिये, मानव अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक सीख सकते हैं अपेक्षाकृत लम्बे समय तक सीखना जारी रख सकते हैं।

भाषा (Language):—मनुष्य के सीखने की क्षमता उसकी भाषा सम्बन्धी क्षमता से सीधे सम्बन्धित है। दुसरे जानवरों में भी बुद्धि पायी जाती है, मगर चूंकि केवल मनुष्य के पास भाषा है, इसलिये तर्क (reason) सिर्फ उसी में पाया जाता है। कुछ ऊँचे स्तरों के प्राणियों, जैसे वनमानुषों में, सूझ (insight) होती है किन्तु बिना भाषा न तो वे सूझ द्वारा प्राप्त ज्ञान पर विचार कर सकते हैं, न उसका विस्तार कर सकते हैं, न ही एक गुरु के रूप में अपनी संतति को संप्रेषित (transmit) कर सकते हैं। यह भाषा ही है जिसके द्वारा सूझ-बूझ को ज्ञान के रूप में संहत किया जा सकता है तथा दूसरों को संप्रेषित किया जा सकता है।

भाषा भावों को व्यक्त और जागृत कर सकती है, सामाजिक मूल्यों और अभिवृत्तियों को संप्रेषित कर सकती है। मानव समाज के निर्माण में भाषा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। वह प्रतीकात्मक संचार (symbolic communication) को, जिस पर मानव समाज आधारित है, सम्भव बनाती है।

समाजीकरण का महत्व
(Importance of Socialization)

समाजीकरण के द्वारा समाज बच्चे को इस बात की शिक्षा देता है कि बिरादरी में खपने के लिये उसे किन-किन बातों की आवश्यकता है और अपने सम्भाव्यों (potentialities) को विकसित करने के लिए तथा अर्थपूर्ण और त्यागी तृप्तियां प्राप्त करने के लिए उसे क्या-क्या सीखना चाहिए।

(१) समाजीकरण एक प्रकार का सामाजिक नियंत्रण है जो सामूहिक जीवन को मजबूत बनाता है और साथ ही व्यक्ति के विकास का पोषण करता है।

समाजीकरण आधारभूत अनुशासनों, शौचादि सम्बन्धी आदतों से लेकर विज्ञान की प्रणालियों तक, को अन्तर्निविष्ठ करता है। अनुशासनहीन आचरण क्षणिक आवश्यकताओं और प्रभावों (impulses) से प्रेरित रहता है। यह भावी परिणामों और स्थायी तृप्तियों की उपेक्षा करता है। अनुशासित आचरण तात्कालिक तुष्टीकरण को स्थगित करके, परित्याग करके या हेर-फेर करके, उस पर रोक लगाता है।

(२) समाजीकरण इस तरह की आकाँक्षाओं को, जैसे एक अच्छी माँ बनने की साध को, मन में अन्तर्निविष्ट करता है। अनुशासन और आकाँक्षा में गहरा सम्बन्ध है। व्यक्ति के लिए अनुशासन अक्सर कठिन और अपने आप में शुष्क होता है, किन्तु आकाँक्षायें अनुशासन को बनाये रखने में सहायक होती हैं।

(३) समाजीकरण सामाजिक कर्त्तव्यों की शिक्षा देता है। समाज में क्या कर्त्तव्य है और कौन क्या करने लायक है, इस हिसाब से वह दिशायें निर्धारित करता है।

(४) समाजीकरण प्रवीणतायें (skills) सिखाता है। बहुत सी कुशलतायें विशेष रूप से सामाजिक होती हैं जैसे पत्र-व्यवहार करना, पड़ोसियों के साथ निभा ले जाना, प्रीतिगोष्ठियों का आयोजन करना। सामाजिक व्यवहार-कुशलता राजनैतिक या दूसरे प्रकार के संगठनों में प्रभावकारी ढंग से भाग ले सकने के लिए एक आवश्यक शर्त है।

समाजीकरण की प्रक्रिया और चरण (Process and Stages of Socialization)

फ्रायड समाजीकरण का मुख्य कारण कुण्ठा (frustration) को मानता है और समाजीकरण के सात चरण मानता है। वह मानता है कि हर सामान्य जीवन में चार मुख्य कुण्ठायें आती हैं। इन कुण्ठाओं में व्यक्ति को समायोजन (adjustment) की एक स्थिति को, जो उसके लिए तुष्टिकारक थी, छोड़कर एक नये प्रकार के समायोजन को स्वीकार करना पड़ता है। इस प्रकार के प्रत्येक पुनःसमायोजन में व्यक्ति अधिक उत्तरदायित्व स्वीकार करता है, किन्तु साथ ही अधिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त कर लेता है। वास्तविकता और उत्तरदायित्व को स्वीकार करने से विशेष सुविधायें, अधिकार और शक्ति आती हैं। इसलिये कुण्ठा को एक नकारात्मक (negative) प्रक्रिया न समझना चाहिए। एक को त्यागते हैं तो दूसरी प्राप्त होती है। यह कुण्ठायें अपने साथ व्यक्तित्व में विभेदन (differentiation) और विशेष क्षमता का विकास भी लाती हैं।

पहली सबसे बड़ी कुण्ठा निश्चेष्ट मौखिक प्राशन (passive oral feeding) की आदत तोड़ने से आती है। यह कुण्ठा समाजीकरण की 'oral sucking' और 'oral biting' के नाम से कहलाने वाले चरणों में आती है। इन चरणों में शिशु सुखी और सबके ध्यान और देखभाल का केन्द्र होता है। उसके लिए हर वस्तु उपलब्ध होती है। मनोवैज्ञानिक रूप से वह या तो सन्तुलन की अवस्था में या आसानी से सन्तुलन प्राप्त कर लेने की अवस्था में रहता है। स्तनपान छुड़ाने (weaning) से जो कुण्ठा होती है उससे बच्चे में कुछ अहम्-भाव (ego) आता है और उसे इस बात का हल्का सा ज्ञान होता है कि बाहर भी एक दुनियाँ है।

अहम्-भाव के विकसित हो जाने पर भी उसमें अहम्-भाव उत्तरदायित्व (ego responsibility) नहीं होता। उसे जरा सा कम निश्चेष्ट और जरा सा अधिक सचेष्ट होना होता है। अंततः anal expulsive और anal retentive चरणों में जो कुण्ठा होती है वह उसे अहम्भाव सम्बन्धी उत्तरदायित्व विकसित करने

के लिये विवश कर देती है। टट्टी और पेशाब पर नियन्त्रण रखने की जरूरत उसे सफाई की नई आदतें, और शौच-क्रिया के समाज द्वारा निर्धारित समय और स्थान को स्वीकार करने के लिये विवश कर देती है। वह जहाँ और जब चाहे टट्टी और पेशाब करने के लिये स्वतन्त्र नहीं रह जाता। सम्भवतः यह पहले वाले से अधिक कुण्ठित करने वाला अनुभव होता है। पहली कुण्ठा उसे यह अनुभव कराती है कि उसमें एक अपनापन है, कि वह कोई है। anal stage की कुण्ठा उसे यह मानने के लिये विवश करती है कि उसे उसके लिए कुछ करना है, कि उस अहम्भाव के प्रति उसकी कुछ जिम्मेदारी है, कि वह दुनियाँ का केन्द्र बिन्दु न होकर उसका एक अंश है, कि वह एक व्यक्ति के रूप में खड़ा है। वह यह मानने के लिए मजबूर कर दिया जाता है कि सामाजिक और भौतिक वास्तविकता से समायोजन करना उतना ही आवश्यक है जितना कि सुखों का भोग। इस चरण में उसका अहम्-भाव (ego) एक तरह से पूर्ण हो जाता है।

इसके बाद तीसरा बड़ा धक्का लगता है लैंगिक अवस्था (phallic-stage) में। व्यक्ति पहले से ही अंशतः सामाजिक रूप से उत्तरदायी हो चुका होता है किन्तु वह सभी यौनिक तुष्टि परिवार से ही प्राप्त करता है। इस समय तक उसे पारिवारिक जगत् की वास्तविकताओं का ही सामना करना पड़ता है। हम अपने बच्चों को एक पारिवारिक स्थिति में पाल कर बड़ा करते हैं और अचानक उन्हें बताते हैं कि वे उस स्थिति से यौनिक संतुष्टि प्राप्त नहीं कर सकते। अहम्-भाव के आत्मोपकार को इससे बड़ी चोट पहुँचती है और फिर से नये संतुलन को स्थापित करने में बहुत बड़ी मानसिक शक्ति के खर्च की जरूरत पड़ती है। व्यक्ति के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह पारिवारिक मोहमाया को छोड़कर समाज और संसार में अकेला खड़ा हो।

चौथी बड़ी कुण्ठा किशोरावस्था की होती है। विकसित होते व्यक्तित्व में किशोरावस्था का बहुत बड़ा महत्व है। पारिवारिक बन्धन इस समय तक तोड़ देना जरूरी हो जाता है। व्यक्ति को सामाजिक रूप से स्वीकृत यौनिक (sexual) उत्तरदायित्व स्वीकार करने पड़ते हैं। साथ ही आत्मोपकारी तथा परोपकारी जिम्मेदारियाँ भी निभानी पड़ती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बार-बार होने वाली कुण्ठाओं के कारण किसी भी अवस्था में एक समायोजन की जगह दूसरा समायोजन ले लेता है। कुण्ठायें केवल oral, anal, phallic और genital, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, सिर्फ यही चार नहीं होतीं जिनका व्यक्ति को सामना करना पड़ता है। अन्य भी हैं। उसे चलना, बात करना, स्कूल का काम करना और इसी तरह की तमाम बातें सीखनी

पड़ती हैं। किन्तु पहली चार कुण्ठायें बड़ी तीव्र होती हैं और व्यक्ति के जीवन की नाजुक अवस्थाओं में घटित होती हैं।

जॉनसन, आदि ने समाजीकरण के चार चरण माने हैं। ये हैं मौखिक अवस्था (oral stage), गुदा अवस्था (anal stage), अतर्हित अवस्था (latency stage) और किशोरावस्था (adolescence)।

प्रथम चरण

प्रथम चरण जन्म से प्रारम्भ होता है। इसका अनिवार्य उद्देश्य होता है मौखिक निर्भरता स्थापित करना। शिशु खाने के समय के बारे में काफी स्पष्ट आशाओं की रचना कर लेता है, और वह अपनी आग्रही आवश्यकताओं की देख-रेख का संकेत देना सीख लेता है। शिशु मां के साथ निश्चेष्ट रूप से इतना सम्बन्धित होता है कि एक प्रकार से उसका मां में ही विलयन सा रहता है। प्रथम चरण में भूख के चालक (drive) पर थोड़ा-सा नियन्त्रण स्थापित हो जाता है।

दूसरा चरण

मध्यम-वर्ग में यह चरण पहला साल लगते ही प्रारम्भ हो जाता है और तीन साल के दौरान पूरा हो जाता है। गुदा-संक्राति (anal crisis) जिसके साथ यह चरण प्रारम्भ होता है, नयी मांगों के लागू करने के कारण उत्पन्न हो जाती है। इनमें से बच्चा "अपनी देख-रेख में थोड़ा सा बँटाये", यह माँग प्रमुख होती है। शौच क्रिया की शिक्षा इस नये संकट में प्रमुख स्थान रखती है। इस चरण में बच्चा दो भूमिकाओं (roles) को अन्तरावरुद्ध (internalize) करता है–एक तो खुद अपनी और दूसरी मां की। बच्चा देख–रेख ही नहीं पाता, स्नेह भी पाता है। स्नेह प्राप्त करके वह अपनी और स्नेह देकर वह माँ की भूमिका निभाता है।

तीसरा चरण

मध्यम-वर्ग में तीसरा चरण चौथे साल से लेकर १२-१३ साल तक चलता है। तीसरे चरण के दौरान बच्चा अपने माता-पिता तक ही सीमित न रहकर समस्त परिवार का एक सदस्य हो जाता है। परिवार में पायी जाने वाली चारों भूमिकायें-पति-पिता पत्नी-माता, पुत्र-भ्राता, पुत्री-बहन-अन्तरावरुद्ध करना उसके लिए आवश्यक हो जाता है और उसकी योनिगत विशेषता के आधार पर जो सामाजिक भूमिका उसे दी गई है उससे एकाकार होना पड़ता है।

चौथा चरण

किशोरावस्था लगभग १३-१४ साल के इर्द-गिर्द प्रारम्भ होती हैं। इस अवस्था में बच्चे माता-पिता के नियन्त्रण से अधिकाधिक स्वतन्त्र हो जाते हैं। इस अवस्था की संक्रान्ति अधिकाधिक स्वच्छन्दता की माँग से उत्पन्न होती है। किन्तु प्रायः हर समाज में किशोर के ऐसे बहुत से क्रिया कलापों पर किसी हद

तक माता-पिता अब भी नियन्त्रण रखते हैं जिनमें वह स्वतन्त्रता चाहता है। यौन सम्बन्धी क्रियाओं के प्रकरण में यह विशेष रूप से सत्य है। यदि यौन-क्रियाओं की पूरी छूट दे दी जाये तो किशोरावस्था में आने वाले शारीरिक परिवर्तन स्वतः कोई समस्या न खड़ी करें।

समाजीकरण के अभिकरण (Agencies of Socialization)

व्यक्ति का समाजीकरण करने में बहुत से समुदायों और संस्थाओं का हाथ रहता है। समाजीकरण के यह अभिकरण भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न बातें सिखाते हैं। समाजीकरण के अभिकरण एक दूसरे के पूरक और सहायक हो सकते हैं किन्तु वे भी कभी-कभी परस्पर विरोधी सामाजिक मूल्य अन्तर्निविष्ट करते हैं।

बच्चे का जिन व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा समाजीकरण होता है उन्हें दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम कोटि में वे आते हैं जिनका उस पर प्रभुत्व है, जैसे माता-पिता, शिक्षक, मालिक, इत्यादि। दूसरी कोटि में वे आते हैं जिनका दरजा बराबरी का है जैसे बाल-सखा, सहपाठी, सहकर्मी इत्यादि।

परिवार, जिनमें दोनों प्रकार के तत्व पाये जाते हैं, समाजीकरण में सबसे प्रमुख स्थान रखता है। बचपन में बच्चे को परिवार में जो अनुभव होता है वह उसके संतोष एवं कुण्ठा का एकमात्र स्रोत होता है। छोटा बच्चा माता-पिता की मान्यताओं और सामाजिक मूल्यों को सर्वव्यापी और ब्रह्मवाक्य मानता है। जब वह बड़ा होता है तो उसे पता चलता है कि संतोष और आत्माभिव्यक्ति के और भी साधन हैं और सामाजिक मान्यताओं में चुनाव किया जा सकता है।

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है समाजीकरण के अभिकर्ता बदलते जाते हैं। बचपन में स्कूल और बाल-संहचरों के गुट और पड़ोस व्यक्ति को प्रभावित करने में परिवार से बराबर होड़ लगाये रहते हैं। वयस्क होने पर पेशे से सम्बन्धित समुदाय और गुट तथा नया बसा परिवार महत्वपूर्ण स्थान ले लेते हैं। सहचर समुदाय में व्यक्ति ऐसे लोगों के सम्पर्क में आता है जो लगभग उसी की उम्र और हैसियत के होते हैं। बचपन का सहचर समुदाय पूर्णतया एक साथ खेलने के लिए बनता और बिगड़ता रहता है। किशोरावस्था में यह एक गुट का रूप लेता है जो बच्चे को पद और वर्गगत मान्यताओं से परिचित करता है। वयस्क जीवन में सहचर समुदाय बराबरी के लोगों में सामाजिक आदान-प्रदान का ढंग प्रदान करते हैं।

किम्बॉल यंग ने समाजीकरण के अभिकरणों का निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकरण किया है : (१) परिवार, (२) आयु-समूह, (३) पड़ोस, (४) नातेदारी वाला समूह (kinship group) (५) विद्यालय, (६) अन्य प्रारम्भिक समूह जैसे मित्र मण्डली, क्लब अथवा मनोरंजन गोष्ठी। यह सभी अभिकरण प्रारम्भिक समूह हैं। इसके अतिरिक्त द्वैतीयक समूहों में भी व्यक्ति का समाजीकरण होता है। वर्ग,

जाति, राष्ट्रीयता समूह, राष्ट्र, राजनैतिकदल, धार्मिक-समूह, भाषा-समूह, साँस्कृतिक समूह तथा व्यावसायिक समूह, आदि समाजीकरण के द्वैतीयक अभिकर्ता हैं।

(१) परिवार (Family)

(i) बच्चा परिवार में ही जन्म लेता है और जन्म के समय सामाजिक नियमों से अनभिज्ञ होता है। यहीं आदरसूचक, सफाई, सम्बन्धी, खानपान, सौम्यता सम्बन्धी बातें उसे सिखाने का कार्य शुरू होता है। दूसरी संस्थायें और समूह उस पर बाद में प्रभाव डालते हैं।

(ii) बच्चे के जीवन में परिवार सबसे स्थायी कारक है। मित्र आसानी से छूट जाते हैं, शिक्षक हर साल बदल जाते हैं, और खेल-कूद के साथियों को हम शीघ्र भूल जाते हैं, परन्तु बच्चे के प्रारम्भिक जीवन में माता-पिता उससे निकट सम्पर्क हमेशा बनाये रखते हैं। इस कारण परिवार का प्रभाव गहरा होता है।

(iii) परिवार एक प्राथमिक समूह है। इसके अन्दर सदस्यों में एक 'हम-भावना' उत्पन्न होती है। जितनी अधिक हम-भावना परिवार में होगी उतनी ही तेजी से माता-पिता की मनोवृत्तियों और भावनाओं को बच्चे ग्रहण करते हैं।

(iv) परिवार बच्चे की सभी आवश्यकतायें पूरी करता है। इसमें भोजन और पानी की भौतिक आवश्यकताओं से लेकर सुरक्षा और स्नेह जैसी आध्यात्मिक (spiritual) आवश्यकतायें भी शामिल हैं। बचपन में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बच्चा अपने परिवार पर पूरी तरह से निर्भर रहता है। इस बात में कोई अन्य समूह परिवार से मुकाबला नहीं कर सकता।

(v) परिवार दोनों प्रकार के सम्बन्ध बच्चों को प्रदान करता है: प्राधिकारवादी (authoritarian) जो माता-पिता और बच्चों के बीच में पाया जाता है, और समानता का (equalitarian) सम्बन्ध जो समवयस्क बच्चों में पाया जाता है। इनके भीतर समाजीकरण होता है। इस अर्थ में वह क्रीड़ा-समूह और मित्र-मण्डली से भिन्न होता है जो केवल समानतावादी होते हैं। हर किस्म का सम्बन्ध समाजीकरण में एक अनोखा और आवश्यक तत्व प्रदान करता है। इससे बच्चा बड़ों और बराबर वालों के साथ भिन्न प्रकार से व्यवहार करना सीखता है।

(vi) परिवार के ही द्वारा बच्चे को समाज में प्रविष्ट कराया जाता है और जो परिवार का नाम, पद और सम्मान होता है उसका बच्चे के सामाजिक सम्बन्धों पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

(२) क्रीड़ा-समूह (Playgroup or Peergroup)

परिवार की भाँति बच्चों का क्रीड़ा समूह भी एक प्राथमिक समूह होता है। यह समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बच्चे का समाजीकरण उसके

बड़ों और समवयस्कों दोनों द्वारा किया जाता है। क्रीड़ा-समूह में बच्चा ऐसे अन्य लोगों के साथ सम्बन्ध बनाता है जो लगभग उसी की आयु और सामाजिक पद के होते हैं। अक्सर यह बच्चे भिन्न व्यवहार-आदर्श और सामाजिक मूल्यों से सज्जित होते हैं। बच्चे आपस में एक दूसरे से बहुत सी बातों को ग्रहण करते हैं और अपने परिवार से भिन्न संस्कृति वालों के साथ सामंजस्य करना सीखते हैं।

(i) क्रीड़ा-समूह अव्यक्तिगत अधिकार-शक्ति से बच्चे को परिचित कराता है। परिवार में अधिकार-शक्ति माता-पिता में व्यक्तियों के रूप में रहती है और वही निश्चित करते हैं कि क्या सही और ग़लत है। क्रीड़ा-समूह में बच्चा खेल के अव्यक्तिगत नियमों का पालन करना सीखता है। इस प्रकार वह आगे चल कर 'क़ानून और व्यवस्था' का प्रतिनिधि बन जाता है। वह अपने को नियमों का रक्षक समझने लगता है और खेल के ऐसे साथियों पर सामाजिक नियंत्रण रखता है जो इन नियमों का उल्लंघन करते हैं।

(ii) क्रीड़ा समूह में बच्चा वयस्कों की सहनशक्ति की सीमा की परीक्षा करता है। ऐसा करने में उसे माता-पिता की नाराज़गी का भय कम रहता है। बाल-समूहों में बच्चे अधिक साहस और गुस्ताख़ी से वयस्कों के साथ व्यवहार करते हैं। साथ ही, बच्चे इस बात की परीक्षा भी कर लेते हैं कि वयस्कों का सामना करने में उनके साथी किस हद तक उनकी मदद करेंगे और किस हद तक वह उनकी सहायता का भरोसा कर सकता है।

(iii) क्रीड़ा-समूह वयस्कों के सामाजिक मूल्यों का समर्थन कर सकता है और नहीं भी कर सकता है। यदि वह समर्थन करता है तो वह वयस्कों के सामाजिक मूल्यों के हस्तांतरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम हो सकता है।

(iv) क्रीड़ा-समूह सामाजिकता (sociability) बनाये रखने के लिये क़ायम है। परन्तु साथ ही वह नियमों के पालन पर विशेष बल देता है। अन्य संस्थाओं की तरह, क्रीड़ा-समूह भी पुरस्कार और दण्ड, स्वीकृति और अस्वीकृति की प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता है। यह सामाजिकता का अधिक गुण रखने वालों को पुरस्कृत करता है। यह ऐसे सदस्यों को स्वीकार नहीं करता जो समूह में मित्रता और सौहार्द की भावना को ठेस लगाते हैं और अच्छे व्यक्तिगत सम्बन्धों में बाधा पहुँचाते हैं। क्रीड़ा-समूह में सहयोग और सहनशीलता, एक साथ सब कामों में भाग लेना और वस्तुओं को बाँट कर उपयोग करना जैसे आदर्श व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण हो जाते हैं। उसको सिखाया जाता है कि वह सनकी न बने और न दिखावा करे।

रीज़मैन का कहना है कि क्रीड़ा-समूह समाजीकरण का सबसे अधिक महत्वपूर्ण माध्यम बन रहा है। आज के समाज में लोग सलाह और मार्ग प्रदर्शन

के लिए अपने साथियों या समकालीन लोगों का सहारा लेते हैं। अपने साथियों के निर्णय और स्वीकृति को ही आधुनिक व्यक्ति सबसे अधिक मूल्यवान समझता है।

(क) नागरिक परिवार छोटे होते हैं, और एक इकाई के रूप में परिवार जिन क्षेत्रों में भाग लेता है वह सीमित होते हैं। कीड़ा-समूह बच्चे के जीवन के सबसे बड़े भाग को प्रभावित करता है।

(ख) आज के समाज की एक विशेषता उच्चकोटि का सामाजिक और प्राद्योगिकीय परिवर्तन है जो विभिन्न पीढ़ियों के बीच के अन्तर को बढ़ाता है। माता-पिता के ज्ञान को पिछड़ा हुआ कहा जाता है, और समकालीन सामाजिक मूल्यों और 'ज्ञान' को सिखाने में क्रीड़ा-समूह सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

(ग) आधुनिक समाज में अत्यधिक गतिशीलता पायी जाती है। कॉलेज शिक्षा की सहायता से बच्चे सामाजिक सीढ़ी पर ऊँचे चढ़ जाते हैं। बच्चे द्वारा अधिकृत नये वर्ग और पद-मूल्यों में उसका निर्देशन करने में परिवार अपने को अयोग्य पाता है। इसलिए यह कार्य परिवार क्रीड़ा-समूह या साथी-संगी समूह (peer group) के लिए छोड़ देता है।

(३) पड़ोस (Neighbourhood)

पड़ोस भी एक प्राथमिक समूह है जिसका बच्चे के समाजीकरण के सम्बन्ध में विशेष महत्व है। ऐसे अनेक मौके आते हैं जब माता-पिता पड़ोसियों की देख-रेख में बच्चों को छोड़ कर कहीं नौकरी, सिनेमा या अन्य स्थानों को चले जाते हैं। अक्सर पड़ोसी लोग बच्चों को सड़कों पर ग़लत काम करते देख कर उन्हें टोकते हैं या उनके माता-पिता को सावधान कर देते हैं। अक्सर बच्चे को अपने पड़ोसी इतने अधिक पसन्द आ जाते हैं कि वे अपने माता-पिता की अपेक्षा उनकी नक़ल करना शुरू कर देते हैं।

(४) स्कूल (School)

व्यक्ति के समाजीकरण में स्कूल भी भूमिका अदा करता है। स्कूल में बच्चे के मिलने-जुलने वालों का दायरा बड़ा हो जाता है। यहाँ भिन्न संस्कृतियों में पले हुये बच्चों की संख्या काफी होती है। बच्चा इन सब लोगों के साथ सामंजस्य करना सीखता है जो आगे बड़े होने पर उसे अपने से भिन्न व्यवहार-आदर्श, रुचियों और आदतों वाले लोगों से सामंजस्य करने में सहायक होता है। शिक्षक भी अपने व्यक्तित्व से बच्चे को प्रभावित करते हैं और बच्चा उनसे भी अनेक बातों की सीखता है।

(५) जाति और वर्ग (Caste and class)

प्रत्येक जाति के अपने नियम, रीति-रिवाज़, खान-पान के ढंग आदि होते हैं।

जाति अपने सदस्यों के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु तक काफी हद तक उनके व्यवहार को नियंत्रित करती है। जाति यह निश्चित करती है कि व्यक्ति को कौन सा व्यवसाय चुनना है, किस समूह में विवाह करना है, कौन सी धार्मिक रीतियों का पालन करना है, खान-पान, छुआ-छूत के सम्बन्ध में किन निषेधों का पालन करना है।

दूसरी ओर, वर्ग व्यवस्था भी समाजीकरण का एक माध्यम है। प्रत्येक वर्ग की अपनी मूल्य-प्रणाली होती है। उदाहरण के लिये स्त्रियों द्वारा जुआ खेलना, शराब या सिगरेट पीना आदि के बारे में भिन्न वर्गों के अलग-अलग मूल्य होते हैं। प्रत्येक वर्ग अपने सदस्यों को प्रेरित करता है कि वे उन्हीं मूल्यों का पालन करें जो उस वर्ग की विशेषता है।

(६) राजनीतिक तथा आर्थिक संस्थायें (Political and Economic Institutions)

राजनीतिक संस्थायें भी समाजीकरण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिये, प्रजातंत्रीय समाज में व्यक्तित्व का निर्माण मुक्त रूप से होता है, वहाँ सोचने, विचारने, बोलने और लिखने की स्वतन्त्रता होने के कारण लोग अधिक उदार प्रकृति के होते हैं। इसके विपरीत तानाशाही या एक-पार्टी राज्य में इसके विपरीत क़िस्म का व्यक्तित्व पनपता है। वहाँ के लोग दक़ियानूसी और सनातनी क़िस्म के होते हैं। उनमें नर्वसपन और शक्की मिज़ाज पाया जाता है।

इसी प्रकार, आर्थिक संस्थायें भी समाजीकरण का एक माध्यम है। व्यक्ति जिस नौकरी, पेशे, व्यापार आदि को अपनाता है उसका व्यक्ति के विचार, आचार, मनोभाव एवं क्रियाओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इसी बात पर प्रकाश डालते हुए वेबलन ने कहा है : "जैसा वह काम करता है, वैसा ही अनुभव करता और सोचता है।" जिस दफ़्तर, कॉलेज, मिल, कारखाने आदि में व्यक्ति काम करता है वहाँ वह अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। यह सब व्यक्ति उसके व्यवहार को चेतन अथवा अचेतन रूप से प्रभावित करता है।

(७) धार्मिक संस्थायें (Religious Institutions)

धर्म ही व्यक्ति में पाप और पुण्य की धारणा या विश्वास विकसित करता है। हेज़ ने कहा है कि यह विश्वास समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान करता है क्योंकि इसके कारण अनेक शराबियों ने शराब पीना छोड़ दिया, लोगों ने क्रूरता और जालसाज़ी कम कर दी, और आयरलैण्ड के निर्धनों और अशिक्षितों में अवैध सन्तानों के जन्म की घटनायें कम होने लगीं।

(८) मनोरंजनात्मक संस्थायें (Recreational Institutions)

सिनेमा, थियेटर, टेलीविज़न, रेडियो आदि समाजीकरण में और अपराधी

बनाने में दोनों में ही योगदान देते हैं। यदि चलचित्र शैक्षिक हैं तो निस्संदेह वे समाजीकरण में योगदान देते हैं। इसके विपरीत यदि वे अश्लील होते हैं, अपराधियों और वेश्याओं को यश प्रदान करते हैं तो उनका समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यही बात टेलीविजन, थियेटर, रेडियो आदि पर भी लागू होती है। व्यक्ति अक्सर क्लब आदि के भी सदस्य होते हैं। यह क्लब भी व्यक्ति के ऊपर अच्छा या बुरा प्रभाव डालते हैं।

(९) विवाह संस्था (Institution of Marriage)

विवाह की संस्था का समाजीकरण में विशेष महत्व है। अक्सर पति-पत्नी भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठिभूमि से आते हैं। उन्हें एक दूसरे के स्वभाव रुचियों आदि के साथ सामंजस्य करना पड़ता है, एक दूसरे के लिये त्याग करना पड़ता है। बच्चों के जन्म के बाद उन्हें उनकी देखभाल के लिये नींद, आराम को त्यागना पड़ता है। यह त्याग, सहनशीलता और सहानुभूति का विकसित होने वाला गुण उन्हें पूरे समाज के साथ सामंजस्य करने योग्य बनाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह सुन्दर, नागरिक या गुणी व सुसंस्कृत व्यक्ति है। व्यक्ति इस अर्थ में सामाजिक होता है कि उसे मानव सम्पर्क और संगति की इच्छा और आवश्यकता दोनों ही है।

यह स्पष्ट ही है कि तीस दिन और तीस वर्ष की आयु के व्यक्तियों के बीच भीषण अन्तर होता है। शारीरिक, मानसिक और नैतिक परिवर्तन के अतिरिक्त, अधिक आयु का व्यक्ति समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी भिन्न होता है। वह समूहों और समाजों में रहना और सामंजस्य करना जानता है। वह दूसरे व्यक्तियों के प्रति व्यवहार करना जानता है।

प्रत्येक व्यक्ति एक स्वार्थी, एक उपद्रवी के रूप में जीवन प्रारम्भ करता है परन्तु धीरे-धीरे उसकी सामाजिक चेतनता और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होता है। जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में संकुचित, अहंकारी और स्वार्थी इच्छायें प्रबल रहती हैं। कुछ घटनाओं में वे जीवन पर्यन्त नियंत्रण रखती हैं। वास्तव में उनकी जन्मजात या आंतरिक शक्ति इतनी प्रबल होती है कि जीवन उनको नियंत्रित करने और उनका समाजीकरण करने में व्यतीत हो जाता है।

सामाजिक मनोवृत्तियों वाला कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे व्यापार में नहीं लगेगा जिससे समाज को कोई लाभ न होता हो या जो अपने अस्तित्व के लिये घातक प्रतिस्पर्धा या जुयें पर निर्भर करता है। समाजीकरण करता हुआ वकील धन प्राप्ति के लालच में समुदाय के कानून भंग करने वाले मुवक्किलों की सहायता नहीं करेगा।

एक सामाजिक नागरिक सामुदायिक कल्याण, राष्ट्रीय कल्याण, और यहाँ तक कि विश्व-कल्याण को अपने व्यक्तिगत लाभ के ऊपर रखेगा। सामाजिक मनोवृत्तियों वाला व्यक्ति मानव मूल्यों को सब वस्तुओं के ऊपर रखता है। समाजीकरण व्यक्तियों के बीच निकटता लाता है।

असमाजीकृत व्यक्ति का व्यवहार जंगली जानवरों की भाँति होता है। किम्बाल यंग ने इस कथन के समर्थन में कुछ उदाहरण दिये हैं:

(१) सन् १९२८ ई० में न्यूरेम्बर्ग में कॉस्पर हॉजर नामक एक १७ वर्षीय बालक को पकड़ा गया। वह बहुत ही छोटी उम्र में किन्हीं राजनैतिक कारणों से मानव समाज से अलग रखा गया। जब वह पकड़ा गया तो न सीधे खड़े होकर वह चल सकता था और न बात कर सकता था। उसके मस्तिष्क का विकास नहीं हुआ था और वह बेजानदार वस्तुओं को जानदार समझ कर उनमें साथ वैसा ही व्यवहार करता था।

(२) सन् १९२० में ऐसे ही दो हिन्दू बालकों का पता लगा। उनमें से एक बच्चा जो ९ वर्ष तक जीवित रहा उसका नाम कमला रखा गया। वे एक भेड़िये की माँद से लाये गये थे। जब वह लाई गई थी तब उसमें कोई मानवोचित गुण नहीं थे। वह चारों हाथ पैर पर चलती थी, भेड़ियों की तरह गुर्राने के अतिरिक्त उसके पास कोई दूसरी भाषा नहीं थी और वह मनुष्यों से दूर भागने की कोशिश करती थी। मृत्यु से पहले उसे धीरे-धीरे मामूली भाषा में कुछ बोलना, मनुष्य की तरह खाना खाना, कपड़े पहनना आदि आदतें आ गई थीं। प्रारम्भ में इस बच्चे में मानवीय आत्मभाव की कोई भावना नहीं थी।

उपरोक्त उदाहरणों से मालूम होता है कि सामाजिक अंतःक्रिया के बिना व्यक्ति सामाजिक प्राणी नहीं बन सकता। समाज के सदस्यों के बीच रहकर और उनसे अन्तःक्रिया करके ही व्यक्ति सामाजिक मूल्यों, आकांक्षाओं, और प्रवीणताओं को प्राप्त करता है और सामाजिक नियमों के अनुरूप कार्य करना सीखता है।

---

२२ सामाजीकरण (II)
(Socialization)

अन्य व्यक्तियों के साथ अन्त:क्रिया करने से ही व्यक्ति सामाजिक नियमों का ज्ञान और उनका पालन करने की आदत प्राप्त करता है। इसी अन्त:क्रिया के द्वारा वह भाषा प्राप्त करता है जो उसके व्यक्तित्व-निर्माण में विशेष रूप से महत्व-पूर्ण है। अन्त:क्रिया के फलस्वरूप ही वह अपने कार्यों (roles) को प्राप्त करता है और इस बात का ज्ञान प्राप्त करता है कि किस स्थिति में किससे किस प्रकार की प्रत्याशा करनी चाहिए। इसी प्रत्याशा (anticipation) के ऊपर ही कार्य ग्रहण करना निर्भर करता है। वास्तव में, यहाँ हमारा तात्पर्य स्व (self) के विकास से है अर्थात् उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं अपने बारे में कोई धारणा (attitude) बनाता है। यह आत्म-धारणा (self-attitude) ही वास्तव में "स्व" है जो स्वयं उसकी होते हुई भी उसके प्रति दूसरों की धारणा से ली गई है, उस धारणा से ली गई है, जो वह दूसरों में अपने प्रति देखता है, चाहे वह सही देखता हो अथवा गलत। इस प्रकार, आत्म-धारणा एक सामाजिक फल है।*

प्रत्येक व्यक्ति के पास अनेक धारणायें होती हैं; कुछ दूसरों के प्रति और कुछ अपने प्रति। अपने जीवन की शुरुआत पर ही प्रत्येक व्यक्ति यह सीखता है कि उसके व्यक्तित्व की कुछ विशेषतायें उसके लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे दूसरे व्यक्तियों और उनके व्यवहार को प्रभावित करती हैं। एक बहुत ही छोटा बच्चा जल्दी ही सीख लेता है कि जब वह रोता है तो उसके प्रति वयस्कों के व्यवहार में तत्काल परिवर्तन होता है। शायद उसे गोद में ले लिया जाये, दूध पिलाया जाये, बात की जाय। इस

* "Self-attitudes are social product." Cuber, *Sociology*, p. 286.

साधारण ढंग से समाजीकरण का एक मौलिक सत्य बहुत कम आयु में बच्चा प्राप्त करता है अर्थात् जो वह करता है वह उसके प्रति दूसरों के व्यवहार को भी प्रभावित करता है। आगे चलकर भी व्यक्ति पुरस्कार (reward) और दण्ड (punishment) से सामाजिक नियमों और गुणों को प्राप्त करता है।

स्व का विकास—'स्व' की परिभाषा देते हुए मर्फी ने कहा है कि "यह व्यक्ति का वह रूप है जिसमें वह स्वयं अपने को जानता है।"* क्यूबर ने इस सम्बन्ध में कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी कल्पना में एक्के सी स्थिति ले लेता है जैसे वह स्वयं अपने व्यक्तित्व के बाहर हो और इस ग्रहण की हुई स्थिति से वह अपने व्यक्तित्व को इस प्रकार देखता है जैसे वह कोई दूसरा व्यक्ति हो।† इस पर प्रकाश डालते हुए क्यूबर आगे कहते हैं कि व्यक्ति वास्तव में अपने को उस प्रकार नहीं देखता जैसा दूसरे व्यक्ति उसे देखते हैं, परन्तु वह केवल यह सोचता है कि वह स्वयं भी वैसा ही देखता है। उसका अपने बारे में निरीक्षण उतना ही गलत हो सकता है जितना कि किसी अन्य वस्तु के बारे में उसका निरीक्षण (observation)।

इसके साथ ही व्यक्ति अपने प्रति धारणाओं को बहुधा शब्दों में प्रकट भी नहीं कर सकता। वास्तव में, व्यक्ति अधिकतर इस बात से अचेतन होता है कि उसकी स्वयं के प्रति धारणायें उसे कैसी लगेंगी यदि वह वास्तविक रूप में उसके सामने शब्दों में कही जायें। इस प्रकार, हम अक्सर देखते हैं कि एक घमण्डी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति का इसीलिये अनादर करता है क्योंकि वह स्वयं घमंडी है। घमंडी व्यक्ति यह नहीं जानता कि स्वयं उसे भी लोग घमण्डी कहते हैं।

'स्व' के विकास में, हम पहले कह चुके हैं, कार्यग्रहण करना (roletaking) बहुत महत्वपूर्ण है। कार्य-ग्रहण करने की कुछ अवस्थायें (stages) हैं। इनमें सबसे पहली अवस्था आटिज्म (autism) है अर्थात् बच्चे की आवश्यकतायें केवल उसके चालकों (drives) की तत्काल पूर्ति से सम्बन्धित होती हैं। वह प्राकृतिक नियम या सामाजिक प्रथाओं का बिल्कुल भी विचार नहीं करता है। इस प्रकार, आटिज्म यथार्थता की विरोधी है अर्थात् संसार की उन वास्तविक दशाओं से जिनके द्वारा सचमुच इच्छा-पूर्ति होती है। इस अवस्था में बच्चा अन्य व्यक्तियों को केवल उन वस्तुओं के रूप में देखता है जिनके द्वारा उसकी इच्छा की पूर्ति होती है या उसमें बाधा पड़ती है।

---

* "The self is the individual as known to the individual." Murphy *Social Psychology*

† "Each person through his imagination takes a position as if he were outside of his own personality, as if he were someone else." —Cuber, *Sociology*

कार्य-ग्रहण की दूसरी अवस्था निरंकुशता (absolutism) है। धीरे-धीरे बच्चा ऑटिस्टिक अवस्था से छुटकारा पाता है जिसके दो कारण हैं। पहले, बच्चे की ऑटिस्टिक माँगों की पूर्ति में रुकावट मिलती है, अन्य व्यक्ति उनकी इच्छाओं का विरोध करते हैं। अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिये उसे अपनी कुछ प्रवृत्तियों को नियंत्रण में रखना पड़ता है और कुछ ऐसे कार्य करने पड़ते हैं (जैसे उँगली के स्थान में चम्मच का प्रयोग) जिससे शुरू में उसे सन्तोष प्राप्त नहीं होता। पहले उसके लिये केवल उसकी इच्छा और उसकी पूर्ति थी, अब उसके पर्यावरण में अन्य वस्तुयें भी आ गयीं जिनको उसे ध्यान में रखना पड़ता है। दूसरे, वह विभिन्न व्यक्तियों में भेद करना सीखता है। उदाहरण के लिये, वह माँ और बड़े भाई में भेद करना सीखता है जो उसे अपनी खेलने की वस्तुयें छूने भी नहीं देगा। वह यह समझने लगता है कि बिना अन्य व्यक्तियों का विचार किये वह वे कार्य नहीं कर सकता जो वह करना चाहता है, जैसे कहानी सुनना, सेब खाना, खिलौनों से खेलना। उसे साथी पाने के लिये, दण्ड की प्रत्याशा करने के लिये अन्य व्यक्तियों की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। उम्र और अनुभव के बढ़ने के साथ वह यह भी समझता है कि जिन सब व्यक्तियों के साथ वह अन्त:क्रिया करता है वे उसके प्रेरक-प्रतिमानों (motive-patterns) को बनाने में क्रियाशील हैं।

इस अवस्था में सबसे महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक परिवर्तन उसका "जरूर होना चाहिए" और "जरूर नहीं होना चाहिये" की भावना प्राप्त करना है। तीन साल का लड़का सोते समय केवल यही मांग नहीं करता कि उसे कहानी सुनाई जाये बल्कि वही कहानी और उन्हीं शब्दों में सुनाई जाये। निरंकुशता के इन स्वरूपों में धीरे-धीरे उचित और अनुचित के वे विचार भी सम्मिलित हो जाते हैं जो समाज के सभी सदस्यों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं। इसी प्रकार, वह सामाजिक व्यवहार-आदर्श (norms) आत्मसात् करता है।

कार्य-ग्रहण करना प्रत्याशाओं (anticipations) पर निर्भर करता है। निरंकुशता के इस काल में बच्चे वयस्कों के उन कार्यों की नकल शुरू कर देते हैं जिन्हें समाज की स्वीकृति प्राप्त है। बच्चे खेल में, दूध वाले, पुलिस वाले, बस कंडक्टर या माँ का कार्य करते हैं। अनुकरण के इन कार्यों की विशेषता यह है कि वे सामान्यत: इस ढंग से किये जाते हैं कि बच्चों और दूध वालों, पुलिस वालों के बीच किसी प्रकार की अन्त:क्रिया भी होती है। उदाहरण के लिए पुलिसमैन के रूप में वह स्वयं अपने को गिरफ्तार भी कर सकता है। इस प्रकार के व्यवहार यह प्रदर्शित करते हैं कि बच्चे केवल बड़ों के व्यवहारों की नकल ही नहीं करते बल्कि दूसरों के प्रत्याशित व्यवहार के प्रति प्रतिक्रिया भी करते हैं। यदि वह खेल में दूध वाले का कार्य करता है तो वह वास्तविक दूध वालों के बारे में इतना अवश्य जानता है कि

इस बात की प्रत्याशा कर लें दूध वाला क्या करेगा। उसका स्वयं का दूध वाले की उपस्थिति में व्यवहार दूधवाले के प्रत्याशित कार्य के प्रति प्रतिक्रिया है। इस प्रकार की प्रत्याशा सम्बन्धित प्रतिक्रिया (anticipatory response) बच्चे में होने वाले दो प्रकार के विकास के कारण सम्भव है। पहले, वह पिछले दिनों की घटनाओं का सम्बन्ध जोड़ने की क्षमता प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए, अपने पिता के आने वाले पदचाप (footstep) को सुनकर वह आगे होने वाली घटना का अनुमान लगा लेता है। दूसरे, भाषा का विकास होने से उसकी प्रत्याशा सम्बन्धी प्रतिक्रिया बढ़ जाती है। इससे बच्चा एक दोहरा कार्य ग्रहण कर लेता है। एक व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति से कुछ कहता है स्वयं को यह भी बताता है कि दूसरा व्यक्ति क्या सुन रहा है। वह स्वयं बोलता और सुनता दोनों ही है। जॉर्ज मीड का कथन है कि इस प्रक्रिया के द्वारा बच्चा जवाब देना सीखता है जिसकी दूसरा व्यक्ति प्रत्याशा करता है और अपने प्रति दूसरों की प्रतिक्रिया की भी प्रत्याशा करना सीखता है।

कार्य-ग्रहण की अन्तिम अवस्था पारस्परिक आदान-प्रदान (reciprocity) है जिसमें बच्चा दूसरों के दृष्टिकोण से स्थिति को देखने और समझने योग्य होता है। बच्चा यह समझने लगता है कि यदि माँ कार्य में व्यस्त है तो उसे तंग करना ठीक नहीं है।

सामाजिक क्रिया की परिभाषा (Definition of the Social Act)

साधारण रूप से सामाजिक क्रिया को एक व्यक्ति की वह क्रिया कह सकते हैं जो किसी अन्य व्यक्ति की क्रिया को प्रभावित करती है, उसे संशोधित या परिवर्द्धित करती है।* अन्तः क्रिया चाहे विरोध, होड़, सहयोग, श्रम-विभाजन या अन्य सामाजिक प्रक्रिया का रूप धारण करे, आधारभूत रूप में यह मानव-स्वभाव का एक प्रमुख अंग बनी रहती है। मानव का अस्तित्व और उसके व्यक्तिगत गुण अपने साथियों के साथ रहने और उनके साथ संस्कृति-भौतिक एवं अभौतिक, उनकी स्वीकृतियों, आशाओं एवं उत्तरदायित्वों में भाग लेने का ही परिणाम है।

व्यक्तिगत अन्तःक्रिया के दो मुख्य प्रकार हैं। पहले को हम वाह्य व्यवहार (overt behaviour) के रूप में जानते हैं। इसमें बड़ी माँसपेशियों और शारीरिक ढाँचे का उपयोग भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति अथवा अन्य मनुष्यों को प्रभावित करने के लिये होता है। यह वह क्षेत्र है जिसमें प्रत्यक्ष स्थूल सम्बन्ध होता है। इसे मां बच्चे के उस सम्बन्ध में देखा जा सकता है जो दूध पिलाते समय प्रकट होता है।

---

* "We may define social act in its simplest form as the act of an individual which qualifies, modifies or otherwise alters the act of another individual."

—Kimball Young, *Handbook of Social Psychology*.

दूसरे प्रकार की अन्त:क्रिया प्रतीकात्मक या साँकेतिक (symbolic or communicative) कहलाती है। यह इशारों में शुरू होती है जिसे अन्य व्यक्ति उसी प्रकार की क्रिया से या तो परिवर्धित कर देता है या फिर उसे समाप्त कर देता है। किन्तु यह पूरी तरह लिखित या बोली हुई भाषा में प्रकट होती है और व्यक्तित्व और संस्कृति दोनों ही में भाषा को केन्द्रिय स्थान प्राप्त है। यह विचार एवं अर्थ का स्रोत है जिसके बिना मानवीय स्तर का सामाजिक जीवन एवं संस्कृति असम्भव है। आन्तरिक प्रक्रियाओं का विकास वाह्य एवं सांकेतिक अन्त:क्रियाओं की प्रकृति पर निर्भर करता है किन्तु विशेष रूप से भाषा सम्बन्धी कार्य की प्रकृति पर निर्भर है। वास्तव में, सामंजस्य या विचारशक्ति की आन्तरिक प्रक्रिया सामाजिक क्रिया ही से स्वरूप एवं महत्व प्राप्त करती है।

'स्व' (self) के विकास पर विचार करने से पहले हमारे लिये यह उचित होगा कि हम व्यवहार के कुछ अधिक महत्वपूर्ण ढंगों का परिचय दें जिनके द्वारा अन्त:क्रिया सम्भव होती है। इस सम्बन्ध में, हम समीकरण (identification), प्रक्षेपण (projection), क्षतिपूर्ति (compensation), आत्मसात (sublimation), स्थानान्तर (displacement) और युक्तिपूर्वक व्याख्या (rationalization) पर विचार करेंगे।

समीकरण (Identification)

अन्त:क्रिया का मौलिक रूप वह है जो माँ और बच्चे के बीच में होता है। आत्म-चेतनता उभरने के बहुत पहले, बच्चा अपनी माँ की आवाज, हाव-भाव, दूध पिलाने की क्रिया और हाथ में लेने की क्रिया में सामंजस्य करता है। इस प्रकार की शुरुआत से अंत:क्रिया के विभिन्न स्वरूप प्रकट होते हैं। उदाहरण के लिए, जब माँ एक विशेष प्रकार के स्वर में बोलती है, बच्चा मुस्कराता है; जब वह दूसरे स्वर (tone) में बोलती है, वह भौंह चढ़ा सकता है या रो सकता है, आदि। इस प्रकार की शुरुआतों से जब भाषा प्रस्फुटित होती है और बच्चा माँ के कार्यों को करना शुरू कर देता है—अर्थात् माँ के हाव-भाव, वाणी और क्रियाओं की नकल करता है—वास्तविक समीकरण प्रकट होता है।

किम्बाल यंग ने कहा है कि दूसरे व्यक्ति की क्रियाओं, स्वर, हाव-भाव या अन्य गुणों को ग्रहण करना और स्थायी अथवा अस्थायी रूप से उनको अपना बना लेना ही समीकरण है।*

---

* "Identification may be defined as the taking over of the acts, tones of voice, gestures or other qualities of another person and making them, temporarily or permanently, one's own."

—K. Young.

सहानुभूति और सहयोग का विकास बहुत कुछ समीकरण के विकास पर निर्भर करता है। छोटी लड़कियां उस समय अपनी माँ से समीकरण करती हैं जब वे अपनी माँ के वस्त्र धारण कर शीशे या अपनी सखियों के सामने खड़ी होती हैं। कोई लड़का उस समय अपने पिता या प्रिय चाचा से समीकरण करता है जब वह खेल में मोटर गाड़ी चलाने का ढोंग करता है अथवा व्यापार में काल्पनिक सफलताओं की शेखी करता है।

प्रक्षेपण (Projection)

समीकरण का उल्टा प्रक्षेपण होता है। इसमें दूसरे व्यक्ति पर उन विचारों, उद्वेगों और क्रियाओं को लादा जाता है या उनसे उनका सम्बन्ध ठहराया जाता है जिनमें हम भाग लेते हैं या भाग लेना पसन्द करते हैं। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं हम अपने आस-पास के व्यक्तियों के व्यवहारों को ग्रहण करना ही नहीं सीखते हैं बल्कि उन पर वह सब भी लादना चाहते हैं जो हम स्वयं देखते, विचारते, अनुभव करते या कार्य करते हैं। प्रक्षेपण उतनी ही मौलिक सामाजिक क्रिया है जितनी कि समीकरण परन्तु समीकरण की शुरुआत होने के बाद ही यह प्रकट होना शुरू करता है। हम यह विश्वास कर सकते हैं कि अन्य व्यक्ति हमारी अनुपस्थिति में हमारे बारे में चर्चा करते हैं, क्योंकि हम स्वयं ऐसा करते हैं या कम से कम ऐसा करने की इच्छा रखते हैं।

क्षतिपूर्ति (Compensation)

यह सर्व विदित है कि नैराश्य को दबाने या दूर करने के लिये एवज़ी (substitute) प्रतिक्रिया करना एक सामान्य विधि है। इसका एक सामान्य स्वरूप क्षतिपूर्ति है, किसी एक उद्देश्य के एवज में दूसरा उद्देश्य बनाना या उद्देश्य-प्राप्ति के एक साधन का दूसरे साधन द्वारा स्थानापन्न (substitution) करना। प्रेम में निराशा होने पर कोई व्यक्ति धन सम्बन्धी विषयों में शक्ति प्राप्त करने की प्रबल इच्छा विकसित कर सकता है और कुरूप व्यक्ति अक्सर व्यवसायों में सफलता प्राप्त करते हैं जिससे उसके एवज में उन्हें दूसरे प्रकार का सन्तोष प्राप्त होता है।

आत्मसात (Sublimation)

यह क्षतिपूर्ति का एक विशिष्ट उदाहरण है जिसमें एवज़ी वस्तु या क्रिया उच्च नैतिक स्वीकृति प्राप्त कर लेती है। इसका उदाहरण हमें सन्तानहीन माता-पिता द्वारा बच्चों के गोद लिए जाने में मिलता है।

एल्फ्रेड एडलर ने जिन्होंने क्षतिपूर्ति की धारणा विकसित की थी, यह कहा था कि बहुत कुछ हमारे कार्य व इच्छायें हीनता की भावना से प्रेरित होते हैं और जब हम अपनी अयोग्यताओं को दबाने या दूर करने का प्रयास करते हैं, क्षतिपूर्ति सम्बन्धी प्रतिक्रियायें अक्सर सम्पूर्ण व्यक्तित्व में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान बना लेती हैं।

स्थानान्तर (Displacement)

क्षतिपूर्ति और आत्मसात (sublimation) से निकट रूप से सम्बन्धित स्थानान्तर है जिसका अर्थ है विचारों, उद्वेगात्मक मनोवृत्तियों, मूल्यों और प्रतिक्रियाओं का दूसरी सामाजिक या भौतिक वस्तु को स्थानान्तर। फ्रायडियन मनोविज्ञान ने प्रेम और स्नेह के स्थानान्तर पर बल दिया है, परन्तु आजकल स्थानान्तर शब्द का प्रयोग एक स्थिति से दूसरी स्थिति में किसी चालक (drive), प्रतिक्रिया या उद्देश्य के शिफ़्ट (shift) करने के लिये किया जाता है।

युक्तिपूर्वक व्याख्या (Rationalization)

अन्तःक्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू अपने व्यवहार के लिये औचित्य (justification) या बहाना ढूँढ़ना है। इसी को हम युक्तिपूर्वक व्याख्या कहते हैं। जिन कार्यों को हम सोच समझ कर करते हैं उनके लिये तो हमारे पास ठोस और अच्छे कारण होते हैं। परन्तु जिन कार्यों को हम अचेतन रूप से या आदतन करते हैं उनके लिये वास्तविक कारकों का होना मुश्किल होता है। ऐसी स्थिति में बनाकर कुछ युक्तिपूर्वक व्याख्या की जाती है।

स्व की उत्पत्ति
(The Rise of Self)

'स्व' का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, जन्मजात नहीं होता है। 'स्व' का विचार उस समय विकसित होता है जब बच्चा अपने चारों ओर की वस्तुओं के बारे में कुछ जानने लगता है। वह इस रंग और उस रूप में भेद करना सीखता है; इसी प्रकार वह यह सीखता है कि उसके शरीर के अंग स्वयं उसके हैं। स्व का विचार अन्य व्यक्तियों के संदर्भ और सम्बन्ध में ही व्यक्ति सीखता है। वह सीखता है कि वे सब भिन्न व्यक्ति हैं और उसकी अपनी भी कुछ अलग विशेषता है। अपने नाम से परिचय और अपने बारे में दूसरों द्वारा प्रयोग किये गये अच्छे या बुरे शब्द उसको अपनी खोज में मदद देते हैं। अन्य व्यक्ति कुछ बातों के लिये उसकी प्रशंसा करते हैं और दूसरी बातों के लिये निन्दा। हॉल का कथन है कि बच्चे को अपने बारे में विचार उन नामों से प्राप्त होता है जिनसे वह अपने घनिष्ठ लोगों द्वारा पुकारा जाता है और जो स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के द्योतक होते हैं। इसके अतिरिक्त, समाजशास्त्रियों का विश्वास है कि जिस समूह का व्यक्ति सदस्य होता है उसमें होने वाले उसके सम्मान (esteem) का व्यक्ति की हीनता या श्रेष्ठता की भावना पर प्रभाव पड़ता है। यदि अपने समूह, उदाहरण के लिये परिवार में उसका पद निम्न है, आदर कम है तो उसमें हीनता की भावना उत्पन्न हो जायेगी। यही नहीं, बल्कि समाज में उस समूह की स्थिति, जिनका वह सदस्य है, भी इस सम्बन्ध में इसी प्रकार महत्वपूर्ण है।

नीग्रो समूह की अमेरिकन समाज में निम्न स्थिति होने से नीग्रो लोगों में हीनता की भावना पाई जाती है ।

समीकरण और आशा (Indentification and expectancy)

स्व की उत्पत्ति का पहला कदम बच्चे की उन प्रत्याशित (anticipatory) प्रतिक्रियाओं में पाया जाता है जो वह माँ या अन्य किसी व्यक्ति के प्रति बनाता है । उदाहरण के लिए सीखने के दरम्यान में, भूख को शान्त करने में माँ को साधन के रूप में प्रयोग करते हुए बच्चा उसके प्रति अनेक प्रत्याशित प्रतिक्रियायें बना लेता है । इस इच्छा को शान्त करने के लिये माँ क्रियाओं की एक श्रेणी (series) का प्रयोग करती है । इसलिये बहुत शीघ्र ही भूख से उत्पन्न होने वाले कष्ट या तनावों के अतिरिक्त, जिन्हें बच्चा रो कर प्रकट करता है, बच्चा अपनी माँग पूरी होने की आशा में शारीरिक आसन (postures) और होठों, जीभ और हाथों की चेष्टाएँ व भाव (gestures) प्राप्त कर लेता है । इसके अतिरिक्त उसकी यह क्रियायें माँ की अनुरूप (corresponding) क्रियाओं से उत्तरोत्तर सम्बधित हो जाती हैं, जैसे कि उसके मुँह में स्तन देना, उसकी आवाज की ध्वनि, उसका मुस्कराना, उसके हाथों और शरीर का बच्चे के ऊपर दबाव ।

इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं से एक वाह्य समीकरण उत्पन्न होता है । जिस प्रकार बच्चे के रोने, हाथ पैर चलाने और शारीरिक तनाव से माँ यह समझ लेती है कि बच्चा भूखा है उसी प्रकार बच्चे के भाव स्वयं उसी के लिए महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि उससे उसकी भूख शान्त होती है । उसे तब तक यह पुरस्कार नहीं मिल सकता जब तक वह अपनी क्रियाओं का सामंजस्य माँ की क्रियाओं के साथ नहीं करता । वह अपनी क्रियाओं को उसी प्रकार नियंत्रित या निर्देशित करना सीखता है जैसा कि दूसरे व्यक्ति उससे आशा करते हैं ।

बच्चे की माँ के साथ समीकरण की यह प्रक्रिया स्व के विकास के शुरुआत के पहलू का एक उदाहरण है । बच्चा माँ की क्रियाओं की प्रत्याशा (anticipation) और अपनी क्रियाओं को परिवर्तित करने को सीखे बगैर अपनी आवश्यकता या इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकता ।

भाषा का स्थान (The place of language)

इस प्रकार की अन्त: क्रियात्मक प्रक्रियायें भाषा के द्वारा अत्यन्त सरल हो जाती हैं । सच्ची भाषा तब शुरू होती है जब कि माँ या कोई अन्य व्यक्ति उसको कोई वस्तु प्रदान करता है और उसी समय कुछ बोलता है और बच्चा उसको दोहराता है । माँ, 'आओ' कह कर बच्चे की ओर हाथ फैलाती है जिससे उसके हाथ के भाव और ध्वनि संसर्ग (sound combination) बच्चे के मस्तिष्क में बैठ जाते हैं **और**

इसी प्रकार भाषा विकसित होती है। यह किसी दिखाई पड़ने वाले पदार्थ का किसी विशेष प्रकार की ध्वनि से सम्बन्ध जोड़ना है। इस प्रकार के संसर्ग को दोहराने से बच्चा माँ की सहायता के बिना भी ध्वनि और पदार्थ को सम्बन्धित करता है। जब वह इस सम्बन्ध को जोड़ लेता है, भाषा प्रारम्भ हो जाती है।

बच्चे का भाषा को सीखना केवल एक बौद्धिक विषय ही नहीं है। यह उसके व्यक्तित्व के विकास में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।* भाषा बच्चे को नये और महत्वपूर्ण ढंगों से उसके माता-पिता और खेल के साथियों के सम्पर्क में लाती है और उसे अधिक व्यापक और सामाजिक दृष्टिकोणों को बनाने में सहायता देती है। यह उसे नये आनन्दों और सन्तोषों से परिचित कराती है और उसके लिये नयी आवश्यकताओं और समस्याओं को उत्पन्न कराती है। भाषा को सीख कर वह सामाजिक सम्बन्धों को नियन्त्रित (regulate) करने वाले नियमों और मानदण्डों को सीखता है और नैतिक और धार्मिक विषयों से सम्बन्धित विचारों को विकसित करता है। भाषा ही वह साधन है जिसके द्वारा धीरे-धीरे उसे उन कार्यों (roles) के लिए तैयार किया जाता है जो उसे करने हैं। भाषा के द्वारा वह दूसरे व्यक्तियों के दृष्टिकोणों, भावनाओं और उद्गारों को समझना सीखता है। भाषा के द्वारा वह एक व्यक्ति के रूप में और उन समूहों के सदस्य के रूप में अपनी स्थिति (identity) से चेतन होता है जिनमें वह पद, सुरक्षा और आत्म-प्रकटन प्राप्त करना चाहता है और जो समूह बदले में उससे माँगें करते हैं।†

प्रतिमा बनाना (Introjection)

इस शब्द का प्रयोग अपनी ही क्रिया को और अपने कार्यों की प्रतिक्रिया के रूप में दूसरे व्यक्तियों की क्रिया को देखने और बाद में स्मरण रखने के लिए मन में प्रतिमा के तौर पर बनाने की व्यक्ति की योग्यता के लिये किया जाता है।** जब हम कहते हैं कि बच्चा अपनी माँ की प्रतिमा बनाता (introjects) है तब हमारा यह अर्थ होता है कि माँ के उसके प्रति कार्य उसके लिए प्रतिमा बन जाते हैं और जो माँ के प्रति उसके कार्यों से सम्बन्धित होती है। स्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उपरोक्त प्रक्रिया के अन्तर्गत अपने अन्दर दूसरों की प्रक्रियाओं को लेना और अपनी प्रक्रियाओं से उनको सम्बन्धित करना है। हम इस बात को स्मरण रखते हैं कि किस प्रकार की स्थिति में किस प्रकार की प्रतिक्रिया होती है।

---

* Curtis, *Social Psychology*.

† *Ibid*.

** "Introjection refers to the capacity of the organism to take up into itself as perception and later on as memory image not only of its own activity but the acts of others towards its own responses."

यदि हम किसी व्यक्ति की ओर हाथ बढ़ाते हैं तो अपने अन्दर हमने पहले ही उसके हाथ मिलाने के प्रति प्रतिक्रिया शुरू कर दी होती है। हमारे हाव भाव इस बात को प्रकट करते हैं कि हम क्या आशा कर रहे हैं। इसी प्रकार जब हम दूसरे व्यक्ति से बोलते हैं तो हम उस बात के प्रति प्रतिक्रिया शुरू कर दिये होते हैं जो हम आशा करते हैं दूसरा व्यक्ति कहेगा। यह इस सत्य से उत्पन्न होता है कि दूसरे व्यक्ति की प्रतिक्रिया की हमारी प्रत्याशा हमारे पिछले सीखने पर आधारित है।

विशिष्ट कार्य-ग्रहण (Specific role taking)

इस प्रकार की प्रत्याशित (anticipatory) क्रियाओं और विशेषकर दूसरों की क्रियाओं का अनुकरण करने में, बच्चा अपने चारों ओर के सामाजिक संसार से भी अपना समीकरण (identification) शुरू कर देता है। वह रसोई घर में अपनी मां या बावर्ची के पीछे जा सकता है। शुरू में बच्चे का खेल मुख्यतः सहज-आनन्द (motor-pleasure) की किस्म का होता है जो वह खिलौने के हिलने-डुलने और अपने शरीर के हिलने-डुलने से प्राप्त करता है। जब वह चलना सीखता है और विशेषकर जब वह बोलना सीखता है दूसरों की क्रियाओं के प्रति उसका ध्यान वैसा ही कार्य करने के लिये उसी के लिये प्रेरक हो जाता है और स्वयं भी वह ऐसा करना चाहता है। अपने माता-पिता की क्रियाओं के समान कुछ क्रियायें करने पर उसे पुरस्कार और कुछ पर दण्ड मिलता है। इस प्रकार के पुरस्कार या दण्ड उसके समीकरण की दिशा को निश्चित करते हैं। हम कहते हैं कि वह अपनी मां के कार्य को अपना रहा है।

(१) वह स्वयं अपने से उसी प्रकार बात करता है जैसे कि दूसरों ने उससे बात की है। वह दूसरों के कार्यों को ग्रहण नहीं करता बल्कि बोली और क्रियाओं के सम्बन्ध में वह अपने को उसी प्रकार देखता है जैसा कि दूसरे व्यक्ति उसे देखते हैं। भाषा के द्वारा ही समीकरण को विचारों में प्रवेश कराया जाता है। शुरू के दो या तीन वर्ष तक बच्चा ऐसे वाक्य कह कर अपनी इच्छा प्रकट करता है 'मुन्ना यह चाहता है,' 'टोनी यह पसन्द नहीं करता'। जब बच्चा विकास के इस पहलू पर पहुँचता है, 'स्व' उत्पन्न होने को तैयार होता है।

(२) दूसरी स्थिति वह है जब अकेला होने पर बच्चा मां, पिता, डाक्टर या अन्य किसी व्यक्ति, जिसके सम्पर्क में वह आता है, के कार्य को खेल में करना चाहता है। वह आफिस की मेज पर बैठकर एक अफसर की तरह उसी प्रकार व्यवहार करता है जैसे कि उसके पिता करते हैं। इस प्रकार, पिता की भाँति उसके कुछ कार्यों पर उसे पुरस्कार और कुछ पर दण्ड मिलता है।

सामान्य कार्य-ग्रहण (General role-taking)

जब बच्चे बड़े होने लगते हैं तब अनेक विशिष्ट कार्यों से जिन्हें उन्होंने ग्रहण किया है कुछ का सामान्यीकरण करना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार के सामान्यीकरण सबसे पहले उन वर्तमान आवश्यकताओं या चालक (drive) और संकेतों, प्रतिक्रियाओं और पुरस्कारों के क्रम से शुरू होते हैं। यह क्रम ऐसे विषयों से चित्रित हो सकता है जैसे कि भूख शांत करने की बारम्बार कोशिश, जिस स्थिति में माँ या किसी अन्य वयस्क का विशेष हाथ होता है।

दूसरे, यह किसी अर्जित (acquired) चालक से उत्पन्न हो सकता है जैसे कि सामाजिक स्वीकृति की इच्छा।

तीसरे, यह इस सत्य से उत्पन्न हो सकता है कि किसी विशिष्ट कार्य-ग्रहण के कुछ तत्व वही हैं जो दूसरी विशिष्ट क्रिया में पाये जाते हैं।

सामान्य कार्य (role) या सम्बन्धित सामान्य कार्यों के क्रम का आविर्भाव ही वास्तव में व्यक्तित्व की संयुक्तता (integration) का आधार है। कर्टिस (Curtis) कहता है कि जब बच्चा सहयोगात्मक क्रियाओं में भाग लेता है तो उससे भी सामान्य कार्य के विकास को प्रेरणा मिलती है। यह खेल-कूद में पाया जाता है जहाँ खिलाड़ियों का सहयोग (team work) आवश्यक होता है। फुटबाल के अच्छे खिलाड़ी के लिए स्वयं अपने ही कार्य को कुशलतापूर्वक नहीं करना होता है बल्कि उसमें टीम के अन्य खिलाड़ियों के कार्यों की कल्पना करने की भी योग्यता होना आवश्यक है। उसे यह प्रत्याशा कर लेनी चाहिए कि दूसरे खिलाड़ी कहां फुटबाल फेकेंगे और किस प्रकार खेलेंगे। दूसरे शब्दों में, कम से कम कल्पना में ही उसे थोड़ी देर के लिये, दूसरे के कार्य को ग्रहण करने की योग्यता होनी चाहिए।

सामाजिक स्व का उभरना (The emergence of the social self)

सामाजिक स्व के उभरने के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जब बच्चा माँ, पिता या किसी अन्य व्यक्ति का कार्य ग्रहण करता है तब उनकी काल्पनिक भाषा का जवाब भी देता है। स्व का विकास व्यक्ति की स्वयं के लिये एक वस्तु होने की अर्जित योग्यता पर निर्भर करती है।* इस योग्यता की उत्पत्ति भाषा से होती है। हाव-भाव और शब्द ही वाह्य क्रिया और चिन्तन के आन्तरिक संसार के माध्यम हैं। इसलिए उत्पत्ति को देखते हुए चिन्तन भी आवश्यक रूप से सामाजिक है।†

* "The development of self depends upon the acquired ability of the individual to be an object to himself."

—Curtis, *Social Psychology*.

† "Gesture and word are the media between overt act and the

बच्चा अपने को उसी रूप में देखता है जिसमें अन्य व्यक्ति उसके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। यह समीकरण और कार्य-ग्रहण के उन प्रकारों से चित्रित है जो हम ऊपर लिख चुके हैं। दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं, शब्दों, स्वर, और अन्य हाव-भावों का बच्चे की प्रतिक्रिया के साथ सम्बन्ध है। पहले वह एक और फिर दूसरा कार्य (part) करता है। यह ऐसा इसलिए कर सकता है क्योंकि उसने अपनी इच्छाओं के साथ दूसरों की क्रियाओं को सम्बन्धित किया है और क्योंकि उसका कार्य-ग्रहण करना सामाजिक क्रिया के उन तत्वों को ग्रहण करना है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित है। उसका कार्य-ग्रहण दूसरों की उससे की गई आशा से सामंजस्य रखता है।

बच्चा खेल में माँ, नर्स, सैनिक, सिपाही आदि का कार्य करता है परन्तु अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वह एक के बाद एक अनेक कार्यों को करता है। इस प्रक्रिया में बच्चा अपने में उन्हीं मनोवृत्तियों को प्रकट करता है जो दूसरे उसके प्रति प्रतिक्रिया करते समय उसमें प्रकट करते हैं।

गुड़ियों के साथ माँ का पार्ट अदा करते समय छोटी लड़कियाँ केवल माँ का ही कार्य नहीं करती हैं बल्कि गुड़ियों की तरफ से स्वयं उसी प्रकार प्रतिक्रिया भी करती हैं जैसा कि वे अपनी माताओं से करती हैं। इस प्रकार दूसरों के कार्य-ग्रहण करने और उसके प्रति प्रतिक्रिया करने से ही सामाजिक स्व उभरता है। जार्ज मीड ने कहा है कि स्व व्यवहार में उभरता है जब अनुभव में व्यक्ति स्वयं अपने लिए एक सामाजिक वस्तु बन जाता है। यह उस समय होता है जब कि बच्चा उन मनोवृत्तियों या हाव-भाव को ग्रहण और प्रयोग करता है जो दूसरों ने उसके प्रति प्रतिक्रिया के रूप में की थी। धीरे-धीरे बच्चा स्वयं अपने अनुभव में एक सामाजिक प्राणी बन जाता है और अपने प्रति उसी प्रकार व्यवहार करता है जिस प्रकार वह दूसरों के प्रति व्यवहार करता है।*

सामाजिक निन्दा से बचने के लिये, बच्चे के लिये यह आवश्यक होता है कि

---

inner world of thinking. Hence thinking is by its origin essentially social." *Ibid.*

* "The self arises in conduct, when the individual becomes a social object in experience to himself. This takes place when the individual assumes the attitude or uses the gesture which another individual would use and respond to it. The child gradually becomes a social being in his own experience, and he acts towards others."

C. H. Mead, *A Behavioristic Account of the Significant Symbol.*

वह उस व्यवहार को न करे जिसे समाज अस्वीकार करता है। उसे आत्म-संयम और इच्छादमन (repression) सीखना पड़ता है। ईमानदारी और सच्चाई जैसे नैतिक गुण ऐसे कार्य करने की प्रवृत्तियों के दमन पर निर्भर करते हैं जिन्हें चोरी या झूठ बोलना कहा जाता है। शुरू में डाँट, डपट, मार, धमकी आदि के द्वारा बच्चे में दमन शक्ति विकसित होती है।

विलियम जेम्स ने कहा है कि "सामाजिक स्व" से तात्पर्य उस स्वीकृति (recognition) से है जो वह अपने साथियों से प्राप्त करता है। वास्तव में जेम्स के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के उतने अधिक सामाजिक स्व होते हैं जितने अधिक वे व्यक्ति होते हैं जो उसे पहचानते हैं और अपने मस्तिष्क में उसकी प्रतिमा धारण किए होते हैं।* परन्तु, क्योंकि वह व्यक्ति वर्गों में मिल जाते हैं जो उसकी वैसी प्रतिमा लिये होते हैं अतः उसके उतने अधिक सामाजिक स्व होते हैं जितने व्यक्तियों के भिन्न समूह होते हैं जिनके मत की वे परवाह करते हैं।

---

* "A man has as many social selves as there are individuals who recognize him and carry an image of him in their minds."

२३ संस्कृति तथा व्यक्तित्व (Culture and Personality)

प्रत्येक मनुष्य कुछ अंशों में

(क) दूसरे सब लोगों की तरह होता है (like all other men)

(ख) दूसरे कुछ लोगों की तरह होता है (like some other men)

(ग) दूसरे किसी मनुष्य की तरह नहीं होता है (like no other man)

इन शब्दों के साथ क्लूक्हान (Kluckhohn) तथा मरे (Murray) ने व्यक्तित्व-निर्माण के शास्त्रीय निबन्ध का प्रारम्भ किया। विस्तृत अर्थ में व्यक्तित्व के विषय में उनकी धारणा हमारी धारणा के समान ही हैं। व्यक्तित्व-विकास के तीन अन्तर्क्रियात्मक वैरियेब्ल्स (interactive variables)—जैविक शरीर रचना, सामाजिक अन्त:क्रिया तथा संस्कृति जिनको हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं—को इस प्रकार संक्षिप्त कर सकते हैं—
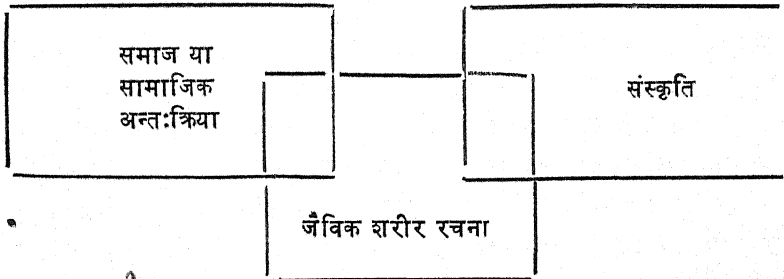
यह स्पष्ट है, कि प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ अंशों में दूसरे सब लोगों की ही तरह होता है। विस्तृत जैविक दृष्टि से सम्पूर्ण मानव-प्रजाति के कुछ न कुछ गुण

सार्वभौमिक होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य दूसरे सब लोगों के समान इसलिये है कि सीखने के नियम चाहे कैसे क्यों न हों सम्पूर्ण मानव प्रजाति पर लागू होते हैं। सीखने के सिद्धान्तों का एक सेट एक मानव समूह पर लागू नहीं होता है तथा दूसरा सेट दूसरे मानव-समूह पर। अन्त में, प्रत्येक मनुष्य दूसरे सब मनुष्यों के समान इसलिये भी है कि मानव-आकाँक्षायें तथा मानव-प्रेरणायें प्रत्येक समाज, संस्कृति एवं वातावरण में एक सी ही होती हैं।

(2) यह भी सही है कि प्रत्येक मनुष्य कुछ दूसरे मनुष्यों के समान होता है। हम देखते हैं कि सामाजिक-व्यवस्थायें कुछ सामाजिक कार्यों को निर्धारित करती हैं जो एक सामाजिक व्यवस्था के व्यक्तियों द्वारा सामान्य रूप से ग्रहण कर ली जाती हैं। कुछ कार्य इसलिये भी निर्धारित कर दिये जाते हैं कि लोग उन्हें अपनी पसन्द से चुनते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य कुछ दूसरे लोगों की तरह है; उन लोगों की तरह है जो उसके समान कार्य सम्पन्न करते हैं। सामाजिक इकाइयों की अपनी-अपनी कार्य विधि होती है। उदाहरण के लिये हम मध्यम वर्ग की रूढ़ियों का वर्णन करते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य उस मनुष्य की तरह है जो उसकी संस्कृति से सम्बन्धित होता है।

(3) जैविक रचना तथा सीखने के नियमों तथा प्रेरणाओं से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि सम्पूर्ण मानव-प्रजाति एक सी है। व्यवहार सम्बन्धी विभिन्नताओं की दृष्टि से एक संस्कृति का मनुष्य दूसरी संस्कृति के मनुष्य से भिन्न होता है। जीवन के विभिन्न अनुभवों में प्रत्येक मनुष्य दूसरों से भिन्न होता है। अन्त में हम कह सकते हैं कि एक व्यक्ति के जीवन अनुभवों को दूसरे व्यक्ति बिल्कुल उसी प्रकार नहीं ग्रहण करते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य हर दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है।

संस्कृति क्या है ?

एक समाज के अन्दर सभी व्यक्ति सम्मिलित होते हैं जिनकी एक सामान्य संस्कृति होती है। संस्कृति के कुछ भाग उस समाज के बाहर भी फैले हो सकते हैं और उसके सभी सदस्य पूरी संस्कृति में भाग नहीं लेते। वे संस्कृति के आवश्यक तत्वों में भाग लेने के कारण सदस्य हैं। संस्कृति के अन्दर पर्यावरण की वे सब वस्तुयें सम्मिलित हैं जिनके प्राकृतिक रूप को मनुष्य ने बदल दिया है। इसके अतिरिक्त संस्कृति के अन्दर वे सब गुण भी आते हैं जो समाज के सब सदस्य समाज में रहकर, प्राप्त करते हैं न कि जो जन्मजात गुण हैं। इसके अन्दर संस्थायें, भाषा, विचार आदर्श, उद्वेगात्मक, और व्यवहार सम्बन्धी प्रतिमान और एक दूसरे के साथ कार्य करने, सहयोग करने और संदेश सम्बन्धी आशायें भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार संस्कृति एक सीखा हुआ व्यवहार है, वह व्यवहार जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को

हस्तांतरित किया गया है। वे सब भौतिक वस्तुयें, जैसे—मकान, हथियार, औजार, जो समाज के सभी सदस्य समान रूप से प्रयोग करते हैं, और अभौतिक वस्तुयें जैसे—विश्वास, जैसे—किसी धर्म, भूत-प्रेत में विश्वास और रीतियाँ, धार्मिक, सामाजिक रीतियाँ सम्मिलित हैं, जो सभी सदस्यों में समान रूप से पायी जाती हैं। इसलिये बियरस्टैड ने कहा है, संस्कृति उन वस्तुओं का गूढ़ संग्रह है, जो समाज के सदस्यों के रूप में हम सोचते और करते और रखते हैं।*

प्रत्येक समाज की अपनी अलग संस्कृति होती है और क्योंकि व्यक्ति समाज के सदस्य होते हैं उनकी संस्कृति अन्य समाज के व्यक्तियों से भिन्न होती है, उनका व्यवहार दूसरे समाज के सदस्यों के व्यवहार से भिन्न होता है। प्रत्येक संस्कृति में दो पहलुओं को देखा जाता है जो आपस में सम्बिन्धित हैं। प्रत्येक समाज अपने प्राकृतिक पर्यावरण से अपने ढंग से मनुष्य–निर्मित पर्यावरण बनाने के लिये भिन्न पदार्थ को चुनता है। इस मनुष्य--निर्मित पर्यावरण में निवास-स्थान, भोजन, वस्त्र, संस्कारों में प्रयोग होने वाली वस्तुयें और अस्त्र, अनेक औजार सम्मिलित हैं। प्राकृतिक पर्यावरण का यह उपभोग हमेशा संस्कृति के दूसरे पहलू पर निर्भर है जिसे हम अपने साथ लिये फिरते हैं, विचारों आकाँक्षाओं, और व्यवहार के प्रतिमान जिन्हें हम अपने पूर्वजों से प्राप्त करते हैं।

मनुष्य की जन्मजात क्षमताओं में से संस्कृति कुछ को विकसित करने और कुछ को दबाने के लिये चुनौती है। प्रत्येक संस्कृति इनको अपने ढंग से शोधित, प्रवाहित, विकसित, नियंत्रित, और प्रशिक्षित करती है। उदाहरण के लिये लड़ने की क्षमता। ऐस्किमो लोगों में लड़ाई जैसी चीज बिल्कुल ही अज्ञात है। इसके अतिरिक्त संस्कृति हमारे कार्यों और भावनाओं की सीमा को नियंत्रित करती है। यह कार्यों और वस्तुओं के सम्बन्ध में हमारी पसन्द और नापसन्दगी को प्रभावित करती है।

संस्कृति हमारी दृष्टि (sensitiveness) को परिमित (civcumscribe) करती है। यह हमारी सूक्ष्म चेतना (sensitivity) को कुछ दिशाओं में तेज करती है और कुछ दिशाओं में सुस्त। अन्य व्यक्ति हमें काले और गोरे, या स्त्री और पुरुष या अमीर और गरीब के रूप में दिखाई पड़ते हैं। यह समाज से प्रभावित हमारे ध्यान-केन्द्र पर निर्भर करता है। संस्कृति इस बात को बेहद प्रभावित करती है कि जिस वस्तु को हम देखते हैं उसका मूल्यांकन किस प्रकार से करते हैं। हम काले रंग से पुते दाँतों को सुन्दर मानेंगे या सफेद दाँतों को; अन्य व्यक्तियों के प्रति हमारा आदर आयु,

* "Culture is the complex whole that consists of every thing we think and do and have as members of society."—Bierstedt, *The Social Order*.

रंग, लिंग, धन, शिक्षा, मनोरंजन करने की क्षमता, शारीरिक शक्ति या वैयक्तिक चरित्र में से किस पर निर्भर करेगा; आदर्श स्त्री दुबली, पतली या मोटी होती है— यह हमारे समाज द्वारा प्रभावित सौन्दर्य सम्बन्धी, नैतिक और यौन सम्बन्धी आदर्शों पर निर्भर करता है।

सामाजिक आदर्श शरीर की वास्तविक बनावट को प्रभावित करते हैं। यह केवल होठों को रंगने से, शरीर मुड़ाने आदि से ही नहीं होता है बल्कि खास तरह के लोगों के साथ यौन सम्बन्ध करके और सन्तान को वैसा ही बनाने से होता है। उदाहरण के लिये, हजारों वर्षों से चीनी, बर्मी और अन्य व्यक्ति सपाट छातियों वाली स्त्रियों से यौन सम्बन्ध करना पसन्द करते हैं जिसके फलस्वरूप वहाँ की स्त्रियाँ अपनी छाती को वैसा बनाने की कोशिश करती हैं।

सीखे हुए व्यवहार के रूप में संस्कृति हमारी ऐसी भावनाओं में प्रकटन या दमन को प्रभावित करती है जैसे आदर, घृणा या प्रेम। यह इस बात को भी निश्चित करती है कि यदि यह भावनायें प्रकट की जायें, तो किस प्रकार से प्रकट की जायें, किन अवसरों पर प्रकट की जायें और किस हद तक प्रकट की जायें।

संस्कृति और व्यक्ति के सम्बन्ध में जॉर्ज गिलिन ने तीन मुख्य बातें बताई हैं।* पहली, संस्कृति सीखने की दशाओं को प्रस्तुत करती है। जन्म के बाद मानव शिशु एक मानव निर्मित पर्यावरण में प्रवेश करता है। वह अनेक प्रकार के भौतिक पदार्थों से घिरा रहता है जिनकी संख्या, प्रयोग, और आकार उस संस्कृति की विशेषता है। दूसरी, संस्कृति एक निश्चित ढंग से व्यक्ति को प्रतिक्रियायें करने को प्रेरित करती है। यद्यपि व्यक्ति के कुछ व्यवहार ट्रायल और एरर (trial and error) से सीखे गये हैं, प्रत्येक समाज इस बात के लिये विशेष प्रयत्न करता है कि व्यक्ति कुछ स्थितियों में ऐसी प्रतिक्रियायें करे जो समाज उचित समझता है। छोटे बच्चे की उँगली उसके मुँह से निकाल ली जाती है; शौच के लिए बच्चे को ठीक स्थान पर बैठाया जाता है; खाने-पीने के बर्तन जैसे काँटे, छुरी को उसके हाथ में पकड़ा कर उसका सही इस्तेमाल बताया जाता है। भाषा विकसित होने पर उसका उचित प्रयोग भी बच्चों और वयस्कों को बताया जाता है। तीसरी, संस्कृति दण्ड और पुरस्कार के द्वारा सीखने की प्रक्रिया और बुरी आदतों को छोड़ने में तेजी लाती है।

लिंटन ने कहा है कि व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति के प्रभाव दो प्रकार के होते हैं। एक ओर तो वे प्रभाव हैं जो संस्कृति द्वारा निश्चित रूप से होने वाले,

---

* John Gillin, *The Ways of Men*, p. 248,

बच्चे के प्रति वयस्कों के व्यवहार से निकले हैं। दूसरी ओर वे प्रभाव हैं जो समाज के सामान्य व्यवहार-प्रतिमानों को व्यक्ति द्वारा स्वयं देखे जाने का फल है। यह सत्य है कि यह दोनों प्रकार के प्रभाव एक दूसरे से अलग नहीं हैं बल्कि एक दूसरे में अक्सर प्रवेश (overlapping) कर जाते हैं। उदाहरण के लिये, बच्चे के प्रति वयस्कों का व्यवहार उस समय मॉडल के रूप में प्रयोग होता है जब वही बच्चा वयस्क होकर अपने बच्चों के पालन-पोषण की समस्या का सामना करता है। उदाहरण के लिये, हम अपने बच्चों को स्कूलों में इसलिये भेजते हैं क्योंकि हम स्वयं अपने माता-पिताओं द्वारा स्कूलों को भेजे गये थे।

अब हम **बच्चों के प्रति वयस्कों के व्यवहार** पर विचार करेंगे जो कि संस्कृति द्वारा प्रभावित होते हैं। ऐसे अनेक समाज हैं जिनमें स्त्रियाँ चलते हुए या खड़े होकर बच्चों को स्तनपान कराती हैं जिसकी वजह से बच्चों को पूरा सन्तोष नहीं मिलता। उदाहरण के लिये, भीलों में ऐसा होता है। उनके बच्चे अपनी माँ के स्तन से लगे रहने के लिये हाथ पैर चलाते हैं। अनेक मानवशास्त्रियों का विश्वास है कि यह बच्चे हिंसक और झगड़ालू प्रवृत्ति के निकलते हैं। कुछ समाजों में बच्चों की हर वक्त देख-भाल नहीं की जाती बल्कि थोड़ी-थोड़ी देर बाद उनकी ओर ध्यान दिया जाता है, वह भी माँ के द्वारा नहीं बल्कि किसी अन्य वयस्क के द्वारा। मनोविश्लेषणकर्ताओं (psychoanalysts) के अनुसार यह थोड़ी-थोड़ी देर बाद दिये जाने वाला ध्यान और माँ के साथ उद्वेगात्मक संसर्ग की कमी बच्चे को चिन्तित, सन्देही, और अविश्वासी बनाती है। इसी प्रकार, जिन समाजों में बण्डल बनाकर बच्चों को पीठ पर लेकर चलने की प्रथा है वहाँ बच्चों को हाथ पैर चलाने की स्वतन्त्रता न रहने से बच्चे एक दबायी हुई हिंसा अनुभव करते हैं। कुछ समाजशास्त्रियों का कथन है कि जिन समाजों में बिस्तर पर पेशाब करने के कारण बच्चों को मारा जाता है वहाँ बच्चों में अविश्वास, नर्वसपन और चिन्ता विकसित होती है। बच्चों को कम उम्र में मारने का बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे बच्चे की सुरक्षा की भावना को ठेस लगती है। कुछ समाजों में काफी उम्र तक बच्चे अपने वयस्कों की गोद में चलते हैं जब कि योरोपीय समाज में बहुत जल्दी ही बच्चे को खड़ा होना और चलना सिखाया जाता है जिसके फलस्वरूप वह होशियारी और दक्षता का मूल्य समझने लगता है।

जिन समाजों में संस्कृति पुरस्कार पाने के लिये बच्चे से माता-पिता के प्रति पूरी आज्ञापालन की माँग करती है, वहाँ के वयस्क सामान्यतः नम्र, पर-निर्भर और उत्साहहीन, और किसी बात में आगे रहने के प्रति उदासीन रहते हैं। कभी भी नयी स्थिति आ जाने पर वह अपने माता-पिता या अन्य महत्वपूर्ण वयस्कों की ओर सहायता और सलाह के लिये देखेगा। इस सम्बन्ध में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि अनेक

समाजों में कुछ चुने हुये व्यक्तियों को नेतागीरी में प्रशिक्षण देने की कुछ विशेष प्रविधियों को विकसित किया गया है। उदाहरण के लिये, मैडागास्कर के टनाला लोगों में ज्येष्ठ पुत्रों (eldest sons) की जन्म के बाद से ही भिन्न प्रकार की देख-भाल की जाती है जिससे उनमें अगुआ बनने, सूत्रपात (initiative) करने और जिम्मेदारी की इच्छा विकसित हो, जब कि अन्य बच्चों को नियमपूर्वक अनुशासन में रक्खा जाता है और नेता बनने की उनकी इच्छाओं का दमन किया जाता है। लिंटन का कहना है कि जिन समाजों में छोटे परिवार होते हैं वहाँ व्यक्ति परिवार के सदस्यों के प्रति स्नेह और लगाव अनुभव करता है जब कि विस्तृत (extended) परिवार में किसी विशेष व्यक्ति के साथ अत्यधिक लगाव की संभावना कम होती है।

सभ्य समाजों की अपेक्षा आदिवासी बच्चों को बहुत कम आयु से जिम्मेदारियाँ दे दी जाती हैं और उन्हें स्वयं अपनी देख भाल करनी पड़ती है। मारगरेट मीड का कहना है कि प्रत्येक आदिवासी समाज में बच्चों को दूसरे समाज से भिन्न प्रकार की ट्रेनिंग दी जाती है। न्यूगिनी की मनु जाति में शारीरिक कौशल और स्वास्थ्य पर विशेष बल दिया जाता है। शुरू से मिलने वाली शिक्षा बच्चे को आत्म-निर्भर और शारीरिक मेहनत करने का आदी बना देती है। वह आगे चलकर एक ऐसा वयस्क बन जाता है जो शारीरिक दृष्टि से प्रशंसनीय होता है, प्रवीण, चुस्त, निर्भर, अचानक संकट पड़ने पर और परेशानियों से न घबराने वाला। दूसरी ओर सामाजिक अनुशासन बहुत ढीला होता है, और बच्चे काफी हद तक बिगाड़ दिये जाते हैं। वे सब कुछ अपनी इच्छा से ही करते हैं और माता पिता की इच्छाओं के प्रति आज्ञापालन और आदर नहीं दिखाते। यदि बच्चा शारीरिक दृष्टि से कुशल है, और दूसरों की संपत्ति का आदर करता है, तो उस पर कोई दूसरी माँग नहीं रखी जाती।

इसके ठीक विपरीत कई प्रकार की ट्रेनिंग अफ्रीकन काफिर (kaffir's) समाज में दी जाती है। वहाँ बच्चों में आज्ञापालन न करने जैसी कोई बात नहीं पायी जाती। और सबसे से पहली शिक्षा उन्हें नम्र होने और दूसरों का ध्यान रखने की दी जाती है। और सबसे मिलने-जुलने की भावना उनमें विशेष रूप से विकसित की जाती है। उन्हें किसी भी अवसर में अलग नहीं रखा जाता है। इससे उनमें व्यक्तिगत सुरक्षा की भावना मजबूत होती है।

मारगेट मीड ने सभ्य समाजों और समोआ निवासियों के बच्चों की तुलना करते हुये कहा है कि वहाँ बच्चों को बहुत कम उम्र में जिम्मेदारियाँ सँभालनी पड़ती हैं और सबसे बड़ी गलती यदि कोई बच्चा कभी करता है तो वह अपनी आयु के हिसाब से अधिक बढ़कर बोलना या, अपने समवयस्कों से आगे बढ़ने की कोशिश

करना। बच्चों को बहुत तेजी से उन्नति करने से रोका जाता है और माता-पिता उस समय लज्जा अनुभव करते हैं जब उनके बच्चे अपने समवयस्कों से किसी बात में आगे निकल जाते हैं।

(2) **भिन्न लिंगों** के व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से भी संस्कृति का महत्व समझना आवश्यक है। कुछ समाजों में लड़कियों का जन्म कोई खुशी की बात नहीं समझी जाती, वह एक आर्थिक बोझ समझी जाती है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि योरोपीय समाजों की लड़कियों की अपेक्षा वे मनोवैज्ञानिक असुविधा (handicap) में पलती हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक मानवशास्त्रियों ने इस बात को भी प्रमाणित किया है कि स्त्रियाँ जैवकीय दृष्टिकोण से पुरुषों से किसी भी प्रकार हीन नहीं हैं; उनका हिंसात्मक या शान्त होना संस्कृति के ऊपर निर्भर करता है। रूथ बेनेडिक्ट ने बताया है कि ऐसे अनेक समाज हैं जहाँ पुरुष नम्र, दबीले, आज्ञाकारी, सहनशील होते हैं, न कि स्त्रियाँ। इन समाजों में पुरुषों को अपनी स्त्रियों को खुश रखना पड़ता है, खाना पकाना, सफाई करना, बच्चों की देख-रेख करना पड़ता है जब उनकी स्त्रियाँ अपने मित्रों के घर मिलने गयी होती हैं।

(2) **किशोरावस्था** के सम्बन्ध में भी संस्कृति का कार्य महत्वपूर्ण है। सभ्य समाजों में किशोरावस्था (adolescence) उद्वेगात्मक तनावों और परेशानियों का काल समझा जाता है, जब लड़के और लड़कियों के शरीर में विशेष परिवर्तन होता है और उनमें नई इच्छायें जाग्रत होती हैं। मारगरेट स्मिथ ने समोआ की लड़कियों के सम्बन्ध में कहा है कि किशोरावस्था में उन्हें किसी प्रकार के उद्वेगात्मक तनाव का सामना नहीं करना पड़ता। किशोर लड़कियों को समुदाय में अपने पद या यौन-सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिये चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। उनका पद (status) समाज के नियमों द्वारा निश्चित होता है जो भिन्न आयु समूहों के सदस्यों को निश्चित अधिकार प्रदान करते हैं, जिसके कारण कोई व्यक्ति अपनी आयु के अन्य व्यक्तियों से किसी बात में आगे नहीं बढ़ सकता। उच्च पद की उन्हें कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। जहाँ तक यौन इच्छा का सम्बन्ध है, किशोरावस्था के बाद प्रत्येक लड़की समुदाय के लड़कों के साथ मुक्त रूप से यौन सम्बन्ध करती है। माता-पिता जानते हुये भी किसी प्रकार की रोक-थाम नहीं करते जिससे लड़कियों और लड़कों में यौन सम्बन्धी तनाव विकसित नहीं हो पाते।

(4) हमारे समाजों में **वृद्ध होना** विपत्ति का सूचक समझा जाता है क्योंकि आर्थिक असुरक्षा (insecurity) का उन्हें भय रहता है। आस्ट्रेलियन वन्य जातियों में इसके विपरीत, वृद्धावस्था गौरव और विशेषाधिकार प्रदान करती है। आस्ट्रेलियन वन्य-

जातियों की सरकारें वृद्धजनों द्वारा संचालित होती हैं जिन्हें राजनैतिक शक्ति और विशेष अधिकार मिलते हैं। वृद्ध होने के साथ ही पद और प्रतिष्ठा और बाकी सब सदस्यों की आर्थिक सेवा की गारंटी हो जाती है।

हमारी संस्कृति में आर्थिक कारकों का व्यक्तित्व पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। बेकारी के प्रभावों के अध्ययनों से पता लगता है कि ऐसी स्थिति में व्यक्तित्व छिन्न-भिन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में आत्म-सम्मान, समाज में मिलना-जुलना, अपनी आकृति (appearance) ठीक रखने में, और यहाँ तक कि अपने भविष्य और पर्यावरण में रुचि में कमी आ जाती है।

समाजशास्त्रियों ने बताया है कि आर्थिक वर्ग काफी हद तक व्यक्तित्व अन्तरों के लिये उत्तरदायी हैं। किसी व्यावसायिक समूह की सदस्यता, सामाजिक पद और सम्बन्ध, आय, शिक्षा, क्लब और समाजों में सदस्यता यह व्यक्तित्व के रूप को प्रभावित करते हैं। यद्यपि एक वर्ग से दूसरे वर्ग में व्यक्ति प्रवेश करता रहता है, परन्तु वर्ग सदस्यता फिर भी महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, वृद्धावस्था किसी मजदूर के लिए विपत्तिकाल हो सकती है परन्तु व्यापार में लगे हुये व्यक्ति के लिये नहीं।

संस्कृति और व्यक्तित्व के सम्बन्ध के उदाहरण

इस बात को सभी मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि व्यक्तित्व निर्माण में संस्कृति का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जैवकीय कारक इस सम्बन्ध में महत्वहीन हैं। इस बात को दृष्टि में रखते हुए हमारे लिए यह कहना अधिक उचित होगा कि व्यक्तित्व संस्कृति से प्रभावित (culturally influenced) होता है न कि संस्कृति से निश्चित (culturally determined) होता है। भाषा के सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जाता है कि इसका सीखना पूर्णरूप से संस्कृति पर निर्भर करता है। इस बात को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि सामान्य नवजात शिशु वही भाषा सीखेगा जो उस परिवार में बोली जाती है जहाँ वह पलता है चाहे उस परिवार के सदस्यों की प्रजाति से उसकी प्रजाति कितनी ही भिन्न क्यों न हो और चाहे सीखने की प्रक्रिया उस स्थान से लाखों मील दूर ही क्यों न शुरू हो जहाँ वह पहली बार विकसित हुई। शिष्टाचार के कुछ किस्म (जैसे कि अभिवादन के ढंग) विशेष ढंग के वस्त्रों का पहनना और भोजन सम्बन्धी आदत भी सामान्यत: संस्कृति द्वारा निश्चित कही जाती है, परन्तु वस्त्र और भोजन-सम्बन्धी बातों पर पर्यावरण और जैवकीय कारकों का भी, कम से कम कुछ घटनाओं में, प्रभाव होता है। इसलिए हम यही कहेंगे कि व्यक्तित्व संस्कृति से प्रभावित होता है न कि निश्चित।

आन्तरिक प्राणीशास्त्रीय व्यवहार—सहनशीलता साँस्कृनिक समूहों में इतनी अधिक भिन्न है कि यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह संस्कृति से प्रभावित होती है। हेनरी का विचार है कि भूख (appetite) संस्कृति से प्रभावित होती है। मतली (nausea) उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ भी भिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग हैं। कुछ संस्कृतियों में वमन करना एक त्रासजनक व्यवहार है। कहा जाता है कि किसी सुन्दर स्त्री को देख कर फीजी निवासियों के मुंह से लार टपकने लगती है।* इस बात की भी कुछ मानव-शास्त्री शहादत है कि कुछ संस्कृतियों के लोग उन वस्तुओं की अवहेलना करके भी जीवित रहते हैं जिन्हें पश्चिमी वैज्ञानिक सामान्य आवश्यकतायें कहते हैं। कुछ वन्य जातियाँ नमक का बिल्कुल भी सेवन नहीं करतीं। कैनन (Cannon) ने कहा है कि किसी व्यक्ति का यह विश्वास कि वह किसी के जादू-टोने का शिकार है उसकी शरीरशास्त्रीय (anatomical) क्रिया को इतना अधिक बिगाड़ सकता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाये।

यौन व्यवहार—मरडाक (Murdock) ने यौन चुनाव का एक सामाजिक नियम बनाया है और यह दिखाया है कि किस प्रकार यौन-व्यवहार संस्कृति द्वारा प्रभावित होता है। न्यूनगिनी के केराकी ऐसे व्यक्ति को असामान्य (abnormal) समझते हैं जो विवाह से पूर्व समलिंगी (homosexual) सम्बन्धों में भाग नहीं लेता। सिरिओनो या ट्रोब्रियण्ड स्त्री व पुरुषों में यौन उत्तेजना का सम्बन्ध नोचे और काटे जाने के अनुभव से है। फोर्ड और बीच ने यह बताया है कि नामर्दी सांस्कृतिक ट्रेनिंग और सांस्कृतिक मनोवृत्तियों से प्रभावित होती हैं। हेनरी कहता है कि नामर्द उन समूहों में नहीं के बराबर हैं जो बाल्यावस्था के यौन-व्यवहारों के प्रति सहनशील हैं और जो यौन को जीवन की एक अच्छी वस्तु बताते हैं।

यौन व्यवहार भिन्न संस्कृतियों में भिन्न ही नहीं होता, बल्कि एक से कार्यों का भिन्न प्रभाव होता है। यह कहा जाता है कि वेशभूषा, शरीर के भिन्न अंगों की नग्नता, भिन्न संस्कृतियों में वयस्कों में भिन्न ढंग के काम उत्तेजित करती हैं। ग्लैडविन और सैरासन ने बताया है कि विवाहित ट्रूकी लोगों को केवल अपनी पत्नी को छोड़ कर अन्य स्त्रियों के साथ सम्भोग करने में वास्तविक आनन्द आता है। यहाँ तक कि जब प्रेमी-प्रेमिका विवाह करते हैं, उनका यौन-जीवन विवाह के बाद नीरस हो जाता है। तलाक की दर भिन्न संस्कृतियों में भिन्न है और उनके प्रातीतिक (subjective) अनुभव अलग है।

---

* *A Handbook of Social Psychology* by Liney.

बोध (cognition)—संस्कृति व्यक्ति के विचारों पर और दृष्टि (perception) पर भी प्रभाव डालती है। ट्रूकी लोग समुद्र के पानी और ताजे पानी को बिल्कुल भिन्न वस्तु (substance) समझते हैं। अंग्रेजी भाषा में झुण्ड व्यवहार के लिए भिन्न--भिन्न शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे कि shoals of fish, herds of cattle, flocks of sheep, pride of lions। यही बात दृष्टि को भी लागू होती है। कुछ अमेरिकन बच्चे काफी दूर से ही मोटर गाड़ी की हेड लाइट देख कर बता सकते हैं कि कौन सी गाड़ी है परन्तु चलती हुई नावों या ऊँटों को देखकर उनकी किस्म नहीं बता सकते।

प्रभाव (affect)—उद्वेगों का प्रकटन और विशेष उद्वेगों को उत्तेजित करने वाली परिस्थितियाँ भिन्न संस्कृतियों में भिन्न होती हैं। ला बार (La Barre) ने इसके उदाहरण दिए हैं :

जापान में फूत्कार (hissing) सामाजिक रूप से श्रेष्ठ व्यक्तियों के प्रति आदर दिखाने का नम्र ढंग है ; बसूटो फूत्कार द्वारा सराहना करते हैं; परन्तु इंग्लैण्ड में यह अत्यन्त अभद्र व्यवहार है और किसी अभिनेता या वक्ता के प्रति असम्मान प्रकट करने का ढंग है। संसार के अधिकतर भागों में किसी व्यक्ति पर थूकना घृणा का चिह्न है ; परन्तु फिर भी अफ्रीका के मसाई लोगों में यह स्नेह और भलाई का चिह्न है, जबकि अमेरिकन इण्डियन चिकित्सक का रोगी पर थूकना इलाज का एक विशेष ढंग है। योरोप में अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति की उपस्थिति में खड़ा हुआ जाता है ; फीजो और टोंगा लोग बैठ जाते हैं।

असामान्य व्यवहार (abnormal behaviour)—ग्लैडविन और सैरासन कहते हैं कि ट्रूकी लोगों में स्त्रियों का ऐसे सम्बन्धियों के सामने अपना वक्षस्थल अनावृत्त करना निषिद्ध है जिन्हें वे 'पिता या भाई' कहती हैं परन्तु रात में यह बात लागू नहीं होती। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में अपराध करने के ढंग और अपराध की दर और कारण भिन्न हैं। कुछ संस्कृतियों में जैसे माओरी लोगों में, बच्चों का अंगूठा चूसना नहीं के बराबर (rare) है। जानसन का कहना है कि कुछ संस्कृतियों के लोग अधिक हकलाते हैं और कुछ कम और कुछ बिलकुल नहीं, इससे यह प्रतीत होता है कि यह भी संस्कृति से प्रभावित होता है।* मानसिक विकार के कुछ प्रकार के चिह्न भी, यह कहा जाता है, संस्कृति से प्रभावित होते हैं। लाटाह (latah), उन्माद (amok),आर्कटिक हिस्टीरिया (arctic hysteria) इसके पुराने उदाहरण

* Ibid.

हैं। अबले कहता है कि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि लाटाह का होना या न होना संस्कृति से प्रभावित है या नहीं, परन्तु इसकी दर संस्कृति द्वारा निश्चय प्रभावित होती है।*

घड़ियाँ और समय-पालन—घड़ी के आविष्कार ने समय की पाबन्दी की आदत डलवायी है। आदिवासी जिनके पास घड़ियाँ नहीं हैं समय की पाबन्दी का कोई ख्याल नहीं करते हैं, जब कि हमारे समाज में मनुष्यों को, जो किसी बड़े शहर में काम करने जाते हैं, समय का सूक्ष्म ध्यान रहता है। आधुनिक संस्कृति में रेडियो, रेलवे आदि जैसी अनेक वस्तुयें हैं जिनके प्रयोग के लिये समय की पाबन्दी आवश्यक है। जहाँ तक समय की पाबन्दी का सम्बन्ध है एक आदिवासी और एक शहर के निवासी के व्यक्तित्व में अन्तर होता है और यह अन्तर दोनों की संस्कृति के कारण है।

नल और सफाई—दूसरा उदाहरण हमें नल और सफाई के सम्बन्ध में मिलता है। सफाई व्यक्तित्व की एक विशेषता है जिसे हमारी संस्कृति में विशेष महत्व दिया जाता है। यह एक ऐसी विवेचना है जो कि नल की यन्त्रकला और हमारी संस्कृति के अन्य आविष्कारों के द्वारा प्रोत्साहित हुई है।

भाषा और व्यक्तित्व—व्यक्तित्व के ऊपर प्रभाव डालने वाली वस्तुओं में से भाषा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अनेक कारण हैं। मनुष्य और पशु का मुख्य अन्तर यह है कि केवल मनुष्य के पास ही भाषा है। इसके अतिरिक्त, भाषा केवल उन लोगों की संगति से सीखी जा सकती है जिनके पास भाषा है। जंगली आदमी जो अपने साथियों से अलग पाले जाते हैं जैसे कभी बच्चों को भेड़िया चुरा ले जाते हैं और पालते हैं—उनके पास कोई भाषा नहीं होती। व्यक्तित्व के विकास के लिये भाषा मुख्य साधन है, क्योंकि इसी के द्वारा व्यक्ति अपनी सूचना और मनोवृत्तियों को प्राप्त करता है।

सांस्कृतिक प्रतिमान और व्यवहार प्रतिमान—सांस्कृतिक विशेषताओं और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हमें कुछ छूटों का भी पालन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, जहाँ तक घड़ियाँ और समय की पाबन्दी का सम्बन्ध है, यह देखा जाता है कि केवल घड़ी पास होने से ही यह निश्चित नहीं हो जाता कि व्यक्ति ठीक समय पर दूसरे व्यक्ति के घर पहुँच जायगा। लैटिन अमेरिकन लोगों के पास भी उत्तरी अमेरिकन लोगों की भाँति घड़ियाँ हैं परन्तु वे उत्तरी अमेरिकन लोगों की तरह हमेशा समय के

---

* Ibid.

पाबन्द नहीं होते हैं। लैटिन अमेरिकन लोगों के लिए आतिथ्य सत्कार, शिष्टता और मित्रता का अधिक महत्व है, बनिस्बत नियत समय पर किसी से मिलने के।

ग्रामीण संस्कृति और आतिथ्य सत्कार—उदारता तथा कृपणता भी व्यक्तित्व की विशेषता है जो सफाई अथवा समय की पाबन्दी की अपेक्षा अधिक प्राकृतिक मालूम पड़ती है, परन्तु वास्तव में संस्कृति के साथ इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए, शहरों में रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा गाँव के रहने वाले व्यक्ति अधिक उदार और आतिथ्य-सत्कार करने वाले होते हैं।

स्त्रियों के व्यवसाय और आज्ञापालन—व्यक्ति पर संस्कृति के प्रभाव का एक उदाहरण हमें पुरुषों और स्त्रियों के सम्बन्ध में मिलता है। औद्योगीकरण से पहले खेती ही मुख्य धन्धा था। घर के बाहर स्त्रियों के लिए कोई धन्धा न था, इसलिए वे अपने पिता और पति पर निर्भर रहती थीं। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप आज्ञा-पालन स्वाभाविक ही था। आजकल स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता होने के कारण, घर के बाहर नौकरी-धन्धा करके धन कमाने के कारण आज्ञापालन की अपेक्षा वे आत्म-प्रकटन और राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्रों में भाग लेने को अधिक महत्व देती हैं। स्त्रियों और पुरुषों की सामाजिक स्थिति समान है। गाँव में अब भी आज्ञापालन स्त्रियों की विशेषता है।

विचार और संस्कृति—व्यक्ति के विचारों पर भी संस्कृति का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है हिन्दू लोग अनेक देवताओं में, दोनों लिंगों में विश्वास करते हैं जो कि स्वर्ग में रहते हैं और मनुष्यों की भाँति ही प्रेम करते और हँसते हैं। रूस निवासी किसी भी देवता पर विश्वास नहीं करते।

पक्षपात और संस्कृति—हम अनेक प्रकार के राजनैतिक, देश भक्ति सम्बन्धी, वर्गीय, प्रजातीय और आध्यात्मिक पूर्व-धारणाओं (prejudices) से परिचित हैं। इस सम्बन्ध में व्यक्ति की प्रकृति भी एक महत्वपूर्ण कारक है, परन्तु संस्कृति उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। ऐस्किमो ह्वेल मछली की चर्बी पसन्द करते हैं जब कि हम लोग नहीं; अमेरिकन गोरे काले चमड़ी वाले व्यक्तियों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहते परन्तु हम लोगों में ऐसा नहीं है।

सौम्यता के स्तर और संस्कृति—बच्चे में लज्जा की कोई भी भावना नहीं होती। यह तो केवल संस्कृति के प्रभाव से जन्मती है। जापानी स्त्रियाँ चिलचिलाती हुई धूप में मीलों तक एक के ऊपर दूसरे अनेक 'किमोनो' पहने हुए पैदल चली जायेंगी और सौम्यता के विचार से एक भी किमोनो हटाने से इन्कार करेंगी, यद्यपि नहाने

के घाट पर पहुँच कर वे निरवस्त्र भी हो सकती हैं। बुर्के में मुसलमान स्त्री, पंखा या मैण्टिला लिए हुए कोई स्पैनिश स्त्री उसी प्रकार किसी की दृष्टि में अभद्र हो सकती है जैसे कि सूखी घास का पैटीकोट पहने हुई जंगली स्त्री। यह देखने वाले व्यक्ति पर निर्भर करता है।

नैतिकता के स्तर और संस्कृति—मनुष्य के लिये वह सब नैतिक है जो रूढ़ियों के अनुकूल है। भारत में सती प्रथा तथा देवदासी प्रथा, नैतिक थी। तिब्बत-वासियों में बहुपति-विवाह नैतिक है। फ्रांस में व्यभिचार नैतिक है। कहीं शिशु-हत्या नैतिक है, तो कहीं मनुष्य का मांस खाना भी नैतिक है। वास्तव में संस्कृति ही यह निश्चित करती है कि क्या नैतिक है और क्या अनैतिक है।

———